॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण

जैमिनि-मार्कण्डेय-संवाद—वपुको दुर्वासाका शाप

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्य-
मासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्म-
माविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवःस्वः ॥ १ ॥
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः
क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कलिकाकराल:
सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात्॥ २ ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ ३ ॥*

व्यासजीके शिष्य महातेजस्वी जैमिनिने तपस्या और स्वाध्यायमें लगे हुए महामुनि मार्कण्डेयसे पूछा—'भगवन्! महात्मा व्यासद्वारा प्रतिपादित महाभारत अनेक शास्त्रोंके दोषरहित एवं उज्ज्वल सिद्धान्तोंसे परिपूर्ण है। यह सहज शुद्ध अथवा छन्द आदिकी शुद्धिसे युक्त और साधु शब्दावलीसे सुशोभित है। इसमें पहले पूर्वपक्षका प्रतिपादन करके फिर सिद्धान्त-पक्षकी स्थापना की गयी है। जैसे देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण तथा सम्पूर्ण आभूषणोंमें चूड़ामणि श्रेष्ठ है, जिस प्रकार आयुधोंमें वज्र और इन्द्रियोंमें मन प्रधान माना गया है, उसी प्रकार समस्त शास्त्रोंमें महाभारत उत्तम बताया गया है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका वर्णन है। वे पुरुषार्थ कहीं तो परस्पर सम्बद्ध हैं और कहीं पृथक्-पृथक् वर्णित हैं। इसके सिवा उनके अनुबन्धों (विषय, सम्बन्ध, प्रयोजन और अधिकारी)-का भी इसमें वर्णन किया गया है।

'भगवन्! इस प्रकार यह महाभारत उपाख्यान वेदोंका विस्ताररूप है। इसमें बहुत-से विषयोंका प्रतिपादन किया गया है। मैं इसे यथार्थ रूपसे जानना चाहता हूँ और इसीलिये आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके एकमात्र कारण सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन निर्गुण होकर भी मनुष्यरूपमें कैसे प्रकट हुए तथा द्रुपदकुमारी कृष्णा अकेली ही पाँच पाण्डवोंकी

* जिनमें जन्म-मृत्युरूप संसारके भय और पीडाओंका नाश करनेकी पूर्ण योग्यता है, पवित्र अन्त:करणवाले योगिजन जिन्हें ध्यानमें देखकर बारंबार मस्तक झुकाते हैं, जो वामनरूपसे विराट्-रूप धारण करते समय प्रकट होकर

महारानी क्यों हुई? इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। द्रौपदीके पाँचों महारथी पुत्र, जिनका अभी विवाह भी नहीं हुआ था और पाण्डव-जैसे वीर जिनके रक्षक थे, अनाथोंकी भाँति कैसे मारे गये? ये सारी बातें आप मुझे विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।'

मार्कण्डेयजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! यह मेरे लिये संध्या-वन्दन आदि कर्म करनेका समय है। तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर विस्तारपूर्वक देना है, अतः उसके लिये यह समय उत्तम नहीं है। जैमिने! मैं तुम्हें ऐसे पक्षियोंका परिचय देता हूँ, जो तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देंगे और तुम्हारे सन्देहका निवारण करेंगे। द्रोण नामक पक्षीके चार पुत्र हैं, जो सब पक्षियोंमें श्रेष्ठ, तत्त्वज्ञ तथा शास्त्रोंका चिन्तन करनेवाले हैं। उनके नाम हैं—पिङ्गाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख। वेदों और शास्त्रोंके तात्पर्यको समझनेमें उनकी बुद्धि कभी कुण्ठित नहीं होती। वे चारों पक्षी विन्ध्यपर्वतकी कन्दरामें निवास करते हैं। तुम उन्हींके पास जाकर ये सभी बातें पूछो।

जैमिनिने कहा—ब्रह्मन्! यह तो बड़ी अद्भुत बात है कि पक्षियोंकी बोली मनुष्योंके समान हो। पक्षी होकर भी उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ विज्ञान प्राप्त किया है। यदि तिर्यक्-योनिमें उनका जन्म हुआ है, तो उन्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? वे चारों पक्षी द्रोणके पुत्र कैसे बतलाये जाते हैं? विख्यात पक्षी द्रोण कौन है, जिसके चार पुत्र ऐसे ज्ञानी हुए? उन गुणवान् महात्मा पक्षियोंको धर्मका ज्ञान किस प्रकार हुआ?

मार्कण्डेयजी बोले—मुने! ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें नन्दनवनके भीतर जब देवर्षि नारद, इन्द्र और अप्सराओंका समागम हुआ था, उसी समयकी घटना है। एक बार नारदजीने नन्दनवनमें देवराज इन्द्रसे भेंट की। उनकी दृष्टि पड़ते ही इन्द्र उठकर खड़े हो गये और बड़े आदरके साथ अपना सिंहासन उन्हें बैठनेको दिया। वहाँ खड़ी हुई अप्सराओंने भी देवर्षि नारदको विनीत भावसे मस्तक झुकाया। उनके द्वारा पूजित हो नारदजीने इन्द्रके बैठ जानेपर यथायोग्य कुशल-प्रश्नके अनन्तर बड़ी मनोहर कथाएँ सुनायीं। उस बातचीतके प्रसङ्गमें ही इन्द्रने महामुनि नारदसे कहा—'देवर्षे! इन अप्सराओंमें जो आपको प्रिय जान पड़े, उसे आज्ञा दीजिये, यहाँ नृत्य करे। रम्भा, मिश्रकेशी, उर्वशी, तिलोत्तमा, घृताची अथवा मेनका—जिसमें आपकी रुचि हो, उसीका नृत्य देखिये।' इन्द्रकी यह बात सुनकर द्विजश्रेष्ठ नारदजीने विनयपूर्वक खड़ी हुई अप्सराओंसे कुछ सोचकर कहा—'तुम सब लोगोंमेंसे जो अपनेको रूप और उदारता आदि गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ मानती हो, वही मेरे सामने यहाँ नृत्य करे।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिकी यह बात सुनते ही वे विनीत अप्सराएँ एक-एक करके आपसमें कहने लगीं—'अरी! मैं ही गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ हूँ, तू नहीं।' इसपर दूसरी कहती, 'तू नहीं, मैं श्रेष्ठ हूँ।' उनका वह अज्ञानपूर्ण विवाद देखकर इन्द्रने कहा—'अरी! मुनिसे ही पूछो, वे ही बतायेंगे

क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको भी लाँघ गये थे, श्रीहरिके वे दोनों चरणकमल आपलोगोंको पवित्र करते रहें। जो समस्त पापोंका संहार करनेमें समर्थ हैं, जिनका श्रीविग्रह क्षीरसागरके गर्भमें शेषनागकी शय्यापर शयन करता है, उन्हीं शेषनागकी श्वास-वायुसे कम्पित हुए जलकी उत्ताल तरङ्गोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला समुद्र जिनका सत्सङ्ग पाकर प्रसन्नताके मारे नृत्य-सा करता जान पड़ता है, वे भगवान् नारायण आपलोगोंकी रक्षा करते रहें। भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके 'जय' (इतिहास-पुराण) का पाठ करना चाहिये।

कि तुमलोगोंमें सबसे अधिक गुणवती कौन है।' इस प्रकार उनके पूछनेपर नारदजीने कहा—'जो गिरिराज हिमालयपर तपस्या करनेवाले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाको अपनी चेष्टासे क्षुब्ध कर देगी, उसीको मैं सबसे अधिक गुणवती मानूँगा।' उनकी बात सुनकर सबकी गर्दन हिल गयी। सबने एक-दूसरीसे कहना आरम्भ किया—'हमारे लिये यह कार्य असम्भव है।' उन अप्सराओंमें एकका नाम वपु था। उसके मनमें मुनियोंको विचलित कर देनेका गर्व था। उसने नारदजीको उत्तर दिया, 'जहाँ दुर्वासा मुनि रहते हैं, वहाँ आज मैं जाऊँगी। दुर्वासा मुनिको, जो शरीररूपी रथका सञ्चालन करते हैं, जिन्होंने इन्द्रियरूपी घोड़ोंको उस रथमें जोत रखा है, एक अयोग्य सारथि सिद्ध कर दिखाऊँगी। अपने कामबाणके प्रहारसे उनके मनरूपी लगामको गिरा दूँगी—उनके काबूके बाहर कर दूँगी।'

यों कहकर वपु हिमालय पर्वतपर गयी। वहाँ महर्षिके आश्रममें उनकी तपस्याके प्रभावसे हिंसक जीव भी अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर परम शान्त रहते थे। महामुनि दुर्वासा जहाँ निवास करते थे, उस स्थानसे एक कोसकी दूरीपर वह सुन्दरी अप्सरा ठहर गयी और गीत गाने लगी। उसकी वाणीमें कोकिलके कलरवका-सा मिठास था। उसके संगीतकी मधुर ध्वनि कानमें पड़ते ही दुर्वासा मुनिके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे उसी स्थानकी ओर गये, जहाँ वह मृदुभाषिणी बाला संगीतकी तान छेड़े हुए थी। उसे देखकर महर्षिने अपने मनको बलपूर्वक रोका और यह जानकर कि यह मुझे लुभानेके लिये आयी है, उन्हें क्रोध और अमर्ष हो आया। फिर तो वे महातपस्वी महर्षि उस अप्सरासे इस प्रकार बोले—'आकाशमें विचरनेवाली

मतवाली अप्सरा! तू बड़े कष्टसे उपार्जित किये हुए मेरे तपमें विघ्न डालनेके लिये आयी है, अतः मेरे क्रोधसे कलङ्कित होकर तू पक्षीके कुलमें जन्म लेगी। ओ खोटी बुद्धिवाली नीच अप्सरा! अपना यह मनोहर रूप छोड़कर तुझे सोलह वर्षोंतक पक्षिणीके रूपमें रहना पड़ेगा। उस समय तेरे गर्भसे चार पुत्र उत्पन्न होंगे। किन्तु तू उनके प्रति होनेवाले प्रेमजनित सुखसे वञ्चित ही रहेगी और शस्त्रद्वारा वधको प्राप्त होकर शापमुक्त हो पुनः स्वर्गलोकमें अपना स्थान प्राप्त करेगी। बस, अब इसके विपरीत तू कुछ भी किसी प्रकार भी उत्तर न देना।' क्रोधसे लाल नेत्र किये महर्षि दुर्वासाने मधुर खनखनाहटसे युक्त चञ्चल कङ्कण धारण करनेवाली उस मानिनी अप्सराको ये दुस्सह वचन सुनाकर इस पृथ्वीको छोड़ दिया और विश्वविश्रुत गुणोंसे गौरवान्वित एवं उत्ताल तरङ्गोंवाली आकाशगङ्गाके तटपर चले गये।

सुकृष मुनिके पुत्रोंके पक्षीकी योनिमें जन्म लेनेका कारण

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जैमिने! अरिष्टनेमिके पुत्र पक्षिराज गरुड़ हुए। गरुड़के पुत्र सम्पातिके नामसे विख्यात हुए। सम्पातिका पुत्र शूरवीर सुपार्श्व था। सुपार्श्वका पुत्र कुम्भि और कुम्भिका पुत्र प्रलोलुप हुआ। उसके भी दो पुत्र हुए, उनमें एकका नाम कङ्क और दूसरेका नाम कन्धर था। कन्धरके तार्क्षी नामकी कन्या हुई, जो पूर्वजन्ममें श्रेष्ठ अप्सरा वपु थी और दुर्वासा मुनिकी शापाग्निसे दग्ध हो पक्षिणीके रूपमें प्रकट हुई थी। मन्दपाल पक्षीके पुत्र द्रोणने कन्धरकी अनुमतिसे उस कन्याके साथ विवाह किया। कुछ कालके अनन्तर तार्क्षी गर्भवती हुई। उसका गर्भ अभी साढ़े तीन महीनेका ही था कि वह कुरुक्षेत्रमें गयी। वहाँ कौरव और पाण्डवोंमें बड़ा भयंकर युद्ध छिड़ा था, भवितव्यतावश वह पक्षिणी उस युद्धक्षेत्रमें प्रवेश कर गयी। वहाँ उसने देखा—भगदत्त और अर्जुनमें युद्ध हो रहा है। सारा आकाश टिड्डियोंकी भाँति बाणोंसे खचाखच भर गया है। इतनेमें ही

अर्जुनके धनुषसे छूटा हुआ एक बाण बड़े वेगसे उसके समीप आया और उसके पेटमें घुस गया। पेट फट जानेसे चन्द्रमाके समान श्वेत रंगवाले चार अंडे पृथ्वीपर गिरे। किन्तु उनकी आयु शेष थी, अतः वे फूट न सके; बल्कि पृथ्वीपर ऐसे गिरे, मानो रूईके ढेरपर पड़े हों। उन अण्डोंके गिरते ही भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजकी पीठसे एक बहुत बड़ा घंटा भी टूटकर गिरा, जिसका बन्धन बाणोंके आघातसे कट गया था। यद्यपि वह अण्डोंके साथ ही गिरा था, तथापि उन्हें चारों ओरसे ढकता हुआ गिरा और धरतीमें थोड़ा-थोड़ा धँस भी गया।

युद्ध समाप्त होनेपर जहाँ घंटेके नीचे अण्डे पड़े थे, उस स्थानपर शमीक नामके एक संयमी महात्मा गये। उन्होंने वहाँ चिड़ियोंके बच्चोंकी आवाज सुनी। यद्यपि उन सबको परम विज्ञान प्राप्त था, तथापि निरे बच्चे होनेके कारण अभी वे स्पष्ट वाक्य नहीं बोल सकते थे। उन बच्चोंकी आवाजसे शिष्योंसहित महर्षि शमीकको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने घंटेको उखाड़कर उसके भीतर पड़े हुए उन माता, पिता और पंखसे रहित पक्षिशावकोंको देखा। उन्हें इस प्रकार भूमिपर पड़ा देख महामुनि शमीक आश्चर्यमें डूब गये और अपने साथ आये हुए द्विजोंसे बोले—'देवासुरसंग्राममें जब दैत्योंकी सेना देवताओंसे पीड़ित होकर भागने लगी, तब उसकी ओर देखकर स्वयं विप्रवर शुक्राचार्यने यह ठीक ही कहा था—'ओ कायरो! क्यों पीठ दिखाकर जा रहे हो। न जाओ, लौट आओ। अरे! शौर्य और सुयशका परित्याग करके ऐसे किस स्थानमें जाओगे, जहाँ तुम्हारी मृत्यु न होगी। कोई भागे या युद्ध करे; वह तभीतक जीवित रह सकता है, जबतकके लिये पहले विधाताने उसकी आयु

निश्चित कर दी है। विधाताके इच्छानुसार जबतक जीवकी आयु पूर्ण नहीं हो जाती, तबतक उसे कोई मार नहीं सकता। कोई अपने घरमें मरते हैं, कोई भागते हुए प्राणत्याग करते हैं, कुछ लोग अन्न खाते और पानी पीते हुए ही कालके गालमें चले जाते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग ऐसे हैं, जो भोग-विलासका आनन्द ले रहे हैं, इच्छानुसार वाहनोंपर विचरते हैं, शरीरसे नीरोग हैं तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे जिनका शरीर कभी घायल नहीं हुआ है; वे भी यमराजके वशमें हो जाते हैं। कुछ लोग निरन्तर तपस्यामें ही लगे रहते थे, किन्तु उन्हें भी यमराजके दूत उठा ले गये। निरन्तर योगाभ्यासमें प्रवृत्त रहनेवाले लोग भी शरीरसे अमर न हो सके। पहलेकी बात है, वज्रपाणि इन्द्रने एक बार शम्बरासुरके ऊपर अपने वज्रका प्रहार किया था। उस वज्रने उसकी छातीमें चोट पहुँचायी, तथापि वह असुर मर न सका। परन्तु काल आनेपर उन्हीं इन्द्रने उसी वज्रसे जब-जब दानवोंको मारा, वे तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गये। यह समझकर तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। तुम सब लोग लौट आओ।' उनके इस प्रकार समझानेपर वे दैत्य मृत्युका भय त्यागकर रणभूमिमें लौट आये। शुक्राचार्यकी कही हुई उपर्युक्त बातोंको इन श्रेष्ठ पक्षियोंने सत्य कर दिखाया; क्योंकि उस अलौकिक युद्धमें पड़कर भी इनकी मृत्यु नहीं हुई। ब्राह्मणो! भला, सोचो तो सही—कहाँ अण्डोंका गिरना, कहाँ उसके साथ ही घंटेका भी टूट पड़ना और कहाँ मांस, मज्जा तथा रक्तसे भरी हुई भूमिका बिछौना बन जाना—ये सभी बातें अद्भुत हैं। विप्रगण! ये कोई सामान्य पक्षी नहीं हैं। संसारमें दैवका अनुकूल होना महान् सौभाग्यका सूचक होता है।'

यों कहकर शमीक मुनिने उन बच्चोंको भलीभाँति देखा और फिर अपने शिष्योंसे इस प्रकार कहा—'अब तुमलोग इन पक्षिशावकोंको लेकर आश्रमको लौट चलो और ऐसे स्थानपर रखो जहाँ इन्हें बिल्ली, चूहे, बाज अथवा नेवले आदिसे कोई भय न हो। ब्राह्मणो! यद्यपि यह ठीक है कि किसीकी रक्षाके लिये अधिक प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण जीव अपने कर्मोंसे ही मारे जाते हैं और कर्मोंसे ही उनकी रक्षा होती है—ठीक उसी प्रकार, जैसे इस समय ये पक्षिशावक इस युद्धभूमिमें बच गये हैं, तथापि सब मनुष्योंको सभी कार्योंके लिये यत्न अवश्य करना चाहिये, क्योंकि जो पुरुषार्थ करता है, वह (असफल होनेपर भी) सत्पुरुषोंकी निन्दाका पात्र नहीं होता।' मुनिवर शमीकके इस प्रकार कहनेपर वे मुनिकुमार उन पक्षियोंको लेकर

अपने आश्रमको चले गये, जहाँ भाँति-भाँतिके वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठे हुए भौंरे फलोंका रस ले रहे थे और अनेक तपस्वियोंके रहनेसे जहाँकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी।

विप्रवर जैमिने! मुनिश्रेष्ठ शमीक प्रतिदिन अन्न और जल देकर तथा सब प्रकारसे रक्षाकी

व्यवस्था करके उन बच्चोंका पालन-पोषण करने लगे। एक ही महीना बीतनेपर वे पक्षियोंके बच्चे आकाशमें इतने ऊँचे उड़ गये, जितनेपर सूर्यके रथके आने-जानेका मार्ग है। उस समय आश्रमवासी मुनिकुमार कौतूहलभरे चञ्चल नेत्रोंसे उन्हें देख रहे थे। उन पक्षिशावकोंने नगर, समुद्र और बड़ी-बड़ी नदियोंसहित पृथ्वीको वहाँसे रथके पहियेके बराबर देखा और फिर आश्रमपर लौट आये। तिर्यक्-योनिमें उत्पन्न हुए वे महात्मा पक्षी अधिक उड़नेके कारण परिश्रमसे थक गये थे। एक दिन महर्षि शमीक अपने शिष्योंपर कृपा करनेके लिये उन्हें धर्मके तत्त्वका उपदेश कर रहे थे। उस समय वहाँ महर्षिके प्रभावसे उन पक्षियोंके अन्तः-करणमें स्थित ज्ञान प्रकट हो गया। फिर तो उन सबने महर्षिकी परिक्रमा की और उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् वे बोले—'मुने! आपने भयानक मृत्युसे हमारा उद्धार किया है। आपने हमें रहनेके लिये स्थान, भोजन और जल प्रदान किया है। आप ही हमारे पिता और गुरु हैं। हमलोग जब गर्भमें थे, तभी माताकी मृत्यु हो गयी। पिताने भी हमारी रक्षा नहीं की। आपने ही पधारकर हमें जीवनदान दिया और शैशव-अवस्थामें हमलोगोंकी रक्षा की। हम कीड़ोंकी तरह सूख रहे थे, आपने हाथीके घण्टेको उठाकर हमारे सङ्कटका निवारण किया। अब हम बड़े हो गये, हमें ज्ञान भी हो गया; अतः आज्ञा दीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें?'

महर्षि शमीक अपने पुत्र शृङ्गी ऋषि तथा समस्त शिष्योंसे घिरे हुए बैठे थे; उन्होंने जब उन पक्षिशावकोंकी यह शुद्ध संस्कृतमयी स्पष्ट वाणी सुनी, तब उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने पूछा—'बच्चो! तुमलोग ठीक-ठीक बताओ, तुम्हें किस कारणसे ऐसी वाणी प्राप्त हुई है। पक्षियोंका रूप और मनुष्यकी-सी वाणी प्राप्त होनेका क्या रहस्य है?'

पक्षी बोले—'मुनिवर! प्राचीन कालमें विपुलस्वान् नामक एक श्रेष्ठ मुनि रहते थे, जिनके दो पुत्र हुए—सुकृष और तुम्बुरु। सुकृष अपने चित्तको वशमें रखनेवाले महात्मा थे। उन्हींसे हम चार पुत्रोंका जन्म हुआ। हम सब लोग विनय, सदाचार एवं भक्तिवश सदा विनीत भावसे रहते थे। पिताजी सदा तपस्यामें संलग्न रहते और इन्द्रियोंको काबूमें रखते थे। उस समय उन्हें जब जिस वस्तुकी अभिलाषा होती, हम उसे उनकी सेवामें प्रस्तुत करते थे। एक दिनकी बात है, देवराज इन्द्र पक्षीका रूप धारण करके वहाँ आये। उनका शरीर बहुत बड़ा था, पंख टूट गये थे। बुढ़ापेने उनपर अधिकार जमा लिया था। उनकी आँखें कुछ-कुछ लाल हो रही थीं और सारा शरीर शिथिल जान पड़ता था। वे सत्य, शौच और क्षमाका पालन करनेवाले अत्यन्त उदारचित्त महात्मा मुनिश्रेष्ठ सुकृषकी परीक्षा लेने आये थे। उनका आगमन ही हमारे लिये शापका कारण बन गया।

पक्षिरूपधारी इन्द्रने कहा—विप्रवर! मुझे बड़े जोरकी भूख सता रही है, मेरी रक्षा कीजिये; महाभाग! मैं भोजनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ। आप मेरे लिये अनुपम सहारा बनें। मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरपर रहता था। वहाँसे किसी प्रबल पक्षीके पंखसे प्रकट हुई अत्यन्त वेगयुक्त वायुके झोंके खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। एक सप्ताहतक मुझे होश नहीं हुआ। आठवें दिन मेरी चेतना लौटी। सचेत होनेपर मैं भूखसे व्याकुल हो गया और भोजनकी इच्छासे आपकी शरणमें आया हूँ। इस समय मुझे तनिक भी चैन नहीं है। मेरे मनमें बड़ी व्यथा हो रही है। विमल बुद्धिवाले महर्षि! अब आप मेरी रक्षाके लिये भोजन दीजिये, जिससे मेरी जीवन-यात्रा चालू रहे।

यह सुनकर महर्षिने उन पक्षिरूपधारी इन्द्रसे कहा—'मैं तुम्हारे प्राणोंकी रक्षाके लिये तुम्हें यथेष्ट भोजन दूँगा।' यों कहकर द्विजश्रेष्ठ सुकृषने

पुनः उनसे पूछा—'मुझे तुम्हारे लिये कैसे आहारकी व्यवस्था करनी चाहिये।' उन्होंने कहा— 'मुने! मनुष्यके मांससे मुझे विशेष तृप्ति होती है।'

ऋषिने कहा—'अरे! कहाँ मनुष्यका मांस और कहाँ तुम्हारी वृद्धावस्था। जान पड़ता है, जीवकी दूषित भावनाओंका सर्वथा अन्त कभी नहीं होता। अथवा मुझे यह सब कहनेकी क्या आवश्यकता। जिसे देनेकी प्रतिज्ञा कर ली गयी, उसे सदा देना ही चाहिये; मेरे मनमें सदा ऐसा ही भाव रहता है।

इन्द्रसे यों कहते हुए अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेका निश्चय करके विप्रवर सुकृषने हम सबको शीघ्र ही बुलाया और हमारे गुणोंकी बारंबार प्रशंसा करते हुए कहा—'पुत्रो! यदि तुमलोगोंके विचारसे पिता परम गुरु और पूजनीय हो तो निष्कपट भावसे मेरे वचनका पालन करो।' उनकी यह बात सुनते ही हम सब लोगोंने बड़े

आदरके साथ कहा—'पिताजी! आप जो कुछ भी कहेंगे, जिस कार्यके लिये भी हमें आज्ञा देंगे, उसे हमारे द्वारा पूर्ण किया हुआ ही समझिये।'

ऋषि बोले—यह पक्षी भूख प्याससे पीड़ित होकर मेरी शरणमें आया है। तुमलोग शीघ्र ही ऐसा करो, जिससे तुम्हारे शरीरके मांससे क्षणभर इसकी तृप्ति और तुम्हारे रक्तसे इसकी प्यास बुझ जाय।

यह सुनकर हमें बड़ी व्यथा हुई। हमारे शरीरमें कम्प और मनमें भय छा गया, हम सहसा बोल उठे—'इसमें तो बड़ा कष्ट है, बड़ा कष्ट है। यह काम हमसे नहीं हो सकता। कोई भी समझदार मनुष्य दूसरेके शरीरके लिये अपने शरीरका नाश अथवा वध कैसे करा सकता है। अतः हमलोग यह काम नहीं करेंगे।' हमारी ऐसी बातें सुनकर वे मुनि क्रोधसे जल उठे और अपनी लाल-लाल आँखोंसे हमें दग्ध करते हुए से पुनः इस प्रकार बोले—'अरे! मुझसे इसके लिये प्रतिज्ञा करके भी तुमलोग यह कार्य नहीं करना चाहते; अतः मेरे शापसे दग्ध होकर तुमलोग पक्षियोंकी योनिमें जन्म लोगे।' हमसे यों कहकर उन्होंने शास्त्रके अनुसार अपनी अन्त्येष्टि-क्रिया की—और्ध्वदैहिक संस्कारकी विधि पूर्ण की। इसके बाद वे उस पक्षीसे बोले—'खगश्रेष्ठ! अब तुम निश्चिन्त होकर मुझे भक्षण करो। मैंने अपना यह शरीर तुम्हें आहारके रूपमें समर्पित कर दिया है। पक्षिराज! जबतक अपने सत्यका पूर्णरूपसे पालन होता रहे, यही ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व कहलाता है। ब्राह्मण दक्षिणायुक्त यज्ञों अथवा अन्य कर्मोंके अनुष्ठानसे भी वह महान् पुण्य नहीं प्राप्त कर सकते, जो उन्हें सत्यकी रक्षा करनेसे प्राप्त होता है।'*

* एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्षते। यावत् पतगजात्यग्र्य स्वसत्यपरिपालनम्॥
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत् पुण्यं प्राप्यते महत्। कर्मणान्येन वा विप्रैर्यत् सत्यपरिपालनात्॥
(अ० ३। ४५-४६)

महर्षिका यह वचन सुनकर पक्षिरूपधारी इन्द्रके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने

देवरूपमें प्रकट होकर बोले—'विप्रवर! मैंने आपकी परीक्षाके लिये यह अपराध किया है। शुद्ध बुद्धिवाले महर्षि! आप इसके लिये मुझे क्षमा करें। बताइये, आपकी क्या इच्छा है जिसे मैं पूर्ण करूँ? अपने सत्य वचनका पालन करनेसे आपके प्रति मेरा बड़ा प्रेम हो गया है। आजसे आपके हृदयमें इन्द्रसम्बन्धी ज्ञान प्रकट होगा। अब आपकी तपस्या और धर्ममें कोई विघ्न नहीं उपस्थित होगा।'

यों कहकर जब इन्द्र चले गये, तब हमलोगोंने क्रोधमें भरे हुए महामुनि पिताजीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'तात! हम मृत्युसे डर रहे थे। महामते! आप हम दीनोंके अपराधको क्षमा करें। हमलोगोंको जीवन बहुत ही प्रिय है। चमड़े, हड्डी और मांसके समूह तथा मैल और रक्तसे भरे हुए इस शरीरमें जहाँ हमें तनिक भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये, वहाँ हमारी इतनी आसक्ति है। महाभाग! काम, क्रोध आदि दोष जीवके प्रबल शत्रु हैं। इनसे विवश होकर यह लोक जिस प्रकार मोहके वशीभूत हो जाता है, उसे आप सुनें। यह शरीर एक बहुत बड़ा नगर है। प्रज्ञा ही इसकी चहारदीवारी है, हड्डियाँ ही इसमें खम्भेका काम देती हैं। चमड़ा ही इस नगरकी दीवार है, जो समूचे नगरको रोके हुए है। मांस और रक्तके पङ्कका इसपर लेप चढ़ा हुआ है। इस नगरमें नौ दरवाजे हैं। इसकी रक्षामें बहुत बड़ा प्रयास करना होता है। नस-नाड़ियाँ इसे सब ओरसे घेरे हुए हैं। चेतन पुरुष ही इस नगरके भीतर राजाके रूपमें विराजमान है। उसके दो मन्त्री हैं—बुद्धि और मन। वे दोनों परस्परविरोधी हैं और आपसमें वैर निकालनेके लिये दोनों ही यत्न करते रहते हैं। चार ऐसे शत्रु हैं, जो उस राजाका नाश चाहते हैं। उनके नाम हैं—काम, क्रोध, लोभ तथा मोह। जब राजा उन नवों दरवाजोंको बंद किये रहता है, तब उसकी शक्ति सुरक्षित रहती है और वह सदा निर्भय बना रहता है; वह सबके प्रति अनुराग रखता है, अतः शत्रु उसका पराभव नहीं कर पाते।

'परन्तु जब वह नगरके सब दरवाजोंको खुला छोड़ देता है, उस समय राग नामक शत्रु नेत्र आदि द्वारोंपर आक्रमण करता है। वह सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला, बहुत विशाल और पाँच दरवाजोंसे नगरमें प्रवेश करनेवाला है। उसके पीछे पीछे तीन और भयङ्कर शत्रु इस नगरमें घुस जाते हैं। पाँच इन्द्रिय नामक द्वारोंसे शरीरके भीतर प्रवेश करके राग मन तथा अन्यान्य इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ लेता है। इस प्रकार इन्द्रिय और मनको वशमें करके वह दुर्धर्ष हो जाता है और समस्त दरवाजोंको काबूमें करके चहारदीवारीको नष्ट कर देता है। मनको रागके अधीन हुआ देख बुद्धि तत्काल नष्ट हो जाती (पलायन कर जाती) है। जब मन्त्री साथ नहीं रहते, तब अन्य पुरवासी भी उसे छोड़ देते हैं। फिर शत्रुओंको उसके

छिद्रका ज्ञान हो जानेसे राजा उनके द्वारा नाशको प्राप्त होता है। इस प्रकार राग, मोह, लोभ तथा क्रोध—ये दुरात्मा शत्रु मनुष्यकी स्मरण-शक्तिका नाश करनेवाले हैं। रागसे काम होता है, कामसे लोभका जन्म होता है, लोभसे सम्मोह—अविवेक होता है और सम्मोहसे स्मरण-शक्ति भ्रान्त हो जाती है। स्मृतिकी भ्रान्तिसे बुद्धिका नाश होता है और बुद्धिका नाश होनेसे मनुष्य स्वयं भी नष्ट—कर्तव्यभ्रष्ट हो जाता है।* इस प्रकार जिनकी बुद्धि नष्ट हो चुकी है, जो राग और लोभके पीछे चलनेवाले हैं तथा जिन्हें जीवनका बहुत लोभ है, ऐसे हमलोगोंपर आप प्रसन्न होइये। मुनिश्रेष्ठ! यह जो शाप आपने दिया है, वह हमें लागू न हो। तामसी योनि बड़ी कष्टदायिनी होती है। हम उसे कभी प्राप्त न हों।'

ऋषिने कहा—'पुत्रो! आजतक मेरे मुखसे कभी झूठी बात नहीं निकली; अतः मैंने जो कुछ कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं होगा। मैं यहाँ दैवको ही प्रधान मानता हूँ। उसके सामने पौरुष व्यर्थ है। आज दैवने मुझसे बलपूर्वक यह अयोग्य कर्म करा डाला, जिसकी मैंने कभी मनमें कल्पना भी नहीं की थी। पुत्रो! तुमलोगोंने प्रणाम करके मुझे प्रसन्न किया है; इसलिये तिर्यक्-योनिमें जन्म लेनेपर भी तुम्हें परम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे ही तुम्हें सन्मार्गका दर्शन होगा। तुम्हारे क्लेश और पाप धुल जायँगे तथा तुम्हारे मनमें किसी प्रकारका संशय नहीं रहेगा। इस प्रकार मेरे प्रसादसे ज्ञान पाकर तुम परम सिद्धिको प्राप्त कर लोगे।

भगवन्! इस प्रकार पूर्वकालमें दैववश पिताने हमें शाप दे दिया। तबसे बहुत कालके बाद हम दूसरी योनिमें आये, युद्धभूमिमें उत्पन्न हुए और फिर आपके द्वारा हमलोगोंका पालन हुआ। द्विजश्रेष्ठ! यही हमारे पक्षी-योनिमें आनेकी कहानी है। संसारमें कोई भी जीव ऐसा नहीं है, जिसे दैवके द्वारा बाधा न पहुँचती हो, क्योंकि समस्त जीव-जन्तुओंकी चेष्टा दैवके ही अधीन है।†

मार्कण्डेयजी कहते हैं—उनकी बात सुनकर महाभाग शमीक मुनिने अपने पास बैठे हुए द्विजोंसे कहा—'मैंने तुमलोगोंको पहले ही बताया था कि ये साधारण पक्षी नहीं हैं, कोई श्रेष्ठ द्विज हैं, जो कि अलौकिक युद्धमें जन्म लेकर भी मृत्युको नहीं प्राप्त हुए।' तदनन्तर महात्मा शमीकने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें जानेकी आज्ञा दी। फिर वे वृक्षों और लताओंसे सुशोभित पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यगिरिपर चले गये। तबसे आजतक वे धर्मात्मा पक्षी तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न हो समाधिके लिये दृढ़ निश्चय करके उस पर्वतपर ही निवास करते हैं।

धर्मपक्षीद्वारा जैमिनिके प्रश्नोंका उत्तर

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जैमिनि! इस प्रकार वे द्रोणके पुत्र चारों पक्षी ज्ञानी हैं और विन्ध्यगिरिपर निवास करते हैं। तुम उनकी सेवामें जाओ और उनसे ज्ञातव्य बातें पूछो।

मार्कण्डेय मुनिकी यह बात सुनकर महर्षि जैमिनि, विन्ध्यपर्वतपर, जहाँ वे धर्मात्मा पक्षी रहते थे, गये। उस पर्वतके निकट पहुँचनेपर पाठ करते हुए उन पक्षियोंकी ध्वनि उनके कानोंमें

---

* रागात् कामः प्रभवति कामाल्लोभोऽभिजायते। लोभाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः॥
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥
(२। ७१-७२)

† नास्त्यराविद्ध संसारे यो न दैवेन बाध्यते। सर्वेषामेव जन्तूनां दैवाधीनं हि चेष्टितम्॥ (३। ८१)

पड़ी। उसे सुनकर जैमिनि बड़े विस्मयमें पड़े और इस प्रकार सोचने लगे—'अहो! ये श्रेष्ठ पक्षी बहुत ही स्पष्ट उच्चारण करते हुए पाठ कर रहे हैं; जिस अक्षरका कण्ठ-तालु आदि जो स्थान है, उसका वहींसे उच्चारण हो रहा है। बोलनेमें कितनी शुद्धता और सफाई है। ये अविराम पाठ करते जा रहे हैं, रुककर साँसतक नहीं लेते। श्वासकी गतिपर इन्होंने विजय प्राप्त कर ली है। किसी भी शब्दके उच्चारणमें कोई दोष नहीं दिखायी देता। ये यद्यपि निन्दित योनिको प्राप्त हुए हैं, तथापि सरस्वतीदेवी इनको नहीं त्याग रही हैं! यह मुझे बड़े आश्चर्यकी बात जान पड़ती है। बन्धु-बान्धवजन, मित्रगण तथा घरमें और जो प्रिय वस्तुएँ हैं, वे सभी साथ छोड़कर चली जाती हैं; परन्तु सरस्वती कभी त्याग नहीं करतीं।'*

इस प्रकार सोचते-विचारते हुए महर्षि जैमिनिने विन्ध्यपर्वतकी कन्दरामें प्रवेश किया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा, वे पक्षी शिलाखण्डपर बैठे हुए पाठ कर रहे हैं। उनपर दृष्टि पड़ते ही महर्षि जैमिनि हर्षमें भरकर बोले—'श्रेष्ठ पक्षियो! आपका कल्याण हो। मुझे व्यासजीका शिष्य जैमिनि समझिये। मैं आपलोगोंका दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठित होकर यहाँ आया हूँ। आपके पिताने अत्यन्त क्रोधमें आकर जो आपलोगोंको शाप दे दिया और आपको पक्षियोंकी योनिमें आना पड़ा, उसके लिये खेद नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह सर्वथा दैवका ही विधान था। तपस्याका क्षय हो जानेपर मनुष्य दाता होकर भी याचक बन जाते हैं। स्वयं मारकर भी दूसरोंके हाथसे मारे जाते हैं तथा पहले दूसरोंको गिराकर भी स्वयं दूसरोंके द्वारा गिराये जाते हैं। इस प्रकार आनेवाली विपरीत दशाएँ मैंने अनेक बार देखी हैं। भावके बाद अभाव तथा अभावके बाद भाव, इस प्रकार भावाभावकी परम्परासे संसारके लोग निरन्तर व्याकुल रहते हैं। आपलोगोंको भी अपने मनमें ऐसा ही विचार करके कभी शोक नहीं करना चाहिये। शोक और हर्षके वशीभूत न होना ही ज्ञानका फल है।'

तदनन्तर उन धर्मात्मा पक्षियोंने पाद्य और अर्घ्यके द्वारा महर्षि जैमिनिका पूजन किया और उन्हें प्रणाम करके उनकी कुशल पूछी। फिर अपने पंखोंसे हवा करके उनकी थकावट दूर की। जब वे सुखपूर्वक बैठकर विश्राम ले चुके, तब पक्षियोंने कहा—'ब्रह्मन्! आज हमारा जन्म सफल हो गया। यह जीवन भी उत्तम जीवन बन गया; क्योंकि आज हमें आपके दोनों चरण-कमलोंका दर्शन मिला, जो देवताओंके लिये भी वन्दनीय हैं। हमारे शरीरमें पिताजीके क्रोधसे प्रकट हुई जो अग्नि जल रही है, वह आज आपके दर्शनरूपी जलसे सिंचकर शान्त हो गयी। ब्रह्मन्! आप कुशलसे तो हैं न? आपके आश्रममें रहनेवाले मृग, पक्षी, वृक्ष, लता, गुल्म, बाँस और भाँति-भाँतिके तृण—इन सबकी कुशल है न? इनपर कोई संकट तो नहीं है? अब हमपर कृपा कीजिये और यहाँ अपने आगमनका कारण बतलाइये। हमारा कोई बहुत बड़ा भाग्य था, जो आप इन नेत्रोंके अतिथि हुए।'

जैमिनि बोले—'श्रेष्ठ पक्षीगण! मुझे महाभारत-शास्त्रमें कई सन्देह हैं। उन सबको पूछनेके लिये पहले मैं भृगुकुलश्रेष्ठ महात्मा मार्कण्डेय मुनिके पास गया था। मेरे पूछनेपर उन्होंने कहा—'विन्ध्यपर्वतपर द्रोणके पुत्र महात्मा पक्षी रहते हैं। वे तुम्हारे प्रश्नोंका विस्तारपूर्वक उत्तर देंगे।' उनकी आज्ञासे ही मैं इस महान् पर्वतपर आया हूँ। आपलोग हमारे प्रश्नोंको पूर्णरूपसे सुनकर उनका विवेचन करें।

*बन्धुर्वर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे। त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती॥ (४। ६)

पक्षियोंने कहा—ब्रह्मन्! आपका प्रश्न यदि हमारी बुद्धिके बाहर न होगा तो हम अवश्य उसका समाधान करेंगे। आप निःशङ्क होकर सुनें। विप्रवर! चारों वेद, धर्मशास्त्र, सम्पूर्ण वेदाङ्ग तथा और भी जो वेदोंके समान माननीय इतिहास-पुराणादि हैं, उन सबमें हमारी बुद्धिका प्रवेश है; तथापि हम कोई प्रतिज्ञा नहीं कर सकते। आपको महाभारतमें जो-जो सन्दिग्ध बात जान पड़े, उसे निर्भीक होकर पूछिये।

जैमिनि बोले—पक्षियो! आपलोगोंका अन्तःकरण निर्मल है। महाभारतमें मेरे लिये जो सन्दिग्ध बातें हैं, उन्हें बताता हूँ; सुनिये और सुनकर उनकी व्याख्या कीजिये। सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण जगत्के आधार, समस्त कारणोंके भी कारण और निर्गुण होते हुए भी मनुष्य-शरीरको कैसे प्राप्त हुए? द्रुपदकुमारी कृष्णा अकेली ही पाँच पाण्डवोंकी महारानी क्योंकर हुई? इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। इसके सिवा द्रौपदीके पाँच महारथी पुत्र, जिनका अभी विवाहतक नहीं हुआ था, समस्त पाण्डव जिनके रक्षक थे तथा जो स्वयं भी बड़े बलवान् थे, अनाथकी भाँति कैसे मारे गये? महाभारतके विषयमें यह मेरा सन्देह है। आपलोग इसका निवारण करें।

पक्षियोंने कहा—जो सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी, सर्वव्यापक, सबकी उत्पत्तिके कारण, अन्तर्यामी, प्रमाणोंके अविषय, सनातन, अविनाशी, चतुर्व्यूह-स्वरूप, त्रिगुणमय, निर्गुण, सबसे बड़े, अत्यन्त गौरवशाली, सर्वश्रेष्ठ तथा अमृतस्वरूप हैं, उन भगवान् विष्णुको हम सबसे पहले नमस्कार करते हैं। जिनसे बढ़कर सूक्ष्म तथा जिनसे अधिक बड़ा भी कोई नहीं है, जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है, जो इस जगत्के आदिकारण और अजन्मा हैं, जो उत्पत्ति, लय, प्रत्यक्ष और परोक्ष—सबसे विलक्षण हैं, इस सम्पूर्ण जगत्को जिनकी रचना बतलाते हैं तथा अन्तमें जिनके भीतर इसका संहार होता है, उन परमेश्वरको हमारा नमस्कार है। तत्पश्चात् जो अपने चारों मुखोंसे ऋक्-साम आदि वेदोंका उच्चारण करते हुए तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं, उन आदिदेव ब्रह्माजीको भी हम एकाग्रचित्तसे नमस्कार करते हैं। इसी प्रकार जिनके एक ही बाणसे पराजित होकर असुरगण कभी याज्ञिकोंके यज्ञोंका विनाश नहीं करते, उन भगवान् शङ्करको भी मस्तक झुकाते हैं। इसके बाद हम अद्भुत कर्म करनेवाले व्यासजीके सम्पूर्ण मतोंकी व्याख्या करेंगे, जिन्होंने महाभारतके उद्देश्यसे धर्म आदिका रहस्य प्रकट किया है। तत्त्वदर्शी मुनियोंने जलको 'नारा' कहा है। वह नारा ही पूर्वकालमें भगवान्का निवासस्थान रहा, इसलिये वे नारायण कहे गये हैं।* ब्रह्मन्! वे सर्वव्यापी भगवान् नारायणदेव सबको व्याप्त

---

* आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ (४। ४३)

करके स्थित हैं। वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी। उनका प्रथम स्वरूप ऐसा है कि जिसका शब्दोंद्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। विद्वान् पुरुष उसे शुक्ल (शुद्धस्वरूप) देखते हैं। भगवान्‌का वह दिव्य विग्रह ज्योतिःपुञ्जसे परिपूर्ण है। वही योगी पुरुषोंकी परानिष्ठा (अन्तिम लक्ष्य) है। वह दिव्यस्वरूप दूर भी है और समीप भी। उसे सब गुणोंसे अतीत जानना चाहिये। उस दिव्यस्वरूपका ही नाम वासुदेव है। अहंता और ममताका त्याग करनेसे ही उसका साक्षात्कार होता है। रूप और वर्ण आदि काल्पनिक भाव उसमें नहीं हैं। वह सदा परम शुद्ध एवं उत्तम अधिष्ठानस्वरूप है। भगवान्‌का दूसरा स्वरूप शेषके नामसे प्रसिद्ध है, जो पाताललोकमें रहकर पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करता है। इसे तिर्यक्स्वरूपकी प्राप्त हुई तामसी मूर्ति कहते हैं। श्रीहरिकी तीसरी मूर्ति समस्त प्रजाके पालन-पोषणमें तत्पर रहती है। वही इस पृथ्वीपर धर्मकी निश्चित व्यवस्था करती है। धर्मका नाश करनेवाले उद्दण्ड असुरोंको मारती तथा धर्मकी रक्षामें संलग्न रहनेवाले देवताओं और साधु-संतोंकी रक्षा करती है। जैमिनिजी! संसारमें जब-जब धर्मका ह्रास और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब वह अपनेको यहाँ प्रकट करती है।

पूर्वकालमें वही वाराहरूप धारण करके अपने थूथुनसे जलको हटाकर इस पृथ्वीको एक ही दाँतसे जलके ऊपर ऐसे उठा लायी मानो वह कोई कमलका फूल हो। उन्हीं भगवान्‌ने नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुका वध किया और विप्रचित्ति आदि अन्य दानवोंको मार गिराया। इसी प्रकार भगवान्‌के वामन आदि और भी बहुत-से अवतार हैं, जिनकी गणना करनेमें हम असमर्थ हैं। इस समय भगवान्‌ने मथुरामें श्रीकृष्णरूपमें अवतार लिया है। इस तरह भगवान्‌की वह सात्त्विकी मूर्ति ही भिन्न-भिन्न अवतार धारण करती है। यह आपके पहले प्रश्नका उत्तर बतलाया गया कि भगवान् पूर्णकाम होते हुए भी धर्म आदिकी रक्षाके लिये सदा स्वेच्छासे ही अवतीर्ण होते हैं।

ब्रह्मन्! पूर्वकालमें त्वष्टा प्रजापतिके पुत्र विश्वरूप इन्द्रके हाथसे मारे गये थे, इसलिये ब्रह्महत्याने इन्द्रको धर दबाया। इससे उनके तेजकी बड़ी क्षति हुई। इस अन्यायके कारण इन्द्रका तेज धर्मराजके शरीरमें प्रवेश कर गया, अतः इन्द्र निस्तेज हो गये। तदनन्तर अपने पुत्रके मारे जानेका समाचार सुनकर त्वष्टा प्रजापतिको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपने मस्तकसे एक जटा उखाड़कर सबको सुनाते हुए यह बात कही—'आज देवताओंसहित तीनों लोक मेरे पराक्रमको देखें। वह खोटी बुद्धिवाला ब्रह्मघाती इन्द्र भी मेरी शक्तिका साक्षात्कार कर ले; क्योंकि उस दुष्टने अपने ब्राह्मणोचित कर्ममें लगे हुए मेरे पुत्रका वध किया है।' यों कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये प्रजापतिने वह जटा अग्निमें होम दी। फिर तो उस होमकुण्डसे वृत्र नामक महान् असुर

प्रकट हुआ, जिसके शरीरसे सब ओर आगकी लपटें निकल रही थीं। विशाल देह, बड़ी-बड़ी दाढ़ें और कटे-छँटे कोयलेके ढेरकी भाँति शरीरका रंग था। उस महान् असुर वृत्रासुरको अपने वधके लिये उत्पन्न देख इन्द्र भयसे व्याकुल हो उठे। उन्होंने सन्धिकी इच्छासे सप्तर्षियोंको उसके पास भेजा। सम्पूर्ण भूतोंके हितसाधनमें संलग्न रहनेवाले वे महर्षि बड़ी प्रसन्नताके साथ गये और उन्होंने कुछ शर्तोंके साथ इन्द्र और वृत्रासुरमें मित्रता करा दी। इन्द्रने सन्धिकी शर्तोंका उल्लङ्घन करके जब वृत्रासुरको मार डाला, तब पुनः उनपर ब्रह्महत्याका आक्रमण हुआ। उस समय उनका सारा बल नष्ट हो गया। इन्द्रके शरीरसे निकला हुआ बल वायुदेवतामें समा गया। तदनन्तर जब इन्द्रने गौतमका रूप धारण करके उनकी पत्नी अहल्याके सतीत्वका नाश किया, उस समय उनका रूप भी नष्ट हो गया। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गका लावण्य, जो बड़ा ही मनोरम था, व्यभिचार-दोषसे दूषित देवराज इन्द्रको छोड़कर दोनों अश्विनीकुमारोंके पास चला गया। इस प्रकार इन्द्र अपने धर्म, तेज, बल और रूपसे वञ्चित हो गये। यह जानकर दैत्योंने उन्हें जीतनेका उद्योग आरम्भ किया।

महामुने! उन दिनों पृथ्वीपर जो अधिक पराक्रमी राजा थे, उन्हींके कुलोंमें देवराजको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले अत्यन्त बलशाली दैत्य उत्पन्न हुए। कुछ कालके अनन्तर यह पृथ्वी पापके भारी भारसे पीड़ित हो मेरुपर्वतके शिखरपर, जहाँ देवताओंकी दिव्य सभा है, गयी। वहाँ पहुँचकर उसने दानवों और दैत्योंसे होनेवाले अपने खेदका कारण बतलाया। वह बोली—'देवताओ! आपने पूर्वकालमें जिन महापराक्रमी असुरोंका वध किया है, वे सब इस समय मनुष्यलोकमें जाकर राजाओंके घरमें उत्पन्न हुए हैं। ऐसे दैत्योंकी अनेक अक्षौहिणी सेनाएँ हैं। मैं उनके भारसे पीड़ित होकर नीचेकी ओर धँसी जाती हूँ। आपलोग ऐसा कोई उपाय करें, जिससे मुझे शान्ति मिले।'

पक्षी कहते हैं—पृथ्वीके यों कहनेपर सम्पूर्ण देवता अपने-अपने तेजके अंशसे पृथ्वीपर अवतार लेने लगे। उनके अवतारके दो ही उद्देश्य थे—प्रजाजनोंका उपकार और पृथ्वीके भारका अपहरण। इन्द्रके शरीरसे जो तेज प्राप्त हुआ था, उसे स्वयं धर्मराजने कुन्तीके गर्भमें स्थापित किया। उसीसे महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरका जन्म हुआ। फिर वायु देवताने इन्द्रके ही बलको कुन्तीके उदरमें स्थापित किया। उससे भीम उत्पन्न हुए। इन्द्रके आधे अंशसे अर्जुनका जन्म हुआ। इसी प्रकार इन्द्रका ही सुन्दर रूप अश्विनीकुमारोंद्वारा माद्रीके गर्भमें स्थापित किया गया था, जिससे अत्यन्त कान्तिमान् नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। इस प्रकार देवराज इन्द्र पाँच रूपोंमें अवतीर्ण हुए। उनकी पत्नी शची ही महाभागा कृष्णाके रूपमें अग्निसे प्रकट हुई। अतः कृष्णा एकमात्र इन्द्रकी ही पत्नी थी और किसीकी नहीं। योगीश्वर भी अनेक शरीर धारण कर लेते हैं। फिर इन्द्र तो देवता हैं, उनके पाँच शरीर धारण कर लेनेमें क्या सन्देह है। इस प्रकार पाँच पाण्डवोंकी जो एक पत्नी हुई, उसका रहस्य बताया गया।

राजा हरिश्चन्द्रका चरित्र

पक्षी कहते हैं—पहलेकी बात है, त्रेतायुगमें हरिश्चन्द्र नामसे प्रसिद्ध एक राजर्षि रहते थे। वे बड़े धर्मात्मा, भूमण्डलके पालक, सुन्दर कीर्तिसे युक्त और सब प्रकारसे श्रेष्ठ थे। उनके राज्यकालमें कभी अकाल नहीं पड़ा, किसीको रोग नहीं हुआ, मनुष्योंकी अकालमृत्यु नहीं हुई और पुरवासियोंकी कभी अधर्ममें रुचि नहीं हुई। उस समय प्रजावर्गके लोग धन, वीर्य और तपस्याके मदसे उन्मत्त नहीं होते थे। कोई भी स्त्री ऐसी नहीं देखी जाती थी, जो पूर्ण यौवनावस्थाको प्राप्त किये बिना ही सन्तानको जन्म देती रही हो। एक दिन महाबाहु राजा हरिश्चन्द्र जंगलमें शिकार खेलने गये थे। वहाँ शिकारके पीछे दौड़ते हुए उन्होंने बारंबार कुछ स्त्रियोंकी कातरवाणी सुनी। वे कह रही थीं, 'हमें बचाओ, बचाओ।' राजाने शिकारका पीछा छोड़ दिया और उन स्त्रियोंको लक्ष्य करके कहा—'डरो मत, डरो मत। कौन ऐसा दुष्टबुद्धिवाला पुरुष है जो मेरे शासनकालमें भी ऐसा अन्याय करता है?' यों कहकर स्त्रियोंके रोनेके शब्दका अनुसरण करते हुए राजा उसी ओर चल दिये। इसी बीचमें प्रत्येक कार्यके आरम्भमें बाधा उपस्थित करनेवाला रुद्रकुमार विघ्नराज इस प्रकार सोचने लगा—'ये महर्षि विश्वामित्र बड़े पराक्रमी हैं और अनुपम तपस्याका आश्रय लेकर उत्तम व्रतका पालन करते हुए उन भवादि विद्याओंका साधन करते हैं, जो पहले इन्हें सिद्ध नहीं हो सकी हैं। ये महर्षि क्षमा, मौन तथा आत्मसंयमपूर्वक जिन विद्याओंका साधन करते हैं, वे उनके भयसे पीड़ित होकर यहाँ विलाप कर रही हैं। इनके उद्धारका कार्य मुझे किस प्रकार करना चाहिये?' इस प्रकार विचार करते हुए रुद्रकुमार विघ्नराजने राजाके शरीरमें प्रवेश किया। उनके आवेशसे युक्त होनेपर राजाने क्रोधपूर्वक ये बात कही—'यह कौन पापाचारी मनुष्य है, जो कपड़ेकी गठरीमें अग्निको बाँध रहा है? बल और प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त मुझ राजाके उपस्थित रहते हुए आज कौन ऐसा पापी है, जो मेरे धनुषसे छूटकर सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करनेवाले बाणोंसे सर्वाङ्गमें छिन्न-भिन्न होकर कभी न टूटनेवाली निद्रामें प्रवेश करना चाहता है?'

राजाकी यह बात सुनकर तपस्वी विश्वामित्र कुपित हो उठे। उनके मनमें क्रोधका उदय होते ही वे सम्पूर्ण विद्याएँ, जो स्त्रियोंके रूपमें रो रही थीं, क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर राजाने उन तपस्याके भण्डार महर्षि विश्वामित्रकी ओर दृष्टिपात किया तो वे बड़े भयभीत हुए और सहसा पीपलके पत्तेकी भाँति थरथर काँपने लगे। इतनेमें विश्वामित्र बोल उठे—'ओ दुरात्मा! खड़ा तो रह।' तब राजाने विनयपूर्वक मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! यह मेरा धर्म था। प्रभो! इसे आप मेरा अपराध न मानें। मुने! अपने धर्मकी रक्षामें लगे हुए मुझ राजापर आपको

क्रोध नहीं करना चाहिये। धर्मज्ञ राजाको तो यह उचित ही है कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार दान दे, रक्षा करे और धनुष उठाकर युद्ध करे।'

विश्वामित्र बोले—'राजन्! यदि तुम्हें अधर्मका डर है, तो शीघ्र बताओ—किसको दान देना चाहिये? किनकी रक्षा करनी चाहिये और किनके साथ युद्ध करना चाहिये?

हरिश्चन्द्रने कहा—श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तथा जिनकी जीविका नष्ट हो गयी हो, ऐसा अन्य मनुष्योंको भी दान देना चाहिये। भयभीत प्राणियोंकी रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओंके साथ सदा युद्ध करना चाहिये।*

विश्वामित्र बोले—यदि तुम राजा हो और राज-धर्मको भलीभाँति जानते हो तो मैं प्रतिग्रहकी इच्छा रखनेवाला ब्राह्मण हूँ, मुझे इच्छानुसार दक्षिणा दो।

पक्षीगण कहते हैं—महर्षिकी यह बात सुनकर राजाने अपना नया जन्म हुआ माना और प्रसन्नचित्तसे कहा।

हरिश्चन्द्र बोले—भगवन्! आपको मैं क्या दूँ, आप निःशङ्क होकर कहिये। यदि कोई दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तु हो तो उसे भी दी हुई ही समझें।

विश्वामित्रने कहा—वीरवर! तुम समुद्र, पर्वत, ग्राम और नगरोंसहित यह सारी पृथ्वी मुझे दे दो। रथ, घोड़े, हाथी, कोठार और खजानेसहित सारा राज्य भी मुझे समर्पित कर दो। इसके अतिरिक्त भी जो कुछ तुम्हारे पास है, वह मुझे दे दो। केवल अपनी स्त्री, पुत्र और शरीरको अपने पास रख लो। साथ ही अपने धर्मको भी तुम्हीं रखो; क्योंकि वह सदा कर्ताके ही साथ रहता है, परलोकमें जानेपर भी वह साथ जाता है।

मुनिका यह वचन सुनकर राजाने प्रसन्नचित्तसे 'तथास्तु' कहा। हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा स्वीकार की। उस समय उनके मुखपर शोक या चिन्ताका कोई चिह्न नहीं था।

विश्वामित्र बोले—राजर्षे! यदि तुमने अपना राज्य, पृथ्वी, सेना और धन आदि सर्वस्व मुझे समर्पित कर दिया तो मुझ तपस्वीके इस राज्यमें रहते किसका प्रभुत्व रहा?

हरिश्चन्द्रने कहा—'ब्रह्मन्! मैंने जिस समय यह पृथ्वी दी है, उसी समय आप मेरे भी स्वामी हो गये। फिर आपके इस पृथ्वीके राजा होनेकी तो बात ही क्या है।

विश्वामित्र बोले—राजन्! यदि तुमने यह सारी पृथ्वी मुझे दान कर दी तो जहाँ-जहाँ मेरा प्रभुत्व हो, वहाँसे तुम्हें निकल जाना चाहिये। करधनी आदि समस्त आभूषणोंका संग्रह यहीं छोड़कर तुम वल्कलका वस्त्र लपेट लो और अपनी पत्नी तथा पुत्रके साथ चले जाओ।

'बहुत अच्छा' कहकर राजा हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी शैब्या तथा पुत्र रोहिताश्वको साथ ले वहाँसे जाने लगे। उस समय विश्वामित्रने उनका मार्ग रोककर कहा—'मुझे राजसूय-यज्ञकी दक्षिणा दिये बिना ही तुम कहाँ जा रहे हो?'

हरिश्चन्द्र बोले—भगवन्! यह अकण्टक राज्य

*दातव्यं विप्रमुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः। रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्तव्यं परिपन्थिभिः॥　(७। २७)

तो मैंने आपको दे ही दिया, अब तो मेरे पास ये तीन शरीर ही शेष बचे हैं।

विश्वामित्रने कहा—तो भी तुम्हें मुझे यज्ञकी दक्षिणा तो देनी ही चाहिये। विशेषतः ब्राह्मणोंको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके यदि न दिया जाय तो वह प्रतिज्ञा-भङ्गका दोष उस व्यक्तिका नाश कर डालता है। राजन्! राजसूय-यज्ञमें ब्राह्मणोंको जितनेसे सन्तोष हो, उस यज्ञकी उतनी ही दक्षिणा देनी चाहिये। तुमने ही पहले प्रतिज्ञा की है कि देनेकी घोषणा कर देनेपर अवश्य देना चाहिये, आततायियोंसे युद्ध करना चाहिये तथा आर्तजनोंकी रक्षा करनी चाहिये।

हरिश्चन्द्र बोले—भगवन्! इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है। समयानुसार अवश्य आपको दूँगा।

विश्वामित्रने कहा—राजन्! इसके लिये मुझे कितने समयतक प्रतीक्षा करनी होगी, शीघ्र बताओ।

हरिश्चन्द्र बोले—ब्रह्मर्षे! मैं एक महीनेमें आपको दक्षिणाके लिये धन दूँगा। इस समय मेरे पास धन नहीं है, अतः मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये।

विश्वामित्रने कहा—नृपश्रेष्ठ! जाओ, जाओ! अपने धर्मका पालन करो। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।

पक्षी कहते हैं—विश्वामित्रने जब 'जाओ' कहकर जानेकी आज्ञा दी, तब राजा हरिश्चन्द्र नगरसे चले। उनके पीछे उनकी प्यारी पत्नी शैव्या भी चली, जो पैदल चलनेके योग्य कदापि नहीं थी। रानी और राजकुमारसहित राजा हरिश्चन्द्रको नगरसे निकलते देख उनके अनुयायी सेवकगण तथा पुरवासी मनुष्य विलाप करने लगे—'हा नाथ! हम पीड़ितोंका आप क्यों परित्याग कर रहे हैं? राजन्! आप धर्ममें तत्पर रहनेवाले तथा पुरवासियोंपर कृपा रखनेवाले हैं। राजर्षे! यदि आप धर्म समझें

तो हमें भी अपने साथ ले चलें। महाराज! दो घड़ी तो ठहर जाइये। हमारे नेत्ररूपी भ्रमर आपके मुखारविन्दकी रूपसुधाका पान कर लें। फिर हमें कब आपके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा। हाय! जिन महाराजके आगे-आगे चलनेपर पीछेसे कितने ही राजा चला करते थे, आज उन्हींके पीछे उनकी यह रानी अपने बालक पुत्रको गोद लेकर चल रही है। यात्राके समय जिनके सेवक भी हाथियोंपर बैठकर आगे जाते थे, वे ही महाराज हरिश्चन्द्र आज पैदल चल रहे हैं! हा राजन्! मनोहर भौंहों, चिकनी त्वचा तथा ऊँची नासिकासे सुशोभित आपका सुकुमार मुख मार्गमें धूलिसे धूसरित एवं क्लेशयुक्त होकर न जाने कैसी दशाको प्राप्त होगा। नृपश्रेष्ठ! ठहर जाइये, ठहर जाइये; यहाँ अपने धर्मका पालन कीजिये। क्रूरताका परित्याग ही सबसे बड़ा धर्म है। विशेषतः क्षत्रियोंके लिये तो यही सबसे उत्तम है। नाथ! अब हमें स्त्री, पुत्र, धन धान्य आदिसे क्या लेना है। यह सब छोड़कर हमलोग आपके साथ छायाकी भाँति रहेंगे। हा नाथ! हा महाराज!!

हा स्वामिन् !!! आप हमें क्यों त्याग रहे हैं? जहाँ आप रहेंगे, वहीं हम भी रहेंगे। जहाँ आप हैं, वहीं सुख है। जहाँ आप हैं, वहीं नगर है और जहाँ हमारे महाराज आप हैं, वहीं हमारे लिये स्वर्ग है!'

पुरवासियोंकी ये बातें सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शोकमग्न हो उनपर दया करनेके लिये ही मार्गमें उस समय ठहर गये। विश्वामित्रने देखा, राजाका चित्त पुरवासियोंके वचनोंसे व्याकुल हो उठा है;

तब वे उनके पास आ पहुँचे और रोष तथा अमर्षसे आँखें फाड़कर बोले—'अरे! तू तो बड़ा दुराचारी, झूठा और कपटपूर्ण बातें करनेवाला है। धिक्कार है तुझे, जो मुझे राज्य देकर फिर उसे वापस ले लेना चाहता है।' विश्वामित्रका यह कठोर वचन सुनकर राजा काँप उठे और 'जाता हूँ, जाता हूँ' कहकर अपनी पत्नीका हाथ पकड़कर खींचते हुए शीघ्रतापूर्वक चले। राजा अपनी पत्नीको खींच रहे थे। वह सुकुमारी अबला चलनेके परिश्रमसे थककर व्याकुल हो रही थी तो भी विश्वामित्रने सहसा उसकी पीठपर डंडेसे प्रहार किया। महारानीको इस प्रकार मार खाते देख महाराज हरिश्चन्द्र दुःखसे आतुर होकर केवल इतना ही कह सके, 'भगवन्! जाता हूँ।' उनके मुखसे और कोई बात नहीं निकल सकी। उस समय परम दयालु पाँच विश्वेदेव आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'ओह! यह विश्वामित्र तो बड़ा पापी है। न जाने किन लोकोंमें जायगा। इसने यज्ञकर्ताओंमें श्रेष्ठ इन महाराजको अपने राज्यसे नीचे उतार दिया है।'

विश्वेदेवोंकी यह बात सुनकर विश्वामित्रको बड़ा रोष हुआ। उन्होंने उन सबको शाप देते हुए कहा—'तुम सब लोग मनुष्य हो जाओ।' फिर उनके अनुनय-विनयसे प्रसन्न होकर उन महामुनिने कहा—'मनुष्य होनेपर भी तुम्हारे कोई सन्तान नहीं होगी, तुम विवाह भी नहीं करोगे। तुम्हारे मनमें किसीके प्रति ईर्ष्या और द्वेष भी नहीं होगा। तुम पुनः काम-क्रोधसे मुक्त होकर देवत्वको प्राप्त कर लोगे।' तदनन्तर वे विश्वेदेव अपने अंशसे कुरुवंशियोंके घरमें अवतीर्ण हुए। वे ही द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न पाँचों पाण्डवकुमार थे। महामुनि विश्वामित्रके शापसे ही उनका विवाह नहीं हुआ। जैमिनि! इस प्रकार हमने पाण्डवकुमारोंकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाली बातें तुम्हें बतला दीं। अब और क्या सुनना चाहते हो?

जैमिनि बोले—आपलोगोंने क्रमशः मेरे प्रश्नोंके उत्तरमें ये सारी बातें बतायीं। अब मुझे हरिश्चन्द्रकी शेष कथा सुननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है। अहो, उन महात्माने बहुत बड़ा कष्ट उठाया। श्रेष्ठ पक्षियो! क्या उन्हें इस दुःखके अनुरूप ही कोई सुख भी कभी प्राप्त हुआ?

पक्षियोंने कहा—विश्वामित्रकी बात सुनकर राजा दुःखी हो धीरे-धीरे आगे बढ़े। उनके पीछे नन्हें से पुत्रको गोद लिये रानी शैब्या चल रही थीं। दिव्य वाराणसीपुरीके पास पहुँचकर राजाने विचार किया कि यह काशी मनुष्यकी भोग्य भूमि

नहीं है, इसपर केवल शूलपाणि भगवान् शङ्करका अधिकार है; अतः यह मेरे राज्यसे बाहर है। ऐसा निश्चय करके दुःखसे पीड़ित हो उन्होंने अपनी अनुकूल पत्नीके साथ पैदल ही काशीमें प्रवेश किया। पुरीमें प्रवेश करते ही उन्हें महर्षि विश्वामित्र सामने खड़े दिखायी दिये। उन्हें उपस्थित देख राजा हरिश्चन्द्र हाथ जोड़कर विनीत भावसे खड़े हो गये और बोले—'मुने! ये मेरे प्राण, यह पुत्र और यह पत्नी यहाँ प्रस्तुत हैं। इनमेंसे जिसकी आपको आवश्यकता हो, उसे उत्तम अर्घ्यके रूपमें स्वीकार कीजिये अथवा हमलोग यदि आपकी और कोई सेवा कर सकते हों तो उसके लिये भी आज्ञा दीजिये।'

विश्वामित्र बोले—राजर्षे! आज एक मास पूर्ण हो गया। यदि आपको अपनी बातका स्मरण हो तो मुझे राजसूय यज्ञके लिये दक्षिणा दीजिये।

हरिश्चन्द्रने कहा—तपोधन! अभी आज ही महीना पूरा हो रहा है। उसमें आधा दिन शेष है। इतने समयतक और प्रतीक्षा कीजिये। अब अधिक देरी नहीं होगी।

विश्वामित्र बोले—महाराज! ऐसा ही सही। मैं फिर आऊँगा। यदि आज मुझे दक्षिणा न दोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगा।

यों कहकर विश्वामित्र चले गये। उस समय राजा इस चिन्तामें पड़े कि पहले स्वीकार की हुई दक्षिणा मैं इन्हें किस प्रकार दूँ। क्या मैं अपने प्राण त्याग दूँ? इस अकिञ्चन दशामें किधर जाऊँ? यदि प्रतिज्ञा की हुई दक्षिणा दिये बिना ही मर जाऊँ तो ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेके कारण पापात्मा समझा जाऊँगा और मुझे अधम-से-अधम कीटयोनिमें जन्म लेना पड़ेगा। अथवा यह दक्षिणा चुकानेके लिये अपनेको बेचकर किसीकी दासता स्वीकार कर लूँ? बस, अपनेको बेचना ही ठीक है।

राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त व्याकुल एवं दीन होकर नीचा मुख किये जब इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे, उस समय उनकी पत्नीने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए गद्गदवाणीमें कहा—'महाराज! चिन्ता छोड़िये। अपने सत्यकी रक्षा कीजिये। जो मनुष्य सत्यसे विचलित होता है, वह श्मशानकी भाँति त्याग देने योग्य है। नरश्रेष्ठ! पुरुषके लिये अपने सत्यकी रक्षासे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं बतलाया गया है। जिसका वचन निरर्थक (मिथ्या)

हो जाता है, उसके अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा दान आदि सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाते हैं। धर्मशास्त्रोंमें बुद्धिमान् पुरुषोंने सत्यको ही संसारसागरसे तारनेके लिये सर्वोत्तम साधन बताया है। इसी प्रकार जिनका मन अपने वशमें नहीं है, ऐसे पुरुषोंको पतनके गर्तमें गिरानेके लिये असत्यको ही प्रधान कारण बताया गया है।* कृति नामके राजा सात

---

* त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय। श्मशानवद्वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः॥
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु। यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम्॥

अश्वमेध और एक राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान करके भी एक ही बार असत्य बोलनेके कारण स्वर्गसे गिर गये थे। महाराज! मुझसे पुत्रका जन्म हो चुका है......' इतना कहकर रानी शैब्या फूट-फूटकर रोने लगी।

हरिश्चन्द्र बोले—कल्याणि! यह सन्ताप छोड़ो और जो कुछ कहना चाहती थी, उसे साफ-साफ कहो।

रानीने कहा—महाराज! मुझसे पुत्रका जन्म हो चुका है। श्रेष्ठ पुरुष स्त्री संग्रहका फल पुत्र ही बतलाते हैं। वह फल आपको मिल चुका है, अतः मुझीको बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा चुका दीजिये।

महारानीका यह वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित हो गये। फिर होशमें आनेपर वे अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे—'कल्याणी! यह महान् दुःखकी बात है, जो तुम मुझसे ऐसा कह रही हो।' यों कहकर नरश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्च्छित हो गये। महाराज हरिश्चन्द्रको पृथ्वीपर पड़ा देख रानी अत्यन्त दुःखित होकर बड़ी करुणाके साथ बोलीं—'हा महाराज! यह किसका चीता हुआ अनिष्ट फल आपको प्राप्त हुआ? आप तो रंकुनामक मृगके रोएँसे बने हुए कोमल एवं चिकने वस्त्रपर शयन करने योग्य हैं, किन्तु आज भूमिपर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ोंसे भी अधिक गोधन ब्राह्मणोंको दान दिया है, वे ही ये मेरे प्राणनाथ महाराज इस समय धरतीपर सो रहे हैं! हाय! कितने कष्टकी बात है। अरे ओ दुर्दैव! इन महाराजने तेरा क्या

बिगाड़ा था, जो इन्द्र और भगवान् विष्णुके तुल्य होकर भी ये यहाँ मूर्च्छित दशामें पड़े हैं' इतना कहकर सुन्दरी शैब्या पतिके दुःखोंके असह्य बोझसे पीड़ित हो स्वयं भी गिरकर मूर्च्छित हो गयी।

इसी बीचमें महातपस्वी विश्वामित्रजी भी आ धमके। उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रको मूर्च्छित होकर भूमिपर पड़ा देख उनपर जलके छींटे डाले और इस प्रकार कहा—'राजेन्द्र! उठो, उठो। यदि तुम्हारी दृष्टि धर्मपर हो तो मुझे पूर्वोक्त दक्षिणा दे दो। सत्यसे ही सूर्य तप रहा है। सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य-भाषण सबसे बड़ा धर्म है। सत्यपर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। एक हजार अश्वमेध और एक सत्यको यदि तराजूपर तोला जाय तो हजार अश्वमेधसे सत्य ही भारी सिद्ध होगा।*

अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः । भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् । तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम् ॥
(अ० ८ । १७—२०)

*सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी । सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥
(अ० ८ । ४१-४२)

राजन्! यदि आज तुम मुझे दक्षिणा न दोगे तो सूर्यास्त होनेपर तुम्हें निश्चय ही शाप दे दूँगा।' इतना कहकर विश्वामित्र चले गये। इधर राजा हरिश्चन्द्र उनके भयसे व्याकुल हो उठे। सोचने लगे—'हाय! मैं अधम कहाँ भागकर जाऊँ।' उनकी दशा क्रूर स्वभाववाले धनीसे पीड़ित निर्धन पुरुषकी-सी हो रही थी। उस समय उनकी पत्नीने फिर कहा—'नाथ! मेरी बात मानकर वैसा ही कीजिये, अन्यथा आपको शापाग्निसे दग्ध होकर मरना पड़ेगा।' जब पत्नीने बार-बार उन्हें प्रेरित किया, तब राजा बोले— 'कल्याणी! मैं बड़ा निर्दयी हूँ। लो, अब तुम्हें बेचने चलता हूँ। क्रूर-से-क्रूर मनुष्य भी जो कार्य नहीं कर सकते, वही आज मैं करूँगा।' पत्नीसे यों कहकर राजा व्याकुलचित्तसे नगरमें गये और नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए गद्गदकण्ठसे बोले।

राजाने कहा—ओ नागरिको! तुम सब लोग मेरी बात सुनो, क्या तुम मेरा परिचय पूछ रहे हो? लो, सुनो, मैं मनुष्य नहीं, अत्यन्त क्रूर प्राणी हूँ; क्योंकि अपनी प्राणप्यारी पत्नीको यहाँ बेचनेके लिये आया हूँ। यदि आपलोगोंमेंसे किसीको मेरी इस प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतमा पत्नीसे दासीका काम लेनेकी आवश्यकता हो तो वह शीघ्र बोले; इस असह्य दुःखमें भी जबतक मैं जीवन धारण किये हुए हूँ, तभीतक बात कर ले।

तदनन्तर कोई बूढ़ा ब्राह्मण सामने आकर राजासे बोला—'दासीको मेरे हवाले करो। मैं इसे धन देकर खरीदता हूँ। मेरे पास धन बहुत है और मेरी प्यारी पत्नी अत्यन्त सुकुमारी है। वह घरके काम-काज नहीं कर सकती। इसलिये वह दासी मुझे दे दो। तुम अपनी इस पत्नीको कार्यदक्षता, अवस्था, रूप और स्वभावके अनुरूप यह धन लो और इसे मेरे हवाले करो।' ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया। वे उसे कोई उत्तर न दे सके। तब उस ब्राह्मणने राजाके वल्कल-वस्त्रमें उस धनको अच्छी तरह बाँध दिया और उनकी पत्नीको खींचकर वह अपने साथ ले चला। माताको इस दशामें देखकर बालक रोहिताश्व रो उठा और हाथसे उसका वस्त्र पकड़कर अपनी ओर खींचने

लगा। उस समय रानीने अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! आओ, जी भरकर देख लो। तुम्हारी माता अब दासी हो गयी। तुम राजपुत्र हो, मेरा स्पर्श न करो। अब मैं तुम्हारे स्पर्श करनेयोग्य न रही।' फिर सहसा अपनी माताको खींचकर ले जाये जाते हुए देख बालक रोहिताश्व 'मा, मा' कहकर रोता हुआ दौड़ा। उस समय उसके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। जब बालक पास आया, तब उस ब्राह्मणने क्रोधमें भरकर उसे लातसे मारा तो भी उसने अपनी माको नहीं छोड़ा। केवल 'माई, माई' कहकर बिलखता रहा।

तब रानीने ब्राह्मणसे कहा—स्वामिन् ! आप मुझपर कृपा कीजिये। इस बालकको भी खरीद लीजिये। यद्यपि आपने मुझे खरीद लिया है, तथापि इस बालकके बिना मैं आपके कार्यको अच्छी तरह नहीं कर सकती। मैं बड़ी अभागिनी हूँ। आप मुझपर दया करके प्रसन्न हों और बछड़ेसे गायकी तरह इस बालकसे मुझे मिलाइये।

ब्राह्मण बोला—राजन् ! यह धन लो और इस बालकको भी मेरे हवाले करो।

यों कहकर उसने पूर्ववत् राजाके उत्तरीय-

खण्डमें वह धन बाँध दिया और बालकको उसकी माताके साथ लेकर चल दिया। इस प्रकार पत्नी और पुत्रको ले जाये जाते देख राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखसे कातर हो गये और विलाप करने लगे—'हाय! पहले जिसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा बाहरी लोग कभी नहीं देख पाते थे, वही मेरी पत्नी आज दासी बन गयी। जिसके हाथोंकी अँगुलियाँ अत्यन्त सुकुमार हैं, वह सूर्यवंशमें उत्पन्न मेरा बालक आज बेच दिया गया। हा प्रिये ! हा पुत्र !! हा वत्स !!! मुझ नीचके अन्यायसे तुम्हें दैवाधीन दशाको प्राप्त होना पड़ा। फिर भी मेरी मृत्यु नहीं होती—मुझे धिक्कार है।'

राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार विलाप कर रहे थे, इतनेमें ही वह ब्राह्मण उन दोनोंको साथ ले ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और गृह आदिकी ओटमें छिप गया। वह बड़ी शीघ्रतासे चल रहा था। तदनन्तर विश्वामित्रने वहाँ पहुँचकर राजासे धन माँगा। हरिश्चन्द्रने भी वह धन उन्हें समर्पित कर दिया। पत्नी और पुत्रको बेचनेसे प्राप्त हुए उस धनको थोड़ा देखकर कौशिक मुनिने शोकाकुल राजासे कुपित होकर कहा—'क्षत्रियाधम ! क्या तू इसीको मेरे यज्ञके अनुरूप दक्षिणा मानता है ? यदि ऐसी बात है तो मेरे महान् बलको देख। अपनी भलीभाँति की हुई तपस्याका, निर्मल ब्राह्मणत्वका, उग्र प्रभावका तथा विशुद्ध स्वाध्यायका बल तुझे दिखाता हूँ।'

हरिश्चन्द्रने कहा—भगवन् ! कुछ काल और प्रतीक्षा कीजिये और भी दक्षिणा दूँगा। इस समय नहीं है। मेरी पत्नी और पुत्र बिक चुके हैं।

विश्वामित्रने कहा—राजन् ! दिनका चौथा भाग शेष है। इतने ही समयतक मुझे प्रतीक्षा करनी है। बस, इसके उत्तरमें तुम्हें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

राजा हरिश्चन्द्रसे इस प्रकार निर्दयतापूर्ण निष्ठुर वचन कहकर और उस धनको लेकर कोपमें भरे हुए विश्वामित्र तुरंत वहाँसे चल दिये। उनके

आनेपर राजा भय और शोकके समुद्रमें डूब गये; उन्होंने सब प्रकार विचार करके अपना कर्तव्य निश्चित किया और नीचा मुँह करके आवाज लगायी—'जो मनुष्य मुझे धनसे खरीदकर दासका काम लेना चाहता हो, वह सूर्यके रहते-रहते शीघ्र ही बोले।' उसी समय धर्म चाण्डालका रूप धारण करके तुरंत वहाँ आये। उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध निकल रही थी। विकृत आकार, रूखा बदन, दाढ़ी-मूँछें बढ़ी हुई और दाँत निकले हुए थे। निर्दयताकी तो वह मूर्ति ही था। काला रंग, लंबा पेट, पीलापन लिये हुए रूखे नेत्र और कठोर वाणी—यही उसकी हुलिया थी। उसने झुंड-के-झुंड पक्षियोंको पकड़ रखा था। मुर्दोंपर चढ़ी हुई मालाओंसे वह अलङ्कृत था। उसने एक हाथमें खोपड़ी और दूसरेमें लाठी ले रखी थी। उसका मुँह बहुत बड़ा था। वह देखनेमें भयानक तथा बारंबार बहुत बकवाद करनेवाला था। कुत्तोंसे घिरे होनेके कारण उसकी भयंकरता और भी बढ़ गयी थी।

चाण्डाल बोला—मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। तुम शीघ्र ही अपनी कीमत बताओ। थोड़े अथवा बहुत, जितने धनसे तुम प्राप्त हो सको, उसे कहो।

चाण्डालकी दृष्टिसे क्रूरता टपक रही थी। वह बड़ी निष्ठुरताके साथ बातें करता था। देखनेसे अत्यन्त दुराचारी प्रतीत होता था। इस रूपमें उसे देखकर राजाने पूछा—'तू कौन है ?'

चाण्डालने कहा—मैं चाण्डाल हूँ। इस श्रेष्ठ नगरीमें मुझे सब लोग प्रवीरके नामसे पुकारते हैं। मैं वध्य मनुष्योंका वध करनेवाला और मुर्दोंका वस्त्र लेनेवाला प्रसिद्ध हूँ।

हरिश्चन्द्र बोले—मैं चाण्डालका दास होना नहीं चाहता। यह बहुत ही निन्दित कर्म है। शापाग्निसे जल मरना अच्छा, किन्तु चाण्डालके अधीन होना कदापि अच्छा नहीं है।

वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि महान् तपस्वी विश्वामित्र मुनि आ पहुँचे और क्रोध एवं अमर्षसे आँखें फाड़कर राजासे बोले—'यह चाण्डाल तुम्हें बहुत-सा धन देनेके लिये उपस्थित है। उसे ग्रहण करके मुझे यज्ञकी पूरी दक्षिणा क्यों नहीं देते ? यदि तुम चाण्डालके हाथ अपनेको बेचकर उससे मिला हुआ धन मुझे नहीं दोगे, तो मैं निःसन्देह तुम्हें शाप दे दूँगा।'

हरिश्चन्द्रने कहा—ब्रह्मर्षे ! मैं आपका दास हूँ, दुःखी हूँ, भयभीत हूँ और विशेषतः आपका भक्त हूँ। आप मुझपर कृपा करें। चाण्डालका सम्पर्क बड़ा ही निन्दनीय है। मुनिश्रेष्ठ ! शेष धनके बदले मैं आपका ही सब कार्य करनेवाला, आपके अधीन रहनेवाला तथा आपकी इच्छाके अनुसार चलनेवाला दास बनकर रहूँगा।

विश्वामित्र बोले—यदि तुम मेरे दास हो तो मैंने एक अरब स्वर्णमुद्रा लेकर तुम्हें चाण्डालको दे दिया। अब तुम उसके दास हो गये।

मुनिके ऐसा कहनेपर चाण्डाल मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने विश्वामित्रको धन देकर

राजाको बाँध लिया और उन्हें डंडोंकी मारसे अचेत-सा करता हुआ वह अपने घरकी ओर ले चला। उस समय राजाकी इन्द्रियाँ अत्यन्त व्याकुल हो गयी थीं। तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालके घरमें रहने लगे। वे प्रतिदिन सबेरे, दोपहर और शामको निम्नाङ्कित बातें गुनगुनाया करते थे। 'हाय! मेरी दीनमुखी पत्नी अपने आगे दीनमुख बालक रोहिताश्वको देखकर अत्यन्त दुःखमें मग्न हो जाती होगी और उस समय इस आशासे कि राजा धन कमाकर हम दोनोंको छुड़ायेंगे, बारंबार मेरा स्मरण करती होगी। उसे इस बातका पता न होगा कि मैं ब्राह्मणको और भी अधिक धन देकर अत्यन्त पापमय संसर्गमें जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। राज्यका नाश, सुहृदोंका त्याग, पत्नी और पुत्रका विक्रय तथा अन्तमें चाण्डालत्वकी प्राप्ति— अहो! यह एकके बाद एक दुःखकी कैसी परम्परा चली आती है।'

इस प्रकार वे चाण्डालके घरमें रहते हुए प्रतिदिन अपने प्रिय पुत्र तथा अनुकूल पत्नीका स्मरण किया करते थे। अपना सर्वस्व छिन जानेके कारण राजा बहुत व्याकुल रहते थे। कुछ कालके बाद राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालके वशमें होनेके कारण श्मशानघाटपर मुर्दोंके कपड़े (कफन) संग्रह करनेके काममें नियुक्त हुए। चाण्डालने उन्हें आज्ञा दी थी कि 'तुम मुर्दोंके आनेकी प्रतीक्षामें रात-दिन यहीं रहो।' यह आदेश पाकर राजा काशीपुरीके दक्षिण श्मशान-भूमिमें बने हुए शवमन्दिरमें गये। उस श्मशानमें बड़ा भयङ्कर शब्द होता था। वहाँ सैकड़ों सियारिनें भरी रहती थीं। चारों ओर मुर्दोंकी खोपड़ियाँ बिखरी पड़ी थीं। सारा श्मशान दुर्गन्धसे व्याप्त और अत्यन्त धूमसे आच्छादित था। उसमें पिशाच, भूत, बेताल, डाकिनी और यक्ष रहा करते थे। गिद्धों और गीदड़ोंसे भी वह स्थान भरा रहता था। झुंड के-झुंड कुत्ते उसे घेरे रहते थे। यत्र-तत्र हड्डियोंके ढेर लगे हुए थे। सब ओरसे बड़ी दुर्गन्ध आती थी। अनेकों मृत व्यक्तियोंके बन्धु-बान्धवोंके करुण-क्रन्दनसे वह श्मशान-भूमि बड़ी ही भयानक और कोलाहलपूर्ण रहती थी। 'हा पुत्र! हा मित्र!

हा बन्धु! हा भ्राता! हा वत्स! हा प्रियतम! हा पतिदेव! हाय बहिन! हा माता! हा मामा! हा पितामह! हा मातामह! हा पिताजी! हा पौत्र! हा बान्धव! तुम कहाँ चले गये? लौट आओ।' इस प्रकार विलाप करनेवालोंकी करुणापूर्ण ध्वनि वहाँ जोर-जोरसे सुनायी पड़ती थी। ऐसी भूमिमें निवास करनेके कारण राजा न रातमें सो पाते थे, न दिनमें। बारंबार हाहाकार करते रहते थे। इस प्रकार उनके बारह महीने सौ वर्षोंके समान बीते। अन्तमें राजाने दुःखी होकर देवताओंकी शरण ली और कहा—'महान् धर्मको नमस्कार है। जो सच्चिदानन्दस्वरूप, सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करनेवाले विधाता, परात्पर ब्रह्म, शुद्ध, पुराणपुरुष एवं अविनाशी हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। देवगुरु बृहस्पति! तुम्हें नमस्कार है। इन्द्रको भी नमस्कार है।' यों कहकर राजा पुनः चाण्डालके कार्यमें लग गये।

तदनन्तर महाराज हरिश्चन्द्रकी पत्नी शैब्या साँपके काटनेसे मरे हुए अपने बालकको गोदमें उठाये विलाप करती हुई श्मशान-भूमिमें आयी। वह बार-बार यही कहती थी, 'हा वत्स! हा पुत्र! हा शिशो!' उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। कान्ति मलिन पड़ गयी थी। मन बेचैन था। सिरके बालोंमें धूल जम गयी थी। शैब्याके विलापका शब्द सुनकर राजा हरिश्चन्द्र तुरंत उसके पास गये। उन्हें आशा थी, यहाँ भी मुर्देके शरीरका कफन मिलेगा। वे जोर-जोरसे रोती हुई अपनी पत्नीको पहचान न सके। अधिक कालतक प्रवासमें रहनेके कारण वह बहुत सन्तप्त थी। ऐसी जान पड़ती थी, मानो उसका दूसरा जन्म हुआ हो। शैब्याने भी पहले उनके मस्तकको मनोहर केशोंसे सुशोभित देखा था। अब उनके सिरपर जटा थी। वे सूखे हुए वृक्षके समान जान पड़ते थे। इस अवस्थामें वह भी अपने पतिको न पहचान सकी। राजाने काले कपड़ेमें लिपटे हुए बालकको, जिसे साँपने काट खाया था तथा जिसके अङ्गोंमें राजोचित चिह्न दिखायी देते थे, जब देखा तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'अहो! बड़े कष्टकी बात है, यह बालक किसी राजाके कुलमें उत्पन्न हुआ था; किन्तु दुरात्मा कालने इसे किसी और ही दशाको पहुँचा दिया। अपनी माताकी गोदमें पड़े हुए इस बालकको देखकर मुझे कमलके समान नेत्रोंवाला अपना पुत्र रोहिताश्व याद आ रहा है। यदि उसे भयंकर कालने अपना ग्रास न बनाया होगा तो वह मेरा लाड़ला भी इसी उमरका हुआ होगा।'

इतनेमें ही रानीने विलाप करते हुए कहा—हा वत्स! किस पापके कारण यह अत्यन्त भयंकर दुःख आ पड़ा है, जिसका कभी अन्त ही नहीं आता। हा प्राणनाथ! आप कहाँ हैं? ओ विधाता! तूने राज्यका नाश किया, सुहृदोंसे विछोह कराया और स्त्री तथा पुत्रको भी बिकवा दिया। अरे! तूने राजर्षि हरिश्चन्द्रकी कौन-सी दुर्दशा नहीं की।

रानीका यह वचन सुनकर अपने पथसे भ्रष्ट हुए राजा हरिश्चन्द्रने अपनी प्राणप्यारी पत्नी तथा मृत्युके मुखमें पड़े हुए पुत्रको पहचान लिया। 'ओह! कितने कष्टकी बात है, यह शैब्या इस अवस्थामें और यह वही मेरा पुत्र है?' यों कहते हुए वे दुःखसे सन्तप्त होकर रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। इस अवस्थामें पहुँचे हुए राजाको पहचानकर रानीको भी बड़ा दुःख हुआ। वह भी मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। उसका शरीर निश्चेष्ट हो गया। फिर थोड़ी देर बाद होशमें आनेपर महाराज और महारानी दोनों साथ-ही-साथ शोकके भारसे पीड़ित एवं सन्तप्त हो विलाप करने लगे।

राजाने कहा—हा वत्स! सुन्दर नेत्र, भौंह, नासिका और बालोंसे युक्त तुम्हारा यह सुकुमार एवं दीन मुख देखकर मेरा हृदय क्यों नहीं विदीर्ण हो जाता। हा बेटा! तुम मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गसे उत्पन्न

तथा मन और हृदयको आनन्द देनेवाले थे, किन्तु मुझ-जैसे दुष्ट पिताने तुम्हें एक साधारण वस्तुकी भाँति बेच डाला। हाय ! दुर्दैवरूपी क्रूर सर्पने सब प्रकारके साधन और वैभवसे पूर्ण मेरे महान् राज्यका अपहरण करके अब मेरे पुत्रको भी काट खाया। दैवरूपी सर्पसे डसे हुए अपने पुत्रके मुख कमलको देखते हुए भी मैं इस समय उसीके भयंकर विषके प्रभावसे अंधा हो रहा हूँ।

आँसू बहाते हुए गद्गदकण्ठसे यों कहकर राजाने बालकको उठाकर छातीसे लगा लिया और मूर्च्छासे निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

उस समय रानी इस प्रकार बोली—ये तो वही नरश्रेष्ठ जान पड़ते हैं। केवल स्वरसे इनकी पहचान हो रही है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ये विद्वज्जनोंके हृदयरूपी चकोरको आह्लादित करनेवाले चन्द्ररूप महाराज हरिश्चन्द्र ही हैं; किन्तु वे महाराज इस समय श्मशानमें कैसे आ पहुँचे ?

अब शैव्या पुत्र-शोकको भूलकर गिरे हुए पतिको देखने लगी। पति और पुत्र दोनोंकी चिन्तासे पीड़ित, विस्मित एवं दीन हुई रानी जब पतिकी दशाका निरीक्षण कर रही थी, उस समय उसकी दृष्टि अपने स्वामीके उस दण्डपर पड़ी, जो बहुत ही घृणित एवं चाण्डालके धारण करने योग्य था। वह देखते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ी। फिर धीरे-धीरे जब चेत हुआ तो गद्गद-वाणीमें कहने लगी—'ओ दैव! तूने देवताके समान कान्तिमान् इन महाराजको चाण्डालकी दशाको पहुँचा दिया। तूने इनके राज्यका नाश, सुहृदोंका त्याग और स्त्री-पुत्रका विक्रय कराकर भी इन्हें नहीं छोड़ा। आखिर इन्हें राजासे चाण्डाल बना दिया ! हा राजन्! आज मैं आपके पास छत्र, झारी, चँवर और व्यजन—कुछ भी नहीं देखती। यह विधाताका कैसा विपरीत भाव है ! पूर्वकालमें जिनके आगे-आगे चलनेपर कितने ही राजा सेवक बनकर अपनी चादरोंसे धरती बुहारा करते थे, वे ही महाराज अब दुःखसे पीड़ित हो इस अपवित्र श्मशानभूमिमें विचरते हैं, जहाँ खोपड़ियोंसे सटे कितने ही मिट्टीके घड़े चारों ओर बिखरे पड़े हैं। जहाँ मृतकोंकी लाशसे चर्बी गल-गलकर पृथ्वीके सूखे दोनोंमें पड़ रही है। चिताकी राख, अँगारे, अधजली हड्डियों और मज्जाके ढेरसे यहाँकी भयंकरता बहुत बढ़ गयी है। यहाँसे गृध्रों और गीदड़ोंके भयंकर नाद सुनकर छोटे-छोटे पक्षी भाग गये हैं। चिताके धुएँसे यहाँकी सारी दिशाएँ काली दिखायी देती हैं।'

यों कहकर महारानी शैव्या महाराज हरिश्चन्द्रके कण्ठमें लग गयी तथा कष्ट एवं सैकड़ों प्रकारके शोकसे आक्रान्त हो आर्त्तवाणीमें विलाप करने लगी—'राजन्! यह स्वप्न है या सत्य ? महाभाग! आप इसे जैसा समझते हों, बतलायें। मेरा मन अचेत होता जा रहा है?'

रानीकी यह बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रने गरम साँस ली और गद्गदवाणीमें अपनेको चाण्डालत्व प्राप्त होनेकी सारी कथा कह सुनायी। उसे

सुनकर रानीको बड़ा दुःख हुआ और उसने गरम साँस खींचकर बहुत देरतक रोनेके पश्चात् अपने पुत्रकी मृत्युकी यथार्थ घटना निवेदित की। पुत्रके मरनेकी बात सुनकर राजा पुनः पृथ्वीपर गिर पड़े और विलाप करते हुए बोले—'प्रिये! अब मैं अधिक दिनोंतक जीवित रहकर क्लेश भोगना नहीं चाहता; परन्तु मेरा अभाग्य तो देखो, मेरा आत्मा भी मेरे अधीन नहीं है। तुम मेरे अपराधोंको क्षमा करना। मैं आज्ञा देता हूँ, तुम ब्राह्मणके घर चली जाओ। शुभे! 'मैं राजपत्नी हूँ', इस अभिमानमें आकर कभी उस ब्राह्मणका अपमान न करना। सब प्रकारके यत्न करके उसे सन्तुष्ट रखना; क्योंकि स्वामी देवताके समान होता है।'

रानी बोली—राजर्षे! मुझसे भी अब यह दुःखका भार नहीं सहा जाता, अतः आपके साथ ही मैं भी चिताकी जलती हुई आगमें प्रवेश करूँगी।

यह सुनकर राजाने कहा—'पतिव्रते! जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा ही करो।' तदनन्तर राजाने चिता बनाकर उसके ऊपर अपने पुत्रको रखा और अपनी पत्नीके साथ हाथ जोड़कर सबके ईश्वर परमात्मा नारायण श्रीहरिका स्मरण किया, जो हृदयरूपी गुफामें विराजमान हैं तथा जिनका वासुदेव, सुरेश्वर, आदि-अन्तरहित, ब्रह्म, कृष्ण, पीताम्बर एवं शुभ आदि नामोंसे चिन्तन किया जाता है। उनके इस प्रकार भगवत्स्मरण करनेपर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता धर्मको अगुआ बनाकर तुरंत वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'राजन्! हमारी बात सुनो, तुम्हारे स्मरण करनेपर सम्पूर्ण देवता यहाँ उपस्थित हुए हैं। ये साक्षात् पितामह ब्रह्माजी हैं और ये स्वयं भगवान् धर्म हैं। इनके सिवा साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण और लोकपाल भी अपने वाहनोंसहित पधारे हैं। नाग, सिद्ध, गन्धर्व, रुद्र, अश्विनीकुमार तथा और भी बहुत-से देवता यहाँ उपस्थित हुए हैं। साथ ही बाबा विश्वामित्रजी भी हैं।'

तत्पश्चात् धर्मने कहा—राजन्! प्राण त्यागनेका साहस न करो। मैं साक्षात् धर्म तुम्हारे पास आया हूँ। तुमने अपने क्षमा, इन्द्रियसंयम तथा सत्य आदि गुणोंसे मुझे सन्तुष्ट किया है।

इन्द्र बोले—महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र तुम्हारे पास आया हूँ। तुमने स्त्री-पुत्रके साथ सनातन लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है। राजन्! पत्नी और पुत्रको साथ लेकर स्वर्गलोकको चलो, जिसे तुमने अपने शुभकर्मोंसे प्राप्त किया है तथा जो दूसरे मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है।

इसके बाद इन्द्रने चिताके ऊपर आकाशसे अमृतकी वृष्टि की, जो अकालमृत्युका निवारण करनेवाली है। फिर फूलोंकी भी वर्षा होने लगी। देवताओंकी दुन्दुभि जोर-जोरसे बज उठी। इस प्रकार वहाँ एकत्रित हुए देवताओंके समाजमें महात्मा राजाका पुत्र रोहिताश्व चितासे

जीवित हो उठा। उसका शरीर सुकुमार और स्वस्थ था। उसकी इन्द्रियों और मनमें प्रसन्नता थी। फिर तो महाराज हरिश्चन्द्रने अपने पुत्रको

तुरंत छातीसे लगा लिया। वे स्त्रीसहित पूर्ववत् तेज और कान्तिसे सम्पन्न हो गये। उनकी देहपर दिव्य हार और वस्त्र शोभा पाने लगे। राजा स्वस्थ एवं पूर्णमनोरथ हो परम आनन्दमें निमग्न हो गये। उस समय इन्द्रने पुनः उनसे कहा—'महाभाग! स्त्री और पुत्रसहित तुम्हें उत्तम गति प्राप्त होगी, अतः अपने कर्मोंके फल भोगनेके लिये दिव्य लोकको चलो।'

हरिश्चन्द्रने कहा—देवराज! मैं अपने स्वामी चाण्डालकी आज्ञा लिये बिना तथा उसके ऋणसे उद्धार पाये बिना देवलोकको नहीं चल सकूँगा।*

धर्म बोले—राजन्! तुम्हारे इस भावी संकटको जानकर मैंने ही मायासे अपनेको चाण्डालके रूपमें प्रकट किया तथा चाण्डालत्वका प्रदर्शन किया था।

इन्द्रने कहा—हरिश्चन्द्र! पृथ्वीके समस्त मनुष्य जिस परमधामके लिये प्रार्थना करते हैं, केवल पुण्यवान् मनुष्योंको प्राप्त होनेवाले उस धामको चलो।

हरिश्चन्द्र बोले—देवराज! आपको नमस्कार है। मेरा यह वचन सुनिये; आप मुझपर प्रसन्न हैं, अतएव मैं विनीतभावसे आपके सम्मुख कुछ निवेदन करता हूँ। अयोध्याके सब मनुष्य मेरे विरह-शोकमें मग्न हैं। आज उन्हें छोड़कर मैं दिव्यलोकको कैसे जाऊँगा? ब्राह्मणकी हत्या, गुरुकी हत्या, गौका वध और स्त्रीका वध—इन सबके समान ही भक्तोंका त्याग करनेमें भी महान् पाप बताया गया है। जो दोषरहित एवं त्यागनेके अयोग्य भक्त पुरुषको त्याग देता है, उसे इहलोक या परलोकमें कहीं भी सुखकी प्राप्ति नहीं दिखायी देती; इसलिये इन्द्र! आप स्वर्गको लौट जाइये। सुरेश्वर! यदि अयोध्यावासी पुरुष मेरे साथ ही स्वर्ग चल सकें तब तो मैं भी चलूँगा; अन्यथा उन्हींके साथ नरकमें भी जाना मुझे स्वीकार है।

इन्द्रने कहा—राजन्! उन सब लोगोंके पृथक्-पृथक् नाना प्रकारके बहुत-से पुण्य और पाप हैं। फिर तुम स्वर्गको सबका भोग्य बनाकर वहाँ कैसे चल सकोगे?

हरिश्चन्द्र बोले—इन्द्र! राजा अपने कुटुम्बियोंके ही प्रभावसे राज्य भोगता है। प्रजावर्ग भी राजाका कुटुम्बी ही है। उन्हींके सहयोगसे राजा बड़े-बड़े यज्ञ करता, पोखरे खुदवाता और बगीचे आदि लगवाता है। यह सब कुछ मैंने अयोध्यावासियोंके प्रभावसे किया है, अतः स्वर्गके लोभमें पड़कर मैं अपने उपकारियोंका त्याग नहीं कर सकता। देवेश! यदि मैंने कुछ भी पुण्य किया हो, दान, यज्ञ अथवा जपका अनुष्ठान मुझसे हुआ हो, उन सबका फल उन सबके साथ ही मुझे मिले। उसमें

* देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन वै। अगत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्येऽहं सुरालयम्॥

(ओ० ८।२७५)

उनका समान अधिकार हो।*

'ऐसा ही होगा' यों कहकर त्रिभुवनपति इन्द्र, धर्म और गाधिनन्दन विश्वामित्र मन ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। लोगोंपर अनुग्रह रखनेवाले देवेन्द्रने स्वर्गलोकसे भूतलतक करोड़ों विमानोंका ताँता बाँध दिया। फिर चारों वर्णों और आश्रमोंसे युक्त अयोध्या नगरमें प्रवेश करके राजा हरिश्चन्द्रके समीप ही देवराज इन्द्रने कहा—'प्रजाजनो! तुम सब लोग शीघ्र आओ। धर्मके प्रसादसे तुम सब लोगोंको अत्यन्त दुर्लभ स्वर्गलोक प्राप्त हुआ है।'

इन्द्रकी यह बात सुनकर महाराज हरिश्चन्द्रकी प्रसन्नताके लिये महातपस्वी विश्वामित्रने राजकुमार रोहिताश्वको परम रमणीय अयोध्यापुरीमें ला वहाँ राज्य-सिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। देवताओं, मुनियों और सिद्धोंके साथ रोहिताश्वका राज्याभिषेक करके राजासहित सभी बन्धु-बान्धव बहुत प्रसन्न हुए। उसके बाद वहाँके सब लोग अपने पुत्र, भृत्य और स्त्रियोंसहित स्वर्गलोकको चले। वे पग-पगपर एक विमानसे दूसरे विमानपर जा पहुँचते थे। विमानोंके सहित यह अनुपम ऐश्वर्य पाकर महाराज हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। स्वर्गमें नगरके आकारवाले सुन्दर विमानोंमें, जो परकोटोंसे सुशोभित था, महाराज हरिश्चन्द्र विराजमान हुए। उनकी यह समृद्धि देखकर सब शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले दैत्याचार्य महाभाग शुक्रने इस प्रकार उनका यशोगान किया—'अहो! क्षमाका कैसा माहात्म्य है। दानका कितना महान् फल है, जिससे हरिश्चन्द्र अमरावतीपुरीमें आये और इन्द्रपदको प्राप्त हुए।'

पक्षीगण कहते हैं—जैमिनिजी! राजा हरिश्चन्द्रका यह सारा चरित्र मैंने आपसे वर्णन किया। दुःखमें पड़ा हुआ जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह महान् सुख पाता है। इसके श्रवणसे पुत्रार्थीको पुत्र, सुखार्थीको सुख, स्त्रीकी इच्छा रखनेवालेको स्त्री और राज्यकी कामनावालेको राज्यकी प्राप्ति होती है। उसकी संग्राममें विजय होती है और वह कभी नरकमें नहीं पड़ता।

---

*हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चैतन्निबोध मे। प्रसादसुमुखं यत् त्वां ब्रवीमि प्रश्रयान्वितः॥
मच्छोकमग्नमनसः कोसलानगरे जनाः। तिष्ठन्ति तानपोह्याद्य कथं यास्याम्यहं दिवम्॥
ब्रह्महत्या गुरोर्घातो गोवधः स्त्रीवधस्तथा। तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम्॥
भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतः सुखम्। नेह नामुत्र पश्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज॥
यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर। ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह॥

इन्द्र उवाच

बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै पृथक्। कथं सङ्घातभोग्यं त्वं भूपः स्वर्गमवाप्स्यसि॥

हरिश्चन्द्र उवाच

शक्र भुङ्क्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम्। यजते च महायज्ञैः कर्म पौर्तं करोति च॥
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम्। उपकर्तॄन् न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया॥
तस्माद् यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम्। दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः॥

(अ० ८। २४८—२५६)

पिता-पुत्र-संवादका आरम्भ, जीवकी मृत्यु तथा नरक-गतिका वर्णन

जैमिनिने पूछा—श्रेष्ठ पक्षियो! प्राणियोंकी उत्पत्ति और लय कहाँ होते हैं ? इस विषयमें मुझे सन्देह है। मेरे प्रश्नके अनुसार आपलोग इसका समाधान करें। जीव कैसे जन्म लेता है ? कैसे मरता है ? और किस प्रकार गर्भमें पीड़ा सहकर माताके उदरमें निवास करता है ? फिर गर्भसे बाहर निकलनेपर वह किस प्रकार बुद्धिको प्राप्त होता है ? और मृत्युकालमें किस तरह चैतन्यस्वरूपके द्वारा शरीरसे विलग होता है। सभी प्राणी मृत्युके पश्चात् पुण्य और पाप दोनोंका फल भोगते हैं; किन्तु वे पुण्य और पाप किस प्रकार अपना फल देते हैं ? ये सारी बातें मुझे बताइये, जिससे मेरा सब सन्देह दूर हो जाय।

पक्षी बोले—महर्षे ! आपने हमलोगोंपर बहुत बड़े प्रश्नका भार रख दिया। इसकी कहीं तुलना नहीं है। महाभाग! इस विषयमें एक प्राचीन वृत्तान्त सुनिये। पूर्वकालमें एक परम बुद्धिमान् भृगुवंशी ब्राह्मण थे। उनके सुमति नामका एक पुत्र था। वह बड़ा ही शान्त और जड़रूपमें रहनेवाला था। उपनयन संस्कार हो जानेके बाद उस बालकसे उसके पिताने कहा—'सुमते! तुम सभी वेदोंको क्रमशः आद्योपान्त पढ़ो, गुरुकी सेवामें लगे रहो और भिक्षाके अन्नका भोजन किया करो। इस प्रकार ब्रह्मचर्यकी अवधि पूरी करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करो और वहाँ उत्तम-उत्तम यज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने मनके अनुरूप सन्तान उत्पन्न करो। तदनन्तर वनकी शरण लो और वानप्रस्थके नियमोंका पालन करनेके पश्चात् परिग्रहरहित, सर्वस्वत्यागी संन्यासी हो जाओ। ऐसा करनेसे तुम्हें उस ब्रह्मकी प्राप्ति होगी, जहाँ जाकर तुम शोकसे मुक्त हो जाओगे।'

इस प्रकार अनेकों बार कहनेपर भी सुमति जड़ होनेके कारण कुछ भी नहीं बोलता था। पिता भी स्नेहवश बारंबार अनेक प्रकारसे ये बातें उसके सामने रखते थे। उन्होंने पुत्रप्रेमके कारण मीठी वाणीमें अनेक बार उसे लोभ दिखाया। इस प्रकार उनके बार-बार कहनेपर एक दिन सुमतिने हँसकर कहा—'पिताजी ! आज आप जो उपदेश दे रहे हैं, उसका मैंने बहुत बार अभ्यास किया है। इसी प्रकार दूसरे-दूसरे शास्त्रों और भाँति-भाँतिकी शिल्पकलाओंका भी सेवन किया है। इस समय मुझे अपने दस हजारसे भी अधिक जन्म स्मरण हो आये हैं। खेद, सन्तोष, क्षय, वृद्धि और उदयका भी मैंने बहुत अनुभव किया है। शत्रु, मित्र और पत्नीके संयोग-वियोग भी मुझे देखनेको मिले हैं। अनेक प्रकारके माता-पिताके भी दर्शन हुए हैं। मैंने हजारों बार सुख और दुःख भोगे हैं। कितनी ही स्त्रियोंके विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गर्भमें निवास किया है। सहस्रों

प्रकारके रोगोंकी भयानक पीड़ाएँ सहन की हैं। गर्भावस्थामें मैंने जो अनेकों प्रकारके दुःख भोगे हैं, बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें भी जो क्लेश सहन किये हैं, वे सब मुझे याद आ रहे हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंकी योनियोंमें, फिर पशु, मृग, कीट और पक्षियोंकी योनियोंमें तथा राजसेवकों एवं युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले राजाओंके घरोंमें भी मेरे कई बार जन्म हो चुके हैं। इसी तरह अबकी बार आपके घरमें भी मैंने जन्म लिया है। मैं बहुत बार मनुष्योंका भृत्य, दास, स्वामी, ईश्वर और दरिद्र रह चुका हूँ। दूसरोंने मुझे और मैंने दूसरोंको अनेक बार दान दिये हैं। पिता, माता, सुहृद्, भाई और स्त्री इत्यादिके कारण कई बार संतुष्ट हुआ हूँ और कई बार दीन हो-होकर रोते हुए मुझे आँसुओंसे मुँह धोना पड़ा है। पिताजी! यों ही इस संसार-चक्रमें भटकते हुए मैंने अब वह ज्ञान प्राप्त किया है, जो मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है। उस ज्ञानको प्राप्त कर लेनेपर अब यह ऋक्, यजु और सामवेदोक्त समस्त क्रिया कलाप गुणशून्य दिखायी देनेके कारण मुझे अच्छा नहीं लगता। अतः जब ज्ञान प्राप्त हो गया तब वेदोंसे मुझे क्या प्रयोजन है। अब तो मैं गुरु-विज्ञानसे परितृप्त, निरीह एवं सदात्मा हूँ। अतः छः प्रकारके भावविकार (जन्म, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, क्षय और नाश), दुःख, सुख, हर्ष, राग तथा सम्पूर्ण गुणोंसे वर्जित उस परमपदरूप ब्रह्मको प्राप्त होऊँगा। पिताजी! जो राग, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, अमर्ष और वृद्धावस्थासे व्याप्त है तथा कुत्ते, मृग आदिकी योनिमें बाँधनेवाले सैकड़ों बन्धनोंसे युक्त है, उस दुःखकी परम्पराका परित्याग करके अब मैं चला जाऊँगा।'

पुत्रकी यह बात सुनकर महाभाग पिताका हृदय प्रसन्नतासे भर गया। उन्होंने हर्ष और विस्मयसे गद्गदवाणीमें अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! तुम यह क्या कहते हो? तुम्हें कहाँसे ज्ञान प्राप्त हो गया? पहले तुममें जड़ता क्यों थी और इस समय ज्ञान कहाँसे जग उठा? क्या यह मुनियों अथवा देवताओंके दिये हुए शापका विकार था, जिससे पहले तुम्हारा ज्ञान छिप गया था और इस समय पुनः प्रकट हो गया? मैं यह सारा रहस्य सुनना चाहता हूँ। इसके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है। बेटा! तुमपर पहले जो कुछ बीत चुका है, वह सब मुझे बताओ।'

पुत्रने कहा—पिताजी! मेरा जो यह सुख और दुःख देनेवाला पूर्व वृत्तान्त है, उसे सुनिये। इस जन्मके पहले पूर्वजन्ममें मैं जो कुछ था, वह सब बताता हूँ। पूर्वकालमें मैं परमात्माके ध्यानमें मन लगानेवाला एक ब्राह्मण था। आत्मविद्याके विचारमें मैं पराकाष्ठाको पहुँचा हुआ था। मैं सदा योगसाधनमें संलग्न रहता था। निरन्तर अभ्यासमें लगने, सत्पुरुषोंका सङ्ग करने, अपने स्वभावसे ही विचारपरायण होने, तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके विचारने और तत्पदार्थके शोधन करने आदिके कारण उस परमात्मतत्त्वमें ही मेरी परम प्रीति हो गयी। फिर मैं शिष्योंके सन्देहका निवारण करनेवाला आचार्य बन गया। फिर बहुत समयके पश्चात् मैं एकान्तसेवी हो गया; किन्तु दैवात् अज्ञानसे सद्भावका नाश हो जानेके कारण प्रमादमें पड़कर मेरी मृत्यु हो गयी। तथापि मृत्युकालसे लेकर अबतक मेरी स्मरणशक्तिका लोप नहीं हुआ। मेरे जन्मोंके जितने वर्ष बीत गये हैं, उन सबकी स्मृति हो आयी है। पिताजी! उस पूर्वजन्मके अभ्याससे ही जितेन्द्रिय होकर अब फिर मैं वैसा ही यत्न करूँगा, जिससे भविष्यमें फिर मेरा जन्म न हो। मैंने जो दूसरोंको ज्ञान दिया था, उसीका यह फल है कि मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो रहा है। केवल त्रयीधर्म (कर्मकाण्ड) का सहारा लेनेवाले मनुष्योंको इसकी प्राप्ति नहीं होती, अतः मैं इस प्रथम आश्रमसे ही संन्यास-धर्मका आश्रय ले एकान्तसेवी हो आत्माके

उद्धारके लिये यत्न करूँगा। अतः महाभाग! आपके हृदयमें जो संशय है, उसे कहिये। मैं उसका समाधान करूँगा। इतनी-सी सेवासे भी आपकी प्रसन्नताका सम्पादन करके मैं पिताके ऋणसे मुक्त हो सकूँगा।

पक्षी कहते हैं—तब पुत्रकी बातपर श्रद्धा करते हुए पिताने उससे वही बात पूछी, जो आपने अभी संसारमें जन्म ग्रहण करनेके सम्बन्धमें हमलोगोंसे पूछी है।

पुत्रने कहा—पिताजी! जिस प्रकार मैंने तत्त्वका बारंबार अनुभव किया है, उसे बतलाता हूँ; सुनिये। यह क्षणभङ्गुर संसार-चक्र प्रवाहरूपसे अजर है, निरन्तर चलते रहनेवाला है, कभी स्थिर नहीं रहता। तात! आपकी आज्ञासे मैं मृत्युकालसे लेकर अबतककी सब बातोंका वर्णन करता हूँ। शरीरमें जो गर्मी या पित्त है, वह तीव्र वायुसे प्रेरित होकर जब अत्यन्त कुपित हो जाता है, उस समय बिना ईंधनके ही उद्दीप्त हुई अग्निकी भाँति बढ़कर मर्मस्थानोंको विदीर्ण कर देता है, तत्पश्चात् उदान नामक वायु ऊपरकी ओर उठता है और खाये-पीये हुए अन्न-जलको नीचेकी ओर जानेसे रोक देता है। उस आपत्तिकी अवस्थामें भी उसीको प्रसन्नता रहती है, जिसने पहले जल, अन्न एवं रसका दान किया है। जिस पुरुषने श्रद्धासे पवित्र किये हुए अन्तःकरणके द्वारा पहले अन्नदान किया है, वह उस रुग्णावस्थामें अन्नके बिना भी तृप्ति लाभ करता है। जिसने कभी मिथ्या भाषण नहीं किया, दो प्रेमियोंके पारस्परिक प्रेममें बाधा नहीं डाली तथा जो आस्तिक और श्रद्धालु है, वह सुखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होता है। जो देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहते, किसीकी निन्दा नहीं करते तथा सात्त्विक, उदार और लज्जाशील होते हैं, ऐसे मनुष्योंको मृत्युके समय कष्ट नहीं होता। जो कामनासे, क्रोधसे अथवा द्वेषके कारण धर्मका त्याग नहीं करता, शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाला तथा सौम्य होता है, उसकी मृत्यु भी सुखसे होती है। जिन्होंने कभी जलका दान नहीं किया है, उन मनुष्योंको मृत्युकाल उपस्थित होनेपर अधिक जलन होती है तथा अन्नदान न करनेवालोंको उस समय भूखका भारी कष्ट भोगना पड़ता है। जो लोग जाड़ेके दिनोंमें लकड़ी दान करते हैं, वे शीतके कष्टको जीत लेते हैं। जो चन्दन दान करते हैं, वे तापपर विजय पाते हैं तथा जो किसी भी जीवको उद्वेग नहीं पहुँचाते, वे मृत्युकालमें प्राणघातिनी वेदनाका अनुभव नहीं करते। मोह और अज्ञान फैलानेवाले लोग महान् भयको प्राप्त होते हैं। नीच मनुष्य तीव्र वेदनाओंसे पीड़ित होते रहते हैं। जो झूठी गवाही देते, झूठ बोलते, बुरी बातोंका उपदेश देते और वेदोंकी निन्दा करते हैं, वे सब लोग मूर्च्छाग्रस्त होकर मृत्युको प्राप्त होते हैं।

ऐसे लोगोंकी मृत्युके समय यमराजके दुष्ट दूत हाथोंमें हथौड़ी एवं मुद्गर लिये आते हैं, वे बड़े भयङ्कर होते हैं और उनकी देहसे दुर्गन्ध निकलती रहती है। उन यमदूतोंपर दृष्टि पड़ते ही मनुष्य काँप उठता है और भ्राता, माता तथा पुत्रोंका नाम लेकर बारंबार चिल्लाने लगता है। उस समय उसकी वाणी स्पष्ट समझमें नहीं आती। एक ही शब्द, एक ही आवाज-सी जान पड़ती है। भयके मारे रोगीकी आँखें घूमने लगती हैं और उसका मुख सूख जाता है। उसकी साँस ऊपरको उठने लगती है। दृष्टिकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है, फिर वह अत्यन्त वेदनासे पीड़ित होकर उस शरीरको छोड़ देता है और वायुके सहारे चलता हुआ वैसे ही दूसरे शरीरको धारण कर लेता है, जो रूप, रंग और अवस्थामें पहले शरीरके समान ही होता है। वह शरीर माता-पिताके गर्भसे उत्पन्न नहीं, कर्मजनित होता है और यातना भोगनेके लिये ही मिलता है। तदनन्तर यमराजके दूत शीघ्र ही उसे दारुण

पाशोंसे बाँध लेते हैं और डंडोंकी मारसे व्याकुल करते हुए दक्षिण दिशाकी ओर खींच ले जाते हैं। उस मार्गपर कहीं तो कुश जमे होते हैं, कहीं काँटे फैले होते हैं, कहीं बाँबीकी मिट्टियाँ जमी होती हैं, कहीं लोहेकी कीलें गड़ी होती हैं और कहीं पथरीली भूमि होनेके कारण वह पथ अत्यन्त कठोर जान पड़ता है। कहीं जलती हुई आगकी लपटें मिलती हैं तो कहीं सैकड़ों गड्ढोंके कारण वह मार्ग अत्यन्त दुर्गम प्रतीत होता है। कहीं सूर्य इतने तपते हैं कि उस राहसे जानेवाला जीव उनकी किरणोंसे जलने लगता है। ऐसे पथसे यमराजके दूत उसे घसीटकर ले जाते हैं। वे दूत घोर शब्द करनेके कारण अत्यन्त भयङ्कर जान पड़ते हैं। जिस समय वे जीवको घसीटकर ले जाते हैं, सैकड़ों गीदड़ियाँ जुटकर उसके शरीरको नोच नोचकर खाने लगती हैं। पापी जीव ऐसे ही भयंकर मार्गसे यमलोककी यात्रा करते हैं।

जो मनुष्य छाता, जूता, वस्त्र और अन्न-दान करनेवाले होते हैं, वे उस मार्गपर सुखसे यात्रा करते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकारका कष्ट भोगता हुआ पापपीड़ित जीव विवश होकर बारह दिनोंमें धर्मराजके नगरतक पहुँचाया जाता है। उसके यातनामय शरीरके जलाये जानेपर जीव स्वयं भी अत्यन्त दाहका अनुभव करता है, उसी प्रकार मारे और काटे जानेपर भी उसे अत्यन्त भयङ्कर वेदना होती है। अधिक देरतक जलमें भिगोये जानेके कारण भी जीवको भारी दुःख उठाना पड़ता है। इस प्रकार दूसरे शरीरको प्राप्त होनेपर भी उसे अपने कर्मोंके फलस्वरूप कष्ट भोगने पड़ते हैं। उसके भाई-बन्धु जो तिल और जलकी अञ्जलि देते तथा पिण्डदान करते हैं, वही उस मार्गपर जाते समय उसे खानेको मिलता है। भाई-बन्धु यदि अशौचके भीतर तेल लगावें और उबटन मलवावें तो उसीसे जीवका पोषण किया जाता है अर्थात् वह मैल ही उन्हें खानी पड़ती है [अतः ये वस्तुएँ वर्जित हैं]। इसी प्रकार बान्धवगण जो कुछ खाते-पीते हैं, वह मृतक जीवको मिलता है; अतः उन्हें भोजनकी शुद्धिपर भी ध्यान रखना चाहिये। यदि भाई-बन्धु भूमिपर शयन करें तो उससे जीवको कष्ट नहीं होता और यदि वे उसके निमित्त दान करें तो उससे मृत जीवको बड़ी तृप्ति होती है। यमदूत जब उसे साथ लेकर जाते हैं तो वह बारह दिनोंतक अपने घरकी ओर देखता रहता है। उस समय पृथ्वीपर उसके निमित्त जो जल और पिण्ड दिये जाते हैं, उन्हींका वह उपभोग करता है।*

मृत्युसे बारह दिन बीतनेके पश्चात् यमपुरीकी ओर खींचकर ले जाया जानेवाला जीव अपने सामने यमराजके नगरको देखता है, जो बड़ा ही भयानक है। उस नगरमें पहुँचनेपर उसे मृत्यु, काल और अन्तक आदिके बीचमें बैठे हुए यमराजका दर्शन होता है, जो कज्जलराशिके समान काले हैं और अत्यन्त क्रोधसे लाल-लाल आँखें किये रहते हैं। दाढ़ोंके कारण उनका मुख बड़ा विकराल दिखलायी पड़ता है। टेढ़ी भौंहोंसे युक्त उनकी आकृति बड़ी भयङ्कर है। वे कुरूप, भीषण और टेढ़े-मेढ़े सैकड़ों रोगोंसे घिरे रहते हैं। उनकी भुजाएँ विशाल हैं। उनके एक हाथमें यमदण्ड और दूसरेमें पाश है। देखनेमें वे बड़े

*तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह। यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते॥
तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत्। तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति सबान्धवाः॥
भूमौ स्वपद्भिर्नात्यन्तं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः। दानं ददद्भिश्च तथा जन्तुराप्याय्यते मृतः॥
नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति। उपभुङ्क्ते तथा दत्तं तोयपिण्डादिकं भुवि॥
(अ० १०। ७२—७५)

भयानक प्रतीत होते हैं। पापी जीव उन्हींकी बतायी हुई शुभाशुभ गतिको प्राप्त होता है। झूठी गवाही देने और झूठ बोलनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें जाता है। अब मैं रौरवका स्वरूप बतलाता हूँ, आप ध्यान देकर उसे सुनें। रौरव नरककी लंबाई-चौड़ाई दो हजार योजनकी है। वह एक गड्ढेके रूपमें है, जिसकी गहराई घुटनोंतककी है। वह नरक अत्यन्त दुस्तर है। उसमें भूमिके बराबरतक अङ्गारराशि बिछी रहती है। उसके भीतरकी भूमि दहकते हुए अङ्गारोंसे बहुत तपी होती है। सारा नरक तीव्रवेगसे प्रज्वलित होता रहता है। उसीके भीतर यमराजके दूत पापी मनुष्यको डाल देते हैं। वह धधकती हुई आगमें जब जलने लगता है तो इधर-उधर दौड़ता है, किन्तु पग-पगपर उसका पैर जल-भुनकर राख होता रहता है। वह दिन-रातमें कभी एक बार पैर

उठाने और रखनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार सहस्रों योजन पार करनेपर वह उससे छुटकारा पाता है। फिर दूसरे पापोंकी शुद्धिके लिये उसे वैसे ही अन्य नरकोंमें जाना पड़ता है। इस प्रकार सब नरकोंमें यातना भोगकर निकलनेके बाद पापी जीव तिर्यग्योनिमें जन्म लेता है। क्रमशः कीड़े-मकोड़े, पतङ्ग, हिंसक जीव, मच्छर, हाथी, वृक्ष आदि, गौ, अश्व तथा अन्यान्य दुःखदायिनी पापयोनियोंमें जन्म धारण करनेके पश्चात् वह मनुष्ययोनिमें आता है। उसमें भी वह कुरूप, कुबड़ा, नाटा और चाण्डाल आदि होता है। फिर अवशिष्ट पाप और पुण्यसे युक्त हो, वह क्रमशः ऊँचे चढ़नेवाली योनियोंमें जन्म लेता—शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण, देवता तथा इन्द्र आदिके रूपमें उत्पन्न होता है।

इस प्रकार पाप करनेवाले जीव नरकोंमें नीचे गिरते हैं। अब पुण्यात्मा जीव जिस प्रकार यात्रा करते हैं उसको सुनिये; वे पुण्यात्मा मनुष्य धर्मराजकी बतायी हुई पुण्यमयी गतिको प्राप्त होते हैं। उनके साथ गन्धर्व गीत गाते चलते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती रहती हैं तथा वे भाँति-भाँतिके दिव्य आभूषणोंसे सुशोभित हो सुन्दर विमानोंपर बैठकर यात्रा करते हैं। वहाँसे पृथ्वीपर आनेपर वे राजाओं तथा अन्य महात्माओंके कुलमें जन्म लेते और सदाचारका पालन करते हैं। वहाँ उन्हें श्रेष्ठ भोग प्राप्त होते हैं। तदनन्तर शरीर त्यागनेके बाद वे पुनः स्वर्ग आदि ऊपरके लोकोंमें जाते हैं। ऊपरके लोकोंमें होनेवाली गतिको 'आरोहणी' कहते हैं। फिर वहाँसे पुण्यभोगके पश्चात् जो मृत्युलोकमें उतरना होता है, वह 'अवरोहणी' गति है। इस अवरोहणी गतिको प्राप्त होनेपर मनुष्य फिर पहलेकी ही भाँति आरोहणी गतिको प्राप्त होते हैं। ब्रह्मर्षे! जीवकी जिस प्रकार मृत्यु होती है, वह सब प्रसङ्ग मैंने आपसे कह सुनाया। अब जिस तरह जीव गर्भमें आता है, उस विषयका वर्णन सुनिये।

जीवके जन्मका वृत्तान्त तथा महारौरव आदि नरकोंका वर्णन

पुत्र कहता है—पिताजी! मनुष्य स्त्री-सहवासके समय गर्भमें जो वीर्य स्थापित करता है, वह स्त्रीके रजमें मिल जाता है। नरक अथवा स्वर्गसे निकलकर आया हुआ जीव उसी रज-वीर्यका आश्रय लेता है। जीवसे व्याप्त होनेपर वे दोनों बीज (स्त्री और पुरुष दोनोंके रज-वीर्य) स्थिर हो जाते हैं। फिर वे क्रमशः कलल, बुद्बुद एवं मांसपिण्डके रूपमें परिणत होते हैं। जैसे बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उस मांसपिण्डसे विभागपूर्वक पाँच अङ्ग प्रकट होते हैं। फिर उन अङ्गोंसे अँगुली, नेत्र, नासिका, मुख, कान आदि प्रकट होते हैं। इसी प्रकार अँगुली आदिसे नख आदिकी उत्पत्ति होती है। फिर त्वचामें रोम और मस्तकपर बाल उग आते हैं। जीवके शरीरकी वृद्धिके साथ ही स्त्रीका गर्भकोष भी बढ़ता है। जैसे नारियलका फल अपने आवरणकोषके साथ ही बढ़ता है, उसी प्रकार गर्भस्थ शिशु भी गर्भकोषके साथ ही वृद्धिको प्राप्त होता है। उसका मुख नीचेकी ओर होता है। दोनों हाथोंको घुटनों और पसलियोंके नीचे रखकर वह बढ़ता है। हाथके दोनों अँगूठे दोनों घुटनोंके ऊपर होते हैं और अँगुलियाँ उनके अग्रभागमें रहती हैं। उन घुटनोंके पृष्ठभागमें दोनों आँखें रहती हैं और नासिका उनके मध्यभागमें होती है। दोनों चूतड़ एड़ियोंपर टिके होते हैं। दोनों बाँहें और पिंडलियाँ बाहरी किनारेपर रहती हैं। इसी स्थितिमें स्त्रीके गर्भमें रहनेवाला जीव क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होता है। गर्भस्थ शिशुकी नाभिमें एक नाल बँधी होती है, जिसे आप्यायनी नाड़ी कहते हैं। इसी प्रकार वह नाल स्त्रीकी आँतके छिद्रमें भी जुड़ी होती है। स्त्री जो कुछ खाती-पीती है, वह उस नाड़ीके ही मार्गसे गर्भस्थ शिशुके भी उदरमें पहुँचता है। उसीसे शरीरका पोषण होते रहनेसे जीव क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होता है। उस गर्भमें उसे अनेक जन्मोंकी बातें याद आती हैं, जिससे व्यथित होकर वह इधर उधर फिरता और निर्वेद (खेद)-को प्राप्त होता है। अपने मनमें सोचता है, 'अब इस उदरसे छुटकारा पानेपर मैं फिर ऐसा कार्य नहीं करूँगा, बल्कि इस बातके लिये चेष्टा करूँगा कि मुझे फिर गर्भके भीतर न आना पड़े।' सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंका स्मरण करके वह इसी प्रकार चिन्ता करता है। दैवकी प्रेरणासे पूर्वजन्मोंमें उसने जो-जो क्लेश भोगे होते हैं, वे सब उसे याद आ जाते हैं। तत्पश्चात् कालक्रमसे वह अधोमुख जीव जब नवें या दसवें महीनेका होता है, तब उसका जन्म हो जाता है। गर्भसे निकलते समय वह प्राजापत्य वायुसे पीड़ित होता है और मन-ही-मन दुःखसे व्यथित हो रोते हुए गर्भसे बाहर आता है। उदरसे निकलनेपर असह्य पीड़ाके कारण उसे मूर्च्छा आ जाती है। फिर वायुके स्पर्शसे वह सचेत होता है। तदनन्तर भगवान् विष्णुकी मोहिनी माया उसको अपने वशमें कर लेती है। उससे मोहित हो जानेके कारण उसका पूर्वज्ञान नष्ट हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानभ्रष्ट हो जानेपर वह जीव पहले तो बाल्यावस्थाको प्राप्त होता है, फिर क्रमशः कौमारावस्था, यौवनावस्था और वृद्धावस्थामें प्रवेश करता है। इसके बाद मृत्युको प्राप्त होता और मृत्युके बाद फिर जन्म लेता है। इस प्रकार इस संसार-चक्रमें वह घटीयन्त्र (रहट) की भाँति घूमता रहता है। कभी स्वर्गमें जाता है, कभी नरकमें। कभी इस संसारमें पुनः जन्म लेकर अपने कर्मोंको भोगता है, कभी कर्मोंका भोग समाप्त होनेपर थोड़े ही समयमें मरकर परलोकमें चला जाता है। कभी स्वर्ग और नरकको प्रायः भोग चुकनेके बाद थोड़ेसे शुभाशुभ कर्म शेष रहनेपर इस संसारमें जन्म लेता है।

नारकी जीव घोर दुःखदायी नरकोंमें गिराये जाते हैं। स्वर्गमें भी ऐसा दुःख होता है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। स्वर्गमें पहुँचनेके बादसे ही मनमें इस बातकी चिन्ता बनी रहती है कि पुण्य-क्षय होनेपर हमें यहाँसे नीचे गिरना पड़ेगा। साथ ही नरकमें पड़े हुए जीवोंको देखकर महान् दुःख होता है कि कभी हमें भी ऐसी ही दुर्गति भोगनी पड़ेगी। इस बातसे दिन-रात अशान्ति बनी रहती है। गर्भवासमें तो भारी दुःख होता ही है, योनिसे जन्म लेते समय भी थोड़ा क्लेश नहीं होता। जन्म लेनेके पश्चात् बाल्यावस्था और वृद्धावस्थामें भी दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ता है। जवानीमें भी काम, क्रोध और ईर्ष्यामें बँधे रहनेके कारण अत्यन्त दुस्सह कष्ट उठाना पड़ता है। बुढ़ापेमें तो अधिकांश दुःख ही होता है। मरनेमें भी सबसे अधिक दुःख है। यमदूतोंद्वारा घसीटकर ले जाये जाने और नरकमें गिराये जानेपर जो महान् क्लेश होता है, उसकी चर्चा हो चुकी है। यहाँसे लौटनेपर फिर गर्भवास, जन्म, मृत्यु तथा नरकका क्रम चालू हो जाता है। इस तरह जीव प्राकृत बन्धनोंमें बँधकर घटीयन्त्रकी भाँति इस संसारचक्रमें घूमते रहते हैं।

पिताजी! मैंने आपसे रौरव नामक प्रथम नरकका वर्णन किया है। अब महारौरवका वर्णन सुनिये—इसका विस्तार सब ओरसे बारह हजार योजन है। वहाँकी भूमि ताँबेकी है, जिसके नीचे आग धधकती रहती है। उसकी आँचसे तपकर वह सारी ताम्रमयी भूमि चमकती हुई बिजलीके समान ज्योतिर्मयी दिखायी देती है। उसकी ओर देखना और स्पर्श आदि करना अत्यन्त भयङ्कर है। यमराजके दूत हाथ और पैर बाँधकर पापी जीवको उसके भीतर डाल देते हैं और वह लोटता हुआ आगे बढ़ता है। मार्गमें कौवे, बगुले, बिच्छू, मच्छर और गिद्ध उसे जल्दी-जल्दी नोच खाते हैं। उसमें जलते समय वह व्याकुल हो-होकर छटपटाता है और बारंबार 'अरे बाप! अरे मैया! हाय भैया! हा तात!' आदिकी रट लगाता हुआ करुण क्रन्दन करता है, किन्तु उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। इस प्रकार उसमें पड़े हुए

जीव, जिन्होंने दूषित बुद्धिके कारण पाप किये हैं, दस करोड़ वर्ष बीतनेपर उससे छुटकारा पाते हैं। इसके सिवा तम नामक एक दूसरा नरक है, जहाँ स्वभावसे ही कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है। उसका विस्तार भी महारौरवके ही बराबर है, किन्तु वह घोर अन्धकारसे आच्छादित रहता है। वहाँ पापी मनुष्य सर्दीसे कष्ट पाकर भयानक अन्धकारमें दौड़ते हैं और एक-दूसरेसे भिड़कर लिपटे रहते हैं। जाड़ेके कष्टसे काँपकर कटकटाते हुए उनके दाँत टूट जाते हैं। भूख-प्यास भी वहाँ बड़े जोरकी लगती है। इसी प्रकार अन्यान्य उपद्रव भी होते रहते हैं। ओलोंके साथ बहनेवाली भयङ्कर वायु शरीरमें लगकर हड्डियोंको चूर्ण किये देती है और उनसे जो मज्जा तथा रक्त गिरता है, उसीको वे क्षुधातुर प्राणी खाते हैं। एक-दूसरेके शरीरसे सटकर वे परस्पर रक्त चाटा करते हैं। इस प्रकार

जबतक पापोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वहाँ भी मनुष्योंको अन्धकारमें महान् कष्ट भोगना पड़ता है।

इससे भिन्न एक निकृन्तन नामक नरक है, जो सब नरकोंमें प्रधान है। उसमें कुम्हारकी चाकके समान बहुत से चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं। यमराजके दूत पापी जीवोंको उन चक्रोंपर चढ़ा देते और अपनी अँगुलियोंमें कालसूत्र लेकर उसीके द्वारा उनके पैरसे लेकर मस्तकतक प्रत्येक अङ्ग काटा करते हैं। फिर भी उन पापियोंके प्राण नहीं निकलते। उनके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं, किन्तु फिर वे जुड़कर एक हो जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव हजारों वर्षोंतक वहाँ काटे जाते हैं। यह यातना उन्हें तबतक दी जाती है, जबतक कि उनके सारे पापोंका नाश नहीं हो जाता। अब अप्रतिष्ठ नामक नरकका वर्णन सुनिये, जिसमें पड़े हुए जीवोंको असह्य दुःखका अनुभव करना पड़ता है। वहाँ भी वे ही कुलालचक्र होते हैं; साथ ही दूसरी ओर घटीयन्त्र भी बने होते हैं, जो पापी मनुष्योंको दुःख पहुँचानेके लिये बनाये गये हैं। वहाँ कुछ मनुष्य उन चक्रोंपर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं। हजारों वर्षोंतक उन्हें बीचमें विश्राम नहीं मिलता। इसी प्रकार दूसरे पापी घटीयन्त्रोंमें बाँध दिये जाते हैं, ठीक उसी तरह, जैसे रहटमें छोटे-छोटे घड़े बँधे होते हैं। वहाँ

बँधे हुए मनुष्य उन यन्त्रोंके साथमें जब घूमने लगते हैं, तो बारंबार रक्त वमन करते हैं। उनके मुखसे लार गिरती है और नेत्रोंसे अश्रु झरते रहते हैं। उस समय उन्हें इतना दुःख होता है, जो जीवमात्रके लिये असह्य है।

अब असिपत्रवन नामक अन्य नरकका वर्णन सुनिये—जहाँ एक हजार योजनतककी भूमि प्रज्वलित अग्निसे आच्छादित रहती है तथा ऊपरसे सूर्यकी अत्यन्त भयङ्कर एवं प्रचण्ड किरणें ताप देती हैं, जिनसे उस नरकमें निवास करनेवाले जीव सदा सन्तप्त होते रहते हैं। उसके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर वन है, जिसके पत्ते चिकने जान पड़ते हैं; किन्तु वे सभी पत्ते तलवारकी तीखी धारके समान हैं। उस वनमें बड़े बलवान् कुत्ते भूँकते रहते हैं, जो दस हजारकी संख्यामें सुशोभित होते हैं। उनके मुख और दाढ़ें बड़ी-बड़ी होती हैं। वे व्याघ्रोंके समान भयानक प्रतीत होते हैं। वहाँकी भूमिपर जो आग बिछी होती है, उससे जब दोनों पैर जलने लगते हैं तब वहाँ गये हुए पापी जीव 'हाय माता! हाय पिता!' आदि कहते हुए अत्यन्त दुःखित होकर कराहने लगते हैं। उस समय तीव्र पिपासाके कारण उन्हें बड़ी पीड़ा होती है, फिर अपने सामने शीतल छायासे युक्त असिपत्रवनको देखकर वे प्राणी विश्रामकी इच्छासे वहाँ जाते हैं। उनके वहाँ पहुँचनेपर बड़े जोरकी हवा चलती है, जिससे उनके ऊपर तलवारके समान तीखे पत्ते गिरने लगते हैं। उनसे आहत होकर वे पृथ्वीपर जलते हुए अँगारोंके ढेरमें गिर पड़ते हैं। वह आग अपनी लपटोंसे सर्वत्र व्याप्त हो सम्पूर्ण भूतलको चाटती हुई-सी जान पड़ती है। इसी समय अत्यन्त भयानक कुत्ते वहाँ तुरंत ही दौड़ते हुए आते हैं और रोते हुए पापियोंके सब अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। पिताजी! इस प्रकार मैंने आपसे यह असिपत्रवनका वर्णन किया है।

अब इससे भी अत्यन्त भयङ्कर तप्तकुम्भ नामक जो नरक है, उसका हाल सुनिये—वहाँ चारों ओर आगकी लपटोंसे घिरे हुए बहुत-से लोहेके घड़े मौजूद हैं, जो खूब तपे होते हैं। उनमेंसे किन्हींमें तो प्रज्वलित अग्निकी आँचसे

खौलता हुआ तेल भरा रहता है और किन्हींमें तपाये हुए लोहेका चूर्ण होता है। यमराजके दूत पापी मनुष्योंको उनका मुँह नीचे करके उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ पड़ते ही उनके शरीर टूट-फूट जाते हैं। शरीरकी मज्जाका भाग गलकर पानी हो जाता है। कपाल और नेत्रोंकी हड्डियाँ चटककर फूटने लगती हैं। भयानक गृध्र उनके अङ्गोंको नोच नोचकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उन टुकड़ोंको उन्हीं घड़ोंमें डाल देते हैं। वहाँ वे सभी टुकड़े सीझकर तेलमें मिल जाते हैं। मस्तक, शरीर, स्नायु, मांस, त्वचा और हड्डियाँ—सभी गल जाती हैं। तदनन्तर यमराजके दूत करछुलसे उलट-पुलटकर खौलते हुए तेलमें उन पापियोंको अच्छी तरह मथते हैं। पिताजी! इस प्रकार यह तप्तकुम्भ नामक नरककी बात मैंने आपको विस्तारपूर्वक बतलायी है।

जनक-यमदूत-संवाद, भिन्न-भिन्न पापोंसे विभिन्न नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन

पुत्र (सुमति) कहता है—पिताजी! इससे पहले सातवें जन्ममें मैं एक वैश्यके कुलमें उत्पन्न हुआ था। उस समय पौंसलेपर पानी पीनेको जाती हुई गौओंको मैंने वहाँ जानेसे रोक दिया था। उस पापकर्मके फलसे मुझे अत्यन्त भयङ्कर नरकमें जाना पड़ा, जो आगकी लपटोंके कारण घोर दुःखदायी प्रतीत होता था। उसमें लोहेकी-सी चोंचवाले पक्षी भरे पड़े थे। वहाँ पापियोंके शरीरको कोल्हूमें पेरनेके कारण जो रक्तकी धारा बहती थी, उससे कीचड़ जम गयी थी और काटे जानेवाले दुष्कर्मियोंके नरकमें पड़नेसे सब ओर घोर हाहाकार मचा रहता था। उस नरकमें पड़े मुझे सौ वर्षसे कुछ अधिक समय बीत गया। मैं महान् ताप और पीड़ासे सन्तप्त रहता था। प्यास और जलन बराबर बनी रहती थी। तदनन्तर एक दिन सहसा सुख देनेवाली ठंडी हवा चलने लगी। उस समय मैं तप्तवालुका और तप्तकुम्भ नामक नरकोंके बीच था। उस शीतल वायुके सम्पर्कसे उन नरकोंमें पड़े हुए सभी जीवोंकी यातना दूर हो गयी। मुझे भी उतना ही आनन्द हुआ, जितना स्वर्गमें रहनेवालोंको वहाँ प्राप्त होता है। 'यह क्या बात हो गयी?' यों सोचते हुए हम सभी जीवोंने आनन्दकी अधिकताके कारण एकटक नेत्रोंसे जब चारों ओर देखा, तब हमें बड़े ही उत्तम एक नररत्न दिखायी दिये। उनके साथ बिजलीके समान कान्तिमान् एक भयङ्कर यमदूत था, जो आगे होकर रास्ता दिखा रहा था और कहता था, 'महाराज! इधरसे आइये' सैकड़ों यातनाओंसे व्याप्त नरकको देखकर उन पुरुषरत्नको बड़ी दया आयी। उन्होंने यमदूतसे कहा।

आगन्तुक पुरुष बोले—यमदूत! बताओ तो सही, मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया है, जिसके कारण अनेक प्रकारकी यातनाओंसे पूर्ण इस

भयङ्कर नरकमें मुझे आना पड़ा है? मेरा जन्म जनकवंशमें हुआ था! मैं विदेह देशमें विपश्चित् नामसे विख्यात राजा था और प्रजाजनोंका भलीभाँति पालन करता था। मैंने बहुत-से यज्ञ किये। धर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन किया। कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखायी तथा अतिथिको कभी निराश नहीं लौटने दिया। पितरों, देवताओं, ऋषियों और भृत्योंको उनका भाग दिये बिना कभी मैंने अन्न ग्रहण नहीं किया। परायी स्त्री और पराये धन आदिकी अभिलाषा मेरे मनमें कभी नहीं हुई। जैसे गौएँ पानी पीनेकी इच्छासे स्वयं ही पौंसलेपर चली जाती हैं, उसी प्रकार पर्वके समय पितर और पुण्यतिथि आनेपर देवता स्वयं ही अपना भाग लेनेको मनुष्यके पास आते हैं। जिस गृहस्थके घरसे वे लंबी साँस लेकर निराश लौट जाते हैं, उसके इष्ट और पूर्त—दोनों प्रकारके धर्म नष्ट हो जाते हैं। पितरोंके दुःखपूर्ण उच्छ्वाससे सात जन्मोंका पुण्य नष्ट होता है और देवताओंका निःश्वास तीन जन्मोंका पुण्य क्षीण कर देता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है; इसलिये मैं

देवकर्म और पितृकर्मके लिये सदा ही सावधान रहता था। ऐसी दशामें मुझे इस अत्यन्त दारुण नरकमें कैसे आना पड़ा?

उन महात्माके इस प्रकार पूछनेपर यमराजका दूत देखनेमें भयङ्कर होनेपर भी हमलोगोंके सुनते-सुनते विनययुक्त वाणीमें बोला।

यमदूतने कहा—महाराज! आप जैसा कहते हैं, वह सब ठीक है। उसमें तनिक भी सन्देहके लिये स्थान नहीं है। किन्तु आपके द्वारा एक छोटा-सा पाप भी बन गया है। मैं उसे याद दिलाता हूँ। विदर्भराजकुमारी पीवरी, जो आपकी पत्नी थी, एक समय ऋतुमती हुई थी; किन्तु उस अवसरपर केकयराजकुमारी सुशोभनामें आसक्त होनेके कारण आपने उसके ऋतुकालको सफल नहीं बनाया। वह आपके समागमसुखसे वञ्चित रह गयी। ऋतुकालका उल्लङ्घन करनेके कारण ही आपको ऐसे भयङ्कर नरकतक आना पड़ा है। जो धर्मात्मा पुरुष काममें आसक्त होकर स्त्रीके ऋतुकालका उल्लङ्घन करता है, वह पितरोंका ऋणी होनेसे पापको प्राप्त हो नरकमें पड़ता है। राजन्! इतना ही आपका पाप है। इसके अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है। इसलिये आइये, अब पुण्यलोकोंका उपभोग करनेके लिये चलिये।

राजा बोले—देवदूत! तुम जहाँ मुझे ले चलोगे, वहाँ चलूँगा; किन्तु इस समय कुछ पूछ रहा हूँ, उसका तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना चाहिये। ये वज्रके समान चोंचवाले कौए, जो इन पुरुषोंकी आँखें निकाल लेते हैं और फिर उन्हें नये नेत्र प्राप्त हो जाते हैं, इन लोगोंने कौन-सा निन्दित कर्म किया है? इस बातको बताओ। मैं देखता हूँ, कौए इनकी जीभ उखाड़ लेते हैं, किन्तु फिर नयी जीभ उत्पन्न हो जाती है। इनके सिवा ये दूसरे लोग क्यों आरेसे चीरे जाते हैं और अत्यन्त दुःख भोगते हैं? कुछ लोग तपायी हुई बालुकामें भूने जाते हैं और कुछ लोग खौलते

हुए तेलमें पड़कर पक रहे हैं। लोहेके समान चोंचवाले पक्षी जिन्हें नोच-नोचकर खींच रहे हैं, वे कैसे लोग हैं? ये बेचारे शरीरकी नस-नाड़ियोंके कटनेसे पीड़ित हो बड़े जोर-जोरसे चीखते और चिल्लाते हैं। लोहेकी चोंचकी आघातसे इनके सारे अङ्गोंमें घाव हो गया है, जिससे इन्हें बड़ा कष्ट होता है। इन्होंने ऐसा कौन-सा अनिष्ट किया है, जिसके कारण ये रात-दिन सताये जा रहे हैं? ये तथा और भी जो पापियोंकी यातनाएँ देखी जाती हैं, वे किन कर्मोंके परिणाम हैं? ये सब बातें मुझे पूर्णरूपसे बतलाओ।

यमदूतने कहा—राजन्! मनुष्यको पुण्य और पाप बारी-बारीसे भोगने पड़ते हैं। भोगनेसे ही पाप अथवा पुण्यका क्षय होता है। लाखों जन्मोंके सञ्चित पुण्य और पाप मनुष्योंके लिये सुख-दुःखका अंकुर उत्पन्न करते हैं। जैसे बीज जलकी इच्छा रखते हैं, उसी प्रकार पुण्य और पाप देश-काल, अन्यान्य कर्म और कर्ताकी अपेक्षा करते हैं। जैसे राह चलते समय काँटेपर पैर पड़ जानेसे उसके चुभनेपर थोड़ा दुःख होता है, उसी प्रकार किसी भी देश-कालमें किया हुआ थोड़ा पाप थोड़े दुःखका कारण होता है; किन्तु वही पाप जब बहुत अधिक मात्रामें हो जाता है तब पैरमें शूल अथवा लोहेकी कील गड़नेके समान अधिक दुःख प्रदान करता है—सिरदर्द आदि दुस्सह रोगोंका कारण बनता है। जैसे अपथ्य भोजन और सर्दी-गर्मीका सेवन श्रम और ताप आदिका जनक होता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पाप भी फलकी प्राप्ति करानेमें एक-दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। ऐसे ही बड़े-बड़े पाप दीर्घकालतक रहनेवाले रोग और विकारोंके उत्पादक होते हैं। उन्हींसे शस्त्र और अग्निका भय प्राप्त होता है। वे ही असह्य पीड़ा और बन्धन आदि फल प्रदान करते हैं। इस प्रकार जीव अनेक जन्मोंके सञ्चित पुण्य और पापोंके फलस्वरूप सुख और दुःखोंको भोगता हुआ इस लोकमें स्थित रहता है।

राजन्! जैसे नरकोंमें पड़े हुए जीव अपने घोर महापापका फल भोगते हैं, उसी प्रकार ये स्वर्गलोकमें देवताओंके साथ रहकर गन्धर्व, सिद्ध और अप्सराओंके संगीत आदिका सुख उठाते हुए पुण्योंका उपभोग करते हैं। देवता, मनुष्य और पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेकर जीव अपने पुण्य-पापजनित सुख-दुःखरूप शुभाशुभ फलोंको भोगता है। राजन्! आप जो यह पूछ रहे हैं कि किस-किस पापसे पापियोंको कौन-कौन-सी यातनाएँ मिलती हैं, वह सब मैं आपको बतला रहा हूँ। जो नीच मनुष्य कामना और लोभके वशीभूत हो दूषित दृष्टि एवं कलुषित चित्तसे परायी स्त्री और पराये धनपर आँखें गड़ाते हैं, उनकी दोनों आँखोंको ये वज्रतुल्य चोंचवाले पक्षी

निकाल लेते हैं और पुनः-पुनः इनके नये नेत्र उत्पन्न हो जाते हैं। इन पापी मनुष्योंने जितने निमेषतक पापपूर्ण दृष्टिपात किया है, उतने ही हजार वर्षोंतक ये नेत्रकी पीड़ा भोगते हैं। जिन लोगोंने असत्-शास्त्रका उपदेश किया है तथा

किसीको बुरी सलाह दी है, जिन्होंने शास्त्रका उलटा अर्थ लगाया है, मुँहसे झूठी बातें निकाली हैं तथा वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुकी निन्दा की है, इन्हींकी जिह्वाको ये वज्रतुल्य चोंचवाले भयङ्कर पक्षी उखाड़ते हैं और वह जिह्वा नयी-नयी उत्पन्न होती रहती है। जितने निमेषतक उनके द्वारा जिह्वाजनित पाप हुआ होता है, उतने वर्षोंतक उन्हें यह कष्ट भोगना पड़ता है। जो नराधम दो मित्रोंमें फूट डालते हैं, पिता-पुत्रमें, स्वजनोंमें, यजमान और पुरोहितमें, माता और पुत्रमें, सङ्गी-साथियोंमें तथा पति और पत्नीमें वैर डालते हैं, वे ही ये आरेसे चीरे जा रहे हैं। आप इनकी दुर्गति देखिये। जो दूसरोंको ताप देते, उनकी प्रसन्नतामें बाधा पहुँचाते, पंखे, हवादार स्थान, चन्दन और खसकी टट्टी आदिका अपहरण करते हैं तथा निर्दोष व्यक्तियोंको भी प्राणान्तक कष्ट पहुँचाते हैं, वे ही ये अधम पापी हैं जो तपायी हुई बालूमें पड़कर कष्ट भोगते हैं। जो ब्राह्मण किसी देवकार्य या पितृकार्यमें दूसरेके द्वारा निमन्त्रित होकर भी दूसरे किसीके यहाँ श्राद्ध-भोजन कर लेता है, उसके यहाँ आनेपर ये पक्षी दो टुकड़े कर डालते हैं। जो अपनी अनुचित बातोंसे साधु पुरुषोंके मर्मपर आघात पहुँचाता है, उसको ये पक्षी अत्यन्त पीड़ा देते हैं। इन्हें ऐसा करनेसे कोई रोक नहीं सकता। जो झूठी बातें कहकर और विपरीत धारणा बनाकर किसीकी चुगली खाते हैं, उनकी जिह्वाके इस प्रकार तेज किये हुए छुरोंसे दो टुकड़े कर दिये जाते हैं।

जिन्होंने उद्दण्डतावश माता, पिता तथा गुरुजनोंका अनादर किया है, वे ही ये पीब, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गढ़ोंमें नीचे मुख करके डुबाये जा रहे हैं। जो लोग देवता, अतिथि, अन्यान्य प्राणी, भृत्यवर्ग, अभ्यागत, पितर, अग्नि तथा पक्षियोंको अन्नका भाग दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते

हैं, वे ही दुष्ट यहाँ पीब और गोंद चाटकर रहते हैं। उनका शरीर तो पहाड़के समान विशाल होता है, किन्तु मुख सूईकी नोकके बराबर रहता है। देखिये, यही वे लोग हैं। जो लोग ब्राह्मण अथवा किसी अन्य वर्णके मनुष्यको एक पङ्क्तिमें बिठाकर भोजनमें भेद करते हैं, उन्हें यहाँ विष्ठा खाकर रहना पड़ता है। जो लोग एक समुदायमें साथ साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्यको निर्धन जानकर छोड़ देते और अकेले अपना अन्न भोजन करते हैं, वे ही यहाँ थूक और खँखार भोजन करते हैं। राजन्! जिन लोगोंने जूठे हाथोंसे गौ, ब्राह्मण और अग्नियोंका स्पर्श किया है, उन्हींमेंसे ये लोग यहाँ मौजूद हैं, जो जलते हुए लोहेके खंभोंपर हाथ रखकर उन्हें चाट रहे हैं। जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक जूठे मुँह होकर भी सूर्य-चन्द्रमा और तारोंपर दृष्टिपात किया है, उनकी आँखोंमें आग रखकर यमराजके दूत उसे धौंकते हैं। गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, ज्येष्ठ भ्राता, पिता, बहिन, कुटुम्बकी स्त्री, गुरु तथा बड़े-बूढ़ोंका जो पैरोंसे स्पर्श करते हैं, उनके दोनों पैर यहाँ आगमें तपायी

हुई लोहेकी बेड़ियोंसे जकड़ दिये जाते हैं और उन्हें अँगारोंके ढेरमें खड़ा कर दिया जाता है। उसमें उनके पैरसे लेकर घुटनेतकका भाग जलता

रहता है। जो नराधम अपने कानोंसे गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुनते हैं और उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, उन पापियोंके कानोंमें ये यमराजके दूत आगमें तपायी हुई लोहेकी कीलें ठोंक देते हैं। विलाप करनेपर भी उन्हें छुटकारा नहीं मिलता। जो लोग क्रोध और लोभके वशमें होकर पौंसले, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर तथा देवालयके सभाभवन तुड़वाकर नष्ट करा देते हैं, उनके यहाँ आनेपर ये अत्यन्त कठोर स्वभाववाले यमदूत इन तीखे शस्त्रोंसे शरीरकी खाल उधेड़ लेते हैं। उनके चीखने चिल्लानेपर भी ये दया नहीं करते। जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण तथा सूर्यकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनकी आँतोंको कौए गुदामार्गसे खींचते हैं। जो किसी एकको कन्या देकर फिर दूसरेके साथ उसका विवाह कर देता है, उसके शरीरमें बहुत से घाव करके उसे खारे पानीकी नदीमें बहा दिया जाता है। जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा सङ्कटकालमें अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धुवर्गको अकिञ्चन जानकर भी त्याग देता और केवल अपना पेट पालनेमें लग जाता है, वह भी जब इस लोकमें आता है तो यमराजके दूत भूख लगनेपर उसके मुखमें उसके ही शरीरका मांस नोचकर डाल देते हैं और वही उसे खाना पड़ता है। जो अपनी शरणमें आये हुए तथा अपनी ही दी हुई वृत्तिसे जीविका चलानेवाले मनुष्योंको लोभवश त्याग देता है, वह भी यमदूतोंद्वारा इसी प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेके कारण यन्त्रणा भोगता है।

जो मनुष्य अपने जीवनभरके किये हुए पुण्यको धनके लोभसे बेच डालते हैं, वे इन्हीं पापियोंकी तरह चक्कियोंमें पीसे जाते हैं। किसीकी धरोहर हड़प लेनेवाले लोगोंके सब अङ्ग रस्सियोंसे बाँध दिये जाते हैं और उन्हें दिन-रात कीड़े, बिच्छू तथा सर्प काटते-खाते रहते हैं। जो पापी दिनमें मैथुन करते और परायी स्त्रीको भोगते हैं, वे यहाँ भूखसे दुर्बल रहते हैं, प्यासकी पीड़ासे उनकी जीभ और तालू गिर जाते हैं और वे वेदनासे व्याकुल हो जाते हैं। वह देखिये, सामने लोहेके बड़े-बड़े काँटोंसे भरा हुआ सेमरका वृक्ष खड़ा है। इसपर चढ़ाये हुए पापियोंके सब अङ्ग विदीर्ण हो गये हैं और अधिक मात्रामें गिरते हुए खूनसे ये लथपथ हो रहे हैं। नरश्रेष्ठ! इधर दृष्टि डालिये, ये परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले लोग हैं। इन्हें यमराजके दूत घरियामें रखकर गला रहे हैं। जो उद्दण्ड मनुष्य गुरुको नीचे बिठाकर और स्वयं ऊँचे आसनपर बैठकर अध्ययन करता अथवा शिल्पकलाकी शिक्षा ग्रहण करता है, वह इसी प्रकार अपने मस्तकपर शिलाका भारी भार ढोता हुआ क्लेश पाता है। यमलोकके मार्गमें वह अत्यन्त पीड़ित एवं भूखसे दुर्बल रहता है और उसका मस्तक दिन-रात बोझ ढोनेकी पीड़ासे व्यथित होता रहता है। जिन्होंने

जलमें मूत्र, थूक और विष्ठाका त्याग किया है, वे ही लोग इस समय थूक, विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए दुर्गन्धयुक्त नरकमें पड़े हैं। ये लोग जो भूखसे व्याकुल होनेपर एक-दूसरेका मांस खा रहे हैं, इन्होंने पूर्वकालमें अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही भोजन किया है। जिन लोगोंने अग्निहोत्री होकर भी वेदों और वैदिक अग्नियोंका परित्याग किया है, वे ही ये पर्वतोंकी चोटीसे बारंबार नीचे गिराये जाते हैं।* जो लोग दूसरी बार ब्याही जानेवाली स्त्रीके पति होकर जीवन बिता चुके हैं, वे ही इस समय यहाँ कीड़े हुए हैं, जिन्हें चींटियाँ खा रही हैं। पतितोंका दिया हुआ दान लेने, उनका यज्ञ कराने तथा प्रतिदिन उनकी सेवामें रहनेसे मनुष्य पत्थरके भीतर कीड़ा होकर सदा

निवास करता है। जो कुटुम्बके लोगों, मित्रों तथा अतिथिके देखते-देखते अकेले ही मिठाई उड़ाता है, उसे यहाँ जलते हुए अँगारे चबाने पड़ते हैं। राजन्! इस पापीने लोगोंकी पीठका मांस खाया है—पीठ-पीछे सबकी बुराई की है, इसीलिये भयङ्कर भेड़िये प्रतिदिन इसका मांस खा रहे हैं।†

इस नीचने उपकार करनेवाले लोगोंके साथ कृतघ्नता की है; अतएव यह भूखसे व्याकुल तथा अंधा, बहरा और गूँगा होकर भटक रहा है। इस खोटी बुद्धिवाले कृतघ्नने अपने मित्रोंकी बुराई की है, इसीलिये यह तप्तकुम्भ नरकमें गिर रहा है। इसके बाद चक्कियोंमें पीसा जायगा, फिर तपायी हुई बालूमें भूना जायगा। उसके बाद कोल्हूमें पेरा जायगा। तत्पश्चात् असिपत्रवनमें इसे यातना दी जायगी। फिर आरेसे यह चीरा जायगा। तदनन्तर कालसूत्रसे काटा जायगा। इसके बाद और भी बहुत-सी यातनाएँ इसे भोगनी पड़ेंगी। इसपर भी मित्रोंके साथ विश्वासघात

---

* अपविद्धास्तु वै वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः। त इमे शैलशृङ्गाग्रात् पात्यन्तेऽधः पुनः पुनः॥ (अ० १४।८१)

† वृकैर्भयङ्करैः पृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते। पृष्ठमांसं नृणामनेन लोकस्य भक्षितम्॥ (अ० १४।८५)

करनेके पापसे इसका उद्धार कैसे होगा—यह मैं भी नहीं जानता। जो ब्राह्मण एक-दूसरेसे मिलकर सदा श्राद्धान्न भोजन करनेमें ही आसक्त रहते हैं, उन्हें दुष्ट सर्पोंके सर्वाङ्गसे निकला हुआ फेन पीना पड़ता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाले, ब्रह्महत्यारे, शराबी तथा गुरुपत्नीगामी—ये चारों प्रकारके महापापी नीचे और ऊपर धधकती हुई आगके बीचमें झोंककर सब ओरसे जलाये जाते हैं। इस अवस्थामें उन्हें कई हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होते तथा कोढ़ एवं यक्ष्मा आदि रोगोंसे युक्त रहते हैं। वे मरनेके बाद फिर नरकमें जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरकसे लौटनेपर रोगयुक्त जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार कल्पके अन्ततक उनके आवागमनका यह चक्र चलता रहता है। गौकी हत्या करनेवाला मनुष्य तीन जन्मोंतक नीच-से-नीच नरकोंमें पड़ता है। अन्य सभी उपपातकोंका फल भी ऐसा ही निश्चय किया गया है। नरकसे निकले हुए पापी जीव जिन-जिन पातकोंके कारण जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेते हैं, वह सब मैं बतला रहा हूँ; आप ध्यान देकर सुनें।

पापोंके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंकी प्राप्ति तथा विपश्चित्‌के पुण्यदानसे पापियोंका उद्धार

यमदूत कहता है—राजन्! पतितसे दान लेनेपर ब्राह्मण गदहेकी योनिमें जाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला द्विज नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है। अपने गुरुके साथ छल करनेपर उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है तथा गुरुकी पत्नी और उनके धनको मन-ही-मन लेनेकी इच्छा होनेपर भी उसे निस्सन्देह यही दण्ड मिलता है। माता-पिताका अपमान करनेवाला मनुष्य उनके प्रति कटु वचन कहनेसे मैनाकी योनिमें जन्म लेता है। भाईकी स्त्रीका अपमान करनेवाला कबूतर होता है और उसे पीड़ा देनेवाला मनुष्य कछुएकी योनिमें जन्म लेता है। जो पालिकका अन्न तो खाता है, किन्तु उसका अभीष्ट साधन नहीं करता, वह मोहाच्छन्न मनुष्य मरनेके बाद वानर होता है। धरोहर हड़पनेवाला मनुष्य नरकसे लौटनेपर कीड़ा होता है और दूसरोंका दोष देखनेवाला पुरुष नरकसे निकलकर राक्षस होता है। विश्वासघाती मनुष्यको मछलीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो मनुष्य अज्ञानवश धान, जौ, तिल, उड़द, कुलथी, सरसों, चना, मटर, कलमी धान, मूँग, गेहूँ तीसी तथा दूसरे-दूसरे अनाजोंकी चोरी करता है, वह नेवलेके समान बड़े मुँहका चूहा होता है। परायी स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे मनुष्य भयङ्कर भेड़िया होता है। उसके बाद क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला,

गिद्ध, साँप तथा कौएकी योनिमें जन्म लेता है।

जो खोटी बुद्धिवाला पापी मनुष्य अपने भाईकी स्त्रीके साथ बलात्कार करता है, वह नरकसे लौटनेपर कोयल होता है। जो पापी कामके अधीन होकर मित्र तथा राजाकी पत्नीके साथ सहवास करता है, वह सूअर होता है।

यज्ञ, दान और विवाहमें विघ्न डालनेवाला तथा कन्याका दुबारा दान करनेवाला पुरुष कीड़ा होता है। जो देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही अन्न भोजन करता है, वह नरकसे निकलनेपर कौआ होता है; जो पिताके समान पूजनीय बड़े भाईका अपमान करता है, वह नरकसे निकलनेपर क्रौञ्च पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। ब्राह्मणकी स्त्रीके साथ सहवास करनेवाला शूद्र भी कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। यदि उसने ब्राह्मणीके गर्भसे सन्तान उत्पन्न कर दिया हो तो वह काठके भीतर रहनेवाला कीड़ा होता है। उसके बाद क्रमशः सूअर, कृमि, विष्ठाका कीड़ा और चाण्डाल होता है। जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ एवं कृतघ्न होता है, वह नरकसे निकलनेपर कृमि, कीट, पतङ्ग, बिच्छू, मछली, कौआ, कछुआ और चाण्डाल होता है। शस्त्रहीन पुरुषकी हत्या करनेवाला मनुष्य गदहा होता है। स्त्री और बालकोंकी हत्या करनेवालेका कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। भोजनकी चोरी करनेसे मक्खीकी योनिमें जाना पड़ता है। उसमें भी जो

भोजनके विशेष भेद हैं, उन्हें चुरानेके पृथक्-पृथक् फल सुनिये। साधारण अन्न चुरानेवाला मनुष्य नरकसे छूटनेपर बिल्लीकी योनिमें जन्म लेता है। तिलचूर्णमिश्रित अन्नका अपहरण करनेसे मनुष्यको चूहेकी योनिमें जाना पड़ता है। घी चुरानेवाला नेवला होता है। नमककी चोरी करनेपर जलकागकी और दही चुरानेपर कीड़ेकी योनिमें जन्म होता है। दूधकी चोरी करनेसे बगुलेकी योनि मिलती है। जो तेल चुराता है, वह तेल पीनेवाला कीड़ा होता है। मधु चुरानेवाला मनुष्य डाँस और पूआ चुरानेवाला चींटी होता है। हविष्यान्नकी चोरी करनेवाला बिसतुइया होता है।

लोहा चुरानेवाला पापात्मा कौआ होता है। काँसेका अपहरण करनेसे हारीत (हरियल) पक्षीकी

योनि मिलती है और चाँदीका बर्तन चुरानेसे कबूतर होना पड़ता है। सुवर्णका पात्र चुरानेवाला मनुष्य कीड़ेकी योनिमें जन्म लेता है। रेशमी वस्त्रकी चोरी करनेपर चकवेकी योनि मिलती है तथा रेशमका कीड़ा भी होना पड़ता है। हरिणके रोएँसे बना हुआ वस्त्र, महीन वस्त्र, भेड़ और बकरीके रोएँसे बना हुआ वस्त्र तथा पाटंबर चुरानेपर तोतेकी योनि मिलती है। रूईका बना हुआ वस्त्र चुरानेसे क्रौञ्च और अग्निके अपहरणसे बगुला अथवा गदहा होना पड़ता है। अङ्गराग और पत्तियोंका साग चुरानेवाला मोर होता है। लाल वस्त्रकी चोरी करनेवालेको चकवेकी योनि मिलती है। उत्तम सुगन्धयुक्त पदार्थोंकी चोरी करनेपर छछूँदर और वस्त्रका अपहरण करनेपर खरगोशकी योनिमें जाना पड़ता है। फल चुरानेवाला नपुंसक और काष्ठकी चोरी करनेवाला घुन होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्र और वाहनका अपहरण करनेवाला पङ्गु होता है। साग चुरानेवाला हारीत और पानीकी चोरी करनेवाला पपीहा होता है। जो भूमिका अपहरण करता है, वह अत्यन्त भयङ्कर रौरव आदि नरकोंमें जाकर वहाँसे लौटनेके बाद क्रमशः तृण, झाड़ी, लता, बेल और बाँसका वृक्ष होता है। फिर थोड़ा-सा पाप शेष रहनेपर वह मनुष्यकी योनिमें आता है। जो बैलके अण्डकोषका छेदन करता है, वह नपुंसक होता है और इसी रूपमें इक्कीस जन्म बितानेके पश्चात् वह क्रमशः कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, जलचर जीव तथा मृग होता है। इसके बाद बैलका शरीर धारण करनेके बाद चाण्डाल और डोम आदि घृणित योनियोंमें जन्म लेता है। मनुष्य योनिमें वह पङ्गु, अंधा, बहरा, कोढ़ी, राजयक्ष्मासे पीड़ित तथा मुख, नेत्र एवं गुदाके रोगोंसे ग्रस्त रहता है। इतना ही नहीं, उसे मिरगीका भी रोग होता है तथा वह शूद्रकी योनिमें भी जन्म

लेता है। गाय और सोनेकी चोरी करनेवालोंकी दुर्गतिका भी यही क्रम है। गुरुको दक्षिणा न देकर उनकी विद्याका अपहरण करनेवाले छात्र भी इसी गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य किसी दूसरेकी स्त्रीको लाकर दूसरेको दे देता है, वह मूर्ख नरककी यातनाओंसे छूटनेपर नपुंसक होता है। जो मनुष्य अग्निको प्रज्वलित किये बिना ही उसमें हवन करता है, वह अजीर्णताके रोगसे पीड़ित एवं मन्दाग्निकी बीमारीसे युक्त होता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरोंके गुप्त भेदको खोलना, निष्ठुरता दिखाना, निर्दय होना, परायी स्त्रीका सेवन करना, दूसरेका धन हड़प लेना, अपवित्र रहना, देवताओंकी निन्दा करना, शठतापूर्वक मनुष्योंको ठगना, कंजूसी करना, मनुष्योंके प्राण लेना तथा और भी जितने निषिद्ध कर्म हैं, उनमें निरन्तर प्रवृत्त रहना—ये सब नरक भोगकर लौटे हुए मनुष्योंकी पहचान हैं, ऐसा जानना चाहिये। जीवोंपर दया करना, अच्छे वचन बोलना, परलोकके लिये पुण्यकर्म करना, सत्य बोलना, सम्पूर्ण भूतोंके लिये हितकारक वचन

कहना, वेद स्वतः प्रमाण हैं—ऐसी दृष्टि रखना, गुरु, देवता, ऋषि, सिद्ध और महात्माओंका सत्कार करना, साधु पुरुषोंके सङ्गमें रहना, अच्छे कर्मोंका अभ्यास करना, सबके प्रति मित्रभाव रखना तथा और भी जो उत्तम धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्य हैं, वे सब स्वर्गसे लौटे हुए पुण्यात्मा पुरुषोंके चिह्न हैं—ऐसा विद्वान् पुरुषोंको समझना चाहिये।*

राजन्! अपने अपने कर्मोंका फल भोगनेवाले पुण्यात्मा और पापियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली ये सब बातें मैंने आपको संक्षेपसे बतायी हैं। अच्छा, अब आप आइये; अन्यत्र चलें। इस समय यहाँ सब कुछ आपने देख लिया।

पुत्र कहता है—पिताजी! तदनन्तर राजा विपश्चित् यमदूतको आगे करके वहाँसे जानेको उद्यत हुए। यह देख यातनामें पड़े हुए सभी मनुष्योंने चिल्लाकर कहा—'महाराज! हमपर कृपा कीजिये। दो घड़ी और ठहर जाइये। आपके शरीरको छूकर बहनेवाली वायु हमारे चित्तको आनन्द प्रदान करती है और समस्त शरीरोंमें जो सन्ताप, वेदना और बाधाएँ हैं, उनका नाश किये देती है; अतः नरश्रेष्ठ महीपते! हमपर अवश्य कृपा कीजिये।' उनकी यह बात सुनकर राजाने यमदूतसे पूछा—'मेरे रहनेसे इन्हें आनन्द क्योंकर प्राप्त होता

है? मैंने मर्त्यलोकमें रहकर कौन-सा महान् पुण्यकर्म किया है, जिससे इन लोगोंपर आनन्ददायिनी वायुकी वृष्टि हो रही है? इस बातको बताओ।'†

---

* परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम्।
नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम्। परस्वहरणाशौचं देवतानां च कुत्सनम्॥
निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः। यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च संतता॥
उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु। दया भूतेषु सद्वादः परलोकप्रतिक्रिया॥
सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम्। गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः॥
सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुध्येत पण्डितः। अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च॥
स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम्॥
(अ० १५। ३२—३४ १/२)

† पुत्र उवाच
ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गन्तुमुद्यतः। ततश्च सर्वैरुत्क्रुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः॥
प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम्। त्वदङ्गसङ्गी पवनो मनो ह्लादयते हि नः॥
परितापं च गात्रेभ्यः पीडाबाधाश्च कृत्स्नशः। अपहन्ति नरव्याघ्र दयां कुरु महीपते॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यपुरुषं नृपः। पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति॥
किं मया कर्म तत् पुण्यं मर्त्यलोके महत् कृतम्। आह्लाददायिनी वृष्टिर्येनेयं तदुदीरय॥
(अ० १५। ४७—५१)

यमदूतने कहा—राजन्! आपका यह शरीर पितरों, देवताओं, अतिथियों और भृत्यजनोंसे बचे हुए अन्नके सेवनसे पुष्ट हुआ है तथा आपका मन भी इन्हींकी सेवामें संलग्न रहा है। इसीलिये आपके शरीरको छूकर बहनेवाली वायु आनन्ददायिनी जान पड़ती है और इसके लगनेसे इन पापियोंको नरककी यातना कष्ट नहीं पहुँचाती। आपने अश्वमेध आदि यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया है; अतः आपके दर्शनसे यमलोकके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि और कौए आदि पक्षी, जो पीड़न, छेदन और जलन आदि महान् दुःखके कारण हैं, कोमल हो गये हैं। आपके तेजसे इनका क्रूर स्वभाव दब गया है।

राजा बोले—भद्रमुख! मेरा तो ऐसा विचार है कि पीड़ित प्राणियोंको दुःखसे मुक्त करके उन्हें शान्ति प्रदान करनेसे जो सुख मिलता है, वह मनुष्योंको स्वर्गलोक अथवा ब्रह्मलोकमें भी नहीं प्राप्त होता। यदि मेरे समीप रहनेसे इन दुःखी जीवोंको नरकयातना कष्ट नहीं पहुँचाती तो मैं सूखे काठकी तरह अचल होकर यहीं रहूँगा।

यमदूतने कहा—राजन्! आइये, अब यहाँसे चलें। आप पापियोंकी इन यातनाओंको यहीं छोड़कर अपने पुण्यसे प्राप्त हुए दिव्य भोगोंका उपभोग कीजिये।

राजा बोले—जबतक ये लोग अत्यन्त दुःखी रहेंगे तबतक तो मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा; क्योंकि मेरे निकट रहनेसे इन नरकवासियोंको सुख मिलता है। जो शरणमें आनेकी इच्छा रखनेवाले आतुर एवं पीड़ित मनुष्यपर, भले ही वह शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, कृपा नहीं करता, उस पुरुषके जीवनको धिक्कार है। जिसका मन सङ्कटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करनेमें नहीं लगता, उसके यज्ञ, दान और तप इहलोक और परलोकमें भी कल्याणके साधन नहीं होते। जिसका हृदय बालक, वृद्ध तथा आतुर प्राणियोंके प्रति कठोरता धारण करता है, मैं उसे मनुष्य नहीं मानता; वह तो निरा राक्षस है। माना, इनके निकट रहनेसे अग्निजनित संतापका कष्ट सहना होगा, नरककी भयानक दुर्गन्धका भोग करना पड़ेगा, भूख-प्यासका महान् दुःख, जो मूर्च्छित कर देनेवाला है, भोगना पड़ेगा; तथापि इन दुःखियोंकी रक्षा करनेमें जो सुख है, उसे मैं स्वर्गीय सुखसे भी बढ़कर मानता हूँ। यदि अकेले मेरे दुःखी

होनेसे बहुत-से आर्त्त मनुष्योंको सुख प्राप्त होता है तो मुझे कौन-सा सुख नहीं मिला? इसलिये दूत! अब तुम शीघ्र लौट जाओ, मैं यहीं रहूँगा।*

---

* यमपुरुष उवाच

पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः। पुष्टिमभ्यागता यस्मात् तद्गतं च मनो यतः॥
ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः। पापकर्मकृतो राजन् यातना न प्रबाधते॥

यमदूतने कहा—महाराज! ये धर्मराज और इन्द्र आपको लेनेके लिये आये हैं। यहाँसे आपको अवश्य जाना है, अतः चले चलिये।

धर्मराज बोले—राजन्! तुमने मेरी भलीभाँति उपासना की है, अतः मैं तुम्हें स्वर्गलोकमें ले चलता हूँ। इस विमानपर चढ़कर चलो, विलम्ब न करो।

राजाने कहा—धर्मराज! यहाँ नरकमें हजारों मनुष्य कष्ट भोगते हैं और मुझे लक्ष्य करके आर्त्तभावसे त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं, इसलिये मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा। देवराज इन्द्र! और धर्म! यदि आप दोनों जानते हों कि मेरा पुण्य कितना है तो उसे बतानेकी कृपा करें।

धर्म बोले—महाराज! जिस प्रकार समुद्रके जलबिन्दु, आकाशके तारे, वर्षाकी धाराएँ, गङ्गाकी बालुकाके कण तथा जलकी बूँदें आदि असंख्य हैं, उसी प्रकार तुम्हारे पुण्यकी भी कोई नियत संख्या नहीं हो सकती। आज यहाँ इन नरकमें पड़े हुए जीवोंपर कृपा करनेसे तुम्हारा पुण्य लाखोंगुना बढ़ गया। नृपश्रेष्ठ! अपने इस पुण्यका फल भोगनेके लिये अब देवलोकमें चलो और ये पापी जीव भी नरकमें रहकर अपने कर्मोंका फल भोगें।

राजाने कहा—देवराज! यदि मेरे समीपमें आनेपर भी इन दुखी जीवोंको कोई ऊँचा पद नहीं प्राप्त हुआ तो मनुष्य मेरे सम्पर्कमें रहनेकी

अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टा विधिवद् यतः। ततस्त्वद्दर्शनादेषां यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः॥
पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्य हेतवः। मृदुत्वमागता राजन् तेजसाभिहतास्तव॥

राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत् सुखं प्राप्यते नरैः। यदार्त्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः॥
यदि मत्संनिधावेतान् यातना न प्रबाधते। ततो भद्रमुखात्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः॥

यमपुरुष उवाच

एहि राजन् प्रगच्छामो निजपुण्यसमर्जितान्। भुङ्क्ष्व भोगानपास्येह यातनाः पापकर्मणाम्॥

राजोवाच

तस्मान्न तावद् यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः। मत्संनिधानात् सुखिनो भवन्ति नरकौकसः॥
धिक् तस्य जीवनं पुंसः शरणार्थिनमातुरम्। यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम्॥
यज्ञदानतपांसीह परत्र च न भूतये। भवन्ति तस्य यस्यार्त्तपरित्राणे न मानसम्॥
नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु। वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः॥
एतेषां संनिकर्षात् तु यद्यग्निपरितापजम्। तथोग्रगन्धजं चापि दुःखं नरकसम्भवम्॥
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छाप्रदं महत्। एतेषां त्राणदानं तु मन्ये स्वर्गसुखात् परम्॥
प्राप्स्यन्त्यार्त्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि। किं नु प्राप्तं मया न स्यात् तस्मात् त्वं व्रज मा चिरम्॥

(अ० १५। ५२—६५)

अभिलाषा क्यों करेंगे? अतः मेरा जो कुछ भी पुण्य है, उसके द्वारा ये यातनामें पड़े हुए पापी जीव नरकसे छुटकारा पा जायँ।

इन्द्र बोले—राजन्! इस उदारताके कारण तुमने और भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया। देखो, ये पापी जीव भी नरकसे मुक्त हो गये।

पुत्र कहता है—पिताजी! तदनन्तर राजा विपश्चित्‌के ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी और स्वयं भगवान् विष्णु उन्हें विमानमें बिठाकर दिव्यधाममें ले गये।* उस समय मैं तथा और भी जितने पापी जीव थे, वे सब नरकयातनासे छूटकर अपने-अपने कर्मफलके अनुसार भिन्न भिन्न योनियोंमें चले गये। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने इन नरकोंका वर्णन किया; साथ ही पूर्वकालमें मैंने जैसा अनुभव किया था, उसके अनुसार जिस-जिस पापके कारण मनुष्य जिस-जिस योनिमें जाता है, वह सब भी बतला दिया।

दत्तात्रेयजीके जन्म-प्रसङ्गमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी तथा अनसूयाजीका चरित्र

पिता बोले—बेटा! तुमने अत्यन्त हेय संसारके व्यवस्थित स्वरूपका वर्णन किया, जो घटी-यन्त्रकी भाँति निरन्तर आवागमनशील और प्रवाहरूपसे अविनाशी है। इस प्रकार मैंने इसके स्वरूपको भलीभाँति समझ लिया है। ऐसी स्थितिमें अब मुझे क्या करना चाहिये? यह बताओ।

पुत्र (सुमति) ने कहा—पिताजी! यदि आप शङ्का छोड़कर मेरे वचनोंमें पूर्ण श्रद्धा रखते हैं तो मेरी राय यह है कि आप गृहस्थाश्रमका परित्याग करके वानप्रस्थके नियमोंका पालन

---

* पुत्र उवाच—एवं धर्मश्च शक्रश्च स्वर्गं नेतुं तमुपागतौ। अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात् पार्थिव गम्यताम्॥
धर्म उवाच—नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वया सम्यगुपासितः। विमानमेतदारुह्य मा विलम्बस्व गम्यताम्॥
राजोवाच—नरके मानवा धर्म पीड्यन्तेऽत्र सहस्रशः। त्राहीति चार्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम्॥
यदि जानासि धर्म त्वं त्वं वा शक्र शचीपते। मम यावत्प्रमाणं तु शुभं तद्वक्तुमर्हथः॥
धर्म उवाच—अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवि तारकाः। यथा वा वर्षतो धारा गङ्गायां सिकता यथा॥
असंख्येया महाराज यथा बिन्द्वादयो ह्यपाम्। तथा तवापि पुण्यस्य संख्या नैवोपपद्यते॥
अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वतः। तदेव शतसाहस्रं संख्यामुपगतं तव॥
तद् गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ तद्भोक्तुममरालयम्। एतेऽपि पापं नरके क्षपयन्तु स्वकर्मजम्॥
राजोवाच—कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः। यदि मत्संनिधावेषामुत्कर्षो नोपजायते॥
तस्माद् यत् सुकृतं किंचिन्ममास्ति त्रिदशाधिप। तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः॥
इन्द्र उवाच—एवमूर्ध्वतरं स्थानं त्वयावाप्तं महीपते। एतांश्च नरकात् पश्य विमुक्तान् पापकारिणः॥
पुत्र उवाच—ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः। विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः॥
(अ० १५। ६६—६८, ७०—७८)

कीजिये। वानप्रस्थ आश्रमके कर्तव्यका भलीभाँति अनुष्ठान करके फिर आहवनीय आदि अग्नियोंका संग्रह भी छोड़ दीजिये और आत्मा (बुद्धि) को आत्मामें लगाकर द्वन्द्वरहित एवं परिग्रहशून्य हो जाइये। एकान्तमें रहते हुए अपने मनको वशमें कीजिये और आलस्य छोड़कर भिक्षु (संन्यासी)-का जीवन व्यतीत कीजिये। संन्यासाश्रममें योगपरायण होकर बाह्य विषयोंके सम्पर्कसे अलग हो जाइये। इससे आपको उस योगकी प्राप्ति होगी, जो दुःख-संयोगको दूर करनेकी ओषधि, मोक्षका साधन, तुलनारहित, अनिर्वचनीय एवं असङ्ग है और जिसका संयोग प्राप्त होनेपर आपको फिर संसारी जीवोंके सम्पर्कमें नहीं आना पड़ेगा।

पिता बोले—बेटा! अब तुम मुझे मोक्षके साधनभूत उस उत्तम योगका उपदेश दो, जिससे मैं फिर संसारी जीवोंके सम्पर्कमें आकर ऐसा दुःख न उठाऊँ। यद्यपि आत्मा स्वभावतः सब प्रकारके योगसे रहित है तो भी जिस योगमें आसक्त होनेपर मेरे आत्माका सांसारिक बन्धनोंसे योग न हो, उसी योगको इस समय मुझे बताओ। संसाररूपी सूर्यके प्रचण्ड तापकी पीड़ासे मेरे शरीर और मन दोनों सूख रहे हैं। तुम ब्रह्मज्ञानरूपी जलकी शीतलतासे युक्त अपने वचनरूपी सलिलसे इन्हें सींच दो। मुझे अविद्यारूपी काले नागने डस लिया है। मैं उसके विषसे पीड़ित होकर मर रहा हूँ। तुम अपने वचनामृतसे मुझे पुनः जीवित कर दो। मैं स्त्री-पुत्र, घर द्वार, खेती-बारीकी ममतारूपी बेड़ीमें जकड़ा जाकर कष्ट पा रहा हूँ; तुम प्रिय एवं उत्तम भावसे युक्त विज्ञानद्वारा इस बन्धनको खोलकर मुझे शीघ्र मुक्त करो।

पुत्रने कहा—पिताजी! पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीने राजा अलर्कको उनके पूछनेपर जिस योगका भलीभाँति विस्तारपूर्वक उपदेश किया था, वही आपको बता रहा हूँ; सुनिये।

पिता बोले—दत्तात्रेयजी किसके पुत्र थे? उन्होंने किस प्रकार योगका उपदेश किया था और महाभाग अलर्क कौन थे, जिन्होंने योगके विषयमें प्रश्न किया था?

पुत्रने कहा—प्रतिष्ठानपुरमें एक कौशिक नामक ब्राह्मण था। वह पूर्वजन्ममें किये हुए पापोंके कारण कोढ़के रोगसे व्याकुल रहने लगा। ऐसे घृणित रोगसे युक्त होनेपर भी उसे उसकी पत्नी देवताकी भाँति पूजती थी। वह अपने पतिके पैरोंमें तेल मलती, उसका शरीर दबाती, अपने हाथसे उसे नहलाती, कपड़े पहनाती और भोजन कराती थी; इतना ही नहीं, उसके थूक, खँखार, मल-मूत्र और रक्त भी वह स्वयं ही धोकर साफ करती थी। वह एकान्तमें भी पतिकी सेवा करती और उसे मीठी वाणीसे प्रसन्न रखती थी। इस प्रकार अत्यन्त विनीत भावसे वह सदा अपने स्वामीकी पूजा किया करती तो भी अधिक क्रोधी स्वभावका होनेके कारण वह निष्ठुर प्रायः अपनी पत्नीको फटकारता ही रहता था। इतनेपर भी वह उसके पैरों पड़ती और उसे देवताके समान समझती थी। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त घृणाके योग्य था तो भी वह साध्वी उसे सबसे श्रेष्ठ मानती थी। कौशिकसे चला-फिरा नहीं जाता था तो भी एक दिन उसने अपनी पत्नीसे कहा—'धर्मज्ञे! उस दिन मैंने घरपर बैठे-बैठे ही सड़कपर जिस वेश्याको जाते देखा था, उसके घरमें आज मुझे ले चलो। मुझे उससे मिला दो। वही मेरे हृदयमें बसी हुई है। जबसे मैंने उसे देखा है, तबसे वह मेरे मनसे दूर नहीं होती। यदि वह आज मेरा आलिङ्गन नहीं करेगी तो कल तुम मुझे मरा हुआ देखोगी। मनुष्योंके लिये कामदेव प्रायः टेढ़ा होता है। उस वेश्याको बहुत लोग चाहते हैं और मुझमें उसके पासतक जानेकी शक्ति नहीं है; इसलिये आज मुझे बड़ा सङ्कट प्रतीत होता है।'

अपने कामातुर स्वामीका यह वचन सुनकर

उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई इस परम सौभाग्यशालिनी पतिव्रता पत्नीने अपनी कमर खूब कस ली और अधिक शुल्क लेकर पतिको कंधेपर चढ़ा लिया। फिर धीरे-धीरे वेश्याके घरकी ओर प्रस्थान किया। रात्रिका समय था, आकाश मेघोंसे आच्छन्न हो रहा था। केवल बिजलीके चमकनेसे मार्ग दिखायी दे जाता था। ऐसी वेलामें वह ब्राह्मणी अपने पतिका अभीष्ट साधन करनेके लिये राजमार्गसे जा रही थी। मार्गमें सूली थी, जिसके ऊपर चोर न होते हुए भी चोरके सन्देहसे माण्डव्य नामक ब्राह्मणको चढ़ा दिया गया था। वे दुःखसे आतुर हो रहे थे। कौशिक पत्नीके कंधेपर बैठा था, उस अन्धकारमें देख न सकनेके कारण उसने अपने पैरोंसे छूकर सूलीको हिला दिया। इससे कुपित होकर माण्डव्यने कहा—'जिसने पैरसे हिलाकर मुझे इस कष्टकी दशामें पहुँचा दिया और मुझे अत्यन्त दुखी कर दिया, वह पापात्मा नराधम सूर्योदय होनेपर विवश हो निस्सन्देह अपने

प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। सूर्यका दर्शन होते ही उसका विनाश हो जायगा।' इस अत्यन्त दारुण शापको सुनकर उसकी पत्नी व्यथित होकर बोली—'अब सूर्यका उदय ही नहीं होगा।'* तदनन्तर सूर्योदय न होनेके कारण बराबर रात ही रहने लगी। कितने ही दिनोंके बराबर समय रातभरमें ही बीत गया। इससे देवताओंको बड़ा भय हुआ। वे सोचने लगे—स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा (श्राद्ध) तथा स्वाहा (यज्ञ)-से रहित होकर यह सारा जगत् नष्ट हुए बिना कैसे रह सकता है। दिन रातकी व्यवस्था हुए बिना मास और ऋतुका भी लोप हो जायगा। उनके लोप होनेसे दक्षिणायन और उत्तरायणका भी ज्ञान नहीं होगा। अयनका ज्ञान हुए बिना वर्ष कैसे हो सकता है, और वर्षके बिना कालका ज्ञान होना असम्भव है। पतिव्रताके वचनसे सूर्यका उदय ही नहीं होता; उसके बिना स्नान, दान आदि क्रियाएँ बंद हो गयीं। अग्निहोत्र और यज्ञका अभाव भी दृष्टिगोचर होने लगा है। होमके बिना हमलोगोंकी तृप्ति नहीं होती। जब मनुष्य यज्ञका यथोचित भाग देकर हमें तृप्त करते हैं, तब हम खेतोंकी उपजके लिये वर्षा करके मनुष्योंपर अनुग्रह करते हैं। नया अन्न पैदा होनेपर मनुष्य फिर हमारे लिये यज्ञ करते हैं और हमलोग यज्ञादिद्वारा पूजित होनेपर उन्हें मनोवाञ्छित भोग प्रदान करते हैं। हम नीचेकी ओर वर्षा करते हैं और मनुष्य ऊपरकी ओर। हम जलकी वर्षासे मनुष्योंको और मनुष्य हविष्यकी वर्षासे हमलोगोंको तृप्त करते हैं। जो दुरात्मा लोभवश हमारा यज्ञभाग स्वयं खा लेते हैं, उन अपकारी पापियोंके नाशके लिये हम जल, सूर्य, अग्नि, वायु तथा पृथ्वीको भी दूषित कर देते हैं। उन दूषित वस्तुओंका उपयोग करनेसे उन कुकर्मियोंको मृत्युके लिये भयङ्कर महामारी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

*तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम्। प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपैष्यति॥ (१६। ३९)

जो हमें तृप्त करके शेष अन्न अपने उपभोगमें लाते हैं, उन महात्माओंको हम पुण्यलोक प्रदान करते हैं। किन्तु इस समय प्रभातकाल हुए बिना इन मनुष्योंके लिये वह सब पुण्यकर्म असम्भव हो रहा है। अब दिनकी सृष्टि कैसे हो?' इस प्रकार सब देवता आपसमें बात करने लगे। यज्ञोंके विनाशकी आशङ्कासे वहाँ एकत्रित हुए देवताओंके वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने कहा—'पतिव्रताके माहात्म्यसे इस समय सूर्यका उदय नहीं हो रहा है और सूर्योदय न होनेसे मनुष्यों तथा तुम देवताओंकी भी हानि है; अतः तुमलोग महर्षि अत्रिकी पतिव्रता पत्नी तपस्विनी अनसूयाके पास जाओ और सूर्योदयकी कामनासे उन्हें प्रसन्न करो।'*

तब देवताओंने जाकर अनसूयाजीको प्रसन्न किया। वे बोलीं—'तुम क्या चाहते हो, बतलाओ।' देवताओंने याचना की कि 'पूर्ववत् दिन होने लगे।'

अनसूयाने कहा—देवताओ! पतिव्रताका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं हो सकता; इसलिये मैं उस साध्वीको मनाकर दिनकी सृष्टि करूँगी। मुझे ऐसा उपाय करना है, जिससे फिर पहलेकी ही भाँति दिन-रातकी व्यवस्था चलती रहे और उस पतिव्रताके पतिका भी नाश न हो।†

पुत्रने कहा—देवताओंसे यों कहकर अनसूया देवी उस ब्राह्मणीके घर गयीं और उसके कुशल पूछनेपर उन्होंने अपनी, अपने स्वामीकी तथा अपने धर्मकी कुशल बतायी।

अनसूया बोलीं—कल्याणी! तुम अपने स्वामीके मुखका दर्शन करके प्रसन्न तो रहती हो न? पतिको सम्पूर्ण देवताओंसे बड़ा मानती हो न? पतिकी सेवासे ही मुझे महान् फलकी प्राप्ति हुई है तथा सम्पूर्ण कामनाओं एवं फलोंकी प्राप्तिके साथ ही मेरे सारे विघ्न भी दूर हो गये।‡ साध्वी! मनुष्यको पाँच ऋण सदा ही चुकाने चाहिये। अपने वर्णधर्मके अनुसार धनका संग्रह करना आवश्यक है। उसके प्राप्त होनेपर शास्त्रविधिके अनुसार उसका सत्पात्रको दान करना चाहिये। सत्य, सरलता, तपस्या, दान और दयासे सदा युक्त रहना चाहिये। राग-द्वेषका परित्याग करके शास्त्रोक्त कर्मोंका अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य अपने वर्णके लिये विहित उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। पतिव्रते! इस प्रकार महान् क्लेश उठानेपर पुरुषोंको प्राजापत्य आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है; परन्तु स्त्रियाँ केवल पतिकी सेवा करनेमात्रसे पुरुषोंके दुःख सहकर उपार्जित किये हुए पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियोंके लिये अलग यज्ञ, श्राद्ध या उपवासका विधान नहीं है। वे पतिकी सेवामात्रसे ही उन अभीष्ट लोकोंको प्राप्त कर लेती हैं। अतः महाभागे! तुम्हें सदा पतिकी सेवामें अपना मन लगाना चाहिये; क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परम गति है। पति जो देवताओं, पितरों तथा अतिथियोंकी

---

*पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः। तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां तथा॥
तस्मात् पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम्। प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया॥ (१६। ४८-४९)

अनसूयोवाच

†पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथं त्विति। सम्मान्य तस्मात् तां साध्वीमहः स्रक्ष्याम्यहं सुराः॥
यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते। यथा च तस्याः स्वपतिर्न साध्व्या नाशमेष्यति॥ (१६। ५१-५२)

‡कच्चिन्नन्दसि कल्याणि स्वभर्तुर्मुखदर्शनात्। कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसेऽभ्यधिकं पतिम्॥
भर्तृशुश्रूषणादेव मया प्राप्तं महत् फलम्। सर्वकामफलावाप्त्या प्रत्यूहाः परिवर्जिताः॥ (१६। ५४-५५)

सत्कारपूर्वक पूजा करता है, उसके भी पुण्यका आधा भाग स्त्री अनन्यचित्तसे पतिकी सेवा करनेमात्रसे प्राप्त कर लेती है।*

अनसूयाजीका वचन सुनकर पतिव्रता ब्राह्मणीने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया और इस प्रकार कहा—'स्वभावतः सबका कल्याण करनेवाली देवी! स्वयं आप यहाँ पधारकर पतिकी सेवामें मेरी पुनः श्रद्धा बढ़ा रही हैं। इससे मैं धन्य हो गयी। यह आपका मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह है। इसीसे देवताओंने भी आज मुझपर कृपादृष्टि की है। मैं जानती हूँ कि स्त्रियोंके लिये पतिके समान दूसरी कोई गति नहीं है। पतिमें किया हुआ प्रेम इहलोक और परलोकमें भी उपकार करनेवाला होता है। यशस्विनि! पतिके प्रसादसे ही नारी इस लोक और परलोकमें भी सुख पाती है; क्योंकि पति ही नारीका देवता है। महाभागे! आज आप मेरे घरपर पधारी हैं। मुझसे अथवा मेरे इन पतिदेवसे आपको जो भी कार्य हो, उसे बतानेकी कृपा करें।†

अनसूयोवाच

एते देवाः सहेन्द्रेण मामुपागम्य दुःखिताः।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिनक्तनिरूपणाः ॥
याचन्तेऽहर्निशासंस्थां यथावदविखण्डिताम्।
अहं तदर्थमायाता शृणु चैतद्वचो मम॥
दिनाभावात् समस्तानामभावो यागकर्मणाम्।
तदभावात् सुराः पुष्टिं नोपयान्ति तपस्विनि॥
अह्नश्चैव समुच्छेदादुच्छेदः सर्वकर्मणाम्।
तदुच्छेदादनावृष्ट्या जगदुच्छेदमेष्यति॥
तत्त्वमिच्छसि चेदेतज्जगदुद्धर्तुमापदः।
प्रसीद साध्वि लोकानां पूर्ववद्वर्ततां रविः॥

अनसूया बोलीं—देवि! तुम्हारे वचनसे दिन-रातकी व्यवस्थाका लोप हो जानेके कारण शुभ कर्मोंका अनुष्ठान बंद हो गया है; इसलिये ये इन्द्र आदि देवता मेरे पास दुखी होकर आये हैं और प्रार्थना करते हैं कि दिन-रातकी व्यवस्था पहलेकी तरह अखण्डरूपसे चलती रहे। मैं इसीके लिये तुम्हारे पास आयी हूँ। मेरी यह बात सुनो। दिन न होनेसे समस्त यज्ञकर्मोंका अभाव हो गया है और यज्ञोंके अभावसे देवताओंकी पुष्टि नहीं हो पाती है; अतः तपस्विनि! दिनके नाशसे समस्त शुभ कर्मोंका नाश हो जायगा और उनके नाशसे वृष्टिमें बाधा पड़नेके कारण इस संसारका ही उच्छेद हो जायगा। अतः यदि तुम इस जगत्‌को आपत्तिसे बचाना चाहती हो तो सम्पूर्ण लोकोंपर दया करो, जिससे पहलेकी भाँति सूर्योदय हो।

ब्राह्मण्युवाच

माण्डव्येन महाभागे शप्तो भर्ता ममेश्वरः।
सूर्योदये विनाशं त्वं प्राप्स्यसीत्यतिमन्युना॥

ब्राह्मणीने कहा—महाभागे! माण्डव्य ऋषिने अत्यन्त क्रोधमें भरकर मेरे स्वामी—मेरे ईश्वरको शाप दिया है कि सूर्योदय होते ही तेरी मृत्यु हो जायगी।

अनसूयोवाच

यदि वा रोचते भद्रे ततस्त्वद्वचनादहम्।
करोमि पूर्ववद्देहं भर्तारं च नवं तव॥
मया हि सर्वथा स्त्रीणां माहात्म्यं वरवर्णिनि।
पतिव्रतानामाराध्यमिति सम्मानयामि ते॥

अनसूया बोलीं—कल्याणी! यदि तुम्हारी इच्छा हो और तुम कहो तो मैं तुम्हारे पतिको पूर्ववत् शरीर एवं नयी स्वस्थ अवस्थाका कर दूँगी।

---

* नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम्। भर्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि॥
तस्मात् साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणं प्रति। त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्ता परा गतिः॥
यद्देवेभ्यो यच्च पित्रागतेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियातः। तस्याप्यर्द्धं केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव॥
(१६।६१—६३)

† सा त्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्तायाः मम मन्दिरम्। आर्याया यन्मया कार्यं तथाऽऽर्येणापि वा शुभे॥
(१६।६८)

सुन्दरी! मुझे पतिव्रता स्त्रियोंके माहात्म्यका सर्वथा आदर करना है, इसीलिये तुम्हें मनाती हूँ।

पुत्र उवाच

तथेत्युक्ते तया सूर्यमाजुहाव तपस्विनी।
अनसूयार्घ्यमुद्यम्य दशरात्रे तदा निशि॥
ततो विवस्वान् भगवान् फुल्लपद्मारुणाकृतिः।
शैलराजानमुदयमारुरोहोरुमण्डलः॥
समनन्तरमेवास्या भर्ता प्राणैर्व्ययुज्यत।
पपात च महीपृष्ठे पतन्तं जगृहे च सा॥

पुत्र (सुमति) कहता है— ब्राह्मणीके 'तथास्तु' कहकर स्वीकार करनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य हाथमें लेकर सूर्यदेवका आवाहन किया। उस समयतक दस दिनोंके बराबर रात बीत चुकी थी। तदनन्तर भगवान् सूर्य खिले हुए कमलके समान अरुण आकृति धारण किये अपने महान् मण्डलके साथ गिरिराज उदयाचलपर आरूढ़ हुए। सूर्यदेवके प्रकट होते ही ब्राह्मणीका पति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरा; किन्तु उसकी पत्नीने गिरते समय उसे पकड़ लिया।

अनसूयोवाच

न विषादस्त्वया भद्रे कर्तव्यः पश्य मे बलम्।
पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किं चिरेण ते॥
यथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित्।
रूपतः शीलतो बुद्ध्या वाङ्माधुर्यादिभूषणैः॥
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा।
प्राप्नोतु जीवितं भार्यासहायः शरदां शतम्॥
यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम्।
तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः॥
कर्मणा मनसा वाचा भर्तुराराधनं प्रति।
यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवताद् द्विजः॥

अनसूया बोलीं— भद्रे! तुम विषाद न करना। पतिकी सेवासे जो तपोबल मुझे प्राप्त हुआ है, उसे तुम अभी देखो; विलम्बकी क्या आवश्यकता? मैंने जो रूप, शील, बुद्धि एवं मधुर भाषण आदि सद्गुणोंमें अपने पतिके समान दूसरे किसी पुरुषको कभी नहीं देखा है, उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगसे मुक्त हो फिरसे तरुण हो जाय और अपनी स्त्रीके साथ सौ वर्षोंतक जीवित रहे। यदि मैं स्वामीके समान और किसी देवताको नहीं समझती तो उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगमुक्त होकर पुनः जीवित हो जाय। यदि मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा मेरा सारा उद्योग प्रतिदिन स्वामीकी सेवाके ही लिये होता हो तो वह ब्राह्मण जीवित हो जाय।

पुत्र उवाच

ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा।
स्वभाभिर्भासयन् वेश्म वृन्दारक इवाजरः॥
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यादिनिःस्वनः।
लेभिरे च मुदं देवा अनसूयामथाब्रुवन्॥

पुत्र कहता है— पिताजी! अनसूयादेवीके इतना कहते ही वह ब्राह्मण अपनी प्रभासे उस भवनको प्रकाशमान करता हुआ रोगमुक्त तरुण शरीरसे जीवित हो उठा, मानो जरावस्थासे रहित देवता हो। तदनन्तर दुन्दुभि आदि देवताओंके बाजोंकी आवाजके

साथ वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंको बड़ा आनन्द मिला। वे अनसूयादेवीसे कहने लगे।

देवता बोले—कल्याणी! आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य किया है। तपस्विनी! इससे प्रसन्न होकर देवता आपको वर देना चाहते हैं। आप कोई वर माँगें।

अनसूयाने कहा—यदि ब्रह्मा आदि देवता मुझपर प्रसन्न होकर वर देना चाहते हैं, यदि आपलोगोंने मुझे वर देनेके योग्य समझा है तो मेरी यही इच्छा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हों तथा अपने स्वामीके साथ मैं उस योगको प्राप्त करूँ, जो समस्त क्लेशोंसे मुक्ति देनेवाला है।

यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने 'एवमस्तु' कहा और तपस्विनी अनसूयाका सम्मान करके वे सब-के-सब अपने-अपने धामको चले गये।

दत्तात्रेयजीके जन्म और प्रभावकी कथा

पुत्र (सुमति) कहता है—तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेके बाद ब्रह्माजीके द्वितीय पुत्र महर्षि अत्रिने अपनी परमसाध्वी पत्नी अनसूयाको देखा, जो ऋतुस्नान कर चुकी थीं। वे सर्वाङ्गसुन्दरी थीं। उनका रूप मनको लुभानेवाला था। उन्हें देखकर मुनिने कामयुक्त होकर मन-ही-मन उनका चिन्तन किया। उनके चिन्तन करते समय जो विकार प्रकट हुआ, उसे वेगयुक्त वायुने इधर-उधर और ऊपरकी ओर पहुँचा दिया। वह अत्रिमुनिका तेज ब्रह्मस्वरूप, शुक्लवर्ण, सोमरूप एवं रजोमय था। जब वह गिरने लगा तो उसे दसों दिशाओंने ग्रहण कर लिया। वही प्रजापति अत्रिके मानस पुत्र चन्द्रमाके रूपमें अनसूयासे उत्पन्न हुआ, जो समस्त प्राणियोंके जीवनका आधार है। भगवान् विष्णुने सन्तुष्ट होकर अपने श्रीविग्रहसे सत्त्वमय तेजको प्रकट किया। उसीसे दत्तात्रेयजीका जन्म हुआ। भगवान् विष्णुने ही दत्तात्रेयके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त करके अनसूयाका स्तनपान किया। वे अत्रिके द्वितीय पुत्र थे। हैहयराज कृतवीर्य बड़ा उद्दण्ड था। उसने एक बार महर्षि अत्रिका अपमान कर दिया। यह देख अत्रिके तृतीय पुत्र दुर्वासा, जो अभी माताके गर्भमें ही थे, क्रोधमें भरकर सात ही दिनोंमें माताके उदरसे बाहर निकल आये। गर्भवासजनित महान् आयास तथा पिताके अपमानजनित दुःख और अमर्षसे युक्त होकर वे हैहयराजको तत्काल भस्म कर डालनेको उद्यत हो गये थे। वे तमोगुणके उत्कर्षसे युक्त साक्षात् भगवान् रुद्रके अंश थे। इस प्रकार अनसूयाके गर्भसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवके अंशभूत तीन पुत्र उत्पन्न हुए। चन्द्रमा ब्रह्माके अंशसे हुए थे, दत्तात्रेय श्रीविष्णुभगवान्‌के स्वरूप थे और दुर्वासाके रूपमें साक्षात् भगवान् शङ्करने ही अवतार लिया था।* देवताओंके वरदान देनेके कारण ये तीनों देवता वहाँ प्रकट हुए थे। चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे तृण, लता, वल्ली, अन्न तथा मनुष्योंका पोषण करते हैं और सदा स्वर्गमें रहते हैं; वे प्रजापतिके अंश हैं। दत्तात्रेय दुष्ट दैत्योंका संहार करके प्रजाकी रक्षा करते हैं। वे शिष्टजनोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। उन्हें भगवान् विष्णुका अंश जानना चाहिये। दुर्वासा अपमान करनेवालेको भस्म कर डालते हैं। वे शरीर, दृष्टि, मन और वाणीसे भी उद्धत स्वभावके हैं और रुद्रभावका आश्रय लेकर रहते हैं। इस प्रकार प्रजापति महर्षि अत्रिने स्वयं ही चन्द्रमाको प्रकट किया। श्रीविष्णुरूप दत्तात्रेयजी योगस्थ रहकर विषयोंका अनुभव

* सोमो ब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत। दुर्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम्॥ (१७।११)

करने लगे। दुर्वासा अपने पिता-माताको छोड़कर उन्मत्त नामक उत्तम व्रतका आश्रय ले पृथ्वीपर विचरने लगे।

कुछ काल बीतनेके पश्चात् जब राजा कृतवीर्य स्वर्गको पधारे और मन्त्रियों, पुरोहितों तथा पुरवासियोंने राजकुमार अर्जुनको राज्याभिषेकके लिये बुलाया तब उसने कहा—'मन्त्रियो! जो भविष्यमें नरकको ले जानेवाला है, वह राज्य मैं नहीं ग्रहण करूँगा। जिसके लिये प्रजाजनोंसे कर लिया जाता है, उस उद्देश्यका पालन न किया जाय तो राज्य लेना व्यर्थ है। वैश्यलोग अपने व्यापारसे होनेवाली आयका बारहवाँ भाग राजाको इसलिये देते हैं कि वे मार्गमें लुटेरोंद्वारा लूटे न जायँ। राजकीय अर्थरक्षकोंके द्वारा सुरक्षित होकर वे वाणिज्यके लिये यात्रा कर सकें। ग्वाले घी और तक्र आदिका तथा किसान अनाजका छठा भाग राजाको इसी उद्देश्यसे अर्पण करते हैं। यदि राजा वैश्योंसे सम्पूर्ण आयका अधिकांश भाग ले ले तो वह चोरका काम करता है। इससे उसके इष्ट और पूर्त कर्मोंका नाश होता है।* यदि राजाको कर देकर भी प्रजाको दूसरी वृत्तियोंका आश्रय लेना पड़े, उसकी रक्षा राजाके अतिरिक्त किन्हीं अन्य व्यक्तियोंद्वारा हो तो उस अवस्थामें कर लेनेवाले राजाको निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है। प्रजाकी आयका जो छठा भाग है, उसे पूर्वकालके महर्षियोंने राजाके लिये प्रजाकी रक्षाका वेतन नियत किया है। यदि चोरोंसे वह प्रजाकी रक्षा न कर सका तो इसका पाप राजाको ही होता है; इसलिये यदि मैं तपस्या करके अपनी इच्छाके अनुसार योगीका पद प्राप्त कर लूँ तो मैं पृथ्वीके पालनकी शक्तिसे युक्त एकमात्र राजा हो सकता हूँ। ऐसी दशामें अपने उत्तरदायित्वका पूर्ण निर्वाह करनेके कारण मुझे पापका भागी नहीं होना पड़ेगा।'

उसके इस निश्चयको जानकर मन्त्रियोंके मध्यमें बैठे हुए परम बुद्धिमान् वयोवृद्ध मुनिश्रेष्ठ गर्गने कहा—'राजकुमार! यदि तुम राज्यका यथावत् पालन करनेके लिये ऐसा करना चाहते हो तो मेरी बात सुनो और वैसा ही करो। महाभाग दत्तात्रेय मुनि सह्यपर्वतकी गुफामें रहते हैं। तुम उन्हींकी आराधना करो। वे तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं। दत्तात्रेयजी योगयुक्त, परम सौभाग्यशाली, सर्वत्र समदर्शी तथा विश्वपालक भगवान् विष्णुके अंशरूपसे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। उन्हींकी आराधना करके इन्द्रने दुरात्मा दैत्योंद्वारा छीने हुए अपने पदको प्राप्त किया तथा दैत्योंको मार भगाया।'

अर्जुनने पूछा—महर्षे! देवताओंने परम प्रतापी दत्तात्रेयजीकी आराधना किस प्रकार की थी? तथा दैत्योंद्वारा छीने हुए इन्द्रपदको देवराजने कैसे प्राप्त किया था?

गर्गने कहा—पूर्वकालमें देवताओं और दैत्योंमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ था। उस युद्धमें दैत्योंका नायक जम्भ था और देवताओंके स्वामी इन्द्र। उन्हें युद्ध करते एक दिव्य वर्ष व्यतीत हो गया। उसके बाद देवता हार गये और दैत्य विजयी हुए। विप्रचित्ति आदि दानवोंने जब देवताओंको परास्त कर दिया, तब वे युद्धसे भागने लगे, अब उनमें शत्रुओंको जीतनेका उत्साह न रह गया। फिर वे दैत्यसेनाके वधकी इच्छासे बृहस्पतिजीके पास आये और उनके तथा वालखिल्य आदि महर्षियोंके साथ बैठकर मन्त्रणा करने लगे।

बृहस्पतिजीने कहा—देवताओ! तुम अत्रिके तपस्वी पुत्र महात्मा दत्तात्रेयके पास जाओ और उन्हें भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट करो। उनमें वर देनेकी शक्ति है। वे तुम्हें दैत्योंका नाश करनेके लिये वर

---

*पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिग्जनः॥
दत्त्वार्थरक्षिभिर्मार्गे रक्षितो याति दस्युतः। गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागं च कृषीबलाः॥
दत्त्वान्यद् भूभुजे दद्युर्यदि भागं ततोऽधिकम्। पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः॥
इष्टापूर्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरधर्म्मिणः। (१८।३—५ १/२)

देंगे। तत्पश्चात् तुम सब लोग मिलकर दैत्यों और दानवोंका वध कर सकोगे।

गर्गने कहा—उनके ऐसा कहनेपर देवगण दत्तात्रेयके आश्रमपर गये और वहाँ लक्ष्मीजीके साथ उन महात्माका दर्शन किया। सबसे पहले उन्होंने अपना कार्यसाधन करनेके लिये उन्हें प्रणाम किया, फिर स्तवन किया। भक्ष्य-भोज्य

और माला आदि वस्तुएँ भेंट कीं। इस प्रकार वे आराधनामें लग गये। जब दत्तात्रेयजी चलते तो देवता भी उनके पीछे-पीछे जाते। जब वे खड़े होते तो देवता भी ठहर जाते और जब वे ऊँचे आसनपर बैठते तो देवता नीचे खड़े रहकर उनकी उपासना करते। एक दिन पैरोंपर पड़े हुए देवताओंसे दत्तात्रेयजीने पूछा—'तुमलोग क्या चाहते हो, जो मेरी इस प्रकार सेवा करते हो?'

देवता बोले—मुनिश्रेष्ठ! जम्भ आदि दानवोंने त्रिलोकीपर आक्रमण करके भूर्लोक, भुवर्लोक आदिपर अधिकार जमा लिया है और सम्पूर्ण यज्ञभाग भी हर लिये हैं; अतः आप हमारी रक्षाके लिये उनके वधका विचार कीजिये। आपकी कृपासे हम पुनः स्वर्गलोक प्राप्त करना चाहते हैं। जगन्नाथ! आप निष्पाप एवं निर्लेप हैं। विद्याके प्रभावसे शुद्ध हुए आपके अन्तःकरणमें ज्ञानकी किरणें फैल रही हैं।

दत्तात्रेयजीने कहा—देवताओ! यह सत्य है कि मेरे पास विद्या है और मैं समदर्शी भी हूँ; तथापि इस नारीके सङ्गसे मैं दूषित हो रहा हूँ; क्योंकि स्त्रीका निरन्तर सहयोग दोषका ही कारण होता है।

उनके ऐसा कहनेपर देवता फिर बोले—द्विजश्रेष्ठ! ये साक्षात् जगन्माता लक्ष्मी हैं। इनमें पापका लेश भी नहीं है; अतः ये कभी दूषित नहीं होतीं। जैसे सूर्यकी किरणें ब्राह्मण और चाण्डाल दोनोंपर पड़ती हैं; किन्तु अपवित्र नहीं होतीं।

देवताओंके ऐसा कहनेपर दत्तात्रेयजीने हँसकर कहा—यदि तुमलोगोंका ऐसा ही विचार है तो समस्त असुरोंको युद्धके लिये यहाँ मेरे सामने बुला लाओ, विलम्ब न करो। मेरे दृष्टिपातजनित अग्निसे उनके बल और तेज दोनों क्षीण हो जायँगे और इस प्रकार वे सब-के-सब मेरी दृष्टिमें पड़कर नष्ट हो जायँगे।

उनकी यह बात सुनकर देवताओंने महाबली दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा तथा वे क्रोधमें भरकर देवताओंपर टूट पड़े। दैत्योंकी मार खाकर देवता भयसे व्याकुल हो गये और शरण पानेकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर दत्तात्रेयजीके आश्रमपर गये। दैत्य भी देवताओंको कालके गालमें भेजनेके लिये उसी जगह जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने महाबली महात्मा दत्तात्रेयजीको देखा। उनके वामभागमें चन्द्रमुखी लक्ष्मीजी विराजमान थीं, जो उनकी प्रिय पत्नी एवं सम्पूर्ण जगत्के लोगोंका कल्याण करनेवाली हैं। वे सर्वाङ्गसुन्दरी लक्ष्मी स्त्रीसमुचित सम्पूर्ण उत्तम गुणोंसे विभूषित थीं और मीठी वाणीमें भगवान्से वार्तालाप कर रही थीं। उन्हें सामने देखकर दैत्योंके मनमें उन्हें प्राप्त

करनेकी इच्छा हो गयी। वे अपने बढ़ते हुए कामके वेगको न रोक सके। अब तो उन्होंने देवताओंका पीछा छोड़ दिया और लक्ष्मीजीको हर लेनेका विचार किया। उस पापसे मोहित हो जानेके कारण उनकी सारी शक्ति क्षीण हो गयी। वे आसक्त होकर आपसमें कहने लगे—'यह स्त्री त्रिभुवनका सारभूत रत्न है। यदि यह हमारी हो जाय तो हमलोग कृतार्थ हो जायँ; इसलिये हम सब लोग मिलकर इसे पालकीपर बिठा लें और अपने घरको ले चलें।' यह विचार निश्चित हो गया।

आपसमें ऐसी बात करके वे कामपीड़ित दैत्य आसक्तिपूर्वक वहाँ गये और लक्ष्मीजीको पालकीमें बिठाकर उसे मस्तकपर ले अपने स्थानकी ओर चल दिये। तब दत्तात्रेयजीने हँसकर देवताओंसे कहा—'सौभाग्यसे लक्ष्मी दैत्योंके सिरपर चढ़ गयीं। अब तुमलोग बढ़ो। हथियार उठाकर इन दैत्योंका वध करो। अब इनसे डरनेकी आवश्यकता नहीं। मैंने इन्हें निस्तेज कर दिया है तथा परायी स्त्रीके स्पर्शसे

इनका पुण्य जल गया है, जिससे ये शक्तिहीन हो चले हैं।'

तदनन्तर देवताओंने नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे दैत्योंको मारना आरम्भ किया। लक्ष्मी उनके सिरपर चढ़ी हुई थीं, इसलिये वे नष्ट हो गये। इसके बाद लक्ष्मीजी वहाँसे महामुनि दत्तात्रेयके पास आ गयीं। उस समय सम्पूर्ण देवता उनकी स्तुति करने लगे। दैत्योंके नाशसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। फिर परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके देवता स्वर्गमें चले गये और पहलेकी भाँति निश्चिन्त होकर रहने लगे। राजन्! यदि तुम भी इसी प्रकार अपनी इच्छाके अनुसार अनुपम ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हो तो तुरंत ही उनकी आराधनामें लग जाओ।

गर्ग मुनिकी यह बात सुनकर राजा कार्तवीर्यने दत्तात्रेयजीके आश्रमपर जा उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया। वह उनका पैर दबाता, उनके लिये

माला, चन्दन, गन्ध, जल और फल आदि सामग्री प्रस्तुत करता; भोजनके साधन जुटाता और जूँठन

साफ करता था। इससे सन्तुष्ट होकर मुनिने कार्तवीर्यसे कहा—'अरे भैया! तुम देखते हो, मेरे पास यह स्त्री बैठी हुई है। मैं इसके उपभोगसे निन्दाका पात्र हो रहा हूँ, अतः मेरी सेवा तुम्हें नहीं करनी चाहिये। मैं कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ। तुम अपने उपकारके लिये किसी शक्तिशाली पुरुषकी आराधना करो।'

उनके इस प्रकार कहनेपर कार्तवीर्य अर्जुनको गर्गजीकी बातका स्मरण हो आया। उसने दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके कहा।

अर्जुन बोला—देव! आप अपनी मायाका आश्रय लेकर मुझे क्यों अपनी मायामें डाल रहे हैं? आप सर्वथा निष्पाप हैं। इसी प्रकार ये देवी भी सम्पूर्ण जगत्‌की जननी हैं।

अर्जुनके यों कहनेपर भगवान्‌ने सम्पूर्ण भूमण्डलको वशमें करनेवाले महाभाग कार्तवीर्यसे कहा—'राजन्! तुमने मेरे गूढ़ रहस्यका कथन किया है, इसलिये मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई वर माँगो।'

कार्तवीर्यने कहा—देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसी उत्तम ऐश्वर्यशक्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं प्रजाका पालन करूँ और अधर्मका भागी न बनूँ। मैं दूसरोंके मनकी बात जान लूँ और युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके। युद्ध करते समय मुझे एक हजार भुजाएँ प्राप्त हों; किन्तु वे इतनी हलकी हों, जिससे मेरे शरीरपर भार न पड़े। पर्वत, आकाश, जल, पृथ्वी और पातालमें मेरी अबाध गति हो। मेरा वध मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ पुरुषके हाथसे हो। यदि कभी मैं कुमार्गमें प्रवृत्त होऊँ तो मुझे सन्मार्ग दिखानेवाला उपदेशक प्राप्त हो। मुझे श्रेष्ठ अतिथि प्राप्त हों और निरन्तर दान करते रहनेपर भी मेरा धन कभी क्षीण न हो। मेरे स्मरण करनेमात्रसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें धनका अभाव दूर हो जाय तथा आपमें मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे।

दत्तात्रेयजी बोले—तुमने जो-जो वरदान माँगे हैं, वे सब तुम्हें प्राप्त होंगे। तुम मेरे प्रसादसे चक्रवर्ती सम्राट् होओगे।

सुमति कहते हैं—तदनन्तर दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके अर्जुन अपने घर गया और समस्त प्रजा एवं अमात्यवर्गके लोगोंको एकत्रित करके उसने राज्याभिषेक ग्रहण किया। उसके अभिषेकके लिये गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराएँ, वसिष्ठ आदि महर्षि,

मेरु आदि पर्वत, गङ्गा आदि नदियाँ और समुद्र, पाकर आदि वृक्ष, इन्द्र आदि देवता, वासुकि आदि नाग, गरुड़ आदि पक्षी तथा नगर एवं जनपदके निवासी भी आये थे। श्रीदत्तात्रेयजीकी कृपासे अभिषेककी सब सामग्री अपने-आप जुट गयी थी। फिर तो ब्रह्मा आदि देवताओंने होमके लिये अग्निको प्रज्वलित किया तथा साक्षात् नारायणस्वरूप श्रीदत्तात्रेयजी एवं अन्यान्य महर्षियोंने समुद्र और नदियोंके जलसे अर्जुनका राज्याभिषेक किया। राजसिंहासनपर आसीन होते ही हैहयनरेशने अधर्मके नाश और धर्मकी रक्षाके लिये घोषणा करायी। दत्तात्रेयजीसे उत्तम ऐश्वर्य-शक्ति पाकर वे

बड़े शक्तिशाली हो गये थे। राजाकी घोषणा इस प्रकार थी—'आजसे मुझको छोड़कर जो कोई भी शस्त्र ग्रहण करेगा अथवा दूसरोंकी हिंसामें प्रवृत्त होगा, वह लुटेरा समझा जायगा और मेरे हाथसे उसका वध होगा।'

ऐसी आज्ञाके जारी होनेपर उस राज्यमें महापराक्रमी नरश्रेष्ठ राजा अर्जुनको छोड़कर दूसरा कोई मनुष्य शस्त्र धारण नहीं करता था। स्वयं राजा ही गौओं, पशुओं, खेतों एवं द्विजातियोंकी रक्षा करते थे। तपस्वियों तथा व्यापारियोंके समुदायकी रक्षा भी वे स्वयं ही करते थे। लुटेरे, सर्प, अग्नि तथा शस्त्र आदिसे भयभीत मनुष्योंका तथा अन्य प्रकारकी आपत्तियोंमें मग्न हुए मानवोंका वे स्मरण करनेमात्रसे तत्काल उद्धार कर देते थे। उनके राज्यमें धनका अभाव कभी नहीं होता था। उन्होंने अनेक ऐसे यज्ञ किये, जिनके पूर्ण होनेपर ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणाएँ दी जाती थीं। उन्होंने कठोर तपस्या की और संग्रामोंमें भी महान् पराक्रम दिखाया। उनकी समृद्धि और बढ़ा हुआ सम्मान देखकर अङ्गिरा मुनिने कहा—'अन्य राजालोग यज्ञ, दान, तपस्या अथवा संग्राममें पराक्रम दिखानेमें राजा कार्तवीर्यकी तुलना नहीं कर सकते। राजा अर्जुनने जिस दिन दत्तात्रेयजीसे समृद्धि प्राप्त की थी, उस दिनके आनेपर वह उनके लिये यज्ञ करता था और सारी प्रजा भी राजाकी परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई देख उसी दिन एकाग्रचित्तसे दत्तात्रेयजीका यजन करती थी।'

इस प्रकार चराचरगुरु भगवान् विष्णुके स्वरूपभूत महात्मा दत्तात्रेयजीकी महिमाका वर्णन किया गया। शङ्ख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले अनन्त एवं अप्रमेय भगवान् विष्णुके अनेक अवतार पुराणोंमें वर्णित हैं। जो मनुष्य उनके परम स्वरूपका चिन्तन करता है, वह सुखी होता है और संसारसे उसका शीघ्र ही उद्धार हो जाता है। वे आदि-अन्तरहित भगवान् विष्णु अधर्मके नाश और धर्मके प्रचारके लिये ही संसारकी रक्षा और पालन करते हैं। अब मैं इसी प्रकार पितृभक्त राजर्षि महात्मा अलर्कके जन्मका वृत्तान्त बतलाता हूँ; क्योंकि दत्तात्रेयजीने उन्हींको योगका उपदेश दिया था।

अलर्कोपाख्यानका आरम्भ—नागकुमारोंके द्वारा ऋतध्वजके पूर्ववृत्तान्तका वर्णन

सुमति कहते हैं—पिताजी! प्राचीन कालकी बात है, शत्रुजित् नामके एक महापराक्रमी राजा राज्य करते थे, जिनके यज्ञोंमें पर्याप्त सोमरस पान करनेके कारण देवराज इन्द्र बहुत सन्तुष्ट रहते थे। उनका पुत्र भी बुद्धि, पराक्रम और लावण्यमें क्रमशः बृहस्पति, इन्द्र और अश्विनीकुमारोंकी समानता करता था। वह राजकुमार प्रतिदिन अपने समान अवस्था, बुद्धि, बल, पराक्रम और चेष्टाओंवाले अन्य राजकुमारोंसे घिरा रहता था। कभी तो उनमें शास्त्रोंका विवेचन और उनके सिद्धान्तोंका निर्णय होता था; कभी काव्यचर्चा, संगीत-श्रवण और नाटक देखने आदिमें समय व्यतीत होता था। राजकुमार जब खेलमें लगते, उस समय उन्हींकी अवस्थावाले बहुत-से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके बालक भी प्रेमवश वहाँ खेलने आ जाते थे। कुछ समय बीतनेके पश्चात् अश्वतर नामक नागके दो पुत्र नागलोकसे पृथ्वीतलपर घूमनेके लिये आये। उन्होंने ब्राह्मणके रूपमें अपनेको छिपा रखा था। वे देखनेमें बड़े सुन्दर और तरुण थे। वहाँ जो राजकुमार तथा अन्यान्य द्विज-बालक खेलते थे, उनके साथ ही वे भी भाँति-भाँतिके विनोद

करते हुए बड़े प्रेमसे रहते थे। वे राजकुमार, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके पुत्र तथा वे दोनों नागराजके बालक साथ-ही-साथ स्नान, अङ्ग-सेवा, वस्त्र-धारण, चन्दनका अनुलेप और भोजन आदि कार्य करते-कराते थे। राजकुमारके प्रेमवश

नागराजके दोनों पुत्र प्रतिदिन बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आते थे। उनके साथ भाँति-भाँतिके विनोद, हास्य और वार्तालाप आदि करनेसे राजकुमारको बड़ा सुख मिलता था। वे उन्हें साथ लिये बिना भोजन, स्नान, क्रीडा तथा शास्त्रचर्चा आदि कुछ भी नहीं करते थे। इसी प्रकार वे दोनों नागकुमार भी उनके बिना रसातलमें लंबी साँसें खींचते हुए रात बिताते और दिन निकलते ही उनके पास पहुँच जाते थे।

इस तरह बहुत समय बीत जानेके बाद एक दिन नागराज अश्वतरने अपने दोनों बालकोंसे पूछा—'पुत्रो! तुम दोनोंका मर्त्यलोकके प्रति इतना अधिक प्रेम किस कारण है? बहुत दिनोंसे दिनके समय तुमलोग पातालमें नहीं दिखायी देते, केवल रातमें ही मैं तुम्हें देख पाता हूँ।'

पुत्रोंने कहा—'पिताजी! मर्त्यलोकमें राजा शत्रुजित्‌के एक पुत्र हैं, जिनका नाम ऋतध्वज है। वे बड़े ही रूपवान्, सरल, शूरवीर, मानी तथा प्रिय वचन बोलनेवाले हैं। बिना पूछे ही वार्तालाप आरम्भ करनेवाले, वक्ता, विद्वान्, मित्रभाव रखनेवाले और समस्त गुणोंके भंडार हैं। वे राजकुमार माननीय पुरुषोंको सदा आदर देते हैं। बुद्धिमान् एवं लज्जाशील हैं। विनय ही उनका आभूषण है। उनके अर्पण किये हुए उत्तम-उत्तम उपचार, प्रेम और भाँति भाँतिके भोगोंने हमारा मन हर लिया है। उनके बिना नागलोक या भूलोकमें कहीं भी हमें सुख नहीं मिलता। पिताजी! उनके वियोगसे पाताललोककी यह शीतल रजनी भी हमारे लिये सन्तापका कारण बनती है और उनका साथ होनेसे दिनके सूर्य भी हमें आह्लाद प्रदान करते हैं।'

पिताने कहा—'पुत्रो! अपने पुण्यात्मा पिताका वह बालक धन्य है, जिसके गुणोंका वर्णन तुम-जैसे गुणवान् लोग परोक्षमें भी कर रहे हो। संसारमें कुछ लोग ऐसे हैं, जो शास्त्रोंके ज्ञाता तो हैं, किन्तु उनमें शीलका अभाव है। कुछ लोग शीलवान् तो हैं, किन्तु शास्त्रज्ञानसे रहित हैं। जिस पुरुषमें शास्त्रोंका ज्ञान और उत्तम शील दोनों गुण समानरूपसे हों, मैं उसीको विशेष धन्यवादका पात्र समझता हूँ। जिसके मित्रोचित गुणोंका मित्रलोग और पराक्रमका शत्रुलोग भी सत्पुरुषोंके बीचमें वर्णन करते हों, उसी पुत्रसे पिता वास्तवमें पुत्रवान् होता है। ऋतध्वज तुमलोगोंके उपकारी मित्र हैं। क्या तुमलोगोंने भी उनके चित्तको प्रसन्न करनेके लिये कभी उनका कोई मनोरथ सिद्ध किया है? जिसके यहाँसे याचक कभी विमुख नहीं जाते और मित्रका कार्य कभी सिद्ध हुए बिना नहीं रहता, वही पुरुष धन्य है! उसीका जीवन और जन्म धन्य है! मेरे घरमें जो सुवर्ण आदि रत्न, वाहन, आसन तथा और कोई वस्तु उनके लिये रुचिकर हो, वह सब तुमलोग

निःशङ्क होकर उन्हें दे सकते हो। जो सुहृदोंका उपकार करते, शत्रुओंको हानि पहुँचाते तथा मेघके समान सर्वत्र दानकी वर्षा करते हैं, विद्वान्‌लोग उनकी सदा ही उन्नति चाहते हैं।

पुत्र बोले—पिताजी! वे तो कृतकृत्य हैं, उनका कोई क्या उपकार कर सकता है? उनके घरपर आये हुए सभी याचक सदा ही पूजित होते हैं, उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण की जाती हैं। उनके घरमें जो रत्न हैं, वे हमारे पातालमें कहाँ हैं। वैसे वाहन, आसन, यान, भूषण और वस्त्र यहाँ कहाँ उपलब्ध हो सकते हैं। उनमें जो विज्ञान है, वह और किसीमें नहीं है। पिताजी! वे बड़े-बड़े विद्वानोंके भी सब प्रकारके संदेहोंका भलीभाँति निवारण करते हैं। हाँ, एक कार्य उनका अवश्य है; किन्तु वह ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि सर्वसमर्थ परमेश्वरोंके सिवा हमलोगोंके लिये सर्वथा असाध्य है।

पिताने कहा—'पुत्रो! असाध्य हो या साध्य, किन्तु मैं उस उत्तम कार्यको अवश्य सुनना चाहता हूँ; विद्वान् पुरुषोंके लिये कौन-सा कार्य असाध्य है। जो अपने मन, बुद्धि तथा इन्द्रियोंको संयममें रखकर उद्यममें लगे रहते हैं, उन मनुष्योंके लिये इस पातालमें या स्वर्गमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो अज्ञात, अगम्य अथवा अप्राप्य हो। चींटी धीरे-धीरे चलती है; तथापि यदि वह चलती रहे तो सहस्रों योजन दूर चली जा सकती है। इसके विपरीत गरुड़ तेज चलनेवाले होनेपर भी यदि आगे पैर न बढ़ावें तो एक पग भी नहीं जा सकते। उद्योगी मनुष्योंके लिये कुछ गम्य और अगम्य नहीं होता, उनके लिये सब एक-सा है। कहाँ यह भूमण्डल और कहाँ ध्रुवका स्थान, जिसे पृथ्वीपर होते हुए भी राजा उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने प्राप्त कर लिया! इसलिये पुत्रो! महाभाग राजकुमारको जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, बतलाओ, जिसे देकर तुम दोनों मित्र-ऋणसे उऋण हो सको।'*

पुत्रोंने कहा—पिताजी! महात्मा ऋतध्वजने अपनी कुमारावस्थाकी एक घटना बतलायी थी, वह इस प्रकार है। राजा शत्रुजित्‌के पास पहले कभी एक श्रेष्ठ ब्राह्मण पधारे थे। उनका नाम था महर्षि गालव। वे बड़े बुद्धिमान् थे और एक श्रेष्ठ अश्व लेकर आये थे। उन्होंने राजासे कहा—'महाराज!

एक पापाचारी नीच दैत्य आकर मेरे आश्रमका विध्वंस किये देता है। वह सिंह, हाथी तथा अन्य वन-जन्तुओंका और छोटे-छोटे शरीरवाले दूसरे

---

*नाविज्ञातं न चागम्यं नाप्राप्यं दिवि चेह वा। उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम्॥
योजनानां सहस्राणि व्रजन् याति पिपीलिका। अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥
उद्यतानां मनुष्याणां गम्यागम्यं न विद्यते।
क्व भूतलं क्व च ध्रौव्यं स्थानं यत् प्राप्तवान् ध्रुवः। उत्तानपादनृपतेः पुत्रः सन् भूमिगोचरः॥
तत् कथ्यतां महाभाग कार्यवान् येन पुत्रकौ। स भूपालसुतः साधुर्येनानृण्यं भवेत् वाम्॥
(अ० २०। ३७—४०)

जीवोंका भी शरीर धारण करके अकारण आता है और समाधि एवं मौनव्रतके पालनमें लगे हुए मेरे सामने आकर ऐसे-ऐसे उपद्रव करता है, जिनसे मेरा चित्त चञ्चल हो जाता है। यद्यपि हमलोग उसे अपनी क्रोधाग्निसे भस्म कर डालनेकी शक्ति रखते हैं तथापि बड़े कष्टसे उपार्जित की हुई तपस्याका अपव्यय करना नहीं चाहते। राजन्! एक दिनकी बात है, मैं उस असुरको देखकर अत्यन्त खिन्न हो लंबी साँसें ले रहा था, इतनेमें ही यह घोड़ा आकाशसे नीचे उतरा। उसी समय यह आकाशवाणी हुई—'मुने! यह अश्व बिना थके समस्त भूमण्डलकी परिक्रमा कर सकता है। इसे सूर्यदेवने आपके लिये प्रदान किया है। आकाश-पाताल और जलमें भी इसकी गति नहीं रुकती। यह समस्त दिशाओंमें बेरोक-टोक जाता है। पर्वतोंपर चढ़नेमें भी इसे कठिनाई नहीं होती। समस्त भूमण्डलमें यह बिना थकावटके विचरण करेगा, इसलिये संसारमें इसका कुवलय (कु-भूमि, वलय-मण्डल) नाम प्रसिद्ध होगा। द्विजश्रेष्ठ! जो नीच दानव तुम्हें रात-दिन क्लेशमें डाले रहता है, उसका भी इसी अश्वपर आरूढ़ होकर राजा शत्रुजित्‌के पुत्र ऋतध्वज वध करेंगे। इस अश्वरत्नको पाकर इसीके नामपर राजकुमारकी प्रसिद्धि होगी। वे कुवलयाश्व कहलायेंगे।' 'राजन्! उस आकाशवाणीके अनुसार मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तपस्यामें विघ्न डालनेवाले उस दानवको तुम रोको; क्योंकि राजा भी प्रजाकी तपस्याके अंशका भागी होता है। भूपाल! अब मैंने यह अश्वरत्न तुमको समर्पित कर दिया। तुम अपने पुत्रको मेरे साथ चलनेकी आज्ञा दो, जिससे धर्मका लोप न होने पाये।'

गालव मुनिके यों कहनेपर धर्मात्मा राजाने मङ्गलाचारपूर्वक राजकुमार ऋतध्वजको उस अश्वरत्नपर चढ़ाया और मुनिके साथ भेज दिया। गालव मुनि उन्हें साथ ले अपने आश्रमको लौट गये।

पातालकेतुका वध और मदालसाके साथ ऋतध्वजका विवाह

पिताने पूछा—पुत्रो! महर्षि गालवके साथ जाकर राजकुमार ऋतध्वजने वहाँ जो-जो कार्य किया, उसे बतलाओ। तुमलोगोंकी कथा बड़ी अद्भुत है।

पुत्रोंने कहा—महर्षि गालवके रमणीय आश्रममें रहकर राजकुमार ऋतध्वजने ब्रह्मवादी मुनियोंके सब विघ्नोंको शान्त कर दिया। वीर कुवलयाश्व गालवाश्रममें ही निवास करते हैं, इस बातको वह मदोन्मत्त नीच दानव नहीं जानता था। इसलिये सन्ध्योपासनमें लगे हुए गालव मुनिको सतानेके लिये वह शूकरका रूप धारण करके आया। उसे देखते ही मुनिके शिष्योंने हल्ला मचाया। फिर तो राजकुमार शीघ्र ही घोड़ेपर सवार हो धनुष लेकर उसके पीछे दौड़े। उन्होंने धनुषको खूब जोरसे खींचकर एक चमकते हुए अर्धचन्द्राकार बाणसे

उसको चोट पहुँचायी। बाणसे आहत होकर वह अपने प्राण बचानेकी धुनमें भागा और वृक्षों तथा पर्वतसे घिरी हुई घनी झाड़ीमें घुस गया। वह घोड़ा भी मनके समान वेगसे चलनेवाला था। उसने बड़े वेगसे उस सुअरका पीछा किया। वाराहरूपधारी दानव तीव्र वेगसे भागता हुआ सहस्रों योजन दूर निकल गया और एक जगह पृथ्वीपर विवरके आकारमें दिखायी देनेवाले गड्ढेके भीतर बड़ी फुर्तीके साथ कूद पड़ा। इसके बाद शीघ्र ही अश्वारोही राजकुमार भी घोर अन्धकारसे भरे हुए उस भारी गड्ढेमें कूद पड़े। उसमें जानेपर राजकुमारको वह सूअर नहीं दिखायी पड़ा, बल्कि उन्हें प्रकाशसे पूर्ण पाताललोकका दर्शन हुआ। सामने ही इन्द्रपुरीके समान एक सुन्दर नगर था, जिसमें सैकड़ों सोनेके महल शोभा पा रहे थे। उस नगरके चारों ओर सुन्दर चहारदीवारी बनी हुई थी। राजकुमारने उसमें प्रवेश किया, किन्तु वहाँ उन्हें कोई मनुष्य नहीं दिखायी दिया। वे नगरमें घूमने लगे। घूमते-ही-घूमते उन्होंने एक स्त्रीको देखा, जो बड़ी उतावलीके साथ कहीं चली जा रही थी। राजकुमारने उससे पूछा—'तू किसकी कन्या है? किस कामसे जा रही है?' उस सुन्दरीने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप एक महलकी सीढ़ियोंपर चढ़ गयी। ऋतध्वजने भी घोड़ेको एक जगह बाँध दिया और उसी स्त्रीके पीछे-पीछे महलमें प्रवेश किया। उस समय उनके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो रहे थे। उनके मनमें किसी प्रकारकी शङ्का नहीं थी। महलमें पहुँचनेपर उन्होंने देखा, एक विशाल पलंग बिछा हुआ है, जो ऊपरसे नीचेतक सोनेका बना है। उसपर एक सुन्दरी कन्या बैठी थी, जो कामनायुक्त रति-सी जान पड़ती थी। चन्द्रमाके समान मुख, सुन्दर भौंहें, कुँदरूके समान लाल ओठ, छरहरा शरीर और नील कमलके समान उसके नेत्र थे। अनङ्गलताकी भाँति उस सर्वाङ्गसुन्दरी रमणीको देखकर राजकुमारने समझा, यह कोई रसातलकी देवी है।

उस सुन्दरी बालाने भी मस्तकपर काले घुँघराले बालोंसे सुशोभित, उभरी हुई छाती, स्थूल कंधों और विशाल भुजाओंवाले राजकुमारको देखकर साक्षात् कामदेव ही समझा। उनके आते ही वह सहसा उठकर खड़ी हो गयी; किन्तु उसका मन अपने वशमें न रहा। वह तुरंत ही लज्जा, आश्चर्य और दीनताके वशीभूत हो गयी। सोचने लगी—'ये कौन हैं? देवता, यक्ष, गन्धर्व, नाग अथवा विद्याधर तो नहीं आ गये? या ये कोई पुण्यात्मा मनुष्य हैं?' यों विचारकर उसने लंबी साँस ली और पृथ्वीपर बैठकर सहसा मूर्च्छित हो गयी। राजकुमारको भी कामदेवके बाणका आघात-सा लगा। फिर भी धैर्य धारण करके उन्होंने उस तरुणीको आश्वासन दिया और कहा—'डरनेकी आवश्यकता नहीं।' वह स्त्री, जिसे उन्होंने पहले महलमें जाते हुए देखा था, ताड़का पंखा लेकर व्यग्रतापूर्वक हवा करने लगी। राजकुमारने आश्वासन देकर जब उससे मूर्च्छाका कारण पूछा, तब वह बाला कुछ लज्जित हो गयी। उसने अपनी सखीको सब बातें बता दीं। फिर उस सखीने उसकी मूर्च्छाका सारा कारण, जो राजकुमारको देखनेसे ही हुई थी, विस्तारपूर्वक कह सुनाया।

वह स्त्री बोली—प्रभो! देवलोकमें विश्वावसु नामसे प्रसिद्ध एक गन्धर्वोंके राजा हैं। यह सुन्दरी उन्हींकी कन्या है। इसका नाम मदालसा है। वज्रकेतु दानवका एक भयङ्कर पुत्र है, जो शत्रुओंका नाश करनेवाला है। वह संसारमें पातालकेतुके नामसे प्रसिद्ध है, उसका निवासस्थान पातालके ही भीतर है। एक दिन यह मदालसा अपने पिताके उद्यानमें घूम रही थी। उसी समय उस दुरात्मा दानवने विकारमयी माया फैलाकर इस असहाय बालिकाको हर लिया। उस दिन मैं इसके साथ नहीं थी। सुना है, आगामी त्रयोदशीको

यह असुर इसके साथ विवाह करेगा; किन्तु जैसे शूद्र वेदकी श्रुतिका अधिकारी नहीं है, उसी प्रकार वह दानव भी इस सर्वाङ्गसुन्दरी मेरी सखीको पानेके योग्य नहीं है। अभी कलकी बात है, यह बेचारी आत्महत्या करनेको तैयार हो गयी थी। उस समय कामधेनुने आकर आश्वासन दिया—'बेटी! वह नीच दानव तुम्हें नहीं पा सकता। महाभागे! मर्त्यलोकमें जानेपर इस दानवको जो अपने बाणोंसे बींध डालेगा, वही तुम्हारा पति होगा। बहुत शीघ्र यह सुयोग प्राप्त होनेवाला है।' यह कहकर सुरभि देवी अन्तर्धान हो गयीं। मेरा नाम कुण्डला है। मैं इस मदालसाकी सखी, विन्ध्यवान्‌की पुत्री और वीर पुष्करमालीकी पत्नी हूँ। शुम्भने मेरे स्वामीको मार डाला, तबसे उत्तम व्रतोंका पालन करती हुई दिव्य गतिसे भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें विचरती रहती हूँ। अब मैं परलोक सुधारनेमें ही लगी हूँ। दुष्टात्मा पातालकेतु आज वाराहका रूप धारण करके मर्त्यलोकमें गया था। सुननेमें आया है, वहाँ मुनियोंकी रक्षाके लिये किसीने उसको अपने बाणोंका निशाना बनाया है। मैं इस बातका ठीक-ठीक पता लगानेके लिये ही गयी थी, पता लगाकर तुरंत लौट आयी। सचमुच ही किसीने उस अधम दानवको बाणसे बींध डाला है।

अब मदालसाके मूर्च्छित होनेका कारण सुनिये। मानद! आपको देखते ही आपके प्रति इसका प्रेम हो गया; किन्तु यह पत्नी होगी किसी औरकी, जिसने उस दानवको अपने बाणोंका निशाना बनाया है। यही कारण है, जिससे इसको मूर्च्छा आ गयी। अब तो जीवनभर इसे दुःख ही भोगना है; क्योंकि इसके हृदयका प्रेम तो आपमें है और पति कोई और ही होनेवाला है। सुरभिका वचन कभी अन्यथा नहीं हो सकता। मैं तो इसीके प्रेमसे दुःखी होकर यहाँ चली आयी; क्योंकि मेरे लिये अपने शरीरमें और सखीमें कोई अन्तर नहीं है। यदि यह अपनी इच्छाके अनुसार किसी वीर पतिको प्राप्त कर लेती तो मैं निश्चिन्त होकर तपस्यामें लग जाती। महामते! अब आप अपना परिचय दीजिये। आप कौन हैं? और कैसे यहाँ पधारे हैं? आप देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग अथवा किन्नरोंमेंसे तो कोई नहीं हैं? क्योंकि यहाँ मनुष्यकी पहुँच नहीं हो सकती और मनुष्यका ऐसा दिव्य शरीर भी नहीं होता। जैसे मैंने सब बातें सच-सच बतायी हैं, वैसे ही आप भी अपना सब हाल ठीक-ठीक कहिये।

कुवलयाश्वने कहा—धर्मज्ञे! तुमने जो यह पूछा है कि आप कौन हैं और कहाँसे आये हैं, इसका उत्तर सुनो; मैं आरम्भसे ही अपना सब समाचार बतलाता हूँ। शुभे! मैं राजा शत्रुजित्‌का पुत्र हूँ और पिताकी आज्ञासे मुनियोंकी रक्षाके लिये महर्षि गालवके आश्रमपर आया था। वहाँ मैं धर्मपरायण मुनियोंकी रक्षा करता था; किन्तु मेरे कार्यमें विघ्न डालनेके लिये कोई दानव शूकरका रूप धारण करके आया। मैंने उसे अर्धचन्द्राकार बाणसे बींध डाला। मेरे बाणकी चोट खाकर वह बड़े वेगसे भागा। तब मैंने भी घोड़ेपर सवार होकर उसका पीछा किया। फिर सहसा वह वाराह एक गड्ढेमें गिर पड़ा। साथ ही मेरा घोड़ा भी उसमें कूद पड़ा। उस घोड़ेपर चढ़ा हुआ मैं कुछ कालतक अन्धकारमें अकेला ही विचरता रहा। इसके बाद मुझे प्रकाश मिला और तुम्हारे ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी। मैंने पूछा भी, किन्तु तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया। फिर मैं तुम्हारे पीछे-पीछे इस सुन्दर महलमें आ गया। यह मैंने सच्ची बात बतलायी है। मैं देवता, दानव, नाग, गन्धर्व अथवा किन्नर नहीं हूँ। देवता आदि तो मेरे पूजनीय हैं। कुण्डले! मैं मनुष्य ही हूँ। तुम्हें इस विषयमें कभी कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।

यह सुनकर मदालसाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने लज्जित होकर अपनी सखीके सुन्दर मुखकी

और देखा; किन्तु कुछ बोल न सकी। उसकी सखीने फिर प्रसन्न होकर कहा—'वीर! आपकी बात सत्य है; इसमें सन्देहके लिये कोई स्थान नहीं है। मेरी सखीका हृदय और किसीको देखकर आसक्त नहीं हो सकता। अधिक कमनीय कान्ति चन्द्रमाको ही प्राप्त होती है; प्रचण्ड प्रभा सूर्यमें ही मिलती है। दैवी विभूति धन्य पुरुषको ही प्राप्त होती है। धृति धीरको और क्षमा उत्तम पुरुषको ही मिलती है। इसमें सन्देह नहीं कि आपने ही उस नीच दानवका वध किया है। भला, गोमाता सुरभि मिथ्या कैसे कहेंगी। मेरी यह सखी बड़ी भाग्यशालिनी है। आपका सम्बन्ध पाकर यह धन्य हो गयी। वीर! जिस कार्यको विधाताने ही रच रखा है, उसे अब तुम भी पूर्ण करो।'

कुण्डलाकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—'मैं पिताके अधीन हूँ, उनकी आज्ञाके बिना इस गन्धर्व-राजकन्यासे किस प्रकार विवाह करूँ।' कुण्डला बोली—'नहीं-नहीं, ऐसा न कहिये। यह देवकन्या है। आपके पिताजी इस विवाहसे प्रसन्न होंगे; अतः इसके साथ अवश्य विवाह कीजिये।'

राजकुमारने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली। तब कुण्डलाने विवाहकी सामग्री एकत्रित करके अपने कुलगुरु तुम्बुरुका स्मरण किया। वे समिधा और कुशा लिये तत्काल वहाँ आ पहुँचे। मदालसाके प्रेमसे और कुण्डलाका गौरव रखनेके लिये उन्होंने आनेमें विलम्ब नहीं किया। वे मन्त्रके ज्ञाता थे; अतः अग्नि प्रज्वलित करके उन्होंने हवन किया और मङ्गलाचारके अनन्तर कन्यादान करके वैवाहिक विधि सम्पन्न की। फिर वे तपस्याके लिये अपने आश्रमपर चले गये। तदनन्तर कुण्डलाने अपनी सखीसे कहा—'सुमुखि! तुम-जैसी सुन्दरीको राजकुमार ऋतध्वजके साथ विवाहित देखकर मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब मैं निश्चिन्त होकर तपस्या करूँगी और तीर्थोंके जलसे अपने पापोंको धो डालूँगी, जिससे फिर मेरी ऐसी दशा न हो।' इसके बाद जानेके लिये उत्सुक हो कुण्डलाने बड़ी विनयके साथ राजकुमारसे भी वार्तालाप किया। इस समय अपनी सखीके प्रति स्नेहकी अधिकतासे उसकी वाणी गद्गद हो रही थी।

कुण्डला बोली—प्रभो! आपकी बुद्धि बहुत बड़ी है। आप-जैसे लोगोंको कोई पुरुष भी उपदेश नहीं दे सकता, फिर मुझ-जैसी स्त्रियाँ तो दे ही कैसे सकती हैं; किन्तु इस मदालसाके स्नेहसे मेरा चित्त आकृष्ट हो गया तथा आपने भी अपने प्रति मेरे हृदयमें एक विश्वास उत्पन्न कर दिया है, इसीलिये मैं आपको कर्तव्यका स्मरणमात्र करा रही हूँ। पतिको चाहिये कि सदा अपनी पत्नीका भरण-पोषण करे। जब पति-पत्नी प्रेमवश एक-दूसरेके वशीभूत होते हैं, तब उन्हें धर्म, अर्थ, काम—तीनोंकी प्राप्ति होती है; क्योंकि त्रिवर्गकी प्राप्ति पति-पत्नी दोनोंके सहयोगपर ही निर्भर है। राजकुमार! स्त्रीकी सहायता लिये बिना पुरुष किसी देवता, पितर, भृत्य और अतिथियोंका पूजन नहीं कर सकता। मनुष्य जब पतिव्रता

पत्नीकी रक्षा करता है, तब वह पुत्रोत्पादनके द्वारा पितरोंको, अन्न आदिके द्वारा अतिथियोंको और पूजा-अर्चाके द्वारा देवताओंको प्रसन्न करता है। स्त्री भी पतिके बिना धर्म, अर्थ, काम एवं सन्तान नहीं पा सकती; इसलिये पति पत्नी दोनोंके सहयोगपर ही त्रिवर्गका सुख निर्भर करता है। आप दोनों नवदम्पतिके लिये ये बातें मैंने निवेदन की हैं। अब मैं अपनी इच्छाके अनुसार जा रही हूँ।'

यों कहकर कुण्डलाने अपनी सखीको गलेसे लगाया और राजकुमारको नमस्कार करके वह दिव्य गतिसे अपने अभीष्ट स्थानको चली गयी। ऋतध्वजने भी मदालसाको अपने घोड़ेपर बिठाया और पातालतलोकसे निकल जानेकी तैयारी की। यह बात दानवोंको मालूम हो गयी। उन्होंने सहसा कोलाहल मचाना आरम्भ किया—'पातालकेतु जिस कन्यारत्नको स्वर्गसे हर लाया था, उसे यह राजकुमार चुराये जाता है।' यह समाचार पाते ही परिघ, खड्ग, गदा, शूल, बाण और धनुष आदि आयुधोंसे सजी हुई दानवोंकी विशाल सेना पातालकेतुके साथ वहाँ आ पहुँची। उस समय 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए बड़े बड़े दानवोंने राजकुमार ऋतध्वजपर बाणों और शूलोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। राजकुमार भी बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने हँसते-हँसते बाणोंका जाल-सा फैला दिया और खेल-खेलमें ही दानवोंके सब अस्त्र शस्त्र काट गिराये। क्षणभरमें ही पाताललोककी भूमि ऋतध्वजके बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए खड्ग, शक्ति, ऋष्टि और सायकोंसे आच्छादित हो गयी। तदनन्तर राजकुमारने त्वाष्ट्र नामक अस्त्रका सन्धान किया और उसे दानवोंपर छोड़ दिया। उसकी प्रचण्ड ज्वालासे पातालकेतुसहित समस्त दानव दग्ध हो गये। उनकी हड्डियाँ चटख-चटखकर राख हो गयीं। जैसे कपिलमुनिकी क्रोधाग्निमें सगरपुत्र भस्म हो गये थे, उसी प्रकार ऋतध्वजकी शराग्निमें सम्पूर्ण दानव जल मरे।

इस प्रकार बड़े-बड़े दानवोंका वध करके राजकुमार फिर अपने अश्वपर सवार हुए और उस स्त्रीरत्नके साथ अपने पिताके नगरमें आये। पिताके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने पातालमें जाने, कुण्डलाके दर्शन होने, मदालसाको पाने और दानवोंसे युद्ध करने आदिका सब समाचार सुना दिया। यह सब सुनकर पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगाकर कहा—'बेटा! तुम सुपात्र और महात्मा हो। तुमने मुझे तार दिया; क्योंकि तुम्हारे द्वारा उत्तम धर्मका पालन करनेवाले मुनियोंकी भयसे रक्षा हुई है। मेरे पूर्वजोंने अपने कुलको यशसे विख्यात किया था। मैंने उस यशको फैलाया था और तुमने अनुपम पराक्रम करके उसे और भी बढ़ा दिया। पिताने जो यश, धन अथवा पराक्रम प्राप्त किया हो, उसे जो कम नहीं करता, वह पुत्र मध्यम श्रेणीका माना गया है; जो अपनी शक्तिसे पिताकी अपेक्षा भी अधिक पराक्रम दिखाये, उसे विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ कहते हैं; किन्तु जो पिताद्वारा उपार्जित

धन, वीर्य तथा यशको अपने समयमें घटा देता है, वह बुद्धिमान् पुरुषोंद्वारा अधम बताया गया है। मैंने जिस प्रकार ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी, उसी प्रकार तुमने भी की है; परन्तु पाताललोककी यात्रा और वहाँ असुरोंका विनाश—ये सब कार्य तुमने अधिक किये हैं। अतः तुम्हारी गणना उत्तम पुरुषोंमें है। बेटा! तुम धन्य हो। तुम्हारे-जैसे अधिक गुणवान् पुत्रको पाकर मैं पुण्यवानोंके लिये भी स्पृहणीय हो रहा हूँ। जिसका पुत्र बुद्धि, दान और पराक्रममें उससे बढ़ नहीं जाता, वह मनुष्य मेरे मतमें पुत्रजनित आनन्दको नहीं प्राप्त करता। उस पुरुषको धिक्कार है, जो इस लोकमें पिताके नामपर ख्याति लाभ करता है। जो पिता अपने पुत्रके कार्यसे विख्यात होता है, उसीका जन्म सफल है। जो अपने नामसे प्रसिद्ध होता है, वह सबसे उत्तम है। जो पिता और पितामहोंके नामपर ख्यात होता है, वह मध्यम है तथा जो मातृपक्ष या माताके नामसे प्रसिद्धि प्राप्त करता है, वह अधम श्रेणीका मनुष्य है।* इसलिये पुत्र! तुम धन, पराक्रम और सुखके साथ अभ्युदयशील बनो। इस गन्धर्वकन्याका तुमसे कभी वियोग न हो।'

इस प्रकार बारंबार भाँति-भाँतिके प्रिय वचन कहकर पिताने ऋतध्वजको हृदयसे लगाया और मदालसाके साथ उन्हें राजमहलमें भेज दिया। राजकुमार ऋतध्वज अपनी पत्नीके साथ पिताके नगरमें तथा उद्यान, वन एवं पर्वत-शिखरोंपर आनन्दपूर्वक विहार करते रहे। कल्याणी मदालसा प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम करती और अपने पतिके साथ रहकर आनन्द भोगती थी।

तालकेतुके कपटसे मरी हुई मदालसाकी नागराजके फणसे उत्पत्ति और ऋतध्वजका पाताललोकमें गमन

दोनों नागकुमार कहते हैं—पिताजी! तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर राजाने पुनः अपने पुत्रसे कहा—'बेटा! तुम प्रतिदिन प्रातःकाल इस अश्वपर सवार हो ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये पृथ्वीपर विचरते रहो। सैकड़ों दुराचारी दानव इस पृथ्वीपर मौजूद हैं। उनसे मुनियोंको बाधा न पहुँचे, ऐसी चेष्टा करो।' पिताकी इस आज्ञाके अनुसार राजकुमार उसी दिनसे ऐसा ही करने लगे। वे पूर्वाह्णमें ही सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। एक दिनकी बात है, वे घूमते हुए यमुना-तटपर गये। वहाँ पातालकेतुका छोटा भाई तालकेतु आश्रम बनाकर रहता था। राजकुमारने उसे देखा, वह मायावी दानव मुनिका रूप धारण किये हुए था। उसने पहलेके वैरका स्मरण करके उनसे कहा—'राजकुमार! मैं तुमसे एक बात कहता हूँ; यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उसे करो। तुम सत्यप्रतिज्ञ हो, अतः तुम्हें मेरी प्रार्थना भङ्ग नहीं करनी चाहिये। मैं धर्मके लिये यज्ञ करूँगा और उसमें अनेक इष्टियाँ करनी होंगी। इन सबके लिये इष्टका-चयन करना भी आवश्यक है; किन्तु मेरे पास दक्षिणा नहीं है। अतः वीर! तुम सुवर्णके लिये मुझे अपने गलेका यह आभूषण दे दो और मेरे इस आश्रमकी रक्षा करो। तबतक मैं जलके भीतर प्रवेश करके प्रजाकी पुष्टिके लिये वरुण देवता-सम्बन्धी वैदिक मन्त्रोंसे वरुण देवताकी स्तुति करता हूँ। स्तुतिके पश्चात् जल्दी ही लौटूँगा।' उसके यों कहनेपर राजकुमारने उसे प्रणाम किया और अपने कण्ठका आभूषण उतारकर दे दिया।

---

* आत्मना श्रूयते धन्यो मध्यः पितृपितामहैः। मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिमेति नराधमः॥ (२१।१०२)

फिर इस प्रकार कहा—'आप निश्चिन्त होकर जाइये; जबतक लौट नहीं आयेंगे, तबतक यहीं मैं आपके आश्रमके समीप ठहरूँगा।'

राजकुमारके इस प्रकार कहनेपर तालकेतु नदीके जलमें डुबकी लगाकर अदृश्य हो गया और वे उसके मायानिर्मित आश्रमकी रक्षा करने लगे। जलके भीतरसे वह राजकुमारके नगरमें चला गया और मदालसा तथा अन्य लोगोंके समक्ष पहुँचकर इस प्रकार बोला।

तालकेतुने कहा—वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके समीप गये थे और तपस्वियोंकी रक्षा करते हुए किसी दुष्ट दैत्यसे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने अपनी शक्तिभर युद्ध किया और बहुत-से ब्राह्मणद्वेषी दैत्योंको मौतके घाट उतारा; फिर उस पापी दैत्यने मायाका सहारा लेकर शूलसे उनकी छाती छेद डाली। मरते समय उन्होंने अपने गलेका यह आभूषण मुझे दिया; फिर तपस्वियोंने मिलकर उनका अग्निसंस्कार कर दिया। उनका अश्व भयभीत हो नेत्रोंसे आँसू बहाता हुआ हिनहिनाता रहा। उसी अवस्थामें वह दुरात्मा दानव उसे अपने साथ पकड़ ले गया। मुझ पापाचारी निष्ठुरने यह सब कुछ अपनी आँखों देखा है। इसके बाद जो कुछ कर्तव्य हो, वह आपलोग करें। अपने हृदयको आश्वासन देनेके लिये यह गलेका हार ग्रहण कीजिये।

यों कहकर तालकेतुने वह हार पृथ्वीपर छोड़ दिया और जैसे आया था, वैसे ही चला गया। यह दुःखपूर्ण समाचार सुनकर वहाँके लोग शोकसे व्याकुल हो मूर्च्छित हो गये; फिर थोड़ी देरमें होशमें आनेपर रनिवासकी सभी स्त्रियाँ, राजा तथा महारानी भी अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगी। मदालसाने उनके गलेके आभूषणको देखा और पतिको मारा गया सुनकर तुरंत ही अपने प्यारे प्राणोंको त्याग दिया।* तदनन्तर पुरवासियों तथा महाराजके

महलमें भी बड़े जोरसे करुण-क्रन्दन होने लगा। राजा शत्रुजित्‌ने जब मदालसाको पतिके बिना मृत्युको प्राप्त हुई देखा, तब कुछ विचार करके मनको स्थिर किया और वहाँ शोक करते हुए सब लोगोंसे कहा—'प्रजाजनो और देवियो! मैं तुम्हारे और अपने लिये रोनेका कोई कारण नहीं देखता। सभी प्रकारके सम्बन्ध अनित्य होते हैं। इस बातका भलीभाँति विचार करनेपर क्या पुत्रके लिये शोक करूँ और क्या पुत्रवधूके लिये। सोचनेसे ऐसा जान पड़ता है, ये दोनों कृतकृत्य होनेके कारण शोकके योग्य नहीं हैं। जो सदा मेरी सेवामें लगा रहता था और मेरे ही कहनेसे ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर हो मृत्युको प्राप्त हुआ, वह मेरा पुत्र बुद्धिमान् पुरुषोंके लिये शोकका विषय कैसे हो सकता है। जो अवश्य जानेवाला है, उस शरीरको यदि मेरे पुत्रने ब्राह्मणोंकी रक्षामें लगा दिया तो यह तो महान् अभ्युदयका

* मदालसा तु तद् दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम्। तत्याजाशु प्रियान् प्राणान् श्रुत्वा च निहतं पतिम्॥

(अ० २२। २५)

कारण है। इसी प्रकार उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई यह मेरी पुत्रवधू यदि इस प्रकार अपने स्वामीमें अनुरक्त हो परलोकमें उसके पास गयी है तो उसके लिये भी शोक करना कैसे उचित हो सकता है; क्योंकि स्त्रियोंके लिये पतिके अतिरिक्त दूसरा कोई देवता नहीं है। यदि यह पतिके न रहनेपर भी जीवित रहती तो हमारे लिये, बन्धु बान्धवोंके लिये तथा अन्य दयालु पुरुषोंके लिये शोकके योग्य हो सकती थी। वह तो अपने स्वामीके वधका समाचार सुनकर तुरंत ही उनके पीछे चली गयी है, अतः विद्वान् पुरुषोंके लिये शोकके योग्य नहीं है।* शोक तो उन स्त्रियोंके लिये करना चाहिये, जो पतिवियोगिनी होकर भी जीवित हों। जो पतिके साथ ही प्राण त्याग देती हैं, वे कदापि शोकके योग्य नहीं हैं। मदालसा बड़ी कृतज्ञ थी; इसलिये इसने पतिवियोगका दुःख नहीं भोगा। जो इहलोक तथा परलोकमें सब प्रकारके सौख्य प्रदान करनेवाला है, उस पतिको कौन स्त्री मनुष्य समझेगी। अतः मेरा वह पुत्र ऋतध्वज, यह पुत्रवधू, मैं तथा ऋतध्वजकी माता—इनमेंसे कोई भी शोकके योग्य नहीं है। मेरे पुत्रने ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण त्यागकर हम सबका उद्धार कर दिया। संग्राममें ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये प्राणत्याग करके मेरे पुत्रने अपनी माताके सतीत्व, वंशकी निर्मलता तथा अपने पराक्रमका त्याग नहीं किया है।'

तदनन्तर कुवलयाश्वकी माताने अपने पतिकी ओर देखकर कहा—

'राजन्! मेरी माता और बहिनको भी ऐसी प्रसन्नता नहीं प्राप्त हुई, जैसी कि मुनियोंकी रक्षाके लिये पुत्रका वध सुनकर मुझे हुई है। जो शोकमें पड़े हुए बन्धु-बान्धवोंके सामने रोगसे क्लेश उठाते और अत्यन्त दुःखी होकर लंबी साँसें खींचते हुए प्राणत्याग करते हैं, उनकी माताका सन्तान उत्पन्न करना व्यर्थ है। जो गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर हो रणभूमिमें निर्भयतापूर्वक युद्ध करते हुए शस्त्रोंसे आहत होकर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे ही इस पृथ्वीपर धन्य मनुष्य हैं। जो याचकों, मित्रों तथा शत्रुओंसे कभी विमुख नहीं होता, उसीसे पिता वस्तुतः पुत्रवान् होता है और माता उसीके कारण वीर पुत्रकी जननी मानी जाती है। पुत्रके जन्मकालमें माताको जो क्लेश उठाना पड़ता है, वह तभी सफल होता है जब पुत्र शत्रुओंपर विजय प्राप्त करे अथवा युद्धमें लड़ता हुआ मारा जाय।'†

---

*राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम्। प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृश्य सुस्थमानसः॥
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा। सर्वेषामेव संचिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम्॥
किं नु शोचामि तनयं किं नु शोचाम्यहं स्नुषाम्। विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्येऽशोच्यावुभावपि॥
यच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद् द्विजरक्षणतत्परः। प्राप्तो मे यः सुतो मृत्युं कथं शोच्यः स धीमताम्॥
अवश्यं याति यद्देहं तद् द्विजानां कृते यदि। मम पुत्रेण सन्त्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत्॥
इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्तर्येवमनुव्रता। कथं नु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यन्न दैवतम्॥
अस्माकं बान्धवानां च तथान्येषां दयावताम्। शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी॥
या तु भर्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी। भर्तारमनुयातेयं न शोच्यातो विपश्चिताम्॥
(अ० २२। २७—३४)

†न मे माता न मे स्वसा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी। श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया॥
शोचतां बान्धवानां ये निश्वसन्तोऽतिदुःखिताः। म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथाप्रजा॥
संग्रामे युध्यमाना येऽभीता गोद्विजरक्षणे। क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यन्ते त एव भुवि मानवाः॥
अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषां च पराङ्मुखम्। यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः॥
गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा। यदारिविजयी वा स्यात् संग्रामे वा हतः सुतः॥
(अ० २२। ४१—४५)

तदनन्तर राजा शत्रुजित्‌ने अपनी पुत्रवधू मदालसाका दाह-संस्कार किया और नगरसे बाहर निकलकर पुत्रको जलाञ्जलि दी। तालकेतु फिर यमुनाजलसे निकलकर राजकुमारके पास गया और प्रेमपूर्वक मीठी वाणीमें बोला—'राजकुमार! अब तुम जाओ। तुमने मुझे कृतार्थ कर दिया। तुम जो यहाँ अविचल भावसे खड़े रहे, इससे मैंने बहुत दिनोंकी अपनी अभिलाषा पूरी कर ली। मुझे महात्मा वरुणकी प्रसन्नताके लिये वारुण यज्ञका अनुष्ठान करनेकी बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी; वह सब कार्य अब मैंने पूरा कर लिया।' उसके यों कहनेपर राजकुमार उसको प्रणाम करके गरुड़ तथा वायुके समान वेगवाले उसी अश्वपर आरूढ़ हुए और अपने पिताके नगरकी ओर चल दिये।

राजकुमार ऋतध्वज बड़े वेगसे अपने नगरमें आये। उस समय उनके मनमें माता-पिताके चरणोंकी वन्दना करने तथा मदालसाको देखनेकी प्रबल इच्छा थी। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, सामने आनेवाले सभी लोग उद्विग्न हैं, किसीके मुखपर प्रसन्नताका चिह्न नहीं है; किन्तु साथ ही सबकी आकृतिसे आश्चर्य टपक रहा है और मुखपर अत्यन्त

हर्ष छा रहा है। पिता-माता तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंने उन्हें छातीसे लगाया और 'चिरंजीवी रहो वत्स!' यह कहकर कल्याणमय आशीर्वाद दिया। राजकुमार भी सबको प्रणाम करके आश्चर्यमग्न हो पूछने लगे—'यह क्या बात है?' पितासे पूछनेपर उन्होंने बीती हुई सारी बातें कह सुनायीं। अपनी मनोरमा भार्या मदालसाकी मृत्युका समाचार सुनकर तथा माता-पिताको सामने खड़ा देख वे लज्जा और शोकके समुद्रमें डूब गये और मन-ही-मन सोचने लगे—'हाय! उस साध्वी बालाने मेरी मृत्युकी बात सुनकर प्राण त्याग दिये; फिर भी मैं जीवित हूँ। मुझ निष्ठुरको धिक्कार है। अहो! मैं क्रूर हूँ, अनार्य हूँ, जो मेरे ही लिये मृत्युको प्राप्त हुई उस मृगनयनी पत्नीके बिना भी अत्यन्त निर्दय होकर जी रहा हूँ।' इसके बाद उन्होंने अपने मनके आवेगको रोका और मोह छोड़कर विचारना आरम्भ किया—''वह मर गयी; इसलिये यदि मैं भी उसके निमित्त अपने प्राण त्याग दूँ तो इससे उस बेचारीका क्या उपकार हुआ? यह कार्य तो स्त्रियोंके लिये ही प्रशंसनीय है। यदि बारंबार 'हा प्रिये! हा प्रिये!!' कहकर दीनभावसे रोता हूँ तो यह भी मेरे लिये प्रशंसाके योग्य बात नहीं है। मेरा कर्तव्य तो है—पिताजीकी सेवा करना। यह जीवन उन्हींके अधीन है; अतः मैं कैसे इसका त्याग कर सकता हूँ। किन्तु आजसे स्त्रीसम्बन्धी भोगका परित्याग कर देना मैं अपने लिये उचित समझता हूँ। यद्यपि इससे भी उस तन्वङ्गीका कोई उपकार नहीं होता, तथापि मुझको तो सर्वथा विषयभोगका त्याग ही करना उचित है। इससे उपकार अथवा अपकार कुछ भी नहीं होता। जिसने मेरे लिये प्राण तक त्याग दिया, उसके लिये मेरा यह त्याग बहुत थोड़ा है।'

ऐसा निश्चय करके उन्होंने मदालसाके लिये जलाञ्जलि दी और उसके श्राद्धका कर्म पूरा

करके इस प्रकार प्रतिज्ञा की।

ऋतध्वज बोले—यदि इस जन्ममें मेरी सुन्दरी पत्नी मदालसा मुझे फिर न मिल सकी तो दूसरी कोई स्त्री मेरी जीवनसङ्गिनी नहीं बन सकती। मृगके समान विशाल नेत्रोंवाली गन्धर्वराजकुमारी मदालसाके अतिरिक्त अन्य किसी स्त्रीके साथ मैं सम्भोग नहीं कर सकता। यह मैंने सर्वथा सत्य कहा है।*

दोनों नागकुमार कहते हैं—पिताजी! इस प्रकार मदालसाके बिना वे स्त्रीसम्बन्धी समस्त भोगोंका परित्याग करके अब अपने समवयस्क मित्रोंके साथ मन बहलाते हैं। यही उनका सबसे बड़ा कार्य है। परन्तु यह तो ईश्वरकोटिमें पहुँचे हुए व्यक्तियोंके लिये भी अत्यन्त दुष्कर है, फिर अन्य लोगोंकी तो बात ही क्या है।

नागराज अश्वतर बोले—पुत्रो! यदि किसी कार्यको असम्भव मानकर मनुष्य उसके लिये उद्योग नहीं करेंगे तो उद्योग छोड़नेसे उनकी भारी हानि होगी; इसलिये मनुष्यको अपने पौरुषका त्याग न करते हुए कर्मका आरम्भ करना चाहिये; क्योंकि कर्मकी सिद्धि दैव और पुरुषार्थ दोनोंपर अवलम्बित है। इसलिये मैं तपस्याका आश्रय लेकर ऐसा यत्न करूँगा, जिससे इस कार्यकी शीघ्र ही सिद्धि हो।

यों कहकर नागराज अश्वतर हिमालय पर्वतके प्लक्षावतरण-तीर्थमें, जो सरस्वतीका उद्गमस्थान है, जाकर दुष्कर तपस्या करने लगे। वे तीनों समय स्नान करते और नियमित आहारपर रहते हुए सरस्वतीदेवीमें मन लगाकर उत्तम वाणीमें उनकी स्तुति करते थे।

अश्वतर उवाच

जगद्धात्रीमहं देवीमारिराधयिषुः शुभाम्।
स्तोष्ये प्रणम्य शिरसा ब्रह्मयोनिं सरस्वतीम्॥
सदसद् देवि यत्किंचिन्मोक्षवन्धार्थवत्पदम्।
तत्सर्वं त्वय्यसंयोगं योगवद् देवि संस्थितम्॥
त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अक्षरं परमं देवि संस्थितं परमाणुवत्॥
अक्षरं परमं ब्रह्म जगच्चैतत्क्षरात्मकम्।
दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः॥
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः।

अश्वतरने कहा—जो सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करनेवाली और वेदोंकी जननी हैं, उन कल्याणमयी सरस्वती देवीको प्रसन्न करनेकी इच्छासे मैं उनके चरणोंमें शीश झुकाता और उनकी स्तुति करता हूँ। देवि! मोक्ष और बन्धनरूप अर्थसे युक्त जो कुछ भी सत् और असत् पद है, वह सब तुममें असंयुक्त होकर भी संयुक्तकी भाँति स्थित है। देवि! जिसमें सब कुछ प्रतिष्ठित है, वह परम अक्षर तुम्हीं हो। परम अक्षर परमाणुकी भाँति स्थित है। अक्षररूप परब्रह्म और क्षररूप यह जगत् तुममें ही स्थित है। जैसे काष्ठमें अग्नि तथा पार्थिव सूक्ष्म परमाणु भी रहते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और यह सम्पूर्ण जगत् तुममें स्थित है।

ओङ्काराक्षरसंस्थानं यत्तु देवि स्थिरास्थिरम्॥
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च।
त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्॥
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा।
त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो दोषास्तथाश्रमाः॥
त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः।
एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति॥
विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः।
सोमसंस्था हविःसंस्थाः पाकसंस्थाश्च सप्त याः॥
तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः।

देवि! ओंकार अक्षरके रूपमें जो तुम्हारा श्रीविग्रह है, वह स्थावर-जङ्गमरूप है। उसमें जो तीन मात्राएँ हैं, वे ही सब कुछ हैं। अस्ति-नास्ति (सत्-असत्) रूपसे व्यवहृत होनेवाला जो कुछ भी है, वह सब उन्हींमें स्थित है। तीन लोक, तीन

---

* सा मृते मृगशावाक्षी गन्धर्वतनया महम्। न भोक्ष्ये योषितं काञ्चिदिति सत्यं मयोदितम्॥ (अ० २१। २०)

वेद, तीन विद्याएँ, तीन अग्नि, तीन ज्योति, धर्म आदि तीन वर्ग, तीन गुण, तीन शब्द, तीन दोष, तीन आश्रम, तीन काल, तीन अवस्थाएँ, त्रिविध पितर, दिन-रात और सन्ध्या—ये सभी तीन मात्राओंके अन्तर्गत हैं। देवि सरस्वति! इस प्रकार यह सब तुम्हारा ही स्वरूप है। भिन्न भिन्न प्रकारके दृष्टिकोण रखनेवाले व्यक्तियोंके लिये जो ब्रह्मके आदि एवं सनातन स्वरूपभूत सात प्रकारकी सोमयज्ञसंस्थाएँ[1], सात प्रकारकी हविर्यज्ञ[2]-संस्थाएँ तथा सात प्रकारकी पाकयज्ञसंस्थाएँ[3] वेदमें वर्णित हुई हैं, उन सबका अनुष्ठान ब्रह्मवादी पुरुष तुम्हारे अङ्गभूत मन्त्रोंके उच्चारणसे ही करते हैं।

अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्धमात्राश्रितं परम्॥
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम्।
तवैव च परं रूपं यन्न शक्यं मयेरितुम्॥
न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते।
इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्रार्कौ ज्योतिरेव च॥
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम्।
सांख्यवेदान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम्॥
अनादिमध्यनिधनं सदसन्न सदेव तु।
एकं त्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाश्रितम्॥
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च षट्काख्यं त्रिगुणाश्रयम्।
नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभविकं परम्॥
सुखासुखमहत्सौख्यं रूपं तव विभाव्यते।
एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत्॥
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम्।

उक्त तीन मात्राओंसे परे जो अर्धमात्राके आश्रित बिन्दु है, उसका वाणीद्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता। वह अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा परिणामशून्य है। देवि! वह आपका ही स्वरूप है, जिसका वर्णन मेरे द्वारा असम्भव है। मुख, जीभ, तालु और ओठ आदि किसी भी स्थानसे उसका उच्चारण नहीं हो सकता। इन्द्र, वसु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि भी वही है। वही सम्पूर्ण जगत्का निवासस्थान, जगत्स्वरूप, जगत्का ईश्वर एवं परमेश्वर है। सांख्य, वेदान्त और वेदोंमें उसीका प्रतिपादन हुआ है। अनेकों शाखाओंमें उसीके स्वरूपका निश्चय किया गया है। वह आदि-अन्तसे रहित है तथा सत्-असत्से विलक्षण होता हुआ भी सत्स्वरूप ही है। अनेक रूपोंमें प्रतीत होता हुआ भी एक है और एक होकर भी जगत्के भेदोंका आश्रय लेकर अनेक है। वह नाम-रूपसे रहित है। छः गुण, छः वर्ग तथा तीन गुण भी उसीके आश्रित हैं। वह एक ही परम शक्तिमान् तत्त्व है, जो नाना प्रकारकी शक्ति रखनेवाले जीवोंमें शक्तिका सञ्चार करता रहता है। सुख, दुःख तथा महासौख्य—सब उसी अर्धमात्रारूप तुरीयपदके स्वरूप हैं। इस प्रकार तीनों मात्राओंसे अतीत जो तुरीय धामरूप ब्रह्म है, वह तुम्हींमें अभिव्यक्त होता है। देवि! इस तरह सकल, निष्कल, अद्वैतनिष्ठ तथा द्वैतनिष्ठ जो ब्रह्म है, वह भी तुमसे व्याप्त है।

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
ये वा स्थूला ये च सूक्ष्मातिसूक्ष्माः।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा
तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धिः॥
यच्चामूर्तं यच्च मूर्तं समस्तं
यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किञ्चित्।
यद्दिव्येऽस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा
तत्सम्बद्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च॥

जो पदार्थ नित्य हैं, जो विनाशशील हैं, जो स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जो इस पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें या और किसी

---

१. अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र तथा आप्तोर्याम—ये सात सोमयज्ञसंस्थाएँ हैं।

२. अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुबन्ध तथा सौत्रामणी—ये सात हविर्यज्ञसंस्थाएँ हैं।

३. हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण तथा अष्टकाहोम—ये सात पाकयज्ञसंस्थाएँ हैं।

स्थानमें देखे जाते हैं, उन सबकी उपलब्धि तुम्हींसे होती है। मूर्त, अमूर्त, समस्त भूत अथवा एक-एक भूत जो कुछ भी द्युलोक, पृथ्वी, आकाश या अन्य स्थानमें उपलब्ध होता है, वह सब तुम्हारे ही स्वर और व्यञ्जनोंसे सम्बद्ध है।

इस प्रकार स्तुति करनेपर श्रीविष्णुकी जिह्वारूपा सरस्वतीदेवीने प्रकट हो महात्मा अश्वतर नागसे कहा—'कम्बलके भाई नागराज अश्वतर! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे बताओ। मैं तुम्हें वर दूँगी।'

अश्वतर बोले—देवि! पहले तो आप कम्बलको ही मुझे सहायकरूपमें दीजिये और हम दोनों भाइयोंको सङ्गीतके समस्त स्वरोंका ज्ञान करा दीजिये।

सरस्वतीने कहा—नागराज! सात स्वर, सातों ग्राम, राग, सातों गीत, सातों मूर्च्छनाएँ, उनचास प्रकारकी तानें और तीन ग्राम—इन सबको तुम और कम्बल भी गा सकते हो। इसके सिवा मेरी कृपासे तुम्हें चार प्रकारके पद, तीन ताल और तीन लयोंका भी ज्ञान हो जायगा। मैंने तीनों यति और चारों प्रकारके बाजोंका ज्ञान भी तुम्हें दे दिया। यह सब तो मेरे प्रसादसे तुम्हें मिलेगा ही; और भी इसके अन्तर्गत जो स्वर-व्यञ्जनसम्बन्धी विज्ञान है, वह सब भी तुमको और कम्बलको मैंने प्रदान किया। तुम दोनों भाई सङ्गीतकी सम्पूर्ण कलामें जितने कुशल होओगे, वैसा भूलोक, देवलोक और पाताललोकमें भी दूसरा कोई नहीं होगा।

सबकी जिह्वारूपा सरस्वतीदेवी यों कहकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। उन दोनों भाइयोंको सरस्वतीजीके कथनानुसार पद, ताल और स्वर आदिका उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। तदनन्तर वे कैलासशिखरपर निवास करनेवाले भगवान् शङ्करकी आराधना करनेके लिये वहाँ गये और वीणाकी लयके साथ सात प्रकारके गीतोंसे शङ्करजीको प्रसन्न करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करने लगे। प्रातः-काल, रात्रिमें, मध्याह्नके समय और दोनों सन्ध्याओंमें वे भगवत्परायण होकर भगवान् शङ्करकी स्तुति करने लगे। बहुत समयतक स्तुति करनेके बाद उनके गीतसे भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए और बोले—'वर माँगो।' तब कम्बलसहित अश्वतरने महादेवजीको प्रणाम करके कहा—'भगवन्! यदि

आप हम दोनोंपर प्रसन्न हैं तो हमें मनोवाञ्छित वर दें। कुवलयाश्वकी पत्नी मदालसा, जो अब मर चुकी है, पहलेकी ही अवस्थामें मेरी कन्याके रूपमें प्रकट हो। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण हो, पहले ही जैसी उसकी कान्ति हो तथा वह योगिनी एवं योगविद्याकी जननी होकर मेरे घरमें उत्पन्न हो।'

महादेवजीने कहा—नागराज! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब मेरे प्रसादसे निश्चय ही पूर्ण होगा। श्राद्धका दिन आनेपर तुम उसमें दिये हुए मध्यम पिण्डको शुद्ध एवं पवित्रचित्त होकर खा लेना। उसके खा लेनेपर तुम्हारे मध्यम फणसे कल्याणी मदालसा जैसे मरी है, उसी रूपमें उत्पन्न होगी। तुम इसी कामनाको मनमें लेकर उस दिन पितरोंका तर्पण करना, इससे वह तत्काल ही तुम्हारे मध्यम फणसे प्रकट हो जायगी।

यह सुनकर वे दोनों भाई महादेवजीके चरणोंमें प्रणाम करके बड़े सन्तोषके साथ पुनः रसातलमें लौट आये। अश्वतरने उसी प्रकार श्राद्ध किया और मध्यम पिण्डका विधिपूर्वक भोजन किया।

फिर जब उक्त मनोरथको लेकर वे तर्पण करने लगे, उस समय उनके साँस लेते हुए मध्यम फणसे सुन्दरी मदालसा तत्काल प्रकट हो गयी। नागराजने यह रहस्य किसीको नहीं बताया। मदालसाको महलके भीतर गुप्तरूपसे स्त्रियोंके संरक्षणमें रख दिया। इधर नागराजके पुत्र प्रतिदिन भूलोकमें जाते और ऋतध्वजके साथ देवताओंकी भाँति क्रीड़ा करते थे। एक दिन नागराजने प्रसन्न होकर अपने पुत्रोंसे कहा—'मैंने पहले तुमलोगोंको जो कार्य बताया था, उसे तुम क्यों नहीं करते? पुत्रो! राजकुमार ऋतध्वज हमारे उपकारी और सम्मानदाता हैं, फिर उनका भी उपकार करनेके लिये तुमलोग उन्हें मेरे पास क्यों नहीं ले आते?'

अपने स्नेही पिताके यों कहनेपर वे दोनों मित्रके नगरमें गये और कुछ बातचीतका प्रसङ्ग चलाकर उन्होंने कुवलयाश्वको अपने घर चलनेके लिये कहा। तब राजकुमारने उन दोनोंसे कहा—'सखे! यह घर भी तो आप ही दोनोंका है। धन, वाहन, वस्त्र आदि जो कुछ भी मेरा है, वह सब आपका भी है। यदि आपका मुझपर प्रेम है तो आप धन-रत्न आदि जो कुछ किसीको देना चाहें, यहाँसे लेकर दें। दुर्दैवने मुझे आपके स्नेहसे इतना वञ्चित कर दिया कि आप मेरे घरको अपना नहीं समझते। यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हों, अथवा यदि आपका मुझपर अनुग्रह हो तो मेरे धन और गृहको आपलोग अपना ही समझें। आपलोगोंका जो कुछ है, वह मेरा है और मेरा आपलोगोंका है। आपलोग मेरे बाहरी प्राण हैं, इस बातको सत्य मानें। मैं अपने हृदयकी शपथ दिलाकर कहता हूँ, आप मुझपर कृपा करके फिर ऐसी भेदभावको सूचित करनेवाली बात कभी मुँहसे न निकालें।'

यह सुनकर उन दोनों नागकुमारोंके मुख स्नेहके आँसुओंसे भीग गये और वे कुछ प्रेमपूर्ण रोषसे बोले—'ऋतध्वज! तुम जो कुछ कहते हो, उसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। हमारे मनमें भी

वैसा ही भाव है; परन्तु हमारे महात्मा पिताने बार-बार कहा है कि मैं कुवलयाश्वको देखना चाहता हूँ।' इतना सुनते ही कुवलयाश्व अपने सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये और यह कहकर कि 'पिताजीकी जैसी आज्ञा है, वही करूँगा' वे पृथ्वीपर उनके उद्देश्यसे प्रणाम करने लगे।

कुवलयाश्व बोले—मैं धन्य हूँ, अत्यन्त पुण्यात्मा हूँ, मेरे समान भाग्यशाली दूसरा कौन है; क्योंकि आज पिताजी मुझे देखनेकी इच्छा करते हैं। अतः मित्रो! आपलोग उठें और उनके पास चलें। मैं पिताजीके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ, उनकी इस आज्ञाका क्षणभर भी उल्लङ्घन करना नहीं चाहता।

यों कहकर राजकुमार ऋतध्वज उन दोनों नागकुमारोंके साथ नगरसे बाहर निकले और पुण्यसलिला गोमतीके तटपर गये। फिर वे सब लोग गोमतीकी बीच धारामें उतरकर चलने लगे। राजकुमारने सोचा—'नदीके उस पार इन दोनोंका घर होगा।' इतनेमें ही उन नागकुमारोंने उन्हें खींचकर पाताल पहुँचा दिया। वहाँ जानेपर उन्होंने अपने दोनों मित्रोंको स्वस्तिकके लक्षणोंसे सुशोभित सुन्दर नागकुमारोंके रूपमें देखा। वे फणोंकी मणिसे देदीप्यमान हो रहे थे। उन्हें इस रूपमें देखकर राजकुमारके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उन्होंने मुसकाते हुए प्रेमपूर्वक कहा—'वाह, यह तो अच्छा रहा।' पातालमें कहीं तो वीणा और वेणुकी मधुर ध्वनिके साथ सङ्गीतके शब्द सुनायी देते थे। कहीं मृदङ्ग और ढोल आदि बाजे बज रहे थे। सैकड़ों मनोहर भवन चारों ओर दृष्टिगोचर होते थे। इस प्रकार अपने प्रिय नागकुमारोंके साथ पातालकी शोभा निहारते हुए राजकुमार ऋतध्वज आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जानेके बाद सबने नागराजके महलमें प्रवेश किया। नागराज अश्वतर सोनेके सिंहासनपर, जिसमें मणि, मूँगे और वैदूर्य आदि रत्नोंकी झालरें लगी थीं, विराजमान थे। उनके अङ्गोंमें दिव्य हार एवं दिव्य

वस्त्र शोभा पा रहे थे। कानोंमें मणिमय कुण्डल झिलमिला रहे थे। सफेद मोतियोंका मनोहर हार वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहा था और भुजाओंमें भुजबंद सुशोभित थे। दोनों नागकुमारोंने 'यही हमारे पिताजी हैं' यों कहकर राजकुमारको उनका दर्शन कराया और पिताजीसे यह निवेदन किया कि 'यही हमारे मित्र वीर कुवलयाश्व हैं।' ऋतध्वजने नागराजके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। नागराजने उन्हें बलपूर्वक उठाया और खूब कसकर छातीसे लगा लिया। फिर उनका मस्तक सूँघकर कहा—'बेटा! चिरंजीवी रहो। शत्रुओंका नाश करके पिता-माताकी सेवा करो। वत्स! तुम धन्य हो; क्योंकि मेरे पुत्रोंने परोक्षमें भी मुझसे तुम्हारे असाधारण गुणोंकी प्रशंसा की है। तुम मन, वाणी और शरीरकी चेष्टाओंके साथ अपने गुण-गौरवसहित सदा बढ़ते रहो। गुणवानका ही जीवन प्रशंसनीय है। गुणहीन मनुष्य तो जीते-जी ही मरेके समान हैं। गुणवान् पुत्र पिता-माताको शान्ति एवं सन्तोष प्रदान करता है; देवता, पितर, ब्राह्मण, मित्र, याचक, दुःखी तथा

बन्धु-बान्धव भी गुणवान् पुरुषके चिरंजीवी होनेकी अभिलाषा करते हैं। जिनकी कभी निन्दा नहीं हुई, जो दीन-दुखियोंपर दया करते तथा आपत्तिग्रस्त मनुष्य जिनकी शरण लेते हैं, ऐसे गुणवान् पुरुषोंका ही जन्म सफल है।'

वीर कुवलयाश्वसे यों कहकर उनका स्वागत-सत्कार करनेके लिये नागराज अपने पुत्रोंसे बोले—'बेटा! क्रमशः स्नान आदि सब कार्य पूरा करके इन्हें इच्छानुसार भोजन कराओ। उसके बाद हमलोग इनसे मनको प्रसन्न करनेवाली बातें करते हुए कुछ कालतक एक साथ बैठेंगे।' राजा शत्रुजित्‌के पुत्रने चुपचाप उनकी आज्ञा स्वीकार की। तत्पश्चात् सत्यवादी नागराजने अपने पुत्रों तथा राजकुमारके साथ प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया।

ऋतध्वजको मदालसाकी प्राप्ति, बाल्यकालमें अपने पुत्रोंको मदालसाका उपदेश

सुमति कहते हैं—नागराज महात्मा अश्वतर जब भोजन कर चुके, तब उनके पुत्र और राजकुमार ऋतध्वज—तीनों उनके पास आकर बैठे। नागराजने मनको प्रिय लगनेवाली बातें कहकर अपने पुत्रोंके सखाको प्रसन्न किया और पूछा—'आयुष्मन्! आज तुम मेरे घरपर आये हो। अतः जिससे तुम्हें सुख मिले, ऐसी किसी वस्तुके लिये यदि तुम्हारी इच्छा हो तो बताओ। जैसे पुत्र अपने पितासे मनकी बात कहता है, उसी प्रकार तुम भी निःशङ्क होकर मुझसे अपना मनोरथ कहो। सोना, चाँदी, वस्त्र, वाहन, आसन अथवा और कोई अत्यन्त दुर्लभ एवं मनोवाञ्छित वस्तु मुझसे माँगो।'

कुवलयाश्वने कहा—भगवन्! आपके प्रसादसे मेरे पिताके घरमें आज भी सुवर्ण आदि सभी बहुमूल्य वस्तुएँ मौजूद हैं। इन सब वस्तुओंकी मुझे आवश्यकता नहीं है। जबतक पिताजी हजारों वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करते हैं और आप पाताललोकका राज्य करते हैं, तबतक मेरा मन याचना करनेके लिये उत्सुक नहीं हो सकता। जिनके पिता जीवित हैं, वे परम सौभाग्यशाली और पुण्यात्मा हैं। भला, मेरे पास क्या नहीं है। सज्जन मित्र, नीरोग शरीर, धन और यौवन—सभी कुछ तो है। जो इस बातकी चिन्ता न करके कि मेरे घरमें धन है या नहीं—पिताकी भुजाओंकी छत्रच्छायामें रहते हैं, वे ही सुखी हैं। जो लोग बचपनसे ही पितृहीन होकर कुटुम्बका भार वहन करते हैं, उनका सुखभोग छिन जानेके कारण मैं तो यही समझता हूँ कि विधाताने ही उन्हें सौभाग्यसे वञ्चित कर रखा है। मैं तो आपकी कृपासे पिताजीके दिये हुए धन-रत्न आदिके भंडारमेंसे प्रतिदिन याचकोंको, उनकी इच्छाके अनुसार दान देता रहता हूँ। यहाँ आकर मैंने अपने मुकुटसे जो आपके दोनों चरणोंका स्पर्श किया तथा आपके शरीरसे मेरा स्पर्श हुआ, इसीसे मैं सब कुछ पा गया।

राजकुमारका यह विनययुक्त वचन सुनकर नागराज अश्वतरने प्रेमपूर्वक कहा—'यदि मुझसे रत्न और सुवर्ण आदि लेनेका तुम्हारा मन नहीं होता तो और ही कोई वस्तु जो तुम्हारे मनको प्रसन्न कर सके, माँगो। मैं तुम्हें दूँगा।'

कुवलयाश्वने कहा—भगवन्! आपके प्रसादसे मेरे घरमें सब कुछ है, विशेषतः आपके दर्शनसे मुझे सब मिल गया। आप देवता हैं और मैं मनुष्य। आपने अपने शरीरसे जो मेरा आलिङ्गन किया—इसीसे मैं कृतकृत्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया। नागराज! आपकी चरण-धूलिने

जो मेरे मस्तकपर अपना स्थान बनाया है, उसीसे मैंने क्या नहीं पा लिया। यदि आपको मुझे मनोवाञ्छित वर देना ही है तो यही दीजिये कि मेरे हृदयसे पुण्यकर्मोंका संस्कार कभी दूर न हो।

अश्वतर बोले—विद्वन्! ऐसा ही होगा। तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी रहेगी। तथापि इस समय तुम मेरे घरमें आये हो; इसलिये तुम्हें मनुष्यलोकमें जो वस्तु दुर्लभ प्रतीत होती हो, वही मुझसे माँग लो।

उनकी यह बात सुनकर राजकुमार ऋतध्वज अपने दोनों मित्र नागकुमारोंके मुखकी ओर देखने लगे। तब उन दोनोंने पिताको प्रणाम करके राजपुत्रका जो अभीष्ट था, उसे स्पष्ट रूपसे कहना आरम्भ किया।

नागकुमार बोले—पिताजी! गन्धर्वराजकुमारी मदालसा इनकी प्यारी पत्नी थी। उसको किसी दुष्ट बुद्धिवाले दुरात्मा दानवने, जो इनके साथ वैर रखता था, धोखा दिया। उसने उसी दानवके मुखसे इनकी मृत्युका समाचार सुनकर अपने प्यारे प्राणोंको त्याग दिया। तब इन्होंने अपनी पत्नीके प्रति कृतज्ञ होकर यह प्रतिज्ञा कर ली कि अब मदालसाको छोड़कर दूसरी कोई स्त्री मेरी पत्नी नहीं हो सकती। पिताजी! ये वीर ऋतध्वज आज उसी सर्वाङ्गसुन्दरी मदालसाको देखना चाहते हैं। यदि ऐसा किया जा सके तो इनका मनोरथ पूर्ण हो सकता है।

तब नागराज घरमें छिपायी हुई मदालसाको ले आये और राजकुमारको उसे दिखाया तथा पूछा—'ऋतध्वज! यह तुम्हारी पत्नी मदालसा है या नहीं?' उसे देखते ही राजकुमार लज्जा छोड़कर उठे और 'हा प्रिये!' कहते हुए उसकी ओर बढ़े। तब नागराजने उसे रोका और मदालसाके मरकर जीवित होने आदिकी सारी

कथा कह सुनायी। फिर तो राजकुमारने प्रसन्न होकर अपनी प्यारी पत्नीको ग्रहण किया। तदनन्तर उनके स्मरण करते ही उनका प्यारा अश्व वहाँ आ पहुँचा। उस समय नागराजको प्रणाम करके वे अश्वपर आरूढ़ हुए और मदालसाके साथ अपने नगरको चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पिता-मातासे उसके मरकर जीवित होनेका सब समाचार निवेदन किया। कल्याणमयी मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम किया तथा अन्य स्वजनोंको भी यथायोग्य सम्मान दिया। तत्पश्चात् उस नगरमें पुरवासियोंके यहाँ बहुत बड़ा उत्सव हुआ।

इसके बाद बहुत समय बीतनेके पश्चात् महाराज शत्रुजित् पृथ्वीका भलीभाँति पालन करके परलोकवासी हो गये। तब पुरवासियोंने उनके महात्मा पुत्र ऋतध्वजको, जिनके आचरण तथा व्यवहार बड़े ही उदार थे, राजपदपर अभिषिक्त किया। वे भी अपनी प्रजाका औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करने लगे। तदनन्तर मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजाने उसका नाम विक्रान्त रखा। इससे कुटुम्बके सब लोग बड़े प्रसन्न हुए, किन्तु मदालसा यह नाम सुनकर हँसने लगी। उसने उत्तान सोकर जोर-जोरसे रोते हुए शिशुको बहलानेके व्याजसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम
कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति
नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥

हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतोंका बना हुआ है। न यह तेरा है, न तू इसका है। फिर किसलिये रो रहा है?

न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्मा
शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम्।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्ते-
ऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु॥

अथवा तू नहीं रोता है, यह शब्द तो राजकुमारके पास पहुँचकर अपने-आप ही प्रकट होता है। तेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें जो भाँति भाँतिके गुण-अवगुणोंकी कल्पना होती है, वे भी पाञ्चभौतिक ही हैं?

भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि
वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य
न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः॥

जैसे इस जगत्‌में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतोंके सहयोगसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थोंको देनेसे पुरुषके पाञ्चभौतिक शरीरकी ही पुष्टि होती है। इससे तुझ शुद्ध आत्माकी न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।

त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिं-
स्तस्मिंश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः॥
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेत-
न्मदादिमूढैः कञ्चुकस्ते पिनद्धः॥

तू अपने उस चोले तथा इस देहरूपी चोलेके जीर्ण-शीर्ण होनेपर मोह न करना। शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला मद आदिसे बँधा हुआ है (तू तो सर्वथा इससे मुक्त है)।

तातेति किंचित् तनयेति किंचि-
दम्बेति किंचिद्दयितेति किंचित्।
ममेति किंचिन्न ममेति किंचित्
त्वं भूतसङ्घं बहु मानयेथाः॥

कोई जीव पिताके रूपमें प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है, किसीको माता और किसीको प्यारी स्त्री कहते हैं; कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'मेरा नहीं है' इस भावसे पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूतसमुदायके ही नाना रूप हैं, ऐसा तुझे मानना चाहिये।

दुःखानि दुःखापगमाय भोगान्
सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि
जानाति विद्वानविमूढचेताः॥

यद्यपि समस्त भोग दुःखरूप हैं तथापि मूढ़चित्तमानव उन्हें दुःख दूर करनेवाला तथा सुखकी प्राप्ति करनेवाला समझता है; किन्तु जो विद्वान् हैं, जिनका चित्त मोहसे आच्छन्न नहीं हुआ है, वे उन भोगजनित सुखोंको भी दुःख ही मानते हैं।

हासोऽस्थिसंदर्शनमक्षियुग्म-
मत्युज्ज्वलं यत्कलुषं वसायाः।
कुचादि पीनं पिशितं घनं तत्
स्थानं रतेः किं नरकं न योषित्॥

स्त्रियोंकी हँसी क्या है, हड्डियोंका प्रदर्शन। जिसे हम अत्यन्त सुन्दर नेत्र कहते हैं, वह मज्जाकी कलुषता है और मोटे-मोटे कुच आदि घने मांसकी ग्रन्थियाँ हैं; अतः पुरुष जिसपर अनुराग करता है, वह युवती स्त्री क्या नरककी जीती-जागती मूर्ति नहीं है?

यानं क्षितौ यानगतश्च देहो
देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः।
ममत्वमुर्व्यां न तथा यथा स्वे
देहेऽतिमात्रं च विमूढतैषा॥

पृथ्वीपर सवारी चलती है, सवारीपर यह शरीर रहता है और इस शरीरमें भी एक दूसरा पुरुष बैठा रहता है; किन्तु पृथ्वी और सवारीमें वैसी अधिक ममता नहीं देखी जाती, जैसी कि अपने देहमें दृष्टिगोचर होती है। यही मूर्खता है।

ज्यों-ज्यों वह बालक बढ़ने लगा, त्यों-ही-त्यों महारानी मदालसा प्रतिदिन उसे बहलाने आदिके द्वारा ममताशून्य ज्ञानका उपदेश करने लगी। जैसे-जैसे उसके शरीरमें बल आता गया और जैसे-जैसे वह पितासे व्यावहारिक बुद्धि सीखने लगा, वैसे-ही-वैसे माताके वचनोंसे उसे आत्मतत्त्वका ज्ञान भी प्राप्त होता गया। इस प्रकार माताने जन्मसे ही अपने पुत्रको ऐसा उपदेश दिया, जिससे ज्ञानी एवं ममताशून्य होकर उसने गार्हस्थ्य-धर्मके प्रति अपने मनको नहीं जाने दिया। इसी प्रकार जब मदालसाके गर्भसे दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, तब पिताने उसका नाम सुबाहु रखा। इसपर भी मदालसा हँसने लगी। उस बालकको भी वह पहलेकी ही भाँति बहलाते-बहलाते बचपनसे ही ऐसा उपदेश देने लगी, जिससे वह परम बुद्धिमान् ज्ञानी हो गया। तृतीय पुत्र उत्पन्न होनेपर राजाने उसका नाम शत्रुमर्दन रखा। इसपर भी सुन्दरी मदालसा बहुत देरतक हँसती रही तथा उसको भी उसने पहलेकी ही भाँति बाल्यकालसे ही ज्ञानका उपदेश दिया। बड़ा होनेपर वह निष्काम कर्म करने लगा। सकाम कर्मकी ओर उसकी रुचि नहीं रही। राजा ऋतध्वज जब चौथे पुत्रका नामकरण करने चले, तब सदाचारपरायणा मदालसापर उनकी दृष्टि पड़ी। उस समय वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। उसे हँसते देख राजाको कुछ कौतूहल हुआ; अतः उन्होंने पूछा—'देवि! जब मैं नामकरण करने चलता हूँ, तब तुम हँसती क्यों हो? इसका कारण बताओ। मैं तो समझता हूँ विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन—ये सुन्दर नाम रखे गये हैं। ये क्षत्रियोंके योग्य तथा शौर्यमें उपयोगी हैं; भद्रे! यदि तुम्हारे मनमें यह बात हो कि ये नाम अच्छे नहीं हैं तो मेरे चौथे पुत्रका नाम तुम स्वयं ही रखो।'

मदालसा बोली—महाराज! आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा कर्तव्य है; अतः आप जैसा कहते हैं, उसके अनुसार मैं आपके चौथे पुत्रका नाम स्वयं ही रखूँगी। यह धर्मज्ञ बालक इस संसारमें अलर्कके नामसे विख्यात होगा। आपका यह कनिष्ठ पुत्र बड़ा बुद्धिमान् होगा।

माताके द्वारा रखे गये 'अलर्क' इस असम्बद्ध नामको सुनकर राजा ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—'शुभे! तुमने मेरे पुत्रका जो यह अलर्क नाम रखा है, उसका क्या कारण है? ऐसा असम्बद्ध नाम क्यों रखा? इसका अर्थ क्या है?'

मदालसाने कहा—महाराज! यह तो व्यावहारिक कल्पना है; लौकिक व्यवहार चलानेके लिये कोई-सा नाम रख लिया जाता है, इससे पुरुषका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आपने भी जो नाम रखे हैं, वे भी निरर्थक ही हैं। कैसे, सो बतलाती हूँ; सुनिये। ज्ञानीलोग पुरुष (आत्मा)-को व्यापक बतलाते हैं। आपने प्रथम पुत्रका नाम विक्रान्त रखा है, इसके अर्थपर विचार कीजिये। क्रान्तिका अर्थ है गति। एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेको गति कहते हैं। जब इस देहका ईश्वर आत्मा सर्वत्र व्यापक है, तब वह दूसरी जगह जा नहीं सकता; अतः उसका नाम विक्रान्त रखना मुझे निरर्थक ही जान पड़ता है। पृथ्वीनाथ! दूसरे पुत्रका जो सुबाहु नाम रखा गया है, वह भी व्यर्थ ही है; क्योंकि आत्मा निराकार है, उसको बाँह कहाँसे आयी। तृतीय पुत्रका जो अरिमर्दन नाम नियत किया गया है, मेरी समझसे वह भी असम्बद्ध ही है। इसका कारण भी सुनिये। अरिमर्दनका अर्थ है—शत्रुका मर्दन करनेवाला। जब सब शरीरोंमें एक ही आत्मा रहता है, तब उसका कौन शत्रु है और कौन मित्र। मूर्तिमान् भूतोंके द्वारा मूर्तिमान् भूतोंका ही मर्दन होता है। आत्मा तो अमूर्त है, उसका मर्दन कैसे हो सकता है। क्रोध आदि आत्मासे पृथक् रहते हैं; अतः यह अरिमर्दनकी कल्पना निरर्थक ही है। यदि व्यवहारका भलीभाँति निर्वाह करनेके लिये ऐसे असङ्गत नामोंकी कल्पना हो सकती है तो 'अलर्क' नाममें ही क्यों आपको निरर्थकता प्रतीत होती है?

रानी मदालसाके द्वारा इस प्रकार भलीभाँति समझाये जानेपर परम बुद्धिमान् महाराज ऋतध्वजने अपनी प्राणवल्लभाको यथार्थवादिनी मानकर कहा—'तुम्हारा कथन सत्य है।' तदनन्तर उसने पहले पुत्रोंकी भाँति उसको भी ज्ञानजनक बातें सुनानी आरम्भ कीं। तब राजाने उसे रोककर कहा।।

राजा बोले—अरी यह क्या करती हो? पहले पुत्रोंकी भाँति इसे भी ज्ञानका उपदेश देकर मेरी वंश-परम्पराका उच्छेद करनेपर क्यों तुली हो। यदि तुम्हें मेरा प्रिय कार्य करना हो और यदि मेरी बातोंको मानना तुम्हें उचित प्रतीत होता हो

तो मेरे इस पुत्रको प्रवृत्तिमार्गमें लगाओ। देवि! ऐसा करनेसे कर्ममार्गका उच्छेद नहीं होगा तथा पितरोंके पिण्डदानका लोप नहीं होगा। जो पितर देवलोकमें हैं, जो तिर्यग्योनिमें पड़े हैं, जो मनुष्ययोनिमें एवं भूतवर्गमें स्थित हैं, वे पुण्यात्मा हों या पापात्मा, जब भूख-प्याससे विकल होते हैं तो अपने कर्मोंमें लगा हुआ मनुष्य पिण्डदान तथा जलदानके द्वारा उन्हें तृप्त करता है। इसी तरह वह देवताओं और अतिथियोंको भी सन्तुष्ट रखता है। देवता, मनुष्य, पितर, भूत, प्रेत, गुह्यक, पक्षी, कृमि और कीट आदि भी मनुष्यसे ही जीविका चलाते हैं; अतः सुन्दरि! तुम मेरे पुत्रको ऐसा उपदेश दो, जिससे इहलोक और परलोकमें उत्तम फल देनेवाले क्षत्रियोचित कर्तव्यका उसे ठीक-ठीक ज्ञान हो।

पतिके यों कहनेपर श्रेष्ठ नारी मदालसा अपने पुत्र अलर्कको बहलाती हुई इस प्रकार उपदेश देने लगी—

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रु-
रेकश्चिरं पालयितासि पुत्र।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो
धर्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम्॥
धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः
समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा
मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः॥
सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथा-
स्तद्ध्यानतोऽन्तःषडरीञ्जयेथाः।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा
ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः॥
अर्थागमाय क्षितिपाञ्जयेथा
यशोऽर्जनायार्थमपि व्ययेथाः।
परापवादश्रवणाद्बिभीथा
विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः॥

बेटा! तू धन्य है, जो शत्रुरहित होकर अकेला ही चिरकालतक इस पृथ्वीका पालन करता रहेगा। पृथ्वीके पालनसे तुझे सुखभोगकी प्राप्ति हो और धर्मके फलस्वरूप तुझे अमरत्व मिले। पर्वोंके दिन ब्राह्मणोंको भोजनके द्वारा तृप्त करना, बन्धु-बान्धवोंकी इच्छा पूर्ण करना, अपने हृदयमें दूसरोंकी भलाईका ध्यान रखना और परायी स्त्रियोंकी ओर कभी मनको न जाने देना। अपने मनमें सदा श्रीविष्णुभगवान्‌का चिन्तन करना, उनके ध्यानसे अन्तःकरणके काम क्रोध आदि छहों शत्रुओंको जीतना, ज्ञानके द्वारा मायाका निवारण करना और जगत्‌की अनित्यताका विचार करते रहना। धनकी आयके लिये राजाओंपर विजय प्राप्त करना, यशके लिये धनका सद्व्यय करना, परायी निन्दा सुननेसे डरते रहना तथा विपत्तिके समुद्रमें पड़े हुए लोगोंका उद्धार करना।

वीर! तू अनेक यज्ञोंके द्वारा देवताओंको तथा धनके द्वारा ब्राह्मणों एवं शरणागतोंको सन्तुष्ट करना। कामनापूर्तिके द्वारा स्त्रियोंको प्रसन्न रखना और युद्धके द्वारा शत्रुओंके छक्के छुड़ाना। बाल्यावस्थामें तू भाई-बन्धुओंको आनन्द देना, कुमारावस्थामें आज्ञापालनके द्वारा गुरुजनोंको सन्तुष्ट रखना। युवावस्थामें उत्तम कुलको सुशोभित करनेवाली स्त्रीको प्रसन्न रखना और वृद्धावस्थामें वनके भीतर निवास करते हुए वनवासियोंको सुख देना।

राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः
साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये
गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं व्रजेथाः॥

तात! राज्य करते हुए अपने सुहृदोंको प्रसन्न रखना, साधु पुरुषोंकी रक्षा करते हुए यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करना, संग्राममें दुष्ट शत्रुओंका संहार करते हुए गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये अपने प्राण निछावर कर देना।

मदालसाका अलर्कको राजनीतिका उपदेश

सुमति कहते हैं—इस प्रकार माताके द्वारा प्रतिदिन बहलाया जाता हुआ बालक अलर्क कुछ बड़ी अवस्थाको प्राप्त हुआ। कुमारावस्थामें पहुँचनेपर उसका उपनयन-संस्कार हुआ। तत्पश्चात् उस बुद्धिमान् राजकुमारने माताको प्रणाम करके कहा—'माँ! मुझे इस लोक और परलोकमें सुख प्राप्त करनेके लिये यहाँ क्या करना चाहिये? यह सब मुझे बताओ।'

मदालसा बोली—बेटा! राज्याभिषेक होनेपर राजाको उचित है कि वह अपने धर्मके अनुकूल

चलता हुआ आरम्भसे ही प्रजाको प्रसन्न रखे। सातों[१] व्यसनोंका परित्याग कर दे; क्योंकि वे राजाका मूलोच्छेद करनेवाले हैं। अपनी गुप्त मन्त्रणाके बाहर फूटनेसे उसके द्वारा लाभ उठाकर शत्रु आक्रमण कर देते हैं; अतः ऐसा न होने देकर शत्रुओंसे अपनी रक्षा करे। जैसे रथी रथकी गति वक्र होनेपर आठों प्रकारसे नाशको प्राप्त होता है, उसके ऊपर आठों दिशाओंसे प्रहार होने लगते हैं, उसी प्रकार गुप्त मन्त्रणाके बाहर फूटनेपर राजाके आठों[२] वर्गोंका निश्चय ही नाश होता है। राजाको इस बातका भी पता लगाते रहना चाहिये कि शत्रुद्वारा उत्पन्न किये गये दोषसे अथवा शत्रुओंके बहकावेमें आकर अपने मन्त्रियोंमेंसे कौन दुष्ट हो गया है और कौन अदुष्ट—कौन अपना साथी है और कौन शत्रुसे मिला हुआ। इसी प्रकार बुद्धिमान् चर नियुक्त करके शत्रुके चरोंपर भी प्रयत्नपूर्वक दृष्टि रखनी चाहिये। राजाको अपने मित्रों तथा माननीय बन्धु-बान्धवोंपर भी पूर्णतः विश्वास नहीं करना चाहिये। किन्तु काम आ पड़नेपर उसे शत्रुपर भी विश्वास कर लेना चाहिये। किस अवस्थामें शत्रुपर चढ़ाई न करके अपने स्थानपर स्थित रहना उचित है, क्या करनेसे अपनी वृद्धि होगी और किस कार्यसे अपनी हानि होनेकी सम्भावना है—इन सब बातोंका राजाको ज्ञान होना चाहिये। वह छः[३] गुणोंका उपयोग करना जाने और कभी कामके अधीन न हो। राजा पहले अपने आत्माको, फिर मन्त्रियोंको जीते। तत्पश्चात् अपनेसे भरण-पोषण पानेवाले कुटुम्बीजनों एवं सेवकोंके हृदयपर अधिकार प्राप्त करे। तदनन्तर पुरवासियोंको अपने गुणोंसे जीते। यह सब हो जानेपर शत्रुओंके साथ विरोध करे। जो इन सबको जीते बिना ही शत्रुओंपर विजय पाना चाहता है, वह अपने आत्मा तथा मन्त्रियोंपर अधिकार न रखनेके कारण शत्रुसमुदायके वशमें पड़कर कष्ट भोगता है।*

इसलिये बेटा! पृथ्वीका पालन करनेवाले

१. कटु वचन बोलना, कठोर दण्ड देना, धनका अपव्यय करना, मदिरा पीना, स्त्रियोंमें आसक्ति रखना, शिकार खेलनेमें व्यर्थ समय लगाना और जुआ खेलना—ये राजाके सात व्यसन हैं।

२. खेतीकी उन्नति, व्यापारकी वृद्धि, दुर्गनिर्माण, पुल बनाना, जंगलसे हाथी पकड़कर मँगवाना, खानोंपर अधिकार प्राप्त करना, अधीन राजाओंसे कर लेना और निर्जन प्रदेशको आबाद करना—ये आठ वर्ग कहलाते हैं।

३. सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—ये छः गुण हैं। इनमें शत्रुसे मेल रखना सन्धि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, आक्रमण करना यान, अवसरकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति बरतना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है।

*वत्स राज्येऽभिषिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः। कर्तव्यमविरोधेन स्वधर्मस्य महीभृता॥
व्यसनानि परित्यज्य सप्त मूलहराणि वै। आत्मा रिपुभ्यः संरक्ष्यो बहिर्मन्त्रविनिर्गमात्॥

राजाको पहले काम आदि शत्रुओंको जीतनेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनके जीत लेनेपर विजय अवश्यम्भावी है। यदि राजा ही उनके वशमें हो गया तो वह नष्ट हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष—ये राजाका विनाश करनेवाले शत्रु हैं। राजा पाण्डु काममें आसक्त होनेके कारण मारे गये तथा अनुह्राद क्रोधके कारण ही अपने पुत्रसे हाथ धो बैठा। यह विचारकर अपनेको काम और क्रोधसे अलग रखे। राजा पुरूरवा लोभसे मारे गये और वेनको मदके कारण ही ब्राह्मणोंने मार डाला। अनायुषके पुत्रको मानके कारण प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा तथा पुरञ्जयकी मृत्यु हर्षके कारण हुई; किन्तु महात्मा मरुत्तने इन सबको जीत लिया था, इसलिये वे सम्पूर्ण विश्वपर विजयी हुए। यह सोचकर राजा उपर्युक्त दोषोंका सर्वथा त्याग करे। वह कौवे, कोयल, भौंरे हरिन, साँप, मोर, हंस, मुर्गे और लोहेके व्यवहारसे शिक्षा ग्रहण करे।* राजा अपने शत्रुके प्रति उल्लूका-सा बर्ताव करे। जैसे उल्लू पक्षी रातमें सोये कौओंपर चुपचाप धावा करता है, उसी प्रकार राजा शत्रुको असावधान-दशामें ही उसपर आक्रमण करे तथा समयानुसार चींटीकी-सी चेष्टा करे—धीरे-धीरे आवश्यक वस्तुओंका संग्रह करता रहे।†

राजाको आगकी चिनगारियों तथा सेमलके बीजसे कर्तव्यकी शिक्षा लेनी चाहिये। जैसे आगकी छोटी-सी चिनगारी बड़े-से-बड़े वनको जला डालनेकी शक्ति रखती है, उसी प्रकार

अक्षस्य नाशमाप्नोति रथचक्रात् स्यन्दनाश्रया। तथा राजाप्यसन्दिग्धं बहिर्मन्त्रविनिर्गमात्॥
दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानरिदोषतः। चरैश्चारास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः॥
विश्वासो न तु कर्तव्यो राज्ञा मित्राप्तबन्धुषु। कार्ययोगादमित्रेऽपि विश्वसीत नराधिपः॥
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यविदितात्मना। भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्तिना॥
प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता। जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः॥
यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते। सोऽजितात्माजितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते॥

(२७। ४—११)

* तात्पर्य यह कि राजा कौवेके समान आलस्यरहित और सावधान हो। जैसे कोयल अपने अण्डेका कौओंसे पालन कराती है, वैसे ही राजा भी दूसरोंसे अपना कार्य साधन करे। वह भौंरेके समान रसग्राही और मृगके समान सदा चौकन्ना रहे। जैसे सर्प बड़ा-बड़ा फन निकालकर दूसरोंको डराता और मेढकको चुपके-से निगल जाता है, उसी प्रकार राजा दूसरोंपर आतङ्क जमाये रहे और सहसा आक्रमण करके शत्रुको अपने अधीन कर ले। जैसे मोर अपने समेटे हुए पंखको कभी-कभी फैलाता है, उसी प्रकार राजा भी समयानुसार अपने संकुचित सैन्य और बलका विस्तार करे। वह हंसोंके समान नीर-क्षीरका विवेक करनेवाला गुणग्राही हो। मुर्गोंके समान रात रहते ही शयनसे उठकर कर्तव्यका विचार करे और लोहेकी भाँति शत्रुओंके लिये अभेद्य एवं कर्तव्यपालनमें कठोर हो।

† तस्मात्कामादयः पूर्वं जेयाः पुत्र महीभुजा। तज्जये हि जयोऽवश्यं राजा नश्यति तैर्जितः॥
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मानस्तथैव च। हर्षश्च शत्रवो ह्येते विनाशाय महीभृताम्॥
कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम्। निवर्तयेत्तथा क्रोधादनुह्रादं हतात्मजम्॥
हतमैलं तथा लोभान्मदाद्वेनं द्विजैर्हतम्। मानादनायुषः पुत्रं हतं हर्षात्पुरञ्जयम्॥
एभिर्जितैर्जितं कृत्स्नं मरुत्तेन महात्मना। स्मृत्वा विवर्जयेदेतान्दोषान् स्वीयान्महीपतिः॥
काककोकिलभृङ्गाणां मृगव्यालशिखण्डिनाम्। हंसकुक्कुटलोहानां शिक्षेत चरितं नृपः॥
कौशिकस्य क्रियां कुर्याद् विपक्षे मनुजेश्वरः। चेष्टां पिपीलिकानां च काले भूपः प्रदर्शयेत्॥

(२७। १२—१८)

छोटा-सा शत्रु भी यदि दबाया न जाय तो बहुत बड़ी हानि कर सकता है। जैसे छोटा-सा सेमलका बीज एक महान् वृक्षके रूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार लघु शत्रु भी समय आनेपर अत्यन्त प्रबल हो जाता है। अतः दुर्बलावस्थामें ही उसे उखाड़ फेंकना चाहिये। जैसे चन्द्रमा और सूर्य अपनी किरणोंका सर्वत्र समान रूपसे प्रसार करते हैं, उसी प्रकार नीतिके लिये राजाको भी समस्त प्रजापर समान भाव रखना चाहिये। वेश्या, कमल, शरभ, शूलिका, गर्भिणी स्त्रीके स्तन तथा ग्वालेकी स्त्रीसे भी राजाको बुद्धि सीखनी चाहिये। राजा वेश्याकी भाँति सबको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करे, कमल-पुष्पके समान सबको अपनी ओर आकृष्ट करे, शरभके समान पराक्रमी बने, शूलिकाकी भाँति सहसा शत्रुका विध्वंस करे। जैसे गर्भिणीके स्तनमें भावी सन्तानके लिये दूधका संग्रह होने लगता है, उसी प्रकार राजा भविष्यके लिये सञ्चयशील बने और जिस प्रकार ग्वालेकी स्त्री दूधसे नाना प्रकारके खाद्य पदार्थ तैयार करती है, वैसे ही राजाको भी भाँति-भाँतिकी कल्पनामें पटु होना चाहिये। वह पृथ्वीका पालन करते समय इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्रमा तथा वायु—इन पाँचोंके रूप धारण करे। जैसे इन्द्र चार महीने वर्षा करके पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणियोंको तृप्त करते हैं, उसी प्रकार राजा दानके द्वारा प्रजाजनोंको सन्तुष्ट करे। जिस प्रकार सूर्य आठ महीनोंतक अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल सोखते रहते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म उपायोंसे धीरे-धीरे कर आदिका संग्रह करे। जैसे यमराज समय आनेपर प्रिय-अप्रिय सभीको मृत्युपाशमें बाँधते हैं, उसी प्रकार राजा भी प्रिय-अप्रिय तथा साधु और दुष्टके प्रति समान भावसे राजनीतिका प्रयोग करे। जैसे पूर्ण चन्द्रमा देखकर सब मनुष्य प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार जिस राजाके प्रति समस्त प्रजाको समानरूपसे सन्तोष हो, वही श्रेष्ठ एवं चन्द्रमाके व्रतका पालन करनेवाला है। जैसे वायु गुप्तरूपसे समस्त प्राणियोंके भीतर सञ्चार करती रहती है, उसी प्रकार राजा भी गुप्तचरके द्वारा पुरवासियों, मन्त्रियों तथा बन्धु-बान्धवोंके मनका भाव जाननेकी चेष्टा करे।*

बेटा! जिसके चित्तको दूसरे लोग लोभ, कामना अथवा अर्थसे नहीं खींच सकते, वह राजा स्वर्गलोकमें जाता है। जो अपने धर्मसे विचलित हो कुमार्गपर जानेवाले मूर्ख मनुष्योंको फिर धर्ममें लगाता है, वह राजा स्वर्गमें जाता है। वत्स! जिसके राज्यमें वर्णधर्म और आश्रमधर्मको हानि नहीं पहुँचती, उसे इस लोक और परलोकमें भी सनातन सुख प्राप्त होता है। स्वयं दुष्टबुद्धि पुरुषोंद्वारा धर्मसे विचलित न होकर ऐसे लोगोंको अपने धर्ममें लगाना ही राजाका सबसे बड़ा कर्तव्य है और

---

* उपेक्षितः स्फुलिङ्गानां बीजलेशश्च शाल्मलेः। चन्द्रसूर्यस्वरूपेण नीत्यर्थे पृथिवीक्षिता॥
बन्धकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात्। प्रज्ञा नृपेण चादेया तथा गोपालयोषितः॥
शक्रार्कयमसोमानां तद्वद् वायोर्महीपतिः। रूपाणि पञ्च कुर्वीत महीपालनकर्मणि॥
यथेन्द्रश्चतुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम्। आप्याययेत् तथा लोकं परिहारैर्महीपतिः॥
मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोयं हरति रश्मिभिः। सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिकं नृपः॥
यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्तकाले नियच्छति। तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत्॥
पूर्णेन्दुमालोक्य यथा प्रीतिमान् जायते नरः। एवं यत्र प्रजाः सर्वा निर्वृतास्तच्छशिव्रतम्॥
मारुतः सर्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा। एवं नृपश्चरेच्चारैः पौरामात्यादिबन्धुषु॥
(२७। १९—२६)

यही उसे सिद्धि प्रदान करनेवाला है। राजा सब प्राणियोंका पालन करनेसे ही कृतकृत्य होता है। जो यत्नपूर्वक भलीभाँति प्रजाका पालन करनेवाला है, वह प्रजाके धर्मका भागी होता है। जो राजा इस प्रकार चारों वर्णोंकी रक्षामें तत्पर रहता है, वह सर्वत्र सुखी होकर विचरता है और अन्तमें उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है।*

मदालसाके द्वारा वर्णाश्रमधर्म एवं गृहस्थके कर्तव्यका वर्णन

अलर्कने कहा—महाभागे! आपने राजनीति-सम्बन्धी धर्मका वर्णन किया। अब मैं वर्णाश्रमधर्म सुनना चाहता हूँ।

मदालसा बोली—दान, अध्ययन और यज्ञ—ये ब्राह्मणके तीन धर्म हैं तथा यज्ञ कराना, विद्या पढ़ाना और पवित्र दान लेना—यह तीन प्रकारकी उसकी आजीविका बतायी गयी है। दान, अध्ययन और यज्ञ—ये तीन क्षत्रियके भी धर्म हैं। पृथ्वीकी रक्षा तथा शस्त्र ग्रहण करके जीवननिर्वाह करना यह उसकी जीविका है। वैश्यके भी दान, अध्ययन और यज्ञ—ये तीनों ही धर्म हैं। व्यापार, पशुपालन और खेती—ये उसकी जीविका हैं। दान, यज्ञ और द्विजातियोंकी सेवा—यह तीन प्रकारका धर्म शूद्रके लिये बताया गया है। शिल्पकर्म, द्विजातियोंकी सेवा और खरीद-बिक्री—ये उसकी जीविका हैं। इस प्रकार ये वर्णधर्म बतलाये गये हैं। अब आश्रमधर्मोंका वर्णन सुनो। यदि मनुष्य अपने वर्णधर्मसे भ्रष्ट न हो तो वह उसके द्वारा उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है और निषिद्धकर्मोंके आचरणसे वह मृत्युके पश्चात् नरकमें पड़ता है।

उपनयन संस्कार होनेपर ब्रह्मचारी बालक गुरुके घरमें निवास करे। वहाँ उसके लिये जो धर्म बताया गया है, वह सुनो। ब्रह्मचारी वेदोंका स्वाध्याय करे, अग्निहोत्र करे, त्रिकाल स्नान करे, भिक्षाके लिये भ्रमण करे, भिक्षामें मिला हुआ अन्न गुरुको निवेदित करके उनकी आज्ञाके अनुसार ही सदा उसका उपयोग करे, गुरुके कार्यमें सदा उद्यत रहे, भलीभाँति उन्हें प्रसन्न रखे, गुरुके बुलानेपर एकाग्रचित्तसे तत्परतापूर्वक पढ़े, गुरुके मुखसे एक दो या सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके गुरुके चरणोंमें प्रणाम करे और उन्हें गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। इस आश्रममें आनेका उद्देश्य होना चाहिये—गृहस्थाश्रम-सम्बन्धी धर्मोंका पालन। अथवा अपनी इच्छाके अनुसार वह वानप्रस्थ या संन्यास-आश्रममें प्रवेश करे अथवा वहीं गुरुके घरमें सदा निवास करते हुए ब्रह्मचर्यनिष्ठताको प्राप्त हो—नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन जाय। गुरुके न रहनेपर उनके पुत्रकी और पुत्रके न रहनेपर उनके प्रधान शिष्यकी सेवा करे। अभिमानशून्य होकर ब्रह्मचर्य-आश्रममें रहे।

जब गृहस्थाश्रममें आनेकी इच्छा लेकर ब्रह्मचर्य

---

* न लोभाद्वा न कामाद्वा नार्थाद्वा यस्य मानसम्। यथान्यैः कृष्यते यस्य स राजा स्वर्गमृच्छति॥
उत्पथग्राहिणो मूढान् स्वधर्माच्चलितो नरान्। यः करोति निजे धर्मे स राजा स्वर्गमृच्छति॥
वर्णधर्मा न सीदन्ति यस्य राष्ट्रे तथाश्रमाः। वत्स तस्य सुखं प्रेत्य परत्रेह च शाश्वतम्॥
एतद्राज्ञः परं कृत्यं तथैतत् सिद्धिकारकम्। स्वधर्मस्थापनं नृणां चाल्यते न कुबुद्धिभिः॥
पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः। सम्यक् पालयिता भागं धर्मस्याप्नोति यत्नतः॥
एवं यो वर्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे। स सुखी विहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम्॥
(२७।२७—३२)

आश्रमसे निकले, तब अपने अनुरूप नीरोग स्त्रीसे विधिपूर्वक विवाह करे। वह स्त्री अपने समान गोत्र और प्रवरकी न हो। उसके किसी अङ्गमें न्यूनाधिकता अथवा कोई विकार न हो। गृहस्थाश्रमका ठीक ठीक सञ्चालन करनेके लिये ही विवाह करना चाहिये। अपने पराक्रमसे धन पैदा करके देवता, पितर एवं अतिथियोंको भक्तिपूर्वक भलीभाँति तृप्त करे तथा अपने आश्रितोंका भरण पोषण करता रहे। भृत्य, पुत्र, कुलकी स्त्रियाँ, दीन, अन्ध और पतित मनुष्योंको तथा पशु-पक्षियोंको भी यथाशक्ति अन्न देकर उनका पालन करे। गृहस्थका यह धर्म है कि वह ऋतुकालमें स्त्री-सहवास करे। अपनी शक्तिके अनुसार पाँचों यज्ञोंका अनुष्ठान न छोड़े। अपने विभवके अनुसार पितर, देवता, अतिथि एवं कुटुम्बीजनोंके भोजन करनेसे बचे हुए अन्नको ही स्वयं भृत्यजनोंके साथ बैठकर आदरपूर्वक ग्रहण करे। यह मैंने संक्षेपसे गृहस्थाश्रमके धर्मका वर्णन किया है।

अब वानप्रस्थके धर्मका वर्णन करती हूँ, ध्यान देकर सुनो। बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह अपनी सन्तानको देखकर तथा देह झुकी जा रही है, इस बातका विचार करके आत्मशुद्धिके लिये वानप्रस्थ आश्रममें जाय। वहाँ वनके फल-मूलोंका उपभोग करे और तपस्यासे शरीरको सुखाता रहे। पृथ्वीपर सोये, ब्रह्मचर्यका पालन करे, देवताओं, पितरों और अतिथियोंकी सेवामें संलग्न रहे। अग्निहोत्र, त्रिकाल-स्नान तथा जटा-वल्कल धारण करे; सदा योगाभ्यासमें लगा रहे और वनवासियोंपर स्नेह रखे। इस प्रकार यह पापोंकी शुद्धि तथा आत्माका उपकार करनेके लिये वानप्रस्थ-आश्रमका वर्णन किया है।

अब चतुर्थ आश्रमका स्वरूप बतलाती हूँ, सुनो। धर्मज्ञ महात्माओंने इस आश्रमके लिये जो धर्म बतलाया है, वह इस प्रकार है। सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग, ब्रह्मचर्यका पालन, क्रोधशून्यता, जितेन्द्रियता, एक स्थानपर अधिक दिनोंतक न रहना, किसी कर्मका आरम्भ न करना, भिक्षामें मिले हुए अन्नका एक बार भोजन करना, आत्मज्ञान होनेकी इच्छाको जगाये रखना तथा सर्वत्र आत्माका दर्शन करना। यह मैंने चतुर्थ आश्रमका धर्म बतलाया है।

अब अन्यान्य वर्णों तथा आश्रमोंके सामान्य धर्मका वर्णन सुनो। सत्य, शौच, अहिंसा, दोषदृष्टिका अभाव, क्षमा, क्रूरताका अभाव, दीनताका न होना तथा सन्तोष धारण करना—ये वर्ण और आश्रमोंके धर्म संक्षेपसे बताये गये हैं। जो पुरुष अपने वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी धर्मको छोड़कर उसके विपरीत आचरण करता है, वह राजाके लिये दण्डनीय है। जो मानव अपने धर्मका त्याग करके पापकर्ममें लग जाते हैं, उनकी उपेक्षा करनेवाले राजाके इष्ट[1] और आपूर्त[2] धर्म नष्ट हो जाते हैं।

बेटा! गृहस्थ-धर्मका आश्रय लेकर मनुष्य इस सम्पूर्ण जगत्‌का पोषण करता है और उससे मनोवाञ्छित लोकोंको जीत लेता है। पितर, मुनि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग, पशु-पक्षी तथा असुर—ये सभी गृहस्थसे ही जीविका चलाते हैं। उसीके दिये हुए अन्न-पानसे तृप्ति लाभ करते हैं तथा 'क्या यह हमें भी कुछ देगा?' इस आशासे सदा उसका मुँह ताकते रहते हैं। वत्स! वेदत्रयीरूप धेनु सबकी आधारभूता है, उसीमें सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है तथा वही विश्वकी उत्पत्तिका कारण मानी गयी है। ऋग्वेद उसकी पीठ, यजुर्वेद उसका मध्यभाग तथा सामवेद उसका मुख और गर्दन है। इष्ट और आपूर्त धर्म

१. देवपूजा, अग्निहोत्र तथा यज्ञ-यागादि कर्म 'इष्ट' कहलाते हैं।

२. कुआँ और बावली खुदवाना, बगीचे लगवाना तथा धर्मशाला बनवाना आदि कार्य 'आपूर्त' धर्मके अन्तर्गत हैं।

ही उसके दो सींग हैं। अच्छी-अच्छी सूक्तियाँ ही उस धेनुके रोम हैं, शान्तिकर्म गोबर और पुष्टिकर्म उसका मूत्र है। अकार आदि वर्ण उसके अङ्गोंके आधारभूत चरण हैं। सम्पूर्ण जगत्का जीवन उसीसे चलता है। वह वेदत्रयीरूप धेनु अक्षय है, उसका कभी क्षय नहीं होता। स्वाहा (देवयज्ञ), स्वधा (पितृयज्ञ), वषट्कार (ऋषि आदिकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले यज्ञ) तथा हन्तकार (अतिथियज्ञ)—ये उसके चार स्तन हैं। स्वाहारूप स्तनको देवता, स्वधाको पितर, वषट्कारको मुनि तथा हन्तकाररूप स्तनको मनुष्य सदा पीते हैं। इस प्रकार यह त्रयीमयी धेनु सबको तृप्त करती है। जो मनुष्य उन देवता आदिकी वृत्तिका उच्छेद करता है, वह अत्यन्त पापाचारी है। उसे अन्धतामिस्र एवं तामिस्र नरकमें गिरना पड़ता है। जो इस धेनुको इसके देवता आदि बछड़ोंसे मिलाता है और उन्हें उचित समयपर पीनेका अवसर देता है, वह स्वर्गमें जाता है। अतः बेटा! जैसे अपने शरीरका पालन-पोषण किया जाता है, उसी प्रकार मनुष्यको प्रतिदिन देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य तथा अन्य भूतोंका भी पोषण करना चाहिये। इसलिये प्रातःकाल स्नान करके पवित्र हो एकाग्रचित्तसे जलद्वारा देवता, ऋषि, पितर और प्रजापतिका तर्पण करना चाहिये। मनुष्य फूल, गन्ध और धूप आदि सामग्रियोंसे देवताओंकी पूजा करके आहुतिके द्वारा अग्निको तृप्त करे। तत्पश्चात् बलि दे।

ब्रह्मा और विश्वेदेवोंके उद्देश्यसे घरके मध्यभागमें बलि (पूजोपहार) अर्पण करे। पूर्व और उत्तरके कोणमें धन्वन्तरिके लिये बलि प्रस्तुत करे। पूर्व दिशामें इन्द्रको, दक्षिण दिशामें यमको, पश्चिममें वरुणको तथा उत्तरमें सोमको बलि दे। घरके दरवाजेपर धाता और विधाताके लिये बलि अर्पण करे। घरके बाहर चारों ओर अर्यमा देवताके निमित्त बलि प्रस्तुत करे। निशाचरों और भूतोंको आकाशमें बलि दे। गृहस्थ पुरुष एकाग्रचित्त हो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके तत्परतापूर्वक पितरोंके उद्देश्यसे पिण्ड दे। तदनन्तर विद्वान् पुरुष जल लेकर उन्हीं-उन्हीं स्थानोंपर उन्हीं-उन्हीं देवताओंके उद्देश्यसे आचमनके लिये जल छोड़े। इस प्रकार गृहस्थ पुरुष घरमें पवित्रतापूर्वक गृह-देवताओंके उद्देश्यसे बलि देकर अन्य भूतोंकी तृप्तिके लिये आदरपूर्वक अन्नका त्याग करे। कुत्तों, चाण्डालों तथा पक्षियोंके लिये पृथ्वीपर अन्न रख दे। यह वैश्वदेव नामक कर्म है। इसे प्रातःकाल और सायंकाल आवश्यक बताया गया है।

इसके बाद बुद्धिमान् पुरुष आचमन करके कुछ कालतक अतिथिकी प्रतीक्षा करते हुए घरके दरवाजेकी ओर दृष्टि रखे। यदि कोई अतिथि वहाँ आ जाय तो यथाशक्ति अन्न, जल, गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा उसका सत्कार करे। अपने ग्रामवासी पुरुषको या मित्रको अतिथि न बनाये। जिसके कुल और नाम आदिका ज्ञान न हो, जो उसी समय वहाँ उपस्थित हुआ हो, भोजनकी इच्छा रखता हो, थका-माँदा आया हो, अन्न माँगता हो, ऐसे अकिञ्चन ब्राह्मणको अतिथि कहते हैं। विद्वान् पुरुषोंको उचित है कि वे अपनी शक्तिके अनुसार उस अतिथिका पूजन करें। उसका गोत्र और शाखा न पूछें। उसने कहाँतक अध्ययन किया है, इसकी जिज्ञासा भी न करें। उसकी आकृति सुन्दर हो या असुन्दर, उसे साक्षात् प्रजापति समझें। वह नित्य स्थित नहीं रहता, इसीलिये उसे अतिथि कहते हैं। उसकी तृप्ति होनेपर गृहस्थ पुरुष मनुष्य-यज्ञके ऋणसे मुक्त हो जाता है। जो उस अतिथिको अन्न दिये बिना ही स्वयं भोजन करता है, वह मनुष्य पापभोजी है; वह केवल पाप भोजन करता है और दूसरे जन्ममें उसे विष्ठा खानी पड़ती है। अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौटता है, उसको अपना पाप दे स्वयं उसका

पुण्य लेकर चल देता है।* अतः मनुष्यको उचित है कि वह जल और साग देकर अथवा स्वयं जो कुछ खाता है, उसीसे अपनी शक्तिके अनुसार आदरपूर्वक अतिथिका पूजन करे।

गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन पितरोंके उद्देश्यसे अन्न और जलके द्वारा श्राद्ध करे और अनेक या एक ब्राह्मणको भोजन कराये। अन्नमेंसे अग्राशन निकालकर ब्राह्मणको दे। ब्रह्मचारी और संन्यासी जब भिक्षा माँगनेके लिये आयें, तब उन्हें भिक्षा अवश्य दे। एक ग्रास अन्नको भिक्षा, चार ग्रास अन्नको अग्राशन और अग्राशनसे चौगुने अन्नको श्रेष्ठ द्विज हन्तकार कहते हैं।† भोजनमेंसे अपने वैभवके अनुसार हन्तकार, अग्राशन अथवा भिक्षा दिये बिना कदापि उसे ग्रहण न करे। अतिथियोंका पूजन करनेके बाद प्रिय-जनों, कुटुम्बियों, भाई-बन्धुओं, याचकों, आकुल व्यक्तियों, बालकों, वृद्धों तथा रोगियोंको भोजन कराये। इनके अतिरिक्त यदि कोई दूसरा अकिञ्चन मनुष्य भी भूखसे व्याकुल होकर अन्नकी याचना करता हो तो गृहस्थ पुरुष वैभव होनेपर उसे अवश्य भोजन कराये। जो सजातीय बन्धु अपने किसी धनी सजातीयके पास जाकर भी भोजनका कष्ट पाता है, वह उस कष्टकी अवस्थामें जो पाप कर बैठता है, उसे वह धनी मनुष्य भी भोगता है। सायंकालमें भी इसी नियमका पालन करे। सूर्यास्त होनेपर जो अतिथि वहाँ आ जाय, उसकी यथाशक्ति शय्या, आसन और भोजनके द्वारा पूजा करे। बेटा! जो इस प्रकार अपने कंधोंपर रखा हुआ गृहस्थाश्रमका भार ढोता है, उसके लिये स्वयं ब्रह्माजी, देवता, पितर, महर्षि, अतिथि, बन्धु-बान्धव, पशु-पक्षी तथा छोटे-छोटे कीड़े भी, जो उसके अन्नसे तृप्त हुए रहते हैं, कल्याणकी वर्षा करते हैं।

श्राद्ध-कर्मका वर्णन

मदालसा **बोली**—बेटा! गृहस्थके कर्म तीन प्रकारके हैं। नित्य, नैमित्तिक तथा नित्यनैमित्तिक। इनका वर्णन सुनो। पञ्चयज्ञसम्बन्धी कर्म, जिसका अभी वर्णन किया है, नित्य कहलाता है। पुत्र-जन्म आदिके उपलक्ष्यमें किये हुए कर्मको नैमित्तिक कहते हैं। पर्वके अवसरपर जो श्राद्ध आदि किये जाते हैं, उन्हें विद्वान् पुरुषोंको नित्यनैमित्तिक कर्म समझना चाहिये। उनमेंसे नैमित्तिक कर्मका वर्णन करती हूँ। आभ्युदयिक श्राद्ध नैमित्तिक कर्म है, जिसे पुत्र-जन्मके अवसरपर जातकर्म संस्कारके साथ करना चाहिये। विवाह आदिमें भी, जिस क्रमसे वह बताया गया है, भलीभाँति उसका अनुष्ठान करना उचित है। नान्दीमुख नामके जो पितर हैं, उन्हींका इसमें पूजन करना चाहिये और उन्हें दधिमिश्रित जौके पिण्ड देने चाहिये। उस समय यजमानको एकाग्रचित्त होकर उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। कुछ लोगोंका मत है कि इसमें बलिवैश्वदेव कर्म नहीं होता। आभ्युदयिक श्राद्धमें युग्म ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना और प्रदक्षिणापूर्वक उनका पूजन करना उचित है। यह वृद्धिके अवसरोंपर किया जानेवाला नैमित्तिक श्राद्ध है। इससे भिन्न और्ध्वदैहिक श्राद्ध है, जो मृत्युके पश्चात् किया जाता है।

---

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥ (२९। ३१)

† ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम्। अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः॥ (२९। ३५)

मृत व्यक्ति जिस दिन (तिथिमें) मरा हो, उस तिथिको एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये; उसका वर्णन सुनो। उसमें विश्वेदेवोंकी पूजा नहीं होती। एक ही पवित्रकका उपयोग किया जाता है। आवाहन तथा अग्नौकरणकी क्रिया भी नहीं होती। ब्राह्मणके उच्छिष्टके समीप प्रेतको तिल और जलके साथ अपसव्य होकर (जनेऊको दाहिने कंधेपर डालकर) उसके नाम-गोत्रका स्मरण करते हुए एक पिण्ड देना चाहिये। तत्पश्चात् हाथमें जल लेकर कहे—'अमुकके श्राद्धमें दिया हुआ अन्न-पान आदि अक्षय हो।' यह कहकर वह जल पिण्डपर छोड़ दे; फिर ब्राह्मणोंका विसर्जन करते समय कहे—'**अभिरम्यताम्**' (आपलोग सब तरहसे प्रसन्न हों)। उस समय ब्राह्मणलोग यह कहें—'**अभिरताः स्मः**' (हम भलीभाँति सन्तुष्ट हैं)। यह एकोद्दिष्ट श्राद्ध एक वर्षतक प्रतिमास करना उचित है। वर्ष पूरा होनेपर जब भी श्राद्ध किया जाय, पहले सपिण्डीकरण करना आवश्यक होता है। उसकी भी विधि बतलायी जाती है—यह सपिण्डीकरण भी विश्वेदेवोंकी पूजासे रहित होता है। इसमें भी एक ही अर्घ्य और एक ही पवित्रकका विधान है। अग्नौकरण और आवाहनकी क्रिया इसमें भी नहीं होती। इसमें अपसव्य होकर अयुग्म ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसमें जो विशेष क्रिया है, उसे बतलाती हूँ, एकाग्रचित्तसे सुनो। इसमें तिल, चन्दन और जलसे युक्त चार पात्र होते हैं; उनमेंसे तीन तो पितरोंके लिये और एक प्रेतके लिये होता है। प्रेतके पात्र और अर्घ्यको लेकर '**ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये**' इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए पितरोंके तीनों पात्रोंमें सींचना चाहिये। शेष कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये भी ऐसे ही एकोद्दिष्टका विधान है। यदि पुत्र न हो तो स्त्रियोंका सपिण्डीकरण नहीं होता। पुरुषोंको उचित है कि वे स्त्रियोंके लिये भी प्रतिवर्ष उनकी मृत्युतिथिको विधिपूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्ध करें। उनके लिये भी पुरुषोंके समान ही विधान है। पुत्रके अभावमें सपिण्ड, सपिण्डके अभावमें सहोदक, उनके भी अभावमें माताके सपिण्ड[1] और सहोदक[2] इस विधिको पूर्ण करें। जिसके कोई पुत्र नहीं है, उसका श्राद्ध उसके दौहित्र कर सकते हैं। पुत्रीके पुत्र नानाका नैमित्तिक श्राद्ध करनेके भी अधिकारी हैं। जिनकी द्व्यामुष्यायण[3] संज्ञा है, ऐसे पुत्र नाना और बाबा दोनोंका नैमित्तिक श्राद्धोंमें भी विधिपूर्वक पूजन कर सकते हैं। कोई भी न हो तो स्त्रियाँ ही अपने पतियोंका मन्त्रोच्चारण किये बिना श्राद्ध कर सकती हैं। वे भी न हों तो राजा अपने कुटुम्बी मनुष्यसे अथवा मृतकके सजातीय मनुष्योंद्वारा दाह आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ पूर्ण करावें; क्योंकि राजा सब वर्णोंका बन्धु होता है।

सपिण्डीकरणके पश्चात् पिताके प्रपितामह लेपभागभोजी पितरोंकी श्रेणीमें चले जाते हैं। उन्हें पितृ-पिण्ड पानेका अधिकार नहीं रहता। उनसे आरम्भ करके चार पीढ़ी ऊपरके पितर, जो अबतक पुत्रके लेपभागका अन्न ग्रहण करते थे, उसके सम्बन्धसे रहित हो जाते हैं। अब उनको

१. पितासे लेकर ऊपरकी सात पीढ़ीतक और मातासे लेकर नाना आदि पाँच पीढ़ीतक सपिण्डता मानी जाती है। किसीके मतमें छः पीढ़ी ऊपर और छः पीढ़ी नीचेतकके लोग सपिण्डकी गणनामें आते हैं।

२. जिनकी ग्यारहवींसे लेकर चौदहवींतक ऊपरकी पीढ़ी एक हो, वे सहोदक या समानोदक कहलाते हैं।

३. वह पुत्र, जो एकसे तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरेके द्वारा दत्तकके रूपमें ग्रहण किया हो और दोनों पिता उसको अपना-अपना पुत्र मानते हों, द्व्यामुष्यायण (दोनोंका) कहलाता है। ऐसा पुत्र दोनोंको पिण्डदान देता है और दोनोंकी सम्पत्तिका अधिकारी होता है।

लेपभागका अन्न पानेका भी अधिकार नहीं रहता। वे सम्बन्धहीन अन्नका उपभोग करते हैं। पिता, पितामह और प्रपितामह—इन तीन पुरुषोंको पिण्डके अधिकारी समझना चाहिये। इनसे अर्थात् पिताके पितामहसे ऊपर जो तीन पीढ़ीके पुरुष हैं, वे लेपभागके अधिकारी हैं। इस प्रकार छः ये और सातवाँ यजमान, सब मिलाकर सात पुरुषोंका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है—ऐसा मुनियोंका कथन है। यह सम्बन्ध यजमानसे लेकर ऊपरके लेपभागभोजी पितरोंतक माना जाता है। इनसे ऊपरके सभी पितर पूर्वज कहलाते हैं। इनमेंसे जो नरकमें निवास करते हैं, जो पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हैं तथा जो भूत-प्रेत आदिके रूपमें स्थित हैं, उन सबको विधिपूर्वक श्राद्ध करनेवाला यजमान तृप्त करता है। किस प्रकार तृप्त करता है, यह बतलाती हूँ; सुनो। मनुष्य पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाच-योनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। बेटा! स्नानके वस्त्रसे जो जल पृथ्वीपर टपकता है, उससे वृक्ष-योनिमें पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। नहानेपर अपने शरीरसे जो जलके कण इस पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे उन पितरोंकी तृप्ति होती है, जो देवभावको प्राप्त हुए हैं। पिण्डोंके उठानेपर जो अन्नके कण पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। कुलमें जो बालक श्राद्धकर्मके योग्य होकर भी संस्कारसे वञ्चित रह गये हैं अथवा जलकर मरे हैं, वे बिखेरे हुए अन्न और सम्मार्जनके जलको ग्रहण करते हैं। ब्राह्मणलोग भोजन करके जब हाथ-मुँह धोते हैं और चरणोंका प्रक्षालन करते हैं, उस जलसे भी अन्यान्य पितरोंकी तृप्ति होती है। बेटा! उत्तम विधिसे श्राद्ध करनेवाले पुरुषोंके अन्य पितर यदि दूसरी-दूसरी योनियोंमें चले गये हों तो भी उस श्राद्धसे उन्हें बड़ी तृप्ति होती है। अन्यायोपार्जित धनसे जो श्राद्ध किया जाता है, उससे चाण्डाल आदि योनियोंमें पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। वत्स! इस प्रकार यहाँ श्राद्ध करनेवाले भाई-बन्धु अन्न और जलके कणमात्रसे अनेक पितरोंको तृप्त करते हैं। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह पितरोंके प्रति भक्ति रखते हुए शाकमात्रके द्वारा भी विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले पुरुषके कुलमें कोई दुःख नहीं भोगता।

अब मैं नित्य नैमित्तिक श्राद्धोंके काल बतलाती हूँ और मनुष्य जिस विधिसे श्राद्ध करते हैं, उसका भी वर्णन करती हूँ; सुनो। प्रत्येक मासकी अमावस्याको जिस दिन चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कलाएँ क्षीण हो गयी हों तथा अष्टका[1] तिथियोंको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। अब श्राद्धका इच्छाप्राप्त काल सुनो। किसी विशिष्ट ब्राह्मणके आनेपर, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें, अयन आरम्भ होनेपर, विषुवयोगमें[2], सूर्यकी संक्रान्तिके दिन, व्यतीपात योगमें, श्राद्धके योग्य सामग्रीकी प्राप्ति होनेपर, दुःस्वप्न दिखायी देनेपर, जन्म-नक्षत्रके दिन एवं ग्रहजनित पीड़ा होनेपर स्वेच्छासे श्राद्धका अनुष्ठान करे।

श्रेष्ठ ब्राह्मण, श्रोत्रिय, योगी, वेदज्ञ, ज्येष्ठ सामग, त्रिणाचिकेत,[3] त्रिमधु[4], त्रिसुपर्ण[5], षडङ्गवेत्ता, दौहित्र, ऋत्विक्, जामाता, भानजा, पञ्चाग्नि-कर्ममें तत्पर, तपस्वी, मामा, माता-पिताके भक्त,

---

१. पौष, माघ, फाल्गुन तथा चैत्रके कृष्णपक्षकी अष्टमियोंको अष्टका कहते हैं।

२. जिस समय सूर्य विषुव रेखापर पहुँचते और दिन-रात बराबर होते हैं, उसे 'विषुव' कहते हैं।

३. द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन त्रिणाचिकेत नामक अनुवाकोंको पढ़ने या उसका अनुष्ठान करनेवाला।

४. 'मधु वाता॰' इत्यादि ऋचाका अध्ययन और मधुव्रतका आचरण करनेवाला।

५. 'ब्रह्म मेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला।

शिष्य, सम्बन्धी एवं भाई-बन्धु—ये सभी श्राद्धमें उत्तम माने गये हैं। इन्हें निमन्त्रित करना चाहिये। धर्मभ्रष्ट, रोगी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, दो बार ब्याही गयी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न, काना, पतिके जीते-जी जार पुरुषसे पैदा की हुई सन्तान, पतिके मरनेपर परपुरुषसे उत्पन्न हुई सन्तान, मित्रद्रोही, खराब नखोंवाला, नपुंसक, काले दाँतोंवाला, कुरूप, पिताके द्वारा कलङ्कित, चुगलखोर, सोमरस बेचनेवाला, कन्याको दूषित करनेवाला, वैद्य, गुरु एवं माता-पिताका त्याग करनेवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, शत्रु, जो पहले दूसरे पुरुषकी पत्नी रह चुकी हो, ऐसी स्त्रीका पति, वेदाध्ययन तथा अग्निहोत्रका त्याग करनेवाला, शूद्रजातीय स्त्रीके पति होनेके दोषसे दूषित तथा शास्त्रविरुद्ध कर्ममें लगे रहनेवाले अन्यान्य द्विज श्राद्धमें त्याग देने योग्य हैं।

पहले बताये हुए श्रेष्ठ द्विजोंको देवयज्ञ अथवा श्राद्धमें एक दिन पहले ही निमन्त्रण देना चाहिये। उसी समयसे ब्राह्मणों तथा श्राद्धकर्ताको भी संयमसे रहना चाहिये। जो श्राद्धमें दान देकर अथवा श्राद्धमें भोजन करके मैथुन करता है, उसके रज-वीर्यमें एक मासतक पितरोंको शयन करना पड़ता है। जो स्त्री-सहवास करके श्राद्धमें जाता और खाता है, उसके पितर उसीके वीर्य और मूत्रका एक मासतक आहार करते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको एक दिन पहले ही ब्राह्मणोंके पास निमन्त्रण भेजना चाहिये। यदि पहले दिन ब्राह्मण न मिल सकें तो भी श्राद्धके दिन स्त्री-प्रसंगी ब्राह्मणोंको कदापि भोजन न कराये। बल्कि समयपर भिक्षाके लिये स्वतः पधारे हुए संयमी यतियोंको नमस्कार आदिसे प्रसन्न करके शुद्ध चित्तसे भोजन कराये। जैसे शुक्ल पक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष पितरोंको विशेष प्रिय है, वैसे ही पूर्वाह्नकी अपेक्षा अपराह्न उन्हें अधिक प्रिय है। घरपर आये हुए ब्राह्मणोंका स्वागतपूर्वक पूजन करके उन्हें पवित्रयुक्त हाथसे आचमन करानेके बाद आसनोंपर बिठाये। श्राद्धमें विषम और देवयज्ञमें सम संख्याके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार दोनों कार्योंमें एक-ही-एक ब्राह्मणको भोजन कराये। यही बात मातामहोंके श्राद्धमें भी होनी चाहिये। विश्वेदेवोंका श्राद्ध भी ऐसा ही है। कुछ लोगोंका ऐसा मत है कि पितरों और मातामहोंके विश्वेदेव-कर्म पृथक्-पृथक् हैं। देव-श्राद्धमें ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख और पितृ-श्राद्धमें उत्तराभिमुख बिठाना चाहिये। मातामहोंके श्राद्धमें भी मनीषी पुरुषोंने इसी विधिका प्रतिपादन किया है। पहले ब्राह्मणोंको बैठनेके लिये कुश देकर विद्वान् पुरुष अर्घ्य आदिसे उनकी पूजा करे। फिर उन्हें पवित्रक आदि दे उनसे आज्ञा लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक देवताओंका आवाहन करे। तत्पश्चात् जौ और जल आदिसे विश्वेदेवोंको अर्घ्य देकर गन्ध, पुष्प, माला, जल, धूप और दीप आदि विधिपूर्वक निवेदन करे।

पितरोंके लिये ये सारी वस्तुएँ अपसव्य होकर प्रस्तुत करनी चाहिये। पितृ-श्राद्धमें बैठे हुए ब्राह्मणोंको आसनके लिये द्विगुणभुग्न (दोहरे मुड़े हुए) कुश देकर उनकी आज्ञा ले विद्वान् पुरुष मन्त्रोच्चारणपूर्वक पितरोंका आवाहन करे और अपसव्य होकर पितरोंकी प्रसन्नताके लिये तत्पर हो उन्हें अर्घ्य निवेदन करे। उसमें जौके स्थानपर तिलोंका उपयोग करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंके आज्ञा देनेपर अग्निकार्य करे। नमक और व्यञ्जनसे रहित अन्न लेकर विधिपूर्वक अग्निमें आहुति दे। '**अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा**' इस मन्त्रसे पहली आहुति दे, '**सोमाय पितृमते स्वाहा**' इस मन्त्रसे दूसरी आहुति दे तथा '**यमाय प्रेतपतये स्वाहा**' इस मन्त्रसे तीसरी आहुतिको अग्निमें डाले। आहुतिसे बचे हुए अन्नको ब्राह्मणोंके पात्रमें परोसे। फिर पात्रमें हाथका सहारा दे विधिपूर्वक कुछ और अन्न डाले एवं कोमल वचनोंमें प्रार्थना करे कि

अन्न आपलोग सुखसे भोजन कीजिये। फिर उन ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे एकाग्रचित्त एवं मौन होकर सुखपूर्वक भोजन करें। जो-जो अन्न उन्हें अत्यन्त प्रिय लगे, वह-वह तुरंत उनके सामने प्रस्तुत करे। उस समय क्रोधको त्याग दे और ब्राह्मणोंको आग्रहपूर्वक प्रलोभन दे-दे भोजन कराये। उनके भोजनकालमें रक्षाके लिये पृथ्वीपर तिल और सरसों बिखेरे तथा रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ करे; क्योंकि श्राद्धमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित होते हैं। जब ब्राह्मणलोग पूर्ण भोजन कर लें तो पूछे—'क्या आपलोग भलीभाँति तृप्त हो गये?' इसके उत्तरमें ब्राह्मण कहें—'हाँ, हम पूर्ण तृप्त हो गये।' फिर उनकी आज्ञा लेकर पृथ्वीपर सब ओर कुछ अन्न बिखेरे। इसी प्रकार आचमन करनेके लिये एक-एक ब्राह्मणको बारी बारीसे जल दे। तत्पश्चात् फिर उनकी आज्ञा ले मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर तिलसहित सम्पूर्ण अन्नसे पितरोंके लिये पृथक्-पृथक् पिण्ड दे। यह पिण्डदान ब्राह्मणोंके उच्छिष्टके समीप ही कुशोंपर करना चाहिये; फिर पितृतीर्थसे[1] उन पिण्डोंपर एकाग्रचित्तसे जल दे। इसी प्रकार मातामह आदिके लिये भी विधिपूर्वक पिण्डदान देकर गन्ध-माला आदिके साथ आचमनके लिये जल दे। अन्तमें यथाशक्ति दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंसे कहे—'सुस्वधा अस्तु' (यह श्राद्धकर्म भलीभाँति सम्पन्न हो)। ब्राह्मण भी सन्तुष्ट होकर 'तथास्तु' कहें। फिर विश्वेदेव-सम्बन्धी ब्राह्मणोंसे कहे—'हे विश्वेदेवगण! आपका कल्याण हो। आपलोग प्रसन्न रहें।' तब ब्राह्मणलोग 'तथास्तु' कहें। इसके बाद उनसे आशीर्वादकी याचना करे और प्रिय वचन कहते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उन्हें विदा दे। दरवाजेतक उन्हें पहुँचानेके लिये पीछे-पीछे जाय और उनकी आज्ञा लेकर लौटे।

तदनन्तर नित्यक्रिया करे और अतिथियोंको भोजन कराये। किन्हीं-किन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंका विचार है कि यह नित्यकर्म भी पितरोंके ही उद्देश्यसे होता है। दूसरे लोग ऐसा कहते हैं कि इससे पितरोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् करे। किन्हीं-किन्हींका मत है कि पितरोंके लिये पृथक् पाक बनाकर श्राद्ध करना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है—ऐसा नहीं करना चाहिये।

इसके बाद यजमान अपने भृत्य आदिके साथ अन्नशिष्ट अन्न भोजन करे। धर्मज्ञ पुरुषको इसी प्रकार एकाग्रचित्त होकर पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये और जिस प्रकार ब्राह्मणोंको सन्तोष हो, वैसी चेष्टा करनी चाहिये। श्राद्धमें दौहित्र (पुत्रीका पुत्र), कुतप (दिनके पंद्रह भागोंमेंसे आठवाँ भाग) और तिल—ये तीन अत्यन्त पवित्र माने गये हैं। श्राद्धमें आये ब्राह्मणोंको तीन बातें छोड़ देनी चाहिये—क्रोध, मार्गका चलना और उतावली।* बेटा! श्राद्धमें चाँदीका पात्र बहुत उत्तम माना गया है। उसमें चाँदीका दर्शन या दान अवश्य करना चाहिये। सुना जाता है, पितरोंने चाँदीके पात्रमें ही गोरूपधारिणी पृथ्वीसे स्वधाका दोहन किया था। अतः पितरोंको चाँदीका दान अभीष्ट एवं प्रसन्नता बढ़ानेवाला है।

---

[1] अंगूठा और तर्जनीके बीचका भाग।

* त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतपस्तिलाः। वर्ज्यानि चाहुर्विप्रेन्द्रैः कोपोऽध्वगमनं त्वरा॥ (३१। ६४)

श्राद्धमें विहित और निषिद्ध वस्तुका वर्णन तथा गृहस्थोचित सदाचारका निरूपण

मदालसा कहती है—बेटा! भक्तिपूर्वक लायी हुई कौन वस्तु पितरोंको प्रिय है और कौन वस्तु अप्रिय, इस बातका वर्णन करती हूँ; सुनो। हविष्यान्नसे पितरोंको एक मासतक तृप्ति बनी रहती है। गायका दूध अथवा उसमें बनी हुई खीर उन्हें एक वर्षतक तृप्त रखती है। जिस कन्याका विवाह गौरी-अवस्थामें हुआ है, उससे उत्पन्न पुत्रसे और गयाके श्राद्धसे पितर अनन्तकालतक तृप्त रहते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अन्नोंमें श्यामाक (सावाँ), राजश्यामाक, प्रसातिका, नीवार और पौष्कल—ये पितरोंको तृप्त करनेवाले हैं। जौ, धान, गेहूँ, तिल, मूँग, सरसों, कँगनी, कोदो और मटर—ये बहुत ही उत्तम हैं। मकई, काला उड़द, विप्रुषि और मसूर—ये श्राद्धकर्ममें निन्दित माने गये हैं। लहसुन, गाजर, प्याज, मूली, सत्तू, रस और वर्णसे हीन अन्यान्य वस्तुएँ, गान्धारिक, लौकी, खारा नमक, लाल गोंद, भोजनके साथ पृथक् नमक—ये श्राद्धमें वर्जित हैं। इसी प्रकार जिसकी वाणीसे कभी प्रशंसा नहीं की जाती, वह वस्तु श्राद्धमें निषिद्ध है। सूदमें मिला हुआ, पतित मनुष्योंके यहाँसे आया हुआ, अन्यायसे तथा कन्याको बेचनेसे प्राप्त किया हुआ धन श्राद्धके लिये अत्यन्त निन्दित है। दुर्गन्धित, फेनयुक्त, थोड़े जलवाले सरोवरसे लाया हुआ, जहाँ गायकी प्यास न बुझ सके—ऐसे स्थानसे प्राप्त किया हुआ, रातका धरा हुआ, सब लोगोंका छोड़ा हुआ, अपेय तथा पौंसलेका जल श्राद्धमें सदा ही वर्जित है। मृगी, भेड़, ऊँटनी, घोड़ी आदि, भैंस और चँवरी गायका दूध श्राद्धमें निषिद्ध है। हालकी ब्यायी हुई गौका भी दस दिनके भीतरका दूध वर्जित है। 'मुझे श्राद्धके लिये दूध दो' यों कहकर लाया हुआ दूध भी श्राद्धकर्ममें ग्रहण करनेयोग्य नहीं है।

जहाँ बहुत से जन्तु रहते हों, जो रूखी और आगसे जली हुई हो, जहाँ अनिष्ट एवं दुष्ट शब्द सुनायी पड़ते हों, जो भयानक दुर्गन्धसे भरी हो—ऐसी भूमि श्राद्धकर्ममें वर्जित है। कुलका अपमान तथा हिंसा करनेवाले, कुलाधम, ब्रह्महत्यारा, रोगी, चाण्डाल, नग्न और पातकी—ये अपनी दृष्टिसे श्राद्धकर्मको दूषित कर देते हैं। नपुंसक, जातिबहिष्कृत, मुर्गा, ग्रामीण सूअर, कुत्ता और राक्षस भी अपनी दृष्टिसे श्राद्धको नष्ट कर देते हैं। इसलिये चारों ओरसे ओट करके श्राद्ध करे। पृथ्वीपर तिल बिखेरे। ऐसा करनेसे श्राद्धमें रक्षा होती है। श्राद्धकी जिस वस्तुको मरणाशौच या जननाशौचसे युक्त मनुष्य छू दे, बहुत दिनोंका रोगी, पतित एवं मलिन पुरुष स्पर्श कर ले, वह पितरोंकी पुष्टि नहीं करती। इसलिये श्राद्धमें ऐसी वस्तुका त्याग करना चाहिये। रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि श्राद्धमें वर्जित है। संन्यासी और जुआरियोंका आना-जाना भी रोकना चाहिये। जिसमें बाल और कीड़े पड़ गये हों, जिसे कुत्तोंने देख लिया हो, जो बासी एवं दुर्गन्धित हो—ऐसी वस्तुका श्राद्धमें उपयोग न करे। बैंगन और शराबका भी त्याग करे। जिस अन्नपर पहने हुए वस्त्रकी हवा लग जाय, वह भी श्राद्धमें वर्जित है।

पितरोंको उनके नाम और गोत्रका उच्चारण करके पूर्ण श्रद्धाके साथ जो कुछ दिया जाता है, वह वे जैसा आहार करते होते हैं, उसी रूपमें उन्हें प्राप्त होता है। इसलिये पितरोंकी तृप्ति चाहनेवाले श्रद्धालु पुरुषको उचित है कि जो वस्तु उत्तम हो, वही श्राद्धमें सुपात्र ब्राह्मणको दान करे। विद्वान् पुरुष योगी पुरुषोंको सदा ही श्राद्धमें भोजन कराये; क्योंकि पितरोंका आधार योग ही

है। इसलिये योगियोंका सर्वदा पूजन करे। हजार ब्राह्मणोंकी अपेक्षा यदि एक ही योगीको पहले भोजन करा दिया जाय तो वह पानीमें नौकाकी भाँति यजमान और श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंका भवसागरसे उद्धार कर देता है। इस विषयमें ब्रह्मवादी पुरुष उस पितृगाथाका गान किया करते हैं, जिसे पूर्वकालमें राजा पुरूरवाके पितरोंने गाया था। 'हमारी वंशपरम्परामें किसीको ऐसा श्रेष्ठ पुत्र कब उत्पन्न होगा, जो योगियोंको भोजन करानेसे बचे हुए अन्नको लेकर पृथ्वीपर हमारे लिये पिण्ड देगा। अथवा गयामें जाकर उत्तम हविष्यका पिण्ड, सामयिक शाक एवं तिल मिली हुई खिचड़ी देगा। ये वस्तुएँ हमें एक मासतक तृप्त रखनेवाली हैं। त्रयोदशी तिथि और मघा नक्षत्रमें विधिपूर्वक श्राद्ध करे तथा दक्षिणायनमें मधु और घीसे मिली हुई खीर दे।'

इसलिये पुत्र! सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति तथा पापसे मुक्ति चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह भक्तिपूर्वक पितरोंकी पूजा करे। श्राद्धमें तृप्त किये हुए पितर मनुष्योंपर वसु, रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह और तारोंकी प्रसन्नताका संपादन करते हैं। श्राद्धमें तृप्त पितर आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख तथा राज्य प्रदान करते हैं।

बेटा! इस प्रकार गृहस्थ पुरुषको हव्यसे देवताओंका, कव्य (श्राद्ध)से पितरोंका और अन्नसे अतिथियों एवं भाई-बन्धुओंका पूजन करना चाहिये। इनके सिवा भूत, प्रेत, समस्त भृत्यगण, पशु-पक्षी, चींटी, वृक्ष तथा अन्यान्य याचकोंकी तृप्ति भी सदाचारी गृहस्थ पुरुषको करनी चाहिये। जो नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंका उल्लङ्घन करके पूजन करता है, वह पाप भोगता है।

अलर्क बोले—माताजी! आपने पुरुषके नित्य, नैमित्तिक तथा नित्य-नैमित्तिक—ये तीन प्रकारके कर्म बतलाये। अब मैं आपके मुँहसे सदाचारका वर्णन सुनना चाहता हूँ, जिसका पालन करनेवाला मनुष्य इस लोक और परलोकमें भी सुख पाता है।

मदालसाने कहा—बेटा! गृहस्थ पुरुषको सदा ही सदाचारका पालन करना चाहिये। आचारहीन मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है, न परलोकमें। जो सदाचारका उल्लङ्घन करके मनमाना बर्ताव करता है, उस पुरुषका कल्याण यज्ञ, दान और तपस्यासे भी नहीं होता। दुराचारी पुरुषको इस लोकमें बड़ी आयु नहीं मिलती। अतः सदाचारके पालनका सदा ही यत्न करे। सदाचार बुरे लक्षणोंका नाश करता है। वत्स! अब मैं सदाचारका स्वरूप बतलाती हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो और उसका पालन करो। गृहस्थको धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनका यत्न करना चाहिये। उनके सिद्ध होनेपर उसे इस लोक और परलोकमें भी सिद्धि प्राप्त होती है। मनको वशमें करके अपनी आयका एक चौथाई भाग पारलौकिक लाभके लिये संगृहीत करे। आधे भागसे नित्य नैमित्तिक कार्योंका निर्वाह करते हुए अपना भरण-पोषण करे तथा एक चौथाई भाग अपने लिये मूल पूँजीके रूपमें रखकर उसे बढ़ावे। बेटा! ऐसा करनेसे धन सफल होता है। इसी प्रकार पापकी निवृत्ति तथा पारलौकिक उन्नतिके लिये विद्वान् पुरुष धर्मका अनुष्ठान करे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठे। उठकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे। अर्थके कारण जो शरीरको कष्ट उठाना पड़ता है, उसका भी विचार करे। फिर वेदके तात्त्विक अर्थ—परब्रह्म परमात्माका स्मरण करे। इसके बाद शय्यासे उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो, स्नान आदिसे पवित्र होकर मनको संयममें रखते हुए पूर्वाभिमुख बैठे और आचमन करके सन्ध्योपासन करे। प्रातःकालकी सन्ध्या उस समय आरम्भ करे, जब तारे दिखायी देते हों। इसी प्रकार सायंकालकी सन्ध्योपासना सूर्यास्तसे पहले ही विधिपूर्वक आरम्भ करे। आपत्तिकालके सिवा और किसी समय उसका

त्याग न करे।* बुरी-बुरी बातें बकना, झूठ बोलना, कठोर वचन मुँहसे निकालना, असत् शास्त्र पढ़ना, नास्तिकवादको अपनाना तथा दुष्ट पुरुषोंकी सेवा करना छोड़ दे। मनको वशमें रखते हुए प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल हवन करे। उदय और अस्तके समय सूर्यमण्डलका दर्शन न करे। बाल सँवारना, आईना देखना, दातुन करना और देवताओंका तर्पण करना—यह सब कार्य पूर्वाह्णकालमें ही करना चाहिये।

ग्राम, निवासस्थान, तीर्थ और क्षेत्रोंके मार्गमें, जोते हुए खेतमें तथा गोशालामें मल-मूत्र न करे। परायी स्त्रीको नंगी अवस्थामें न देखे। अपनी विष्ठापर दृष्टिपात न करे। रजस्वला स्त्रीका दर्शन, स्पर्श तथा उसके साथ भाषण भी वर्जित है। पानीमें मल-मूत्रका त्याग अथवा मैथुन न करे। बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र, केश, राख, खोपड़ी, भूसी, कोयले, हड्डियोंके चूर्ण, रस्सी, वस्त्र आदिपर तथा केवल पृथ्वीपर और मार्गमें कभी न बैठे। गृहस्थ मनुष्य अपने वैभवके अनुसार देवता, पितर, मनुष्य तथा अन्यान्य प्राणियोंका पूजन करके पीछे भोजन करे। भलीभाँति आचमन करके हाथ-पैर धोकर पवित्र हो पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके भोजनके लिये आसनपर बैठे और हाथोंको घुटनोंके भीतर करके मौनभावसे भोजन करे। भोजनके समय मनको अन्यत्र न ले जाय। यदि अन्न किसी प्रकारकी हानि करनेवाला हो तो उस हानिको ही बतावे। उसके सिवा अन्नके और किसी दोषकी चर्चा न करे। भोजनके साथ पृथक् नमक लेकर न खाय। अधिक गर्म अन्न खाना भी ठीक नहीं है। मनुष्यको चाहिये कि खड़े होकर या चलते-चलते मल-मूत्रका त्याग, आचमन तथा कुछ भी भक्षण न करे। जूठे मुँह वार्तालाप न करे तथा उस अवस्थामें स्वाध्याय भी वर्जित है। जूठे हाथसे गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा अपने मस्तकका भी स्पर्श न करे। जूठी अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी ओर जान बूझकर न देखे। दूसरेके आसन, शय्या और बर्तनका भी स्पर्श न करे।

गुरुजनोंके आनेपर उन्हें बैठनेको आसन दे, उठकर प्रणामपूर्वक उनका स्वागत सत्कार करे। उनके अनुकूल बातचीत करे। जाते समय उनके पीछे पीछे जाय, कोई प्रतिकूल बात न करे। एक वस्त्र धारण करके भोजन तथा देवपूजन न करे। बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणोंसे बोझ न ढुलाये और आगमें मूत्र-त्याग न करे। नग्न होकर कभी स्नान अथवा शयन न करे। दोनों हाथोंसे सिर न खुजलाये। बिना कारण बारंबार सिरके ऊपरसे स्नान न करे। सिरसे स्नान कर लेनेपर किसी भी अङ्गमें तेल न लगाये। सब अनध्यायोंके दिन स्वाध्याय बंद रखे। ब्राह्मण, अग्नि, गौ तथा सूर्यकी ओर मुँह करके पेशाब न करे। दिनमें उत्तरकी ओर और रात्रिमें दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे। जहाँ ऐसा करनेमें कोई बाधा हो, वहाँ इच्छानुसार करे। गुरुके दुष्कर्मकी चर्चा न करे। यदि वे क्रुद्ध हों तो उन्हें विनयपूर्वक प्रसन्न करे। दूसरे लोग भी यदि गुरुकी निन्दा करते हों तो उसे न सुने। ब्राह्मण, राजा, दुःखसे आतुर मनुष्य, विद्या-वृद्ध पुरुष, गर्भिणी स्त्री, बोझसे व्याकुल मनुष्य, गूँगा, अन्धा, बहरा, मत्त, उन्मत्त, व्यभिचारिणी स्त्री, शत्रु, बालक और पतित—ये यदि सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे हटकर इनको जानेके लिये मार्ग देना चाहिये। विद्वान् पुरुष देवालय, चैत्यवृक्ष, चौराहा, विद्या-वृद्ध पुरुष, गुरु और देवता—इनको दाहिने करके चले। दूसरोंके धारण किये हुए जूते और वस्त्र स्वयं न पहने। दूसरोंके उपयोगमें आये हुए

* पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्। उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि॥ (३४। १८)

यज्ञोपवीत, आभूषण और कमण्डलुका भी त्याग करे। चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा तथा पर्वके दिन तैलाभ्यङ्ग एवं स्त्री-सहवास न करे। बुद्धिमान् मनुष्य कभी पैर और जङ्घा फैलाकर न खड़ा हो। पैरोंको न हिलाये तथा पैरको पैरसे न दबाये। किसीको चुभती बात न कहे। निन्दा और चुगली छोड़ दे। दम्भ, अभिमान और तीखा व्यवहार कदापि न करे। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मायावी, हीनाङ्ग तथा अधिकाङ्ग मनुष्योंकी खिल्ली न उड़ाये। पुत्र और शिष्यको शिक्षा देनेके लिये आवश्यकता होनेपर उन्हींको दण्ड दे, दूसरोंको नहीं। आसनको पैरसे खींचकर न बैठे। सायंकाल और प्रातःकाल पहले अतिथिका सत्कार करके फिर स्वयं भोजन करे।

वत्स! सदा पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके ही दातुन करे। दातुन करते समय मौन रहे। दातुनके लिये निषिद्ध वृक्षोंका परित्याग करे। उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोये। दक्षिण या पूर्व दिशाकी ओर ही मस्तक करके सोवे। दुर्गन्धि-युक्त जलमें स्नान न करे। रात्रिमें न नहाये, ग्रहणके समय रात्रिमें भी स्नान करना बहुत उत्तम है; इसके सिवा अन्य समयमें दिनमें ही स्नानका विधान है। स्नान कर लेनेके बाद हाथ या कपड़ेसे शरीरको न मले। बालों और वस्त्रोंको न फटकारे। विद्वान् पुरुष बिना स्नान किये कभी चन्दन न लगावे। लाल, रंगबिरंगे और काले रंगके कपड़े न पहने। जिसमें बाल, थूक या कीड़े पड़ गये हों, जिसपर कुत्तेकी दृष्टि पड़ी हो, जिसको किसीने चाट लिया हो अथवा जो सारभाग निकाल लेनेके कारण दूषित हो गया हो, ऐसे अन्नको न खाय। बहुत देरके बने हुए और बासी भातको त्याग दे। पीठी, साग, ईखके रस और दूधकी बनी हुई वस्तुएँ भी यदि बहुत दिनोंकी हों तो उन्हें न खावे। सूर्यके उदय और अस्तके समय शयन न करे। बिना नहाये, बिना बैठे, अन्यमनस्क होकर, शय्यापर बैठकर या सोकर, केवल पृथ्वीपर बैठकर, बोलते हुए, एक कपड़ा पहनकर तथा भोजनकी ओर देखनेवाले पुरुषोंको न देकर मनुष्य कदापि भोजन न करे। सबेरे-शाम दोनों समय भोजनकी यही विधि है।

विद्वान् पुरुषको कभी परायी स्त्रीके साथ समागम नहीं करना चाहिये। परस्त्री संगम मनुष्योंके इष्ट, पूर्त और आयुका नाश करनेवाला है। इस संसारमें परस्त्री-समागमके समान मनुष्यकी आयुका विघातक कार्य दूसरा कोई नहीं है। देवपूजा, अग्निहोत्र, गुरुजनोंको प्रणाम तथा भोजन भलीभाँति आचमन करके करना चाहिये। स्वच्छ, फेनरहित, दुर्गन्धशून्य और पवित्र जल लेकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके आचमन करना चाहिये। जलके भीतरकी, घरकी, बाँबीकी, चूहेके बिलकी और शौचसे बची हुई—ये पाँच प्रकारकी मिट्टियाँ त्याग देने योग्य हैं। हाथ-पैर धोकर एकाग्रचित्तसे मार्जन करके, घुटनोंको समेटकर, दो बार मुँहके दोनों किनारोंको पोंछे; फिर सम्पूर्ण इन्द्रियों और मस्तकका स्पर्श करके जलसे भलीभाँति तीन बार आचमन करे। इस प्रकार पवित्र होकर समाहित-चित्तसे सदा देवताओं, पितरों और ऋषियोंकी क्रिया करनी चाहिये। थूकने, खँखारने और कपड़ा पहननेपर बुद्धिमान् पुरुष आचमन करे। छींकने, चाटने, वमन करने, थूकने आदिके पश्चात् आचमन, गायके पीठका स्पर्श, सूर्यका दर्शन करना तथा दाहिने कानको छू लेना चाहिये। इनमें पहलेके अभावमें दूसरा उपाय करना चाहिये।

दाँतोंको न कटकटाये। अपने शरीरपर ताल न दे। दोनों संध्याओंके समय अध्ययन, भोजन और शयनका त्याग करे। सन्ध्याकालमें मैथुन और रास्ता चलना भी निषिद्ध है। बेटा! पूर्वाह्णकालमें देवताओंका, मध्याह्नकालमें मनुष्यों (अतिथियों) का तथा अपराह्णकालमें पितरोंका भक्तिपूर्वक

पूजन करना चाहिये। सिरसे स्नान करके देवकार्य या पितृकार्यमें प्रवृत्त होना उचित है। पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके क्षौर कराये। उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेपर भी जो कन्या किसी अङ्गसे हीन, रोगिणी, विकृत रूपवाली, पीले रंगकी, अधिक बोलनेवाली तथा सबके द्वारा निन्दित हो, उसके साथ विवाह न करे। जो किसी अङ्गसे हीन न हो, जिसकी नासिका सुन्दर हो तथा जो सभी उत्तम लक्षणोंसे सुशोभित हो, वैसी ही कन्याके साथ कल्याणकामी पुरुषको विवाह करना चाहिये। पुरुषको उचित है कि स्त्रीकी रक्षा करे, दिनमें शयन और मैथुन न करे। दूसरोंको कष्ट देनेवाला कार्य न करे, किसी जीवको पीड़ा न दे। रजस्वला स्त्री चार रातोंतक सभी वर्णके पुरुषोंके लिये त्याज्य है। यदि कन्याका जन्म रोकना हो तो पाँचवीं रातमें भी स्त्री-सहवास न करे। छठी रात आनेपर स्त्रीके पास जाय; क्योंकि युग्म रात्रियाँ ही इसके लिये श्रेष्ठ हैं। युग्म रात्रियोंमें स्त्री-सहवाससे पुत्रका जन्म होता है और अयुग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे कन्या उत्पन्न होती है; अतः पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष युग्म रात्रियोंमें ही स्त्रीके साथ शयन करे। पूर्वाह्णमें मैथुन करनेसे विधर्मी और सन्ध्याकालमें करनेसे नपुंसक पुत्र उत्पन्न होता है।

बेटा! हजामत बनवाने, वमन होने, स्त्री-प्रसङ्ग करने तथा श्मशानभूमिमें जानेपर वस्त्रसहित स्नान करे। देवता, वेद, द्विज, साधु, सच्चे महात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञकर्ता और तपस्वी—इनकी निन्दा अथवा परिहास न करे। यदि कोई उद्दण्ड मनुष्य ऐसा करता हो तो उसकी बात सुने भी नहीं। अपनेसे श्रेष्ठ और अपनेसे नीचे व्यक्तियोंकी शय्या और आसनपर न बैठे। अमङ्गलमय वेश न धारण करे और मुखसे अमाङ्गलिक वचन भी न बोले। स्वच्छ वस्त्र पहने और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। उद्दण्ड, उन्मत्त, अविनीत, शीलहीन, चोरी आदिसे दूषित, अधिक अपव्ययी, लोभी, वैरी, कुलटाके पति, अधिक बलवान्, अधिक दुर्बल, लोकमें निन्दित तथा सबपर सन्देह करनेवाले लोगोंसे कभी मित्रता न करे। साधु, सदाचारी, विद्वान्, चुगली न करनेवाले, सामर्थ्यवान् तथा उद्योगी पुरुषोंसे मित्रता स्थापित करे। विद्वान् पुरुष वेद-विद्या एवं व्रतमें निष्णात पुरुषोंके साथ बैठे। मित्र, दीक्षाप्राप्त पुरुष, राजा, स्नातक, श्वशुर तथा ऋत्विक्—इन छः पूजनीय पुरुषोंका घर आनेपर पूजन करे। जो द्विज संवत्सरव्रतको पूरा करके घरपर आवें, उनकी अपने वैभवके अनुसार यथासमय आलस्य त्याग करके पूजा करे और कल्याणकामी पुरुष उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये सदा उद्यत रहे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उन ब्राह्मणोंके फटकारनेपर भी कभी उनके साथ विवाद न करे।

घरके देवताओंका यथास्थान भलीभाँति पूजन करके अग्नि-स्थापनपूर्वक उसमें आहुति दे। पहली आहुति ब्रह्माको, दूसरी प्रजापतिको, तीसरी गुह्यकोंको, चौथी कश्यपको तथा पाँचवीं अनुमतिको दे। फिर पूर्वकथनानुसार गृहबलि देकर वैश्वदेवबलि दे। देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् स्थानका विभाग करके उनके लिये बलि अर्पित करे। उसका क्रम बतलाती हूँ, सुनो। एक पात्रमें पहले पर्जन्य, जल और पृथ्वीको तीन बलि दे। फिर प्राची आदि प्रत्येक दिशामें वायुको बलि देकर क्रमशः उन-उन दिशाओंके नामसे भी बलि समर्पित करे। तत्पश्चात् ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य, विश्वेदेव, विश्वभूत, उषा तथा भूतपतिको क्रमशः बलि दे। फिर '**पितृभ्यः स्वधा नमः**' कहकर दक्षिण दिशामें अपसव्य होकर पितरोंके निमित्त बलि दे। फिर पात्रसे अन्नका शेष भाग और जल लेकर '**यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनम्**' इस मन्त्रसे वायव्य दिशामें उसे विधिपूर्वक छोड़ दे। तदनन्तर रसोईके अन्नसे अग्राशन तथा हन्तकार निकालकर उन्हें विधिपूर्वक ब्राह्मणको

दे। देवता आदिके सब कर्म उन उनके तीर्थसे ही करने चाहिये। ब्राह्मतीर्थसे आचमन करना चाहिये, दाहिने हाथमें अँगूठेके ऊपर और जो एक रेखा होती है, वह ब्राह्मतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसीसे आचमन करना उचित है। तर्जनी और अँगूठेके बीचका भाग पितृतीर्थ कहलाता है। नान्दीमुख पितरोंको छोड़कर अन्य सब पितरोंको इसी तीर्थसे जल आदि देना चाहिये। अँगुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ है। उससे देवकार्य करनेका विधान है। कनिष्ठिकाके मूल भागमें कायतीर्थ है। उससे प्राजापत्यका कार्य किया जाता है।

इस प्रकार इन तीर्थोंसे सदा देवताओं और पितरोंके कार्य करने चाहिये, अन्य तीर्थोंसे कदापि नहीं। ब्राह्मतीर्थसे आचमन उत्तम माना गया है। पितरोंका तर्पण पितृतीर्थसे, देवताओंका देवतीर्थसे और प्रजापतिका कायतीर्थसे करना श्रेष्ठ बताया गया है। नान्दीमुखके पितरोंके लिये पिण्डदान और तर्पण प्राजापत्य तीर्थसे करना चाहिये। विद्वान् पुरुष एक साथ जल और अग्नि न ले। गुरुजनों तथा देवताओंकी ओर पाँव न फैलावे। बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायको न छेड़े। अञ्जलिसे पानी न पिये। शौचके समय विलम्ब न करे। मुखसे आग न फूँके। बेटा! जहाँ ऋण देनेवाला धनी, वैद्य, श्रोत्रिय ब्राह्मण तथा जलपूर्ण नदी—ये चार न हों, वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। जहाँ शत्रुविजयी, बलवान् और धर्मपरायण राजा हो, वहीं विद्वान् पुरुषको निवास करना चाहिये। दुष्ट राजाके राज्यमें सुख कहाँ। जहाँ दुर्धर्ष राजा, उपजाऊ भूमि, संयमी एवं न्यायशील पुरवासी और ईर्ष्या न करनेवाले लोग हों, वहाँका निवास भविष्यमें सुखदायक होता है। जिस राष्ट्रमें किसान बहुत हों, किन्तु वे अधिक भोगपरायण न हों तथा जहाँ सब तरहके अन्न पैदा होते हों, वहीं बुद्धिमान् पुरुषको रहना चाहिये। बेटा! जहाँ विजयका इच्छुक, पहलेका शत्रु तथा सदा उत्सव मनानेमें ही लगे रहनेवाले लोग—ये तीन सदा रहते हों, वहाँ निवास न करे। विद्वान् पुरुषको ऐसे ही स्थानोंपर सदा निवास करना चाहिये, जहाँके सहवासी सुशील हों।

त्याज्य-ग्राह्य, द्रव्यशुद्धि, अशौच-निर्णय तथा कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन

मदालसा कहती है—बेटा! अब त्याज्य और ग्राह्य वस्तुओंका प्रकरण आरम्भ करती हूँ, सुनो। घी अथवा तेलमें पका हुआ अन्न बहुत देरका बना हुआ अथवा बासी भी हो तो वह भोजन करने योग्य है। गेहूँ, जौ तथा गोरसकी बनी हुई वस्तुएँ तेल-घीमें न बनी हों तो भी वे पूर्ववत् ग्राह्य हैं।* शङ्ख, पत्थर, सोना, चाँदी, रस्सी, कपड़ा, साग, मूल, फल, विदल (बाँसके बने हुए टोकरे आदि), मणि, हीरा, मूँगा, मोती तथा मनुष्योंके शरीरकी शुद्धि जलसे होती है। लोहेके हथियारोंकी शुद्धि पानीसे धोने तथा पत्थर या सानपर रगड़नेसे होती है। जिस पात्रमें तेल या घी रखा गया हो, उसकी सफाई गरम जलसे होती है। सूप, धान्यराशि, मृगचर्म, मूसल, ओखली तथा कपड़ोंके ढेरकी शुद्धि जल छिड़कनेमात्रसे हो जाती है। वल्कल वस्त्र जल और मिट्टीसे शुद्ध होते हैं। तृण, काष्ठ और ओषधियोंकी शुद्धि जल छिड़कनेसे होती है। भेड़के ऊनसे बने कपड़े और केश यदि दोषयुक्त हो गये हों तो उनकी शुद्धि सरसों अथवा तिलकी खली और जलसे

---

* भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम्। अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः॥ (३५। १-२)

होती है। इसी प्रकार रूईके बने कपड़े पानी और क्षारसे शुद्ध होते हैं। मिट्टीके बर्तन दुबारा पकानेसे शुद्ध होते हैं। भिक्षामें प्राप्त अन्न, कारीगरका हाथ, बाजारमें बिकनेके लिये आयी हुई शाक आदि वस्तुएँ, स्त्रियोंका मुख, गलीसे आयी हुई वस्तु, जिसके गुण-दोषका ज्ञान न हो—ऐसी वस्तु और सेवकोंकी लायी हुई चीज सदा शुद्ध मानी गयी है। जिसके शिशुने अभी दूध पीना नहीं छोड़ा हो, ऐसी स्त्री तथा दुर्गन्ध और बुदबुदोंसे रहित बहता हुआ जल स्वाभाविक शुद्ध है। समयानुसार अग्निसे तपाने, बुहारने, गायोंके चलने-फिरने, लीपने, जोतने और सींचनेसे भूमिकी शुद्धि होती है। बुहारनेसे और देवताओंकी पूजा करनेसे घर शुद्ध होता है। जिस पात्रमें बाल या कीड़े पड़े हों, जिसे गायने सूँघ लिया हो तथा जिसमें मक्खियाँ पड़ी हों, उसकी शुद्धि राख और मिट्टीसे मलकर जलद्वारा धोनेसे होती है। ताँबेका बर्तन खटाईसे, राँगा और सीसा राखसे और काँसेके बर्तनोंकी शुद्धि राख और जलसे होती है। जिस पात्रमें कोई अपवित्र वस्तु पड़ गयी हो, उसे मिट्टी और जलसे तबतक धोये, जबतक कि उसकी दुर्गन्ध दूर न हो जाय। इससे वह शुद्ध होता है। पृथ्वीपर प्राकृतिक रूपसे वर्तमान जल, जिससे एक गायकी प्यास बुझ सके, शुद्ध माना गया है। गलीमें पड़ा हुआ वस्त्र वायुके लगनेसे शुद्ध होता है। धूल, अग्नि, घोड़ा, गाय, छाया, किरणें, वायु, जलके छींटे और मक्खी आदि—ये सब अशुद्ध वस्तुके संसर्गमें आनेपर भी शुद्ध ही रहते हैं। बकरे और घोड़ेका मुख शुद्ध माना गया है; किन्तु गायका नहीं। बछड़ेका मुख तथा माताका स्तन भी पवित्र बताया गया है। फल गिरानेमें पक्षीकी चोंच भी शुद्ध मानी गयी है। आसन, शय्या, सवारी, नाव और मार्गके तृण—ये सब बाजारमें बिकनेवाली वस्तुओंकी तरह सूर्य और चन्द्रमाकी किरणों तथा वायुके स्पर्शसे शुद्ध होते हैं। गलियोंमें घूमने फिरने, स्नान करने, छींक आने, पानी पीने, भोजन करने तथा वस्त्र बदलनेपर विधिपूर्वक आचमन करना चाहिये। अस्पृश्य वस्तुओंसे जिनका स्पर्श हो गया हो उनकी, रास्तेके कीचड़ और जलकी तथा ईंटकी बनी हुई वस्तुओंकी वायुके संसर्गसे शुद्धि होती है।

अनजानमें यदि दूषित अन्न भोजन कर ले तो तीन रात उपवास करे और यदि जान-बूझकर किया हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त करे। मनुष्यकी गीली हड्डीका स्पर्श करके स्नान करनेसे शुद्धि होती है और सूखी हड्डीका स्पर्श कर लेनेपर केवल आचमन करके गायका स्पर्श या सूर्यका दर्शन करनेसे मनुष्य शुद्ध हो सकता है। बुद्धिमान् पुरुष रक्त, खँखार तथा उबटनको न लाँघे और असमयमें उद्यान आदिके भीतर कदापि न ठहरे। लोकनिन्दित विधवा स्त्रीसे वार्तालाप न करे। जूँठन, मल-मूत्र और पैरोंके धोवनको घरसे बाहर फेंके। दूसरेके खुदाये हुए पोखरे आदिके जलमें पाँच लोंदा मिट्टी निकाले बिना स्नान न करे। देवतासम्बन्धी सरोवरों तथा गङ्गा आदि नदियोंमें सदा ही स्नान करे। देवता, पितर, उत्तम शास्त्र, यज्ञ और मन्त्र आदिकी निन्दा करनेवाले पुरुषोंसे स्पर्श और वार्तालाप करनेपर सूर्यके दर्शनसे शुद्धि होती है। रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, पतित, सूतक, विधर्मी, प्रसूता स्त्री, नपुंसक, वस्त्रहीन, चाण्डाल, मुर्दा ढोनेवाले तथा परस्त्रीगामी पुरुषोंको देखकर विद्वान् पुरुषोंको इसी प्रकार सूर्यके दर्शनसे आत्मशुद्धि करनी चाहिये। अभक्ष्य पदार्थ, नवप्रसूता स्त्री, नपुंसक, बिलाव, चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पतित, जाति-बहिष्कृत, चाण्डाल, मुर्दा ढोनेवाले, रजस्वला स्त्री, ग्रामीण सूअर तथा अशौचदूषित मनुष्योंको छू लेनेपर स्नान करनेसे शुद्धि होती है। जिसके घरमें प्रतिदिन नित्यकर्मकी अवहेलना होती हो तथा जिसे ब्राह्मणोंने त्याग दिया हो, वह नराधम

महापापी हैं। नित्यकर्मका त्याग कभी न करे। उसे न करनेका बन्धन तो केवल जननाशौच और मरणाशौचमें ही है।* अशौच प्राप्त होनेपर ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन तथा वैश्य पंद्रह दिनोंतक दान-होम आदि कर्मोंसे अलग रहे। शूद्र एक मासतक अपना कर्म बंद रखे। तदनन्तर सब लोग अपने-अपने शास्त्रोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करें।

मृतकको गाँवसे बाहर ले जाकर उसका दाह संस्कार करनेके बाद समान गोत्रवाले भाई-बन्धुओंको पहले, चौथे, सातवें और नवें दिन प्रेतके लिये जल देना चाहिये तथा चौथे दिन उसकी चितासे राख और हड्डियोंका सञ्चय करना चाहिये। अस्थिसञ्चयके बाद उनका अङ्ग-स्पर्श किया जा सकता है। फिर समानोदक पुरुष अपने सब कर्म कर सकते हैं, किन्तु सपिण्ड लोग केवल स्पर्शके अधिकारी होते हैं। जिस दिन मृत्यु हुई हो, उस दिन समानोदक और सपिण्ड दोनोंका स्पर्श किया जा सकता है। वृक्ष, सर्प, गौ, दाढ़ोंवाले जीव, शस्त्र, जल, फाँसी, अग्नि, विष, पर्वत गिरने तथा उपवास आदिके द्वारा मृत्यु होनेपर अथवा बालक, परदेशी एवं परिव्राजककी मृत्यु होनेपर तत्काल अशौच निवृत्त हो जाता है तथा कुछ लोगोंका मत है कि तीन दिनोंतक अशौच रहता है। यदि सपिण्डोंमेंसे एककी मृत्यु होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें दूसरेकी भी मृत्यु हो जाय तो पहलेके अशौचमें जितने दिन बाकी हों उतने ही दिनोंके भीतर दूसरेका भी श्राद्ध आदि कर्म पूर्ण कर देना चाहिये। जननाशौचमें भी यही विधि देखी जाती है। सपिण्ड तथा समानोदक व्यक्तियोंमें एकके बाद दूसरेका जन्म होनेपर पहलेके ही साथ दूसरेका भी अशौच निवृत्त हो जाता है।†

पुत्रका जन्म होनेपर पिताको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। उसमें भी यदि एकके जन्मके बाद दूसरेका जन्म हो जाय तो पहले जन्मे हुए बालकके दिनपर ही दूसरेकी भी शुद्धि बतायी गयी है।‡ लोकमें जो-जो वस्तु अधिक प्रिय हो तथा घरमें भी जो वस्तु अत्यन्त प्रिय जान पड़े, उसको अक्षय बनानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह उसे गुणवान् व्यक्तिको दे। अशौचके दिन पूरे हो जानेपर जल, वाहन, आयुध, चाबुक और दण्डका स्पर्श करके सब वर्णोंके लोग पवित्र हो अपने-अपने वर्णधर्मका अनुष्ठान करें, क्योंकि वह इस लोक और परलोकमें भी कल्याण देनेवाला है। तीनों वेदोंका सर्वदा स्वाध्याय करे, विद्वान् बने। धर्मानुसार धनका उपार्जन करे और उसे यत्नपूर्वक यज्ञमें लगावे। जिस कर्मको करते समय अपने मनमें घृणा न हो और जिसे महापुरुषोंके सामने प्रकट करनेमें कोई संकोच न हो, ऐसा कर्म निःशङ्क होकर करना चाहिये। बेटा! ऐसे आचरणवाले गृहस्थ पुरुषको धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा इस लोक और परलोकमें भी उसका कल्याण होता है।

मातासे इस प्रकार उपदेश ग्रहण करके राजा ऋतध्वजके पुत्र अलर्कने युवावस्थामें विधिपूर्वक अपना विवाह किया। उससे अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। उसने यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया और हर समय वह पिताकी आज्ञाका पालन करनेमें संलग्न रहता था। तदनन्तर बहुत समयके बाद बुढ़ापा आनेपर धर्मपरायण महाराज ऋतध्वजने अपनी पत्नीके साथ तपस्याके लिये वनमें जानेका विचार किया और पुत्रका राज्याभिषेक कर दिया।

---

* नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन। तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु॥ (३५। ३९)

† सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन् मृतो यदि। पूर्वाशौचसमाख्यातैः कार्या तस्य दिनैः क्रिया॥
एष एव विधिर्दृष्टो जनान्यपि हि सूतके। सापिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च॥ (३५। ४७-४८)

‡ तत्रापि यदि चान्यस्मिञ्जाते जायेत चापरः। तत्रापि शुद्धिरुद्दिष्टा पूर्वजन्मवतो दिनैः॥ (३५। ५०)

उस समय मदालसाने अपने पुत्रकी विषयभोगविषयक आसक्तिको हटानेके लिये उससे यह अन्तिम वचन कहा—'बेटा! गृहस्थ-धर्मका अवलम्बन करके राज्य करते समय यदि तुम्हारे ऊपर प्रिय बन्धुके वियोगसे, शत्रुओंकी बाधासे अथवा धनके नाशसे होनेवाला कोई असह्य दुःख आ पड़े तो मेरी दी हुई इस अँगूठीसे यह उपदेशपत्र निकालकर, जो रेशमी वस्त्रपर बहुत सूक्ष्म अक्षरोंमें लिखा गया है, तुम अवश्य पढ़ना; क्योंकि ममतामें बँधा रहनेवाला गृहस्थ दुःखोंका केन्द्र होता है।

सुमति कहते हैं—यों कहकर मदालसाने अपने पुत्रको सोनेकी अँगूठी दी और गृहस्थ पुरुषके योग्य अनेकानेक आशीर्वाद भी दिये। तत्पश्चात् पुत्रको राज्य सौंपकर महाराज कुवलयाश्व और महारानी मदालसा तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये।

सुबाहुकी प्रेरणासे काशिराजका अलर्कपर आक्रमण, अलर्कका दत्तात्रेयजीकी शरणमें जाना और उनसे योगका उपदेश लेना

सुमति कहते हैं—पिताजी! धर्मात्मा राजा अलर्कने भी पुत्रकी भाँति प्रजाका न्यायपूर्वक पालन किया। उनके राज्यमें प्रजा बहुत प्रसन्न थी और सब लोग अपने अपने कर्मोंमें लगे रहते थे। वे दुष्ट पुरुषोंको दण्ड देते और सज्जन पुरुषोंकी भलीभाँति रक्षा करते थे। राजाने बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान भी किया। इन सब कार्योंमें उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था। महाराजको अनेक पुत्र हुए, जो महान् बलवान्, अत्यन्त पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा तथा कुमार्गके विरोधी थे। उन्होंने धर्मपूर्वक धनका उपार्जन किया और धनसे धर्मका अनुष्ठान किया तथा धर्म और धन दोनोंके अनुकूल रहकर ही विषयोंका उपभोग किया। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काममें आसक्त हो पृथ्वीका पालन करते हुए राजा अलर्कको अनेक वर्ष बीत गये; किन्तु उन्हें वे एक दिनके समान ही जान पड़े। मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंका भोग करते हुए उन्हें कभी भी उनकी ओरसे वैराग्य नहीं हुआ। उनके मनमें कभी ऐसा विचार नहीं उठा कि अब धर्म और धनका उपार्जन पूरा हो गया। उनकी ओरसे उन्हें अतृप्ति ही बनी रही।

उनके इस प्रकार भोगमें आसक्त, प्रमादी और अजितेन्द्रिय होनेका समाचार उनके भाई सुबाहुने भी सुना, जो वनमें निवास करते थे। अलर्कको किसी तरह ज्ञान प्राप्त हो, इस अभिलाषासे उन्होंने बहुत देरतक विचार किया। अन्तमें उन्हें यही ठीक मालूम हुआ कि अलर्कके साथ शत्रुता रखनेवाले किसी राजाका सहारा लिया जाय। ऐसा निश्चय करके वे अपना राज्य प्राप्त करनेका उद्देश्य लेकर असंख्य बल-वाहनोंसे सम्पन्न काशिराजकी शरणमें आये। काशिराजने अपनी सेनाके साथ अलर्कपर आक्रमण करनेकी तैयारी की और दूत

भेजकर यह कहलाया कि अपने बड़े भाई सुबाहुको राज्य दे दो। अलर्क राजधर्मके ज्ञाता

थे। उन्हें शत्रुके इस प्रकार आज्ञापूर्वक सन्देश देनेपर सुबाहुको राज्य देनेकी इच्छा नहीं हुई। उन्होंने काशिराजके दूतको उत्तर दिया कि 'मेरे बड़े भाई मेरे ही पास आकर प्रेमपूर्वक राज्य माँग लें। मैं किसीके आक्रमणके भयसे थोड़ी-सी भी भूमि नहीं दूँगा।' बुद्धिमान् सुबाहुने भी अलर्कके पास याचना नहीं की। उन्होंने सोचा, 'याचना क्षत्रियका धर्म नहीं है। क्षत्रिय तो पराक्रमका ही धनी होता है।' तब काशिराजने अपनी समस्त सेनाके साथ राजा अलर्कके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिये यात्रा की। उन्होंने अपने समीपवर्ती राजाओंसे मिलकर उनके सैनिकोंद्वारा आक्रमण किया और अलर्कके सीमावर्ती नरेशको अपने अधीन कर लिया। फिर अलर्कके राज्यपर घेरा डालकर उनके सामन्त राजाओंको सताना आरम्भ किया। दुर्ग और दुर्गके रक्षकोंको भी काबूमें कर लिया। किन्हींको धन देकर, किन्हींको फूट डालकर और किन्हींको समझा बुझाकर ही अपना वशवर्ती बना लिया। इस प्रकार शत्रुमण्डलीसे पीड़ित राजा अलर्कके पास बहुत थोड़ी-सी सेना रह गयी। खजाना भी घटने लगा और शत्रुने उनके नगरपर घेरा डाल दिया। इस तरह प्रतिदिन कष्ट पाने और कोश क्षीण होनेसे राजाको बड़ा खेद हुआ। उनका चित्त व्याकुल हो उठा। जब वे अत्यन्त वेदनासे व्यथित हो उठे, तब सहसा उन्हें उस अँगूठीका स्मरण हो आया, जिसे ऐसे ही अवसरोंपर उपयोग करनेके लिये उनकी माता मदालसाने दिया था। तब स्नान करके पवित्र हो उन्होंने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराया और अँगूठीसे वह उपदेशपत्र निकालकर देखा। उसके अक्षर बहुत स्पष्ट थे। राजाने उसमें लिखे हुए माताके उपदेशको पढ़ा, जिससे उनके समस्त शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखें प्रसन्नतासे खिल उठीं। वह उपदेश इस प्रकार था—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्॥

'सङ्ग (आसक्ति)-का सब प्रकारसे त्याग करना चाहिये; किन्तु यदि उसका त्याग न किया जा सके तो सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये; क्योंकि सत्पुरुषोंका सङ्ग ही उसकी ओषधि है। कामनाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये; परन्तु यदि वह छोड़ी न जा सके तो मुमुक्षा (मुक्तिकी इच्छा)-के प्रति कामना करनी चाहिये; क्योंकि मुमुक्षा ही उस कामनाको मिटानेकी दवा है।'

इस उपदेशको अनेक बार पढ़कर राजाने सोचा, 'मनुष्योंका कल्याण कैसे होगा? मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् करनेपर। और मुक्तिकी इच्छा जाग्रत् होगी सत्सङ्गसे।' ऐसा निश्चय करके वे सत्सङ्गके लिये चिन्तित हुए और अत्यन्त आर्तभावसे आसक्तिरहित, पापशून्य तथा परम सौभाग्यशाली महात्मा दत्तात्रेयजीकी शरणमें गये। उनके चरणोंमें

प्रणाम करके राजाने उनका पूजन किया और न्यायके अनुसार कहा—'ब्रह्मन्! आप शरणार्थियोंको शरण देनेवाले हैं। मुझपर कृपा कीजिये। मैं भोगोंमें अत्यन्त आसक्त एवं दुःखसे आतुर हूँ, आप मेरा दुःख दूर कीजिये।'

दत्तात्रेयजी बोले—राजन्! मैं अभी तुम्हारा दुःख दूर करता हूँ। सच-सच बताओ, तुम्हें किसलिये दुःख हुआ है?

अलर्कने कहा—भगवन्! इस शरीरके बड़े भाई यदि राज्य लेनेकी इच्छा रखते हैं तो यह शरीर तो पाँच भूतोंका समुदायमात्र है। गुणकी ही गुणोंमें प्रवृत्ति हो रही है; अतः मेरा उसमें क्या है। शरीरमें रहकर भी वे और मैं दोनों ही शरीरसे भिन्न हैं। यह हाथ आदि कोई भी अङ्ग जिसका नहीं है, मांस, हड्डी और नाड़ियोंके विभागसे भी जिसका कोई सम्पर्क नहीं है, उस पुरुषका इस राज्यमें हाथी, घोड़े, रथ और कोश आदिसे किञ्चित् भी क्या सम्बन्ध है। इसलिये न तो मेरा कोई शत्रु है, न मुझे दुःख या सुख होता और न नगर तथा कोशसे ही मेरा कोई सम्बन्ध है। यह हाथी-घोड़े आदिकी सेना न सुबाहुकी है, न दूसरे किसीकी है और न मेरी ही है। जैसे कलसी, घट और कमण्डलुमें एक ही आकाश है तो भी पात्रभेदसे अनेक-सा दिखायी देता है, उसी प्रकार सुबाहु, काशिराज और मैं भिन्न-भिन्न शरीरोंमें रहकर भी एक ही हैं। शरीरोंके भेदसे ही भेदकी प्रतीति होती है। पुरुषकी बुद्धि जिस-जिस वस्तुमें आसक्त होती है, वहाँ-वहाँसे वह दुःख ही लाकर देती है। मैं तो प्रकृतिसे परे हूँ; अतः न दुःखी हूँ, न सुखी। प्राणियोंका भूतोंके द्वारा जो पराभव होता है, वही दुःखमय है। तात्पर्य यह कि जो भौतिक भोगोंमें ममताके कारण आसक्त है, वही सुख दुःखका अनुभव करता है।

दत्तात्रेयजी बोले—नरश्रेष्ठ! वास्तवमें ऐसी ही बात है। तुमने जो कुछ कहा है, ठीक है; ममता ही दुःखका और ममताका अभाव ही सुखका कारण है। मेरे प्रश्न करनेमात्रसे तुम्हें यह उत्तम ज्ञान प्राप्त हो गया, जिसने ममताकी प्रतीतिको सेमरकी रूईकी भाँति उड़ा दिया। मनुष्यके हृदयदेशमें अज्ञानरूपी महान् वृक्ष खड़ा है। वह अहंतारूपी अङ्कुरसे उत्पन्न हुआ है। ममता ही उसका तना है। गृह और क्षेत्र उसकी ऊँची-ऊँची शाखाएँ हैं। स्त्री और पुत्र आदि पल्लव हैं। धन-धान्यरूप बड़े-बड़े पत्ते हैं। वह अनादिकालसे बढ़ता चला आ रहा है। पुण्य और पाप उसके आदि पुष्प हैं। सुख और दुःख महान् फल हैं। वह मोक्षके मार्गको रोककर खड़ा है। अज्ञानियोंका सङ्ग ही उस वृक्षके लिये सिंचाईका काम देता है। सकाम कर्म करनेकी प्रबल इच्छा ही उस वृक्षपर भ्रमरोंकी भाँति मँड़राती रहती है। जो लोग संसार मार्गकी यात्रासे थककर उस वृक्षका आश्रय लेते हैं, वे भ्रमपूर्ण ज्ञान एवं मिथ्या सुखके वशीभूत हो जाते हैं। ऐसे लोगोंको आत्यन्तिक सुख (मोक्ष) कैसे मिल सकता है। परन्तु जो सत्सङ्गरूपी पत्थरपर घिसकर तेज किये

हुए विद्यारूपी कुठारसे उस ममतारूपी वृक्षको काट डालते हैं, वे विद्वान् पुरुष ही उस मोक्षमार्गसे जाते हैं और धूल तथा काँटोंसे रहित शीतल ब्रह्मवनमें पहुँचकर सब प्रकारकी वृत्तियोंसे रहित हो परमानन्दको प्राप्त होते हैं।*

अलर्कने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मुझे ऐसा उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ, जो जड़ प्रकृति और चेतन शक्तिका विवेक करनेवाला है; किन्तु मेरा मन विषयोंके वशीभूत है, अतः वह इस ज्ञानमें स्थिर नहीं हो पाता। मैं नहीं जानता कि इस प्रकृतिके बन्धनसे कैसे छूट सकूँगा। कैसे मेरा इस संसारमें फिर जन्म न हो? किस प्रकार मैं निर्गुण भावको प्राप्त होऊँ और कैसे सनातन ब्रह्मके साथ एकता प्राप्त करूँ? ब्रह्मन्! मुझे ऐसा ही उत्तम योग बताइये, जिससे मैं मुक्त हो सकूँ। इसके लिये आपके चरणोंमें मस्तक रखकर याचना करता हूँ; क्योंकि आप-जैसे संतोंका सङ्ग ही मनुष्योंका परम उपकार करनेवाला है।

दत्तात्रेयजी बोले—राजन्! योगीको ज्ञानकी प्राप्ति होकर जो उसका अज्ञानसे वियोग होता है, वही मुक्ति है और वही ब्रह्मके साथ एकता एवं प्राकृत गुणोंसे पृथक् होना है। मुक्ति होती है योगसे। योग प्राप्त होता है सम्यक् ज्ञानसे, सम्यक् ज्ञान होता है वैराग्यजनक दुःखसे और दुःख होता है ममताके कारण स्त्री, पुत्र, धन आदिमें चित्तकी आसक्ति होनेसे। अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष आसक्तिको दुःखका मूल समझकर यत्नपूर्वक त्याग दे। आसक्ति न होनेपर 'यह मेरा है' ऐसी धारणा दूर हो जाती है। ममताका अभाव सुखका ही साधक है। वैराग्यसे सांसारिक विषयोंमें दोषका दर्शन होता है। ज्ञानसे वैराग्य और वैराग्यसे ज्ञान होता है। जहाँ रहना हो, वही घर है। जिससे जीवन चले, वही भोजन है और जिससे मोक्ष मिले, वही ज्ञान बताया गया है। इसके सिवा सब अज्ञान है। राजन्! पुण्य और पापोंको भोग लेनेसे, नित्यकर्मोंका निष्कामभावसे अनुष्ठान करनेसे, अपूर्वका संग्रह न होनेसे तथा पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका क्षय हो जानेसे मनुष्य बारंबार देहके बन्धनमें नहीं पड़ता। राजन्! यह तुमसे ज्ञानके विषयमें कुछ बातें बतलायी गयीं। अब उस योगका वर्णन सुनो, जिसे प्राप्त कर योगी पुरुष सनातन ब्रह्मसे कभी पृथक् नहीं होता।

योगीको पहले आत्मा (बुद्धि)-के द्वारा आत्मा (मन)-को जीतनेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि उसको जीतना बहुत कठिन है। अतः उसपर विजय पानेके लिये सदा ही यत्न करना चाहिये। उसका उपाय बतलाता हूँ, सुनो। प्राणायामके द्वारा राग आदि दोषोंका, धारणाके[1] द्वारा पापका, प्रत्याहारके[2] द्वारा विषयोंका और ध्यानके द्वारा ईश्वरविरोधी गुणोंका निवारण करे। जैसे पर्वतीय

---

*अहंमानमहाबीजाङ्कुरोत्पन्नो ममेतिस्कन्धवान् महान्। गृहक्षेत्रोच्चशाखश्च पुत्रदारादिपल्लवः॥
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्धितः। पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफलः॥
तत्र मुक्तिपथव्यापी मूढसम्पर्कसेचनः। विधित्साभृङ्गमालाढ्यो ह्यज्ञानमहातरुः॥
संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः। भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः॥
यैस्तु सत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः। छिन्नो विद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना॥
प्राप्य ब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम्। प्राप्नुवन्ति परां प्राज्ञा निर्वृतिं वृत्तिवर्जिताः॥

(३८। ८—१३)

१. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा—किसी एक स्थानमें चित्तको बाँधना अर्थात् परमात्मामें मनको स्थापित करना 'धारणा' है।

२. इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर चित्तमें लीन करना 'प्रत्याहार' कहलाता है।

धातुओंको आगमें तपानेसे उनके दोष जल जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करनेसे इन्द्रियजनित दोष दूर हो जाते हैं। अतः योगके ज्ञाता पुरुषको पहले प्राणायामका ही साधन करना चाहिये। प्राण और अपानवायुको रोकनेका नाम ही प्राणायाम है। यह लघु, मध्य और उत्तरीयके भेदसे तीन प्रकारका बताया गया है। अलर्क! अब मैं उसकी मात्रा बतलाता हूँ, सुनो। लघु प्राणायाम बारह मात्राका होता है। इससे दूनी मात्राका मध्यम और तिगुनी मात्राका उत्तरीय अथवा उत्तम बताया गया है। पलकोंको उठाने और गिरानेमें जितना समय लगता है, वही प्राणायामकी संख्याके लिये मात्रा कहा गया है। ऐसी ही बारह मात्राओंका लघुनामक प्राणायाम होता है। प्रथम प्राणायामके द्वारा स्वेद (पसीने) को, मध्यमके द्वारा कम्पको और तृतीय प्राणायामके द्वारा विषादको जीते। इस प्रकार क्रमशः इन तीनों दोषोंपर विजय प्राप्त करे। जैसे सिंह, व्याघ्र और हाथी सेवाके द्वारा कोमल हो जाते हैं, उनकी कठोरता दब जाती है, उसी प्रकार प्राणायाम करनेसे प्राण योगीके वशमें हो जाता है। जैसे हाथीवान मतवाले हाथीको भी वशमें करके उसे इच्छानुसार चलाता है, उसी प्रकार योगी वशमें किये हुए प्राणको अपनी इच्छाके अधीन रखता है। जैसे वशमें किया हुआ सिंह केवल मृगोंको ही मारता है, मनुष्योंको नहीं, उसी प्रकार प्राणायामके द्वारा वशमें किया हुआ प्राण केवल पापोंका नाश करता है, मनुष्यके शरीरका नहीं। इसलिये योगी पुरुषको सदा प्राणायाममें संलग्न रहना चाहिये।

राजन्! ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और प्रसाद—ये मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाली प्राणायामकी चार अवस्थाएँ हैं। अब क्रमशः इनके स्वरूपका वर्णन सुनो। जिस अवस्थामें शुभ और अशुभ सभी कर्मोंका फल क्षीण हो जाय और चित्तकी वासना नष्ट हो जाय, उसका नाम 'ध्वस्ति' है। जब योगी इस लोक और परलोकके भोगोंके प्रति लोभ और मोह उत्पन्न करनेवाली समस्त कामनाओंको रोककर सदा अपने-आपमें ही संतुष्ट रहता है, वह निरन्तर रहनेवाली 'प्राप्ति' नामक अवस्था है। जिस समय योगी सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र तथा ग्रहोंके समान प्रभावशाली होकर उत्तम ज्ञान-सम्पत्ति प्राप्त करता है और उस ज्ञान-सम्पत्तिसे भूत-भविष्यकी बातोंको तथा दूर स्थित एवं अदृश्य वस्तुओंको भी जान लेता है, उस समय प्राणायामकी 'संवित्' नामक अवस्था होती है। जिस प्राणायामसे मन, पाँच प्राणवायु, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंके विषय प्रसादको प्राप्त होते हैं, वह उसकी 'प्रसाद' अवस्था है।

राजन्! अब प्राणायामका लक्षण तथा योगाभ्यासमें निरन्तर प्रवृत्त रहनेवाले योगीके लिये विहित आसन बतलाता हूँ, सुनो। पद्मासन, अर्धासन, स्वस्तिकासन आदि आसनोंसे बैठकर मन ही मन प्रणवका चिन्तन करते हुए योगाभ्यास करे। शरीरको समभावसे रखे, आसन भी सम हो। दोनों पैरोंको समेटकर दोनों जाँघोंको आगेकी ओर स्थिर करे। मुँहको बंद किये रहे। एड़ियोंको इस प्रकार रखे, जिससे वे लिङ्ग और अण्डकोषका स्पर्श न कर सकें। मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए स्थिर रहे। मस्तकको कुछ ऊँचा किये रहे। दाँतोंका दाँतोंसे स्पर्श न होने दे। अपनी नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखते हुए अन्य दिशाओंकी ओर न देखे। रजोगुणसे तमोगुणकी और सत्त्वगुणसे रजोगुणकी वृत्तिको भलीभाँति आच्छादित करके निर्मल सत्त्वमें स्थित हो योगवेत्ता पुरुष योगका अभ्यास करे। इन्द्रिय, प्राण आदि और मनको उनके विषयोंसे हटाकर प्रत्याहार आरम्भ करे। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार जो समस्त कामनाओंको संकुचित कर लेता है, वह निरन्तर आत्मामें ही रमण करनेवाला और एकमात्र परमात्मामें स्थित

हुआ पुरुष अपने आत्मामें ही आत्माका साक्षात्कार करता है। विद्वान् पुरुष बाहर-भीतरकी शुद्धिका सम्पादन करके कण्ठसे लेकर नाभितक शरीरको प्राणवायुसे परिपूर्ण करते हुए प्राणायाम आरम्भ करे। प्राणायाम बारह हैं। उन्हींको धारणा भी कहते हैं। तत्त्वदर्शी योगियोंने योगमें दो धारणाएँ बतलायी हैं। उनके अनुसार योगमें प्रवृत्त हुए नियतात्मा योगीके सभी दोष नष्ट हो जाते हैं तथा वह स्वस्थ भी हो जाता है। वह परब्रह्म परमात्माको और प्राकृत गुणोंको पृथक्-पृथक् देखता है, व्योमसे लेकर परमाणुतकका साक्षात्कार करता है तथा निष्पाप आत्माका भी दर्शन कर लेता है। इस प्रकार प्राणायामपरायण एवं मिताहारी योगी पुरुष धीरे-धीरे एक-एक भूमिको वशमें करके दूसरीपर पैर बढ़ावे, जैसे महलमें जाते समय एक-एक सीढ़ीको पार करके दूसरीपर चढ़ा जाता है। जो भूमि अपने वशमें नहीं हुई है, उसमें जानेसे वह दोष, रोग आदि दुःख तथा मोहको बढ़ाती है; अतः उसपर न चढ़े। प्राणवायुके निरोधको प्राणायाम कहते हैं। अपने मनको संयममें रखनेवाले योगी पुरुष शब्दादि विषयोंकी ओर जानेवाली इन्द्रियोंको उनकी ओरसे योगद्वारा प्रत्याहत—निवृत्त करते हैं, इसलिये वह प्रत्याहार कहलाता है।

योगी महर्षियोंने इस विषयमें ऐसा उपाय भी बताया है, जिससे योगाभ्यासी पुरुषको रोग आदि दोष नहीं होते; जैसे जलार्थी मनुष्य यन्त्र और नली आदिकी सहायतासे धीरे-धीरे जल पीते हैं, उसी प्रकार योगी पुरुष श्रमको जीतकर धीरे-धीरे वायुका पान करे। पहले नाभिमें, फिर हृदयमें, तदनन्तर तीसरे स्थान—वक्षःस्थलमें। उसके बाद क्रमशः कण्ठ, मुख, नासिकाके अग्रभाग, नेत्र, भौंहोंके मध्यभाग तथा मस्तकमें प्राणवायुको धारण करे। उसके बाद परब्रह्म परमात्मामें उसकी धारणा करनी चाहिये। वह सबसे उत्तम धारणा मानी गयी है। इन दसों धारणाओंको प्राप्त होकर योगी अविनाशी ब्रह्मकी सत्ताको प्राप्त होता है। राजन्! सिद्धिकी इच्छा रखनेवाला योगी पुरुष बड़े आदरके साथ योगमें प्रवृत्त हो। वह अधिक खाये हुए अथवा खाली पेट, थका और व्याकुलचित्त न हो। जब अधिक सर्दी या अधिक गर्मी पड़ती हो, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंकी प्रबलता हो अथवा बड़े जोरकी आँधी चलती हो, ऐसे अवसरोंपर ध्यानपरायण होकर योगका अभ्यास नहीं करना चाहिये। कोलाहलपूर्ण स्थानमें, आग और पानीके समीप, पुरानी गोशालामें, चौराहेपर, सूखे पत्तोंके ढेरपर, नदीमें, श्मशानभूमिमें, जहाँ सर्पोंका निवास हो वहाँ, भयपूर्ण स्थानमें, कुएँके तटपर, मन्दिरमें तथा दीमकोंकी मिट्टीके ढेरपर—इन सब स्थानोंमें तत्त्वज्ञ पुरुष योगाभ्यास न करे। जहाँ सात्त्विकभावकी सिद्धि न हो, ऐसे देश-कालका परित्याग करे। योगमें असत् वस्तुका दर्शन भी निषिद्ध है; अतः उसे भी छोड़ दे। जो मूर्खतावश उक्त स्थानोंकी परवा न करके वहीं योगाभ्यास आरम्भ करता है, उसके कार्यमें विघ्न डालनेके लिये बहरापन, जड़ता, स्मरणशक्तिका नाश, गूँगापन, अंधापन और ज्वर आदि अनेक दोष तत्काल प्रकट होते हैं।

यदि प्रमादवश योगीके सामने ये दोष प्रकट हों तो उनका नाश करनेके लिये जिस चिकित्साकी आवश्यकता है, उसे सुनो। यदि वातरोग, गुल्मरोग, उदावर्त (गुदा-सम्बन्धी रोग) तथा और कोई उदरसम्बन्धी रोग हो जाय तो उसकी शान्तिके लिये घी मिलायी हुई जौकी गरम-गरम लप्सी खा ले अथवा केवल उसकी धारणा करे। वह रुकी हुई वायुको निकालती और वायुगोलाको दूर करती है। इसी प्रकार जब शरीरमें कम्प पैदा हो तो मनमें बड़े भारी पर्वतकी धारणा करे। बोलनेमें रुकावट होनेपर वाग्देवीकी और बहरापन आनेपर श्रवणशक्तिकी धारणा करे। इसी प्रकार प्याससे पीड़ित होनेपर ऐसी धारणा करे कि जिह्वापर आमका फल रखा हुआ है और उससे रस मिल

रहा है। तात्पर्य यह कि जिस-जिस अङ्गमें रोग पैदा हो, वहाँ-वहाँ उसमें लाभ पहुँचानेवाली धारणा करे। गर्मीमें सर्दीकी और सर्दीमें गर्मीकी धारणा करे। धारणाके द्वारा ही अपने मस्तकपर काठकी कील रखकर दूसरे काठके द्वारा उसे ठोंकनेकी भावना करे। इससे योगीकी लुप्त हुई स्मरणशक्तिका तत्काल ही आविर्भाव हो जाता है। इसके सिवा सर्वत्र व्यापक द्युलोक, पृथ्वी, वायु और अग्निकी भी धारणा करे। इससे अमानवीय शक्तियों तथा जीव-जन्तुओंसे होनेवाली बाधाओंकी चिकित्सा होती है। यदि कोई मानवेतर जीव योगीके भीतर प्रवेश कर जाय तो वह वायु और अग्निकी धारणा करके उसे अपने शरीरके भीतर ही जला डाले। राजन्! इस प्रकार योगवेत्ता पुरुषको सब प्रकारसे अपनी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका साधक है।

योग-प्रवृत्तिके लक्षणोंको बतलाने तथा उनपर गर्व करनेसे योगीका विज्ञान लुप्त हो जाता है; इसलिये उन प्रवृत्तियोंको गुप्त ही रखना चाहिये। चञ्चलताका न होना, नीरोग रहना, निष्ठुरता न धारण करना, उत्तम सुगन्धका आना, मल-मूत्र कम होना, शरीरमें कान्ति, मनमें प्रसन्नता और वाणीके स्वरमें कोमलताका उदय होना—ये सब योगप्रवृत्तिके प्रारम्भिक चिह्न हैं। यदि योगीको देखकर लोगोंके मनमें अनुराग हो, परोक्षमें सब लोग उसके गुणोंका बखान करने लगें और कोई भी जीव-जन्तु उससे भयभीत न हो तो यह योगमें सिद्धि प्राप्त होनेकी उत्तम पहचान है। जिसे अत्यन्त भयानक सर्दी गर्मी आदिसे कोई कष्ट नहीं होता तथा जो दूसरोंसे भयभीत नहीं होता, सिद्धि उसके निकट खड़ी है।

योगके विघ्न, उनसे बचनेके उपाय, सात धारणा, आठ ऐश्वर्य तथा योगीकी मुक्ति

दत्तात्रेयजी कहते हैं—आत्मसाक्षात्कारके समय योगी पुरुषके समक्ष जो विघ्न उपस्थित होते हैं, उनका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ; सुनो। उस समय वह सकाम कर्म करना चाहता है और मानवीय भोगोंकी अभिलाषा करता है। दानके उत्तमोत्तम फल, स्त्री, विद्या, माया, सोना चाँदी आदि धन, सोने आदिके अतिरिक्त वैभव, स्वर्गलोक, देवत्व, इन्द्रत्व, रसायनसंग्रह, उसे बनानेकी क्रियाएँ, हवामें उड़नेकी शक्ति, यज्ञ, जल और अग्निमें प्रवेश करना, श्राद्धों तथा समस्त दानोंका फल तथा नियम, व्रत, इष्ट, पूर्त एवं देव-पूजा आदिसे मिलनेवाले फलोंकी इच्छा करता है। जब चित्तकी ऐसी अवस्था हो तो योगी उसे कामनाओंकी ओरसे हटावे और परब्रह्मके चिन्तनमें लगावे। ऐसा करनेपर उसे विघ्नोंसे छुटकारा मिल जाता है।

इन विघ्नोंपर विजय पा लेनेके बाद योगीके सामने फिर दूसरे-दूसरे सात्त्विक, राजस और तामस विघ्न उपस्थित होते हैं। प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त—ये पाँच उपसर्ग योगियोंके योगमें विघ्न डालनेके लिये प्रकट होते हैं। इनका परिणाम बड़ा कटु होता है। जब सम्पूर्ण वेदोंके अर्थ, काव्य और शास्त्रोंके अर्थ, सम्पूर्ण विद्याएँ और शिल्पकला आदि अपने-आप योगीको समझमें आ जायँ तो प्रतिभासे सम्बन्ध रखनेके कारण वह 'प्रातिभ' उपसर्ग कहलाता है। जब योगी सहस्रों योजन दूरसे भी सम्पूर्ण शब्दोंको सुनने और उनके अभिप्रायको समझने लगता है, तब वह श्रवण-शक्तिसे सम्बन्ध रखनेके कारण 'श्रावण'

उपसर्ग कहा जाता है। जब वह देवताओंकी भाँति आठों दिशाओंकी वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखने लगता है, तब उसे 'दैव' उपसर्ग कहते हैं। जब योगीका मन दोषके कारण सब प्रकारके आचारोंसे भ्रष्ट हो निराधार भटकने लगता है, तब वह 'भ्रम' कहलाता है। जलमें उठती हुई भँवरकी तरह जब ज्ञानका आवर्त सब ओर व्याप्त होकर चित्तको नष्ट कर देता है, तब वह 'आवर्त' नामक उपसर्ग कहा जाता है। इन महाघोर उपसर्गोंसे योगका नाश हो जानेके कारण सम्पूर्ण योगी देवतुल्य होकर भी बारंबार आवागमनके चक्रमें घूमते हैं। इसलिये योगी पुरुष शुद्ध मनोमय उज्ज्वल कंबल ओढ़कर परब्रह्म परमात्मामें मनको लगाकर सदा उन्हींका चिन्तन करे।

पृथ्वी आदि सात प्रकारकी सूक्ष्म धारणाएँ हैं, जिन्हें योगी मस्तकमें धारण करे। सबसे पहले पृथ्वीकी धारणा है। उसे धारण करनेसे योगीको सुख प्राप्त होता है। वह अपनेको साक्षात् पृथ्वी मानता है, अतः पार्थिव विषय गन्धका त्याग कर देता है। इसी प्रकार वह जलकी धारणासे सूक्ष्म रसका, तेजकी धारणासे सूक्ष्म रूपका, वायुकी धारणासे स्पर्शका तथा आकाशकी धारणासे सूक्ष्म प्रवृत्ति तथा शब्दका त्याग करता है। जब अपने मनसे धारणाके द्वारा सम्पूर्ण भूतोंके मनमें प्रवेश करता है, तब उस मानसी धारणाको धारण करनेके कारण उसका मन अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। इसी प्रकार योगवेत्ता पुरुष सम्पूर्ण जीवोंकी बुद्धिमें प्रवेश करके परम उत्तम सूक्ष्म बुद्धिको प्राप्त करता और फिर उसे त्याग देता है। अलर्क! जो योगी इन सातों सूक्ष्म धारणाओंका अनुभव करके उन्हें त्याग देता है, उसको इस संसारमें फिर नहीं आना पड़ता। जितात्मा पुरुष क्रमशः इन सातों धारणाओंके सूक्ष्म रूपको देखे और त्याग करता जाय। ऐसा करनेसे वह परम सिद्धिको प्राप्त होता है। राजन्! योगी पुरुष जिस-जिस भूतमें राग करता है, उसी-उसीमें आसक्त होकर नष्ट हो जाता है। इसलिये इन समस्त सूक्ष्म भूतोंको परस्पर संसक्त जानकर जो इन्हें त्याग देता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है। पाँचों भूत और मन-बुद्धिके इन सातों सूक्ष्म रूपोंका विचार कर लेनेपर उनके प्रति वैराग्य होता है, जो सद्भावका ज्ञान रखनेवाले पुरुषकी मुक्तिका कारण बनता है। जो गन्ध आदि विषयोंमें आसक्त होता है, उसका विनाश हो जाता है और उसे बारंबार संसारमें जन्म लेना पड़ता है। योगी पुरुष इन सातों धारणाओंको जीत लेनेके बाद यदि चाहे तो किसी भी सूक्ष्म भूतमें लीन हो सकता है। देवता, असुर, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंके शरीरमें भी वह लीन हो जाता है, किन्तु कहीं भी आसक्त नहीं होता।

अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व—इन आठ ईश्वरीय गुणोंको जो निर्वाणकी सूचना देनेवाले हैं, योगी प्राप्त करता है। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म रूप धारण करना 'अणिमा' है और शीघ्र-से-शीघ्र कोई काम कर लेना 'लघिमा' नामक गुण है। सबके लिये पूजनीय हो जाना 'महिमा' कहलाता है। जब कोई भी वस्तु अप्राप्य न रहे तो वह 'प्राप्ति' नामक सिद्धि है। सर्वत्र व्यापक होनेसे योगीको 'प्राकाम्य' नामक सिद्धिकी प्राप्ति मानी जाती है। जब वह सब कुछ करनेमें समर्थ—ईश्वर हो जाता है तो उसकी वह सिद्धि 'ईशित्व' कहलाती है। सबको वशमें कर लेनेसे 'वशित्व' की सिद्धि होती है। यह योगीका सातवाँ गुण है। जिसके द्वारा इच्छाके अनुसार कहीं भी रहना आदि सब काम हो सके, उसका नाम 'कामावसायित्व' है। ये ऐश्वर्यके साधनभूत आठ गुण हैं।

मुक्त होनेसे उसका कभी जन्म नहीं होता। वह वृद्धि और नाशको भी नहीं प्राप्त होता। न तो

उसका लय होता है और न परिणाम। पृथ्वी आदि भूतसमुदायसे न तो वह काटा जाता है, न भीगकर गलता है, न जलता है और न सूखता ही है। शब्द आदि विषय भी उसको लुभा नहीं सकते। उसके लिये शब्द आदि विषय हैं ही नहीं। न तो वह उनका भोक्ता है और न उनसे उसका संयोग होता है। जैसे अन्य खोटे द्रव्योंसे मिला और खण्ड-खण्ड हुआ सुवर्ण जब आगमें तपाया जाता है, तब उसका दोष जल जाता है और वह शुद्ध होकर अपने दूसरे टुकड़ोंसे मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार यत्नशील योगी जब योगाग्निसे तपता है, तब अन्तःकरणके समस्त दोष जल जानेके कारण ब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त हो जाता है। फिर वह किसीसे पृथक् नहीं रहता। जैसे आगमें डाली हुई आग उसमें मिलकर एक हो जाती है, उसका वही नाम और वही स्वरूप हो जाता है, फिर उसको विशेष रूपसे पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी तरह जिसके पाप दग्ध हो गये हैं, वह योगी परब्रह्मके साथ एकताको प्राप्त होनेपर फिर कभी उनसे पृथक् नहीं होता। जैसे जलमें डाला हुआ जल उसके साथ मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार योगीका आत्मा परमात्मामें मिलकर तदाकार हो जाता है।

योगचर्या, प्रणवकी महिमा तथा अरिष्टोंका वर्णन और उनसे सावधान होना

अलर्क बोले—भगवन्! अब मैं योगीके आचार-व्यवहारका यथार्थ वर्णन सुनना चाहता हूँ। वह किस प्रकार ब्रह्मके मार्गका अनुसरण करके कभी क्लेशमें नहीं पड़ता?

दत्तात्रेयजीने कहा—राजन्! ये जो मान और अपमान हैं, ये साधारण मनुष्योंको प्रसन्नता और उद्वेग देनेवाले होते हैं। उन्हें मानसे प्रसन्नता और अपमानसे उद्वेग होता है; किन्तु योगी इन दोनोंको ही ठीक उलटे अर्थमें ग्रहण करता है। अतः वे उसकी सिद्धिमें सहायक होते हैं। योगीके लिये मान और अपमानको विष एवं अमृतके रूपमें बताया गया है। इनमें अपमान तो अमृत है और मान भयंकर विष। योगी मार्गको भलीभाँति देखकर पैर रखे। वस्त्रसे छानकर जल पीये, सत्य वचन बोले और बुद्धिसे विचार करके जो ठीक जान पड़े, उसीका चिन्तन करे।* योगवेत्ता पुरुष आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, देवयात्रा तथा उत्सवोंमें न जाय। कार्यकी सिद्धिके लिये किसी बड़े आदमीके यहाँ भी कभी न जाय। जब गृहस्थके यहाँ रसोई घरसे धुआँ न निकलता हो, आग बुझ गयी हो और घरके सब लोग खा-पी चुके हों, उस समय योगी भिक्षाके लिये जाय; परन्तु प्रतिदिन एक ही घरपर न जाय। योगमें प्रवृत्त रहनेवाला पुरुष सत्पुरुषोंके मार्गको कलङ्कित न करते हुए प्रायः ऐसा व्यवहार करे, जिससे लोग उसका सम्मान न करें, तिरस्कार ही करें। वह गृहस्थोंके यहाँसे अथवा घूमते-फिरते रहनेवाले लोगोंके घरोंसे भिक्षा ग्रहण करे; इनमें भी पहली अर्थात् गृहस्थके घरकी भिक्षा ही सर्वश्रेष्ठ एवं मुख्य है। जो गृहस्थ विनीत, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, श्रोत्रिय एवं उदार हृदयवाले हों, उन्हींके यहाँ योगीको सदा भिक्षाके लिये जाना चाहिये। इनके बाद जो दुष्ट और पतित न हों, ऐसे अन्य लोगोंके

*मानापमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौ नृणाम्। तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ॥
मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते। अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषम्॥
चक्षुःपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं च चिन्तयेत्॥ (४१। २—४)

यहाँ भी वह भिक्षाके लिये जा सकता है; परन्तु छोटे वर्णके लोगोंके यहाँ भिक्षा माँगना निकृष्ट वृत्ति मानी गयी है। योगीके लिये भिक्षाप्राप्त अन्न, जौकी लप्सी, छाछ, दूध, जौकी खिचड़ी, फल, मूल, कँगनी, कण, तिलका चूर्ण और सत्तू—ये आहार उत्तम और सिद्धिदायक हैं। अतः योगी इन्हें भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्तसे भोजनके काममें ले। पहले एक बार जलसे आचमन करके मौन हो क्रमशः पाँच ग्रासोंकी प्राणरूप अग्निमें आहुति दे। '**प्राणाय स्वाहा**' कहकर पहला ग्रास मुँहमें डाले। यही प्रथम आहुति मानी गयी है। इसी प्रकार '**अपानाय स्वाहा**' से दूसरी, '**समानाय स्वाहा**' से तीसरी, '**उदानाय स्वाहा**' से चौथी और '**व्यानाय स्वाहा**' से पाँचवीं आहुति दे। फिर प्राणायामके द्वारा इन्हें पृथक् करके शेष अन्न इच्छानुसार भोजन करे। भोजनके अन्तमें फिर एक बार आचमन करे। तत्पश्चात् हाथ-मुँह धोकर हृदयका स्पर्श करे। चोरी न करना, ब्रह्मचर्यका पालन, त्याग, लोभका अभाव और अहिंसा—ये भिक्षुओंके पाँच व्रत हैं। क्रोधका अभाव, गुरुकी सेवा, पवित्रता, हलका भोजन और प्रतिदिन स्वाध्याय—ये पाँच उनके नियम बताये गये हैं।*

जो योगी 'यह जानने योग्य है, वह जानने योग्य है' इस प्रकार भिन्न-भिन्न विषयोंकी जानकारीके लिये लालायित-सा होकर इधर-उधर विचरता है, वह हजारों कल्पोंमें भी ज्ञातव्य वस्तुको नहीं पा सकता। आसक्तिका त्याग करके, क्रोधको जीतकर, स्वल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो, बुद्धिसे इन्द्रियद्वारोंको रोककर मनको ध्यानमें लगावे। योगयुक्त रहनेवाला योगी सदा एकान्त स्थानोंमें, गुफाओं और वनोंमें भलीभाँति ध्यान करे। वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड—ये तीन दण्ड जिसके अधीन हों, वही महाव्रती त्रिदण्डी है। राजन्! जिसकी दृष्टिमें सत्-असत् तथा गुण-अवगुणरूप यह समस्त जगत् आत्मस्वरूप हो गया है, उस योगीके लिये कौन प्रिय है और कौन अप्रिय। जिसकी बुद्धि शुद्ध है, जो मिट्टीके ढेले और सुवर्णको समान समझता है, सब प्राणियोंके प्रति जिसका समान भाव है, वह एकाग्रचित्त योगी उस सनातन अविनाशी परम पदको प्राप्त होकर फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। वेदोंसे सम्पूर्ण यज्ञकर्म श्रेष्ठ हैं, यज्ञोंसे जप, जपसे ज्ञानमार्ग और उससे आसक्ति एवं रागसे रहित ध्यान श्रेष्ठ है। ऐसे ध्यानके प्राप्त हो जानेपर सनातन ब्रह्मकी उपलब्धि होती है। जो एकाग्रचित्त, ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, पवित्र, एकान्तप्रेमी और जितेन्द्रिय होता है, वही महात्मा इस योगको पाता है और फिर अपने उस योगसे ही वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।†

---

* अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च त्यागोऽलोभस्तथैव च। व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसापरमाणि वै॥
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम्। नित्यस्वाध्याय इत्येते नियमाः पञ्च कीर्तिताः॥
(४१। १६-१७)

† त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः। पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत्॥
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च। नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत्॥
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः। यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः॥
सर्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम्। गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः॥
विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषु समः समाहितः।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च परं हि गत्वा न पुनः प्रजायते॥
वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः॥
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥ (४१। २०—२६)

दत्तात्रेयजी कहते हैं—जो योगी इस प्रकार भलीभाँति योगचर्यामें स्थित होते हैं, उन्हें सैकड़ों जन्मोंमें भी अपने पथसे विचलित नहीं किया जा सकता। जिनके सब ओर चरण, मस्तक और कण्ठ हैं, जो इस विश्वके स्वामी तथा विश्वको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन विश्वरूपी परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन करके उनकी प्राप्तिके लिये परम पुण्यमय 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका जप करे; उसीका अध्ययन करे। अब उसके स्वरूपका वर्णन सुनो। अकार, उकार और मकार—ये जो तीन अक्षर हैं, ये ही तीन मात्राएँ हैं। ये क्रमशः सात्त्विक, राजस और तामस हैं। इनके सिवा एक अर्द्धमात्रा भी है जो अनुस्वार या बिन्दुके रूपमें इन सबके ऊपर स्थित है। वह अर्द्धमात्रा निर्गुण है। योगी पुरुषोंको ही उसका ज्ञान हो पाता है। उसका उच्चारण गान्धार स्वरसे होता है, इसलिये उसे 'गान्धारी' भी कहते हैं। उसका स्पर्श चींटीकी गतिके समान होता है। प्रयोग करनेपर वह मस्तक-स्थानमें दृष्टिगोचर होती है। जैसे ॐकार उच्चारण किया जानेपर मस्तकके प्रति गमन करता है, उसी प्रकार ॐकारमय योगी अक्षरब्रह्ममें मिलकर अक्षररूप हो जाता है। प्रणव (ॐकार) धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म वेधनेयोग्य उत्तम लक्ष्य है। उस लक्ष्यको सावधानीके साथ वेधना चाहिये और बाणकी ही भाँति लक्ष्यमें प्रवेश करके तन्मय हो जाना चाहिये। यह ॐकार ही तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि, ब्रह्मा विष्णु तथा महादेव एवं ऋक्-साम और यजुर्वेद है। इस ॐकारमें वस्तुतः साढ़े तीन मात्राएँ जाननी चाहिये। उनके चिन्तनमें लगा हुआ योगी उन्हींमें लयको प्राप्त होता है। अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक और व्यञ्जनरूप मकार स्वर्लोक कहलाता है। पहली मात्रा व्यक्त, दूसरी अव्यक्त, तीसरी चिच्छक्ति तथा चौथी अर्द्धमात्रा परमपद कहलाती है। इसी क्रमसे इन मात्राओंको योगकी भूमि समझना चाहिये। ॐकारके उच्चारणसे सम्पूर्ण सत् और असत्‌का ग्रहण हो जाता है। पहली मात्रा ह्रस्व, दूसरी दीर्घ और तीसरी प्लुत है, किन्तु अर्द्धमात्रा वाणीका विषय नहीं है। इस प्रकार यह ॐकार नामक अक्षर परब्रह्मस्वरूप है। जो मनुष्य इसे भलीभाँति जानता अथवा इसका ध्यान करता है, वह संसार-चक्रका त्याग करके त्रिविध बन्धनोंसे मुक्त हो परब्रह्म परमात्मामें लीन हो जाता है।* जिसका

---

* तत्प्राप्तये महत् पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत्। तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम्॥
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्। एता एव त्रयो मात्राः सात्त्वराजसतामसाः॥
निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्द्धमात्रोर्द्ध्वसंस्थिता।
गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया। पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते॥
यथा प्रयुक्त ओङ्कारः प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि। तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरो भवेत्॥
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम्। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥
ओमित्येतत् त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः। विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च॥
मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः। तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात्॥
अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः। सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते॥
व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञिता। मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम्॥
अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः। ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत्॥
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता। तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा न गोचरा॥
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्। यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः॥
संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः। प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि॥

कर्मबन्धन क्षीण नहीं हुआ है, वह अरिष्टसे अपनी मृत्यु जानकर प्राणत्यागके समय भी योगका चिन्तन करे। इससे वह दूसरे जन्ममें पुनः योगी होता है। इसलिये जिसका योग सिद्ध नहीं हुआ है, वह तथा जिसका योग सिद्ध हो चुका है, वह भी सदा मृत्युसूचक अरिष्टोंको जाने, जिससे मृत्युके समय उसे कष्ट न उठाना पड़े।

महाराज! अब अरिष्टोंका वर्णन सुनो। मैं उन अरिष्टोंको बतलाता हूँ, जिनके देखनेसे योगवेत्ता पुरुष अपनी मृत्युको जान लेता है। जो मनुष्य देवमार्ग (आकाशगङ्गा), ध्रुव, शुक्र, चन्द्रमाकी छाया और अरुन्धतीको नहीं देख पाता, वह एक वर्षके बाद जीवित नहीं रहता। जो सूर्यके मण्डलको किरणोंसे रहित और अग्निको किरणमालाओंसे मण्डित देखता है, वह मनुष्य ग्यारह महीनेसे अधिक नहीं जी सकता। जो स्वप्नमें वमन, मूत्र और विष्ठाके भीतर सोने और चाँदीका प्रत्यक्ष दर्शन करता है, उसकी आयु दस महीनेतककी ही है। जो प्रेत, पिशाच आदि, गन्धर्वनगर तथा सुवर्णके वृक्ष देखने लगता है, वह नौ महीनोंतक जीवित रहता है। जो अकस्मात् स्थूल शरीरसे दुर्बल शरीरका हो जाता है या दुर्बलसे स्थूल हो जाता है तथा जिसकी प्रकृति सहसा बदल जाती है, उसका जीवन आठ महीनेतक ही रहता है। धूल या कीचड़में पैर रखनेपर जिसकी एड़ी या पादाग्रभागका चिह्न खण्डित दिखायी दे, वह सात मासतक जीवित रहता है। यदि गीध, कबूतर, उल्लू, कौआ, मांसखोर पक्षी या नीले रंगका पक्षी मस्तकपर बैठ जाय तो वह छः मास आयु शेष रहनेकी सूचना देता है। यदि कौए आकर चोंच मारें या धूलकी वर्षासे आहत होना पड़े तथा अपनी छाया और तरहकी दिखायी दे तो वह चार-पाँच महीने ही जीवित रहता है। यदि बिना बादलके ही दक्षिण दिशाके आकाशमें बिजली चमकती दिखायी दे और रातमें इन्द्रधनुषका दर्शन हो तो उस मनुष्यका जीवन दो तीन महीनेका ही है। जो घी, तेल, दर्पण अथवा जलमें अपनी परछाईं न देख सके अथवा देखे भी तो बेसिरकी ही परछाईं दिखायी दे तो वह एक महीनेसे अधिक नहीं जी सकता। राजन्! जिस योगीके शरीरसे बकरे अथवा मुर्देकी-सी दुर्गन्ध आती हो, उसका जीवन पंद्रह दिनोंका ही समझना चाहिये। स्नान करते ही जिसकी छाती और पैर सूख जायँ तथा जल पीनेपर भी कण्ठ सूखने लगे, वह केवल दस दिनतक ही जीवित रह सकता है। जिसके भीतरकी वायु पृथक् होकर मर्मस्थानोंको छेदती-सी जान पड़े तथा जलके स्पर्शसे भी जिसके शरीरमें रोमाञ्च न हो, उसकी मृत्यु पास खड़ी है। जो स्वप्नमें भालू और वानरकी सवारीपर बैठकर गीत गाता हुआ दक्षिण दिशामें जाय, उसकी मृत्यु समयकी प्रतीक्षा नहीं करती। स्वप्नमें ही लाल और काले कपड़े पहने हुए कोई स्त्री हँसती-गाती हुई जिसे दक्षिण दिशाकी ओर ले जाय, वह भी जीवित नहीं रहता। यदि स्वप्नमें नंगा एवं मूँड़ मुँड़ाया हुआ कोई महाबली मनुष्य हँसता और उछलता-कूदता दिखायी दे तो समझना चाहिये कि मौत आ गयी। जो स्वप्नावस्थामें अपनेको पैरसे लेकर चोटीतक कीचड़के समुद्रमें डूबा देखता है, वह मनुष्य तत्काल मृत्युको प्राप्त होता है। जो स्वप्नमें केश, अँगारे, भस्म, सर्प और बिना पानीकी नदी देखता है, उसकी दसवेंसे लेकर ग्यारहवें दिनतक मृत्यु हो जाती है। स्वप्नमें विकराल, भयंकर और काले रंगके पुरुष हाथोंमें हथियार लिये जिसको पत्थरोंसे मारते हैं, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। सूर्योदयके समय जिसके

सम्मुख और बायें-दायें गीदड़ी रोती हुई जाय, उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। भोजन कर लेनेपर भी जिसके हृदयमें भूखका कष्ट होता हो तथा जो दाँतोंसे दाँत घिसता रहे, उसकी आयु भी निश्चय ही समाप्त हो चुकी है। जिसको दीपककी गन्धका अनुभव न होता हो, जो रात और दिनमें भी डरता हो तथा दूसरेके नेत्रमें अपनी परछाईं न देखता हो, वह जीवित नहीं रहता। जो आधी रातके समय इन्द्रधनुष और दिनमें तारोंको देख ले, वह आत्मवेत्ता पुरुष अपनी आयु क्षीण हुई समझे। जिसकी नाक टेढ़ी और कान ऊँचे-नीचे हो जाते हैं तथा जिसके बायें नेत्रसे सदा पानी गिरता रहता है, उसकी आयु समाप्त हो चुकी है। यदि मुँह सब ओरसे लाल और जीभ काली पड़ जाय तो बुद्धिमान् पुरुषको अपनी मृत्यु निकट समझनी चाहिये। जो स्वप्नमें ऊँट या गदहेपर बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर जाय, उसकी तत्काल मृत्यु होनेवाली है—ऐसा जानना चाहिये। जो अपने दोनों कान बंद कर लेनेपर अपनी ही आवाज न सुने तथा जिसके नेत्रोंकी ज्योति नष्ट हो जाय, वह भी जीवित नहीं रह सकता। जो स्वप्नमें किसी गड्ढेके भीतर गिरे और उसमे निकलनेका द्वार बंद हो जाय तथा फिर वह उस गड्ढेसे न निकल सके तो वहींतक उसका जीवन समझना चाहिये। जिसकी दृष्टि ऊपरकी ओर उठे किन्तु वहाँ ठहर न सके, बार-बार लाल होकर घूमती रहे, मुँह गरम हो और नाभि शीतल हो जाय तो ये लक्षण मनुष्यके शरीर-परिवर्तनकी सूचना देते हैं। जो स्वप्नमें अग्नि या जलके भीतर प्रवेश करके फिर न निकले, उसके जीवनका वहीं अन्त है। जिसको दुष्ट जीव रातमें और दिनमें भी मारें, वह सात रातके भीतर निश्चय ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जो अपने निर्मल श्वेत वस्त्रको भी लाल या काले रंगका देखे, उसकी भी मृत्यु निकट समझनी चाहिये। स्वभावका विपरीत होना और प्रकृतिका बिल्कुल बदल जाना भी मृत्युके निकट होनेकी सूचना देते हैं।

जिसका काल निकट आ गया है, वह मनुष्य जिनके सामने सदा विनीत रहता था, जो लोग उसके परम पूजनीय थे, उन्हींको अवहेलना और निन्दा करता है। वह देवताओंकी पूजा नहीं करता। बड़े-बूढ़ों, गुरुजनों तथा ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, माता-पिता तथा दामादका सत्कार नहीं करता। इतना ही नहीं, वह योगियों, ज्ञानी विद्वानों तथा अन्य महात्मा पुरुषोंके आदर-सत्कारसे भी मुँह मोड़ लेता है। बुद्धिमान् पुरुषोंको मृत्युके इन लक्षणोंकी जानकारी रखनी चाहिये। राजन्! योगी पुरुषोंको उचित है कि वे सदा यत्नपूर्वक इन अरिष्टोंपर दृष्टि रखें; क्योंकि ये वर्षके अन्तमें तथा दिन-रातके भीतर भी फल देनेवाले होते हैं। राजन्! इनके विशद फलोंको भलीभाँति देखना चाहिये और मन-ही-मन विचार करके उस समयके अनुसार कार्य करना चाहिये। मृत्युकालको जान लेनेपर योगी किसी निर्भय स्थानमें बैठकर योगाभ्यासमें प्रवृत्त हो जाय, जिससे उसका वह समय निष्फल न जाने पावे। अरिष्ट देखकर योगी मृत्युका भय छोड़ दे और उसके स्वभावका विचार करके जितने समयमें वह आनेवाली हो, उतने समयके प्रत्येक भागमें योगी योग-साधनमें लगा रहे। दिनके पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्नमें अथवा रात्रिके जिस भागमें अरिष्टका दर्शन हो, तभीसे लेकर जबतक मृत्यु न आवे तबतक योगमें लगा रहे। तदनन्तर सारा भय छोड़कर जितात्मा पुरुष उस कालपर विजय प्राप्त करके उसी स्थानपर या और कहीं—जहाँ भी अपना चित्त स्थिर हो सके, योगमें संलग्न हो जाय और तीनों गुणोंको जीतकर परमात्मामें तन्मय हो

चिद्वृत्तिका भी त्याग कर दे। यों करनेसे वह उस इन्द्रियातीत परम निर्वाणस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होता है, जो न तो बुद्धिका विषय है और न वाणी ही जिसका वर्णन कर सकती है। अलर्क! इन सब बातोंका मैंने तुमसे यथार्थ वर्णन किया है; अब तुम जिस प्रकार ब्रह्मको प्राप्त हो सकोगे, वह संक्षेपमें सुनो।

जैसे चन्द्रमाका संयोग पाकर ही चन्द्रकान्तमणि जलकी सृष्टि करती है, उनका संयोग पाये बिना नहीं; यही उपमा योगीके लिये भी है। योगी भी योगयुक्त होकर ही सिद्धि लाभ कर सकता है, अन्यथा नहीं। जैसे सूर्यकी किरणोंका संयोग पाकर ही सूर्यकान्तमणि आग पैदा करती है, अकेली रहकर नहीं, यही उपमा योगीके लिये भी है। उसे योगका आश्रय कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जैसे चींटी, चूहा, नेवला, छिपकली और गौरैया—ये सब घरमें गृहस्वामीकी ही भाँति रहते हैं और घर गिर जानेपर अन्यत्र चल देते हैं, किन्तु घरके गिरनेका दुःख केवल स्वामीको ही होता है, उन सबोंको उसके लिये कुछ भी कष्ट नहीं होता, योगकी सिद्धिके लिये भी यही उपमा है। अर्थात् योगीको अपने गृह, वैभव और शरीर आदिके प्रति तनिक भी ममता नहीं रखनी चाहिये। हरिनके बच्चेके मस्तकपर जब सींग उगने लगता है, तब पहले उसका अग्रभाग तिलके समान दिखायी देता है। फिर वह उस हरिनके साथ ही साथ बढ़ता है। इस दृष्टान्तपर विचार करनेसे योगी सिद्धिको प्राप्त होता है। अर्थात् उसे भी धीरे-धीरे अपनी योगसाधना बढ़ानी चाहिये। जैसे मनुष्य रोगसे पीड़ित होनेपर भी अपनी इन्द्रियोंसे काम लेता ही है, उसी प्रकार योगी बुद्धि आदि परकीय साधनोंसे, जो आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं, परम पुरुषार्थका साधन करे।

अलर्ककी मुक्ति एवं पिता-पुत्रके संवादका उपसंहार

सुमति कहते हैं—तदनन्तर राजा अलर्कने अत्रिनन्दन दत्तात्रेयजीके चरणोंमें प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्नताके साथ विनीतभावसे कहा—'ब्रह्मन्! देवताओंने मुझे शत्रुद्वारा पराजित कराकर जो मेरे समक्ष प्राणोंको संशयमें डालनेवाला अत्यन्त उग्र भय उपस्थित कर दिया, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। काशिराजका महान् बल वैभवसे सम्पन्न पराक्रम मेरा विनाश करनेके लिये यहाँ प्रकट हुआ था; किन्तु उसने मुझे आपके सत्सङ्गका शुभ अवसर प्रदान किया, यह कितने आनन्दकी बात है। सौभाग्यसे ही मेरा सैनिक बल घट गया, सौभाग्यने ही मेरे सेवक मारे गये, सौभाग्यसे ही मेरा खजाना खाली हुआ, सौभाग्यसे ही मैं भयको प्राप्त हुआ, सौभाग्यने ही मुझे आपके युगल चरणोंकी स्मृति करायी और सौभाग्यसे ही आपका सारा उपदेश मेरे चित्तमें बैठ गया। ब्रह्मन्! सौभाग्यवश आपके सङ्गसे मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ और सौभाग्यसे ही आपने मुझपर कृपा की। जब पुरुषके शुभ दिन आते हैं तब अनर्थ भी अर्थका साधक बन जाता है, जैसे इस समय यह शत्रुजनित आपत्ति भी आपके समागमसे उपकार करनेवाली सिद्ध हुई। भगवन्! भाई सुबाहु तथा काशिराज दोनों ही मेरे उपकारी हैं, जिनके कारण मुझे आपके समीप आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके प्रसादरूपी अग्निमें मेरा अज्ञान और पाप जल गया। अब मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे फिर इस प्रकार दुःखका भागी न बनूँ। आप मेरे ज्ञानदाता महात्मा हैं; अतः आपसे आज्ञा लेकर मैं गार्हस्थ्य-आश्रमका परित्याग करूँगा, जो विपत्तिरूपी वृक्षोंका वन है।'

दत्तात्रेयजी बोले—राजेन्द्र! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। मैंने जैसा तुम्हें बताया है, उसीके अनुसार ममता और अहङ्कारसे रहित हो मोक्षके लिये विचरते रहो।

सुमति कहते हैं—दत्तात्रेयजीके यों कहनेपर राजा अलर्कने उन्हें प्रणाम किया और बड़ी उतावलीके साथ वे उस स्थानपर आये, जहाँ उनके बड़े भाई सुबाहु और काशिराज मौजूद थे। महाबाहु वीरवर काशिराजके निकट पहुँचकर अलर्कने सुबाहुके सामने ही हँसते हुए कहा—

'राज्यकी इच्छा रखनेवाले काशिराज! अब तुम इस बढ़े हुए राज्यको भोगो। अथवा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो भाई सुबाहुको ही दे डालो।'

काशिराजने कहा—अलर्क! तुमने युद्धके बिना ही राज्य क्यों छोड़ दिया? यह तो क्षत्रियका धर्म नहीं है और तुम क्षत्रियधर्मके ज्ञाता हो। जब अमात्यवर्ग पराजित हो जाय, तब राजा स्वयं ही मृत्युका भय छोड़कर अपने शत्रुको लक्ष्य करके बाणका संधान करे और उसे जीतकर इच्छानुसार श्रेष्ठ भोगोंका उपभोग करे। साथ ही परम सिद्धिके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान भी करता रहे।

अलर्क बोले—वीर! तुम्हारा कथन ठीक है, पहले मेरे मनमें भी ऐसे ही विचार उठते थे; किन्तु अब मेरी विपरीत धारणा हो गयी है। इसका कारण सुनो। नरेश्वर! तुम्हारे भयसे अत्यन्त दुःख पाकर मैंने योगीश्वर दत्तात्रेयजीकी शरण ली और उनकी कृपासे अब मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है। समस्त इन्द्रियोंको जीतकर तथा सब ओरसे आसक्ति हटाकर मनको ब्रह्ममें लगाना और इस प्रकार मनको जीतना ही सबसे बड़ी विजय है; अतः अब मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूँ, तुम भी मेरे शत्रु नहीं हो तथा ये सुबाहु भी मेरे अपकारी नहीं हैं। मैंने इन सब बातोंको अच्छी तरह समझ लिया है। अतः राजन्! अब अपने लिये तुम कोई दूसरा शत्रु ढूँढ़ो।

अलर्कके यों कहनेपर राजा सुबाहु अत्यन्त प्रसन्न होकर उठे और 'धन्य! धन्य!' कहकर अपने भाईका अभिनन्दन करनेके पश्चात् वे काशिराजसे इस प्रकार बोले—'नृपश्रेष्ठ! मैं जिस कार्यके लिये तुम्हारी शरणमें आया था, वह सब पूरा हो गया। अब मैं जाता हूँ। तुम सुखी रहो।'

काशिराजने कहा—सुबाहो! तुम किसलिये आये थे? और तुम्हारा कौन सा कार्य सिद्ध हुआ? यह बताओ। मुझे तुम्हारी बातोंसे बड़ा कौतूहल हो रहा है। तुमने मेरे पास आकर कहा था कि 'मेरे बाप-दादोंका बहुत बड़ा राज्य अलर्कने हड़प लिया है। वह उनसे जीतकर मुझे दे दो।' तब मैंने तुम्हारे भाईपर आक्रमण करके यह राज्य अपने वशमें किया। यह तुम्हें कुलपरम्परासे प्राप्त है, अतः इसका उपभोग करो।

सुबाहु बोले—काशिराज! मैंने जिस उद्देश्यसे यह प्रयत्न किया था और जिसके लिये तुमसे भी महान् उद्योग कराया, वह बतलाता हूँ; सुनो। मेरा यह छोटा भाई तत्त्वज्ञ होकर भी सांसारिक भोगोंमें फँसा हुआ था। मेरे दो बड़े भाई परम

ज्ञानी हैं। उन दोनोंको तथा मुझे भी हमारी माताने जब बचपनमें दूध पिलाया, उसी समय कानोंमें तत्त्वज्ञान भी भर दिया। मनुष्यमात्रको जिनका ज्ञान होना चाहिये, वे सभी पदार्थ माताने हमारे सामने प्रकाशित कर दिये। किन्तु यह अलर्क उस ज्ञानसे वञ्चित रह गया था। राजन्! जैसे एक साथ यात्रा करनेवालोंमेंसे एकको कष्टमें पड़ा देखकर साधु पुरुषोंके हृदयमें दुःख होता है, उसी प्रकार इस अलर्कको गृहस्थ-आश्रमके मोहमें फँसकर कष्ट उठाते हुए देखकर हम तीनों भाइयोंको कष्ट होता था। क्योंकि यह इस शरीरका सम्बन्धी है, और इसके साथ 'भाई' की कल्पना जुड़ी हुई है। तब मैंने सोचा, दुःख पड़नेपर ही इसके मनमें वैराग्यकी भावना जाग्रत् होगी; अतः युद्धोद्योगके लिये तुम्हारा आश्रय लिया। फिर इस दुःखसे इसको वैराग्य हुआ और वैराग्यसे ज्ञानकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार जो कार्य मुझे अभीष्ट था, वह पूरा हो गया। अतः तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। मदालसाके गर्भमें रहकर और उसके स्तनोंका दूध पीकर यह अलर्क दूसरी स्त्रीके पुत्रोंद्वारा ग्रहण किये हुए मार्गपर न जाय, यही विचारकर मैंने तुम्हारा सहारा लिया था। सो सब कार्य पूरा हो गया, अब मैं सिद्धिके लिये जाता हूँ। नरेन्द्र! जो लोग कष्टमें पड़े हुए अपने स्वजन, बन्धु और सुहृद्की उपेक्षा करते हैं, वे मेरे विचारसे विकलेन्द्रिय हैं, उनकी इन्द्रियाँ—हाथ-पैर आदि बेकार हैं। जो समर्थ सुहृद्, स्वजन और बन्धुके होते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे वञ्चित हो कष्ट भोगता है, वहाँ उसके वे सुहृद् आदि ही निन्दाके पात्र होते हैं। राजन्! तुम्हारे सङ्गसे मैंने यह बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर लिया। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जाऊँगा। साधुश्रेष्ठ! तुम भी ज्ञानी बनो।

काशिराजने कहा—महात्मन्! तुमने अलर्कका तो बहुत बड़ा उपकार किया, अब मेरी भलाईमें अपना मन क्यों नहीं लगाते? सत्पुरुषोंका साधु पुरुषोंके साथ जो समागम होता है, वह सदा फल देनेवाला ही होता है, निष्फल नहीं; अतः तुम्हारे सङ्गसे मेरी भी उन्नति होनी चाहिये।

सुबाहु बोले—राजन्! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं। इनमेंसे धर्म, अर्थ और काम तो तुम्हें प्राप्त हैं। केवल मोक्षसे तुम वञ्चित हो, अतः वही तुम्हें संक्षेपसे बतलाता हूँ। एकाग्रचित्त होकर सुनो। सुनकर भलीभाँति उसकी आलोचना करो और उसीके अनुसार अपने कल्याणके यत्नमें लग जाओ। राजन्! 'यह मेरा है और यह मैं हूँ' इस प्रकारकी प्रतीति तुम्हें नहीं करनी चाहिये; क्योंकि आलोचनाका विषय तो बाह्य धर्म ही होता है। धर्मके अभावमें कोई आश्रय नहीं रहता। अहं (मैं) यह संज्ञा किसकी है, इस बातका तुम्हें विचार करना चाहिये। बाह्य और आन्तरिक तत्त्वकी आलोचना करनी चाहिये। आधी रातके बाद भी इस तत्त्वका विचार करना चाहिये। अव्यक्तसे लेकर विशेषतक जो विकाररहित, अचेतन व्यक्त और अव्यक्त तत्त्व है, उसे जानना चाहिये और उनका ज्ञाता जो मैं हूँ, वह मैं

कौन हूँ—इसे भी जानना चाहिये। इस 'मैं' को ही जान लेनेपर तुम्हें सबका ज्ञान हो जायगा। अनात्मामें आत्मबुद्धिका होना और जो अपना नहीं है उसे अपना मानना—यही अज्ञान है। भूपाल! वह मैं सर्वत्र व्यापक आत्मा हूँ, तथापि तुम्हारे पूछनेपर लोकव्यवहारकी दृष्टिसे मैंने ये सब बातें बता दी हैं। अब मैं जाता हूँ।

सुमति कहते हैं—काशीनरेशसे यों कहकर परम बुद्धिमान् सुबाहु चले गये। काशिराजने भी अलर्कका सत्कार करके अपने नगरकी राह ली। अलर्कने अपने ज्येष्ठ पुत्रको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके वे आत्मसिद्धिके लिये वनमें चले गये। वहाँ बहुत समयतक वे निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर रहे और अनुपम योगसम्पत्तिको पाकर परम निर्वाणपदको प्राप्त हुए।

पिताजी! आप भी अपनी मुक्तिके लिये इस उत्तम योगका साधन कीजिये। इससे आप उस ब्रह्मको प्राप्त होंगे, जहाँ जानेपर आपको शोक नहीं होगा। अब मैं भी जाऊँगा। यज्ञ और जपसे मुझे क्या लेना है। कृतकृत्य पुरुषका प्रत्येक कार्य ब्रह्मभावकी प्राप्तिके लिये ही होता है, अतः आपकी आज्ञा लेकर मैं जाता हूँ। अब निर्द्वन्द्व एवं परिग्रहशून्य होकर मुक्तिके लिये ऐसा यत्न करूँगा, जिससे मुझे परम सन्तोषकी प्राप्ति हो।

पक्षी कहते हैं—जैमिनिजी! अपने पितासे यों कहकर और उनकी आज्ञा ले परम बुद्धिमान् सुमति सब प्रकारके संग्रहको छोड़कर चले गये। उनके महाबुद्धिमान् पिता भी उसी प्रकार क्रमशः वानप्रस्थ आश्रममें जाकर चौथे आश्रममें प्रविष्ट हुए। वहाँ पुत्रसे पुनः उनकी भेंट हुई और उन्होंने गुण आदि बन्धनोंका त्याग करके तत्काल प्राप्त हुई उत्तम बुद्धिसे युक्त हो परम सिद्धि प्राप्त की। ब्रह्मन्! आपने हमलोगोंसे जो प्रश्न किया था, उसका विस्तारपूर्वक हमने यथावत् वर्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?

मार्कण्डेय-क्रौष्टुकि-संवादका आरम्भ, प्राकृत सर्गका वर्णन

जैमिनि बोले—श्रेष्ठ पक्षिगण! आपने प्रवृत्ति और निवृत्ति—दो प्रकारके वैदिक कर्म बतलाते हुए मुझे बहुत सुन्दर उपदेश दिया है। अहो! पिताकी कृपासे आपलोगोंका ज्ञान ऐसा है, जिससे तिर्यग्योनिको प्राप्त होकर भी आपने मोहका त्याग कर दिया। आपलोग धन्य हैं; क्योंकि उत्तम सिद्धिकी प्राप्तिके लिये आपलोगोंका मन आज भी पूर्वावस्थामें ही स्थित है। विषयजनित मोह उसे विचलित नहीं कर पाते। मेरा बड़ा भाग्य है कि महर्षि मार्कण्डेयजीने मुझे आपलोगोंका परिचय दिया। आप सब प्रकारके संदेहोंका निराकरण करनेमें सबसे श्रेष्ठ हैं। इस अत्यन्त सङ्कटपूर्ण संसारमें भटकते हुए मनुष्योंको बिना तपस्या किये आप-जैसे सन्तोंका सङ्ग प्राप्त होना दुर्लभ है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि प्रवृत्ति, निवृत्ति एवं ज्ञानके विषयमें आपलोगोंकी बुद्धि जैसी निर्मल है, वैसी दूसरे किसीकी नहीं है। यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो मेरे लिये आगे बतायी जानेवाली बातोंका पूर्णरूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये।

यह स्थावर-जङ्गम जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? कल्पान्तमें पुनः किस प्रकार यह लयको प्राप्त होगा? देवता, ऋषि, पितर और भूत आदिके वंश कैसे हुए? मन्वन्तर किस प्रकार होते हैं? उनके वंशमें उत्पन्न महापुरुषोंके जीवन चरित्र कैसे हैं? जितनी सृष्टि, जितने प्रलय, जैसे जैसे कल्पोंके विभाग, जो जो मन्वन्तरकी स्थिति, जैसी पृथ्वीकी स्थिति, जितना बड़ा पृथ्वीका विस्तार तथा समुद्र,

पर्वत, नदी, वन, भूलोक आदि, स्वर्लोकसमुदाय और पातालको जिस प्रकारकी स्थिति है, वह सब मुझे बतलाइये। सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र और तारोंकी गति तथा प्रलयकालतककी सारी बातें मैं सुनना चाहता हूँ। जब इस जगत्‌का संहार हो जायगा, तब उसके बाद क्या शेष रहेगा? इस प्रश्नपर भी प्रकाश डालिये।

पक्षियोंने कहा—मुनिश्रेष्ठ! आपने हमलोगोंपर प्रश्नोंका ऐसा भार रख दिया, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। अब हम आपके पूछे हुए विषयोंका वर्णन करते हैं, सुनिये। पूर्वकालमें मार्कण्डेयजीने ब्राह्मणकुमार क्रौष्टुकिसे, जो परम बुद्धिमान्, व्रतस्नात तथा शान्त स्वभाववाले थे, जो कुछ कहा था, वही हम आपसे कहते हैं। एक समय महात्मा मार्कण्डेय मुनि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे घिरे बैठे थे। वहीं क्रौष्टुकिने यही बात पूछी थी, जिसे आपने हमसे पूछा है। भृगुनन्दन मार्कण्डेयजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ क्रौष्टुकिके प्रश्नोंका उत्तर दिया। उसीको हम आपसे वर्णन करते हैं। आप ध्यान देकर सुनें। जो सृष्टिके समय ब्रह्मा, पालन-कालमें विष्णु तथा संहारके समय जगत्‌का अन्त करनेवाले भगवान् रुद्र हैं, उन सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी पद्मयोनि पितामह ब्रह्माजीको मैं प्रणाम करता हूँ।

मार्कण्डेयजीने कहा—पूर्वकालमें अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रकट होते ही उनके मुखोंसे क्रमशः पुराण और वेद प्रकट हुए, फिर महर्षियोंने पुराणकी बहुत सी संहिताएँ रचीं और वेदोंके भी सहस्रों विभाग किये। धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य—ये चारों महात्मा ब्रह्माजीके उपदेश बिना नहीं सिद्ध हो सकते थे। ब्रह्माजीके मानस पुत्र सप्तर्षियोंने उनसे वेदोंको ग्रहण किया और ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए भृगु आदि ऋषियोंने पुराणको अपनाया। भृगुसे च्यवनने और च्यवनसे ब्रह्मर्षियोंने उसे प्राप्त किया। फिर उन्होंने दक्षको उपदेश दिया और दक्षने मुझे इस पुराणको सुनाया था। वही आज मैं तुमसे कहता हूँ। यह पुराण कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।

जो सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके स्थान, अजन्मा, अविनाशी, आश्रयस्वरूप, चराचर जगत्‌को धारण करनेवाले तथा परमपदस्वरूप हैं, जिन्हें आदिपुरुष ब्रह्मा कहा जाता है, जो उत्पत्ति, पालन और संहारके कारण हैं, किसीके औरस पुत्र न होकर स्वयंभू हैं, जिनमें सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है, जो हिरण्यगर्भ, लोकसृष्टिमें लगे रहनेवाले और परम बुद्धिमान् हैं, उन भगवान् ब्रह्माजीको नमस्कार करके मैं परम उत्तम भूतवर्गका वर्णन आरम्भ करता हूँ। यह भूतसमुदाय[१] पाँचकी संख्यामें जाननेके योग्य तथा त्रिविध[२] स्रोतोंसे युक्त है। महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त उसकी स्थिति है। उसमें किसका कैसा लक्षण है और किसके रूपमें कितनी विभिन्नता है, इन सब बातोंका ज्ञान कराते हुए भूतसमुदायका वर्णन करता हूँ। इस भौतिक जगत्‌का जो कारण है, उसे 'प्रधान' कहते हैं। उसीको महर्षियोंने अव्यक्त कहा है और वही सूक्ष्म, नित्य एवं सदसत्स्वरूप प्रकृति है। सृष्टिके आदिकालमें केवल ब्रह्म था, जो नित्य, अविनाशी, अजर और अप्रमेय है। उसका दूसरा कोई आधार नहीं है। वह गन्ध, रूप, रस, शब्द और स्पर्शसे रहित है। उसका आदि और अन्त नहीं है। वह सम्पूर्ण जगत्‌की योनि, तीनों गुणोंका कारण एवं अविनाशी है। उसे आधुनिक नहीं, पुरातन एवं सनातन कहा गया है। वह ज्ञान विज्ञानका विषय नहीं है। प्रलयके पश्चात् उस ब्रह्मसे ही यह सब कुछ व्याप्त था।

---

१. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच भूत हैं।

२. पशु-पक्षी आदिकी सृष्टिको 'तिर्यक्स्रोत', मानवसर्गको 'अर्वाक्स्रोत' और देवसर्गको 'ऊर्ध्वस्रोत' कहते हैं।

मुने! फिर सृष्टिकाल आनेपर गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रकृति जब ब्रह्मके क्षेत्रज्ञरूपसे अधिष्ठित हुई, तब उससे महत्तत्त्वका आविर्भाव हुआ। उत्पन्न हुए उस महतत्त्वको प्रधान (प्रकृति) ने आवृत कर रखा है। जैसे बीज त्वचासे घिरा हुआ होता है, उसी प्रकार अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्व आच्छादित है। वह सात्त्विक, राजस और तामसभेदसे तीन प्रकारका बताया गया है। तत्पश्चात् उस महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) तथा भूतादिरूप तामस—इन तीन भेदोंवाला अहङ्कार उत्पन्न हुआ। जैसे अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्व आवृत है, उसी प्रकार अहङ्कार भी महत्तत्त्वसे आवृत है। भूतादि नामक तामस अहङ्कारने शब्द-तन्मात्राकी सृष्टि की। उस शब्द-तन्मात्रासे शब्द-गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ; फिर भूतादि तामस अहङ्कारने शब्द तन्मात्रारूप आकाशको आच्छादित किया। इससे स्पर्श-तन्मात्राकी सृष्टि हुई, जिससे बलवान् वायुका प्राकट्य हुआ। वायुका गुण स्पर्श माना गया है। शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने जब स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुको आच्छादित किया, तब वायुने भी विकृत होकर रूप-तन्मात्राकी रचना की। इस प्रकार वायुसे अग्नितत्त्व प्रकट हुआ, जिसका गुण रूप बतलाया जाता है। तदनन्तर स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको आवृत किया, जिससे विकृत होकर उस तेजने रस-तन्मात्राकी सृष्टि की। उस रस-तन्मात्रासे जल प्रकट हुआ, जो रस नामक गुणसे युक्त है। फिर रूप तन्मात्रावाले अग्नितत्त्वने रस-तन्मात्रायुक्त जलको आवृत किया। इससे जलमें भी विकार आया और उससे गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि हुई। उसीसे यह सङ्घातरूपा पृथ्वी उत्पन्न हुई, जिसका गुण गन्ध है। उन उन भूतोंमें कारणरूपसे तन्मात्राएँ हैं, इसलिये वे भूततन्मात्रारूप माने गये हैं। तन्मात्राएँ किसी विशेष भावका बोध नहीं करातीं। इसलिये वे अविशेष हैं। इस प्रकार तामस अहङ्कारसे यह भूततन्मात्रारूप सर्ग प्रकट हुआ।

वैकारिक अहङ्कारमें सत्त्वगुणकी अधिकता होनेसे वह सात्त्विक भी कहलाता है। उससे एक ही साथ वैकारिक सर्गकी उत्पत्ति होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ तैजस (राजस) अहङ्कारसे उत्पन्न बतलायी जाती हैं और उनके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक (सात्त्विक) अहङ्कारसे प्रकट हुए हैं। ग्यारहवें मनको भी वैकारिक सर्गमें ही जानना चाहिये। इस प्रकार मन तथा इन्द्रियाधिष्ठाता देवता वैकारिक माने गये हैं। श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंका ज्ञान करानेके लिये हैं, इसलिये इन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। दोनों पैर, गुदा, उपस्थ, दोनों हाथ और वाक्—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। क्रमशः चलना, मलत्याग, रतिके आनन्दका अनुभव, शिल्परचना और बोलना—ये पाँच इनके कर्म हैं। शब्द-तन्मात्रायुक्त आकाश स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुमें प्रविष्ट है, इसलिये वायु दो गुणोंसे युक्त होता है। उसका अपना गुण स्पर्श है। उसके साथ आकाशका शब्द भी रहता है। इसी प्रकार शब्द और स्पर्श—ये दो गुण रूपमें प्रवेश करते हैं; इसलिये अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन गुणोंसे युक्त होता है। फिर शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीनोंका रसमें प्रवेश होता है। इसलिये रसात्मक जलको चार गुणोंसे युक्त समझना चाहिये। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चारों गन्धमें प्रवेश करते हैं और उससे मिलकर सब ओरसे पृथ्वीको आवृत कर लेते हैं। इसलिये पृथ्वी पाँच गुणोंसे युक्त है और सब भूतोंमें स्थूल दिखायी देती है। ये पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ़ हैं। अर्थात् सुख, दुःख एवं मोहसे युक्त हैं। इसलिये ये विशेष कहलाते हैं।* परस्पर

* परस्पर मिलनेसे सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं; किन्तु पृथक्-पृथक् विचार करनेपर पृथ्वी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ है।

प्रवेश करनेपर वे एक-दूसरेको धारण करते हैं।

वे महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी भूत एक दूसरेसे मिलकर और परस्पर आश्रित हो एक संघातको ही अपना लक्ष्य बना जब पूर्णरूपसे एक हो जाते हैं, तब पुरुषसे अधिष्ठित होनेके कारण प्रधान तत्त्वके सम्बन्धसे अण्डकी उत्पत्ति करते हैं। वह महान् अण्ड जलके बुलबुलेके समान क्रमशः बढ़ता है और जलपर स्थित रहता है। उस प्राकृत अण्डमें ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध क्षेत्रज्ञ पुरुष भी वृद्धिको प्राप्त होता है। वे ब्रह्मा ही सबसे प्रथम शरीरधारी होनेके कारण पुरुष कहलाते हैं। भूतोंके आदिकर्ता ब्रह्माजी सबसे पहले प्रकट हुए। उन्होंने चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको व्याप्त कर रखा है। अण्डके गर्भमें स्थित उन महात्मा ब्रह्माजीके लिये मेरु पर्वत ही गर्भको ढकनेवाली झिल्ली हुआ। अन्य पर्वत जरायु (जेर) हुए तथा समुद्र ही उस गर्भाशयका जल था। उस अण्डमें ही देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ तथा पर्वत, द्वीप, समुद्र और नक्षत्र मण्डलके साथ त्रिभुवनका आविर्भाव हुआ। वह अण्ड क्रमशः जल, अग्नि, वायु, आकाश तथा तामस अहङ्कारके द्वारा बाहरसे आवृत है। ये आवरण एककी अपेक्षा दूसरे दसगुने बड़े हैं। तामस-अहंकार उससे दसगुने बड़े महत्तत्त्वके द्वारा आवृत है और महत्तत्त्व भी इन सबके साथ अव्यक्त प्रकृतिके द्वारा घिरा हुआ है। इस प्रकार इन सात प्राकृत आवरणोंसे यह अण्ड आवृत है। इस तरह ये आठ प्रकृतियाँ एक-दूसरेको आवृत करके स्थित हैं। वह प्रकृति नित्य है और उसके भीतर जो ही पुरुष हैं, जो तुम्हें ब्रह्माके नामसे बताये गये हैं। अब संक्षेपसे पुनः इस विषयका वर्णन सुनो—जैसे कोई पुरुष जलमें डूबकर फिर निकलते समय जलको फेंकता है, उसी प्रकार भगवान् ब्रह्माजी भी प्रकृतिको हटाते हुए उससे प्रकट होते हैं। अव्यक्त प्रकृतिको क्षेत्र बताया गया है और ब्रह्माजी क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् क्षेत्र क्षेत्रज्ञरूप ही है—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार यह प्राकृत सर्गका वर्णन हुआ। इनके भीतर अधिष्ठातारूपसे क्षेत्रज्ञ विराजमान रहता है। प्राकृत सर्ग ही प्रथम सृष्टि है।

एक ही परमात्माके त्रिविध रूप, ब्रह्माजीकी आयु आदिका मान तथा सृष्टिका संक्षिप्त वर्णन

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन्! आपने ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका यथावत् वर्णन किया तथा महात्मा ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी बात भी बतलायी। भृगुकुलनन्दन! अब मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि प्रलयके अन्तमें, जब कि सबका उपसंहार हो जाता है और प्राणियोंकी सृष्टि नहीं हुई होती, क्या शेष रहता है? अथवा कुछ रहता ही नहीं?

मार्कण्डेयजी बोले—मुने! जब यह सम्पूर्ण जगत् प्रकृतिमें लीन होता है, उस समयकी स्थितिको विद्वान् पुरुष प्राकृत प्रलय कहते हैं। जब अव्यक्त प्रकृति अपने स्वरूप (गुणोंकी साम्यावस्था)-में स्थित होती है तथा महत्तत्त्वादि सम्पूर्ण विकारोंका उपसंहार हो जाता है, उस समय प्रकृति और पुरुष समानधर्मा (निष्क्रिय, निर्विकार) होकर रहते हैं। उस समय सत्त्व और तम समानरूपसे और परस्पर ओत-प्रोत रहते हैं तथा जैसे तिलमें तेल और दूधमें घी रहता है, उसी प्रकार तमोगुण और सत्त्वगुणमें रजोगुण घुला-मिला होता है। जब परमेश्वरकी योगदृष्टिसे प्रकृतिमें क्षोभ होता है, तब महान् अण्डके

भीतरसे ब्रह्माजी प्रकट होते हैं—यह बात तुम्हें बतलायी जा चुकी है। यद्यपि ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिके स्थान और निर्गुण हैं, तथापि रजोगुणका उपयोग करते हुए सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं और ब्रह्माके कर्तव्यका पालन करते हैं। फिर परमेश्वर सत्त्वगुणके उत्कर्षसे युक्त हो श्रीविष्णुका स्वरूप धारणकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं। फिर तमोगुणकी अधिकतासे युक्त हो रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करते और निश्चिन्त सोते हैं। इस प्रकार सृष्टि, पालन और संहार—इन तीनों कालोंमें तीन गुणोंसे युक्त होकर भी वे परमेश्वर वास्तवमें निर्गुण ही हैं। जैसे खेतिहर पहले बीजको बोता, फिर पौधेकी रक्षा करता और अन्तमें खेती पक जानेपर उसे काटता है तथा इन कार्योंके अनुसार बोनेवाला, रक्षा करनेवाला और काटनेवाला—ये तीन नाम धारण करता है, उसी प्रकार एक ही परमेश्वर भिन्न-भिन्न कार्योंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नाम धारण करते हैं। ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टि करते और रुद्र होकर उसका संहार करते हैं तथा विष्णुरूपमें इन दोनों कार्योंसे उदासीन रहकर सबका पालन करते हैं। इस तरह स्वयम्भू परमात्माकी तीन अवस्थाएँ होती हैं। रजोगुणप्रधान ब्रह्मा, तमोगुणप्रधान रुद्र और सत्त्वप्रधान विश्वात्मक विष्णु हैं। ये ही तीन देवता हैं और ये ही तीन गुण हैं। ये परस्पर एक-दूसरेके आश्रित और एक-दूसरेसे मिले रहते हैं। इनमें एक क्षणका भी वियोग नहीं होता। ये एक-दूसरेका कभी त्याग नहीं करते।

इस प्रकार जगत्‌के आदिकारण देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्माजी रजोगुणका आश्रय लेकर सृष्टिके कार्यमें संलग्न रहते हैं। उनकी आयु अपने ही मानसे सौ वर्षोंकी होती है। उसका परिमाण बतलाता हूँ, सुनो। पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठाओंकी एक कला, तीस कलाओंका एक मुहूर्त तथा तीस मुहूर्तोंका एक दिन-रात होता है। यह मनुष्योंके दिन-रातका मान है। तीस दिन-रात व्यतीत होनेपर दो पक्ष अथवा एक मास पूर्ण होता है। छः मासोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। दो अयनोंका नाम क्रमशः दक्षिणायन और उत्तरायण है। इस प्रकार मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन-रात है। उसमें दिन तो उत्तरायण और रात दक्षिणायन है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंका एक चतुर्युगी होती है, जिसे सत्ययुग, त्रेता आदि कहते हैं। अब इनका विभाग सुनो। चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग होता है, चार सौ दिव्य वर्षोंकी उसकी सन्ध्या और उतने ही वर्षोंका सन्ध्यांश होता है। तीन हजार दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशका समय तीन-तीन सौ दिव्य वर्षोंका है। दो हजार दिव्य वर्षोंका द्वापरयुग होता है और दो-दो सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या तथा सन्ध्यांशके होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! एक हजार दिव्य वर्षोंका कलियुग होता है तथा सौ-सौ दिव्य वर्ष उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांशके बताये गये हैं। इस प्रकार विद्वानोंने बारह हजार दिव्य वर्षोंकी एक चतुर्युगी बतायी है। एक हजार चतुर्युगी बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्मन्! ब्रह्माजीके एक दिनमें बारी-बारीसे चौदह मनु होते हैं। देवता, सप्तर्षि, इन्द्र, मनु और मनुपुत्र—ये सब लोग एक ही साथ उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ इनका संहार भी होता है। इस प्रकार इकहत्तर चतुर्युगोंसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है।* अब मनुष्य-

* इकहत्तर चतुर्युगोंके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं और ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग होते हैं, अतः छः चतुर्युग और बचे। छः चतुर्युगोंका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष होता है, इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

वर्ष-गणनाके अनुसार मन्वन्तरका मान सुनो। पूरे तीस करोड़ सरसठ लाख और बीस हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर माना गया है। देवताओंके वर्षसे एक मन्वन्तरमें आठ लाख, बावन हजार वर्ष होते हैं। इस कालको चौदह गुना करनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है। इसके अन्तमें विद्वानोंने नैमित्तिक प्रलयका होना बतलाया है। उसमें भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक जलकर नष्ट हो जाते हैं। महर्लोक बच जाता है; किन्तु नीचेके लोकोंके जलनेसे वहाँ इतना ताप पहुँचता है कि उस लोकके निवासी जनलोकमें चले जाते हैं। फिर तीनों लोक एक महासमुद्रके गर्भमें छिप जाते हैं। ब्रह्माकी रात आ जाती है, इसलिये वे उसमें शयन करते हैं। ब्रह्माके दिनके बराबर ही उनकी रात भी होती है। उनके बीतनेपर फिर सृष्टिका क्रम चालू होता है। इस प्रकार क्रमशः ब्रह्माका एक वर्ष बीतता है और पूरे सौ वर्षतक उनका जीवन रहता है। उनके सौ वर्षोंको एक 'पर' कहते हैं। उसमेंसे पचास वर्षोंकी 'परार्द्ध' संज्ञा है। इस तरह ब्रह्माका एक परार्द्ध बीत चुका है। उसके अन्तमें पाद्म नामसे विख्यात महाकल्प हुआ था। ब्रह्मन्! अब उनका दूसरा परार्द्ध चल रहा है। इसमें यह वाराह कल्प प्रथम कल्प है।

क्रौष्टुकि बोले—सृष्टिके आदिकर्ता तथा प्रजापतियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजाको उत्पन्न किया, उसका मेरे लिये विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! पाद्म कल्पके अन्तमें जो प्रलय हुआ था, उसके बाद रात्रि बीतनेपर जब सत्त्वगुणके उत्कर्षसे युक्त श्रीविष्णुस्वरूप ब्रह्माजी सोकर उठे, उस समय उन्होंने संसारको शून्य देखा। जगत‌्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले ब्रह्मस्वरूप भगवान् नारायणके विषयमें विद्वान् पुरुष यह श्लोक कहा करते हैं—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः॥

'जल नरसे प्रकट हुआ है, इसलिये वह नार कहलाता है। भगवान् उसमें सोते हैं—भगवान‌्का वह अयन है, इसलिये वे नारायण कहे गये हैं।'

जागनेके बाद उन्होंने पृथ्वीको जलके भीतर डूबी हुई जानकर उसे निकालनेकी इच्छासे वाराहरूप धारण किया। उनका वह स्वरूप वेदमय, यज्ञमय एवं दिव्य था। उन सर्वव्यापी भगवान‌्ने वाराहरूपसे ही जलमें प्रवेश किया और पातालसे पृथ्वीको निकालकर जलके ऊपर रखा। उस समय जनलोकनिवासी सिद्धगण उन जगदीश्वरका चिन्तन एवं स्तवन कर रहे थे। पृथ्वी उस जल-राशिके ऊपर बहुत बड़ी नौकाकी भाँति स्थित हुई। पृथ्वीका आकार बहुत विशाल और विस्तृत है, इसलिये यह जलमें डूब नहीं पाती। तदनन्तर पृथ्वीको बराबर करके भगवान‌्ने उसपर पर्वतोंकी सृष्टि की। पूर्वकल्पकी सृष्टि जब प्रलयाग्निसे दग्ध होने लगी थी, उस समय सब पर्वत पृथ्वीपर खण्ड खण्ड होकर बिखर गये और एकार्णवके जलमें डूब गये। फिर वायुके द्वारा वहाँ बहुत-सा जल एकत्रित हुआ। उस जलसे भीगकर और प्रवाहमें बहकर जो पर्वत जहाँ लग गये, वे वहाँ अचलरूपसे स्थित हो गये।

क्रौष्टुकिने कहा—ब्रह्मन्! आपने थोड़ेमें ही सृष्टिका भलीभाँति वर्णन किया, अब मुझे देवता आदिकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विस्तारके साथ बतलाइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! ब्रह्माजीने जब सृष्टि रचनेका विचार किया, तब पहले उनसे मानस पुत्र ही उत्पन्न हुए। तदनन्तर देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चारोंको उत्पन्न

करनेकी इच्छासे उन्होंने जलमें अपनेको योगयुक्त किया। योगस्थ होनेपर ब्रह्माजीके कटिप्रदेशसे पहले असुरोंकी उत्पत्ति हुई। तब उन्होंने अपने उस तमोगुणी शरीरको त्याग दिया। त्यागनेपर वह शरीर रात्रिके रूपमें परिणत हो गया। फिर दूसरा शरीर धारण करके जब प्रजापतिने सृष्टिका विचार किया, तब उन्हें प्रसन्नता हुई। उस अवस्थामें उनके मुखसे सत्त्वगुणके उत्कर्षसे युक्त देवता उत्पन्न हुए। फिर भगवान् ब्रह्माने उस शरीरको भी त्याग दिया। त्यागनेपर वह सत्त्वप्राय दिनके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर पुनः उन्होंने सत्त्वगुणी शरीरको ही धारण किया। उस समय उन्होंने अपनेको सबका पिता माना, इसलिये उनसे पितरोंकी उत्पत्ति हुई। पितरोंकी सृष्टिके बाद ब्रह्माजीने वह शरीर भी छोड़ दिया। वह छोड़ा हुआ शरीर सन्ध्याकालके रूपमें परिणत हुआ, जो दिन और रातके मध्यमें स्थित होता है। तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्माने रजोगुणकी अभिव्यक्तिसे युक्त दूसरा शरीर धारण किया। उससे मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई। मनुष्योंकी सृष्टिके बाद उस शरीरको भी उन्होंने त्याग दिया। वह शरीर ज्योत्स्नाकालके रूपमें परिणत हुआ, जो रातके अन्त और दिनके प्रारम्भमें हुआ करता है। इस प्रकार ये रात दिन, सन्ध्या और ज्योत्स्नाकाल देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माके शरीर हैं।

ब्रह्माजीने अपने प्रथम मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत् रथन्तर साम तथा अग्निष्टोम यज्ञको उत्पन्न किया। दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदश स्तोम तथा बृहत्सामकी सृष्टि की। पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, पञ्चदश स्तोम, वैरूप साम तथा अतिरात्र यज्ञका निर्माण किया और उत्तर मुखसे इक्कीसवाँ अथर्व, आप्तोर्याम यज्ञ, अनुष्टुप् छन्द तथा वैराज सामको प्रकट किया। उन्होंने कल्पके आदिमें बिजली, वज्र, मेघ, लाल इन्द्रधनुष और पक्षियोंकी सृष्टि की। तथा उनके शरीरसे छोटे-बड़े अनेक प्राणी उत्पन्न हुए। पूर्वकालमें देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चारोंकी सृष्टि करनेके पश्चात् उन्होंने अन्य स्थावर-जङ्गम प्राणियोंको उत्पन्न किया। यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सर्प आदि जङ्गम तथा स्थावर भूतोंकी सृष्टि की। उनमेंसे जिनके पूर्वकल्पमें जैसे कर्म थे, वैसे ही कर्म वे पुनः-पुनः नूतन सृष्टिमें प्राप्त करते हैं। हिंसा-अहिंसा, मृदुता क्रूरता, धर्म-अधर्म तथा सत्य असत्यको वे पूर्वजन्मकी भावनाके अनुसार ही प्राप्त करते हैं और उस भावनाके अनुकूल वस्तु ही उन्हें रुचिकर जान पड़ती है। इन्द्रियोंके विषयों, भूतों तथा शरीरोंमें स्वयं ब्रह्माजीने ही नानात्वका विधान किया है—उन्हें अनेक रूपोंमें उत्पन्न किया है। देवता आदि भूतोंके नाम और रूपका तथा कार्योंके विस्तारका उन्होंने वेदके शब्दोंसे ही प्रतिपादन किया है। ऋषियोंके नाम भी वेदोंसे ही निश्चित किये हैं। ब्रह्माजीकी रात्रिका अन्त होनेपर उन्होंने देवता आदि जिन-जिन भूतोंकी सृष्टि की है, उन सबके नाम-रूप और कर्तव्यका ज्ञान भी वे वेदोंसे ही प्रदान करते हैं। जिस ऋतुमें जिस प्रकारके अनेकों चिह्न देखे जाते हैं, युगादिमें सृष्टि होनेपर वे सभी वैसे ही दृष्टिगोचर होते हैं। रात्रिके अन्तमें जगे हुए अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी सृष्टि प्रत्येक कल्पमें ऐसी ही होती है।

प्रजाकी सृष्टि, निवास-स्थान, जीविकाके उपाय और वर्णाश्रम-धर्मके पालनका माहात्म्य

क्रौष्टुकिने कहा—ब्रह्मन्! आपने अर्वाक्स्रोत नामक सर्गका, जो मानवसर्ग ही है, वर्णन किया; अब विस्तारपूर्वक यह बतलानेकी कृपा करें कि ब्रह्माजीने सृष्टिका विस्तार कैसे किया। महामते! उन्होंने वर्णोंकी सृष्टि कैसे की? उनके गुण क्या हैं तथा ब्राह्मण आदि वर्णोंका कर्म कौन-सा माना गया है?

मार्कण्डेयजी बोले—मुने! सत्यका चिन्तन करनेवाले ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जब सृष्टि-रचना आरम्भ की, तब उनके मुखसे एक हजार स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब सात्त्विक तथा सहृदय थे। तदनन्तर ब्रह्माजीने अपने वक्षःस्थलसे एक सहस्र अन्य स्त्री पुरुषोंको उत्पन्न किया। वे सभी रजोगुणकी अधिकतासे युक्त, शूरवीर और क्रोधी थे। उसके बाद उन्होंने अपनी दोनों जाँघोंसे दूसरे एक सहस्र स्त्री पुरुषोंको प्रकट किया। वे सब तमोगुणी, श्रीहीन तथा मन्दबुद्धि थे। वे सब जोड़ेके रूपमें उत्पन्न हुए जीव अत्यन्त प्रसन्न होकर एक दूसरेके साथ मैथुनकी क्रियामें प्रवृत्त हो गये। तभीसे इस कल्पमें मैथुनका प्रचार हुआ। फिर ब्रह्माजीने पिशाच, सर्प, राक्षस, डाह करनेवाले मनुष्य, पशु-पक्षी, मगर, मछली, बिच्छू तथा अण्डज आदिको उत्पन्न किया।

पहलेकी प्रजा सात्त्विक और धर्मपरायण थी, अतः वहाँ सब ओर सुख-शान्ति थी। इसके बाद कालान्तरमें उनके भीतर लोभका उदय हुआ। फिर तो शीत, उष्ण, क्षुधा आदि द्वन्द्व प्रकट हुए। प्रजाओंने उस द्वन्द्वको दूर करनेके लिये पहले पुरोंका निर्माण किया। कुछ लोग मरुभूमि अथवा धन्वदेशको शत्रुओंके लिये दुर्गम समझकर उसमें रहने लगे। कुछ लोगोंने पर्वतों और गुफाओंका आश्रय लिया। कुछ मनुष्योंने वृक्षों, पर्वतों और जलके दुर्गोंको अपना निवास-स्थान बनाया। कुछ लोग कृत्रिम दुर्ग बनाकर उसमें रहने लगे। उन्होंने वस्तुओंकी लंबाई चौड़ाई मापनेके लिये अँगुलियोंसे नाप-नापकर पहले कुछ माप तैयार किये। उनका पैमाना इस प्रकार बना। सबसे सूक्ष्म वस्तु है परमाणु। उससे बड़ा त्रसरेणु होता है, जो पृथ्वीकी धूलिका एक कण है। उससे उत्तरोत्तर बड़े प्रमाण हैं—बालाग्र, लिक्षा, यूका और यवोदर। ये एक दूसरेकी अपेक्षा आठ आठ गुने बड़े हैं। आठ यवका एक अङ्गुल, छः अङ्गुलका एक पद, दो पदका एक बित्ता और दो बित्तेका एक हाथ होता है। चार हाथका एक धनुर्दण्ड होता है। इसीको नाड़िकायुग भी कहते हैं। दो हजार धनुषको एक गव्यूति और चार गव्यूतिका एक योजन होता है।

तदनन्तर प्रजावर्गने अपने रहनेके लिये पुर, खेट, द्रोणीमुख, शाखा-नगर, खर्वट, द्रमी आदिका निर्माण किया। उन सबमें ग्राम, गोशाला आदिकी व्यवस्था करके वहाँ पृथक्-पृथक् निवास-स्थान बनाये। जिसके चारों ओर ऊँची चहारदीवारी हो, जो खाइयोंसे घिरा हो, जिसकी लंबाई दो कोस और चौड़ाई उसका आठवाँ भाग हो, वह पुर कहलाता है। उसके पूर्व और उत्तरमें जलप्रवाहका होना उत्तम माना गया है। वहाँसे बाहर निकलनेके लिये शुद्ध बाँसका पुल बना होना चाहिये। जिसकी लंबाई चौड़ाई पुरकी अपेक्षा आधी हो, वह खेट कहलाता है और जो पुरके चौथाई हिस्सेके बराबर हो, उसे खर्वट कहते हैं। जिसकी लंबाई-चौड़ाई पुरके आठवें हिस्सेके बराबर हो, वह द्रोणीमुख कहलाता है। जहाँ चहारदीवारी और खाई नहीं है, उस पुरको खर्वट कहते हैं। जहाँ मन्त्री, सामन्त तथा भोगके बहुत से सामान हों, वह शाखानगर कहलाता है। जहाँ अधिकांश शूद्र

हों, अपनी समृद्धिसे युक्त किसान रहते हों, जो खेतों और उपभोगयोग्य भूमि (बाग-बगीचों)के बीचमें बसा हो, उसका नाम गाँव है। जहाँ किसी कार्यके लिये मनुष्य अन्य नगर आदिसे आकर बसते हों, उसको बस्ती कहते हैं। जहाँ अधिकांश दुष्टोंका निवास हो, जहाँके रहनेवाले अपने पास खेत न होनेपर भी दूसरेकी भूमिपर अधिकार जमाते और भोगते हैं, वह गाँव द्रमीके नामसे पुकारा जाता है। जहाँ प्रायः वे ही लोग निवास करते हैं, जो राजाके प्रिय हों। जहाँ ग्वाले अपने बर्तन-भाँड़े गाड़ियोंपर लादकर रखते हों, बिना बाजारके ही गोरस मिलता हो, गायोंका समूह रहता हो, जहाँ इच्छानुसार भूमि रहनेके लिये सुलभ हो, उस स्थानका नाम घोष है।

इस प्रकार नगर आदिका निर्माण करके प्रजाने अपने रहनेके लिये घर बनाये। वे घर इस उद्देश्यसे बनाये गये थे कि वहाँ शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रक्षा हो सके। जैसे पहले उनके घरके आकारके वृक्ष होते थे और वहाँ उन्हें जैसी सुविधाएँ प्राप्त होती थीं, उन सबका स्मरण करके उन्होंने घर बनाये। जैसे वृक्षकी शाखाएँ एकके बाद दूसरी तथा छोटी-बड़ी, ऊँची-नीची होती हैं, उसी प्रकार उन्होंने अनेक प्रकारकी शालाएँ बनायीं। द्विजश्रेष्ठ! पूर्वकालमें जो कल्पवृक्षकी शाखाएँ थीं, वे ही उस समय प्रजावर्गके घरोंमें शाला बनानेके काममें आयीं। इस प्रकार गृह निर्माणके द्वारा शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंको दूर करके सब लोग जीविकाका उपाय सोचने लगे; क्योंकि उस समय समस्त कल्पवृक्ष मधुसहित नष्ट हो चुके थे। जब प्रजा भूख और प्याससे व्याकुल एवं शोकसे आतुर हो उठी, तब त्रेताके आरम्भमें उनके अभीष्टकी सिद्धि हुई। उनकी इच्छाके अनुसार वर्षा हुई और वह वर्षाका जल नीची भूमिमें बहकर एकत्र होने लगा। उससे स्रोत, पोखरे और नदियाँ बन गयीं। उस जलका पृथ्वीके साथ संयोग होनेसे बिना जोते-बोये ही ग्राम्य और आरण्य—सब मिलकर चौदह प्रकारके अन्न पैदा हुए। वृक्षों और लताओंमें ऋतुके अनुसार फूल और फल लगने लगे। त्रेतायुगमें पहले-पहल अन्नका प्रादुर्भाव हुआ। उसीसे उस युगमें सब प्रजाका जीवन-निर्वाह होने लगा। फिर अकस्मात् सब लोगोंके मनमें राग और लोभका प्राकट्य हुआ। इससे वे एक-दूसरेके प्रति ईर्ष्या रखने लगे और अपनी शक्तिके अनुसार नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष और झाड़ियोंपर अधिकार जमाने लगे। उनके इस दोषसे सबके देखते-देखते सब अनाज नष्ट हो गये। पृथ्वीने एक साथ ही सब ओषधियोंको अपना ग्रास बना लिया। अनाजके नष्ट होनेसे प्रजा भूखसे व्याकुल होकर फिर इधर-उधर भटकने लगी और अन्तमें ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। ब्रह्माजीने भी प्रजाका सारा समाचार ठीक-ठीक जानकर पृथ्वीको गायके रूपमें बाँधा और मेरु पर्वतको बछड़ा बनाकर उसका दूध दुहा। ब्रह्माजीने दूधके रूपमें सब प्रकारके अन्न दुह लिये थे, वे ही बीजरूपमें प्रकट हुए और उनसे ग्राम्य तथा आरण्य—सब प्रकारके अन्न पैदा हुए, जो फलके पक जानेपर काट लिये जाते हैं। धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, ज्वार, कोदो, सावाँ, उड़द, मूँग, मसूर, मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सतरह ग्राम्य ओषधियोंकी जातियाँ हैं। यज्ञके काममें आनेवाली केवल चौदह ओषधियाँ हैं, जिनमें सात ग्राम्य और सात आरण्य हैं। उनके नाम ये हैं—धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, कुलथी, सावाँ, तीना, वनतिल, गवेधुक, कुरुविन्द, मर्कट और वेणुयव।

जब बोनेपर भी वे ओषधियाँ फिर न जम सकीं, तब भगवान् ब्रह्माजीने अन्नकी वृद्धिके लिये हाथसे काम करनेकी प्रणालीको ही जीविकाका उपाय बनाया। तबसे जोतने-बोनेपर अन्नकी उपज होने लगी। इस प्रकार जीविकाका प्रबन्ध हो

जानेपर ब्रह्माजीने न्याय और गुणके अनुसार वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादा स्थापित की। अपने कर्मोंमें लगे हुए ब्राह्मणोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। युद्धमें पीठ न दिखानेवाले क्षत्रियोंको इन्द्रका पद प्राप्त होता है। स्वधर्मपरायण वैश्योंको मरुद्गणोंका लोक मिलता है। सेवामें संलग्न रहनेवाले शूद्र गन्धर्वलोकमें जाते हैं। जो लोग गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक वेदाध्ययन करते हैं, उन्हें अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता महर्षियोंको प्राप्त होनेवाला स्थान मिलता है। वानप्रस्थधर्मका पालन करनेवाले लोग सप्तर्षियोंके लोकमें जाते हैं। गृहस्थधर्मका विधिवत् पालन करनेवालोंको प्राजापत्य लोककी प्राप्ति होती है। संन्यासियोंको ब्रह्मपद और योगियोंको अमृतत्वकी उपलब्धि होती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न वर्णधर्म और आश्रम धर्मोंका पालन करनेवाले लोगोंके लिये पृथक्-पृथक् लोकोंकी कल्पना की गयी है।

स्वायम्भुव मनुकी वंश-परम्परा तथा अलक्ष्मी-पुत्र दुःसहके स्थान आदिका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर ब्रह्माजी जब ध्यान कर रहे थे, उस समय उनके मनसे मानसी प्रजा उत्पन्न हुई; साथ ही उनके शरीरसे कारण और कार्यका भी प्रादुर्भाव हुआ। देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी जीव त्रिगुणात्मक माने गये हैं। इसी प्रकार समस्त चराचर भूतोंकी सृष्टि हुई। जब प्रयत्न करनेपर भी ब्रह्माजीकी प्रजा बढ़ न सकी, तब उन्होंने अपने ही सदृश सामर्थ्यसे युक्त नौ मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम ये हैं—भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि तथा वसिष्ठ। पुराणोंमें ये नौ ब्रह्मा माने गये हैं।* इसके बाद ब्रह्माजीने अपने क्रोधसे रुद्रको प्रकट किया; फिर संकल्प और धर्मको उत्पन्न किया, जो पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीने जिन्हें सबसे पहले उत्पन्न किया, वे सनन्दन आदि चार भाई लोकमें आसक्त नहीं हुए। वे सब-के-सब निरपेक्ष, एकाग्रचित्त, भविष्यको जाननेवाले, वीतराग और मात्सर्यरहित थे।

तत्पश्चात् प्रजापतिने अनेक प्रकारके स्त्री-पुरुष उत्पन्न किये, जिनमें कोमल, क्रूर, शान्त, श्यामवर्ण तथा गौरवर्ण—सभी तरहके लोग थे। इसके बाद उन्होंने अपने ही समान प्रभावशाली एक पुत्ररत्न उत्पन्न किया, जिनका नाम स्वायम्भुव मनु हुआ। उन्हें ब्रह्माजीने प्रजाजनोंका रक्षक बनाया। फिर स्वायम्भुव मनुने शतरूपाको अपनी पत्नी बनाया, जो तपस्याके प्रभावसे सर्वथा निष्पाप थी। शतरूपाने स्वायम्भुव मनुके सम्पर्कसे दो पुत्रोंको जन्म दिया। वे प्रियव्रत और उत्तानपादके नामसे विख्यात हुए। उन दोनोंकी अपने कर्मोंसे प्रसिद्धि हुई। शतरूपाके गर्भसे दो कन्याओंका भी जन्म हुआ। उनमेंसे एकका नाम ऋद्धि (आकूति) और दूसरीका प्रसूति था। स्वायम्भुव मनुने प्रसूतिका विवाह दक्षसे और ऋद्धि (आकूति)-का रुचि प्रजापतिसे किया। प्रजापति रुचि और आकूतिसे जुड़वाँ सन्तान उत्पन्न हुई, जिनमें एक पुत्र था और दूसरी कन्या। पुत्रका नाम यज्ञ और कन्याका दक्षिणा था। यज्ञके 'याम' नामसे विख्यात बारह पुत्र हुए। वे ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें बारह देवता कहलाये। ये बड़े तेजस्वी थे।

दक्षने प्रसूतिके गर्भसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न

---

* भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम्।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥ (५०।५-६)

थीं; उनके नाम ये हैं, सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि तथा तेरहवीं कीर्ति। इन सबको धर्मने अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। इनसे शेष जो ग्यारह छोटी कन्याएँ थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, ऊर्जा, अनसूया, स्वाहा और स्वधा। इन सबको क्रमशः भृगु, महादेवजी, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, अग्नि और पितरोंने ग्रहण किया। श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतिने नियमको, तुष्टिने संतोष और पुष्टिने लोभको उत्पन्न किया। मेधासे श्रुतका, क्रियासे दण्ड, नय और विनयका, बुद्धिसे बोधका, लज्जासे विनयका, वपुसे व्यवसायका, शान्तिसे क्षेमका, सिद्धिसे सुखका और कीर्तिसे यशका जन्म हुआ। ये सभी धर्मके पुत्र हैं।

कामसे उसकी पत्नी रतिने हर्ष नामक पुत्र उत्पन्न किया, जो धर्मका पौत्र कहलाया। अधर्मकी स्त्री हिंसा थी। उसके गर्भसे अनृत नामक पुत्र और निर्ऋति नामवाली कन्या उत्पन्न हुई। फिर इन दोनोंसे दो पुत्रों तथा दो कन्याओंका जन्म हुआ। पुत्रोंके नाम थे नरक और भय तथा कन्याओंके नाम थे माया और वेदना। ये उनकी पत्नियाँ हुईं। इनमें भयकी स्त्री मायाने सब प्राणियोंका संहार करनेवाले 'मृत्यु' नामक पुत्रको उत्पन्न किया और वेदनाने नरकके संसर्गसे दुःख नामक पुत्रको जन्म दिया। मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए। ये सब अधर्मरूप हैं और दुःखके हेतु बतलाये जाते हैं। इनके स्त्री और पुत्र नहीं हैं। ये सभी ऊर्ध्वरेता हैं।

अलक्ष्मीके चौदह पुत्र हैं, जिनमें तेरह तो क्रमशः दस इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहङ्कारमें पृथक्-पृथक् रहते हैं। चौदहवेंका नाम दुःसह है, वह मनुष्योंके गृहोंमें निवास करता है। वह भूखसे दुर्बल, नीचा मुख किये, नंग-धड़ंग और चिथड़ा लपेटे रहता है; उसकी आवाज कौएके समान है। जब ब्रह्माजीने उसे उत्पन्न किया, तब वह सबको खा जानेके लिये उद्यत हुआ। वह तमोगुणका भंडार था और बड़ी-बड़ी दाढ़ोंके कारण अत्यन्त विकराल जान पड़ता था। उसका मुँह फैला हुआ था, इससे वह और भी भयंकर जान पड़ता था। उसको आहारके लिये उत्सुक देख लोकपितामह ब्रह्माजीने कहा—'दुःसह! तुझे इस संसारका भक्षण नहीं करना चाहिये। तू अपना क्रोध शान्त कर। रजोगुणकी कला त्याग और इस तामसी वृत्तिको भी छोड़ दे।'

दुःसहने कहा—जगदीश्वर! मैं भूखसे दुर्बल हो रहा हूँ और प्यास भी मुझे जोरसे सता रही है। नाथ! बताइये—मुझे कैसे तृप्ति हो, मैं किस तरह बलवान् बनूँ? तथा मेरा निवास-स्थान कौन है, जहाँ मैं सुखसे रह सकूँ?

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! मनुष्योंका घर तुम्हारा निवास-स्थान है, अधर्मपरायण पुरुष तुम्हारे बल हैं तथा नित्यकर्मके त्यागसे ही तुम्हारी पुष्टि होगी। मर्म-व्रण और फोड़े तुम्हारे वस्त्र होंगे। अब तुम्हारे लिये आहारकी व्यवस्था करता हूँ। जिसमें किसी प्रकारकी क्षति पहुँची हो, कीड़े पड़ गये हों, कुत्तोंने दृष्टि डाली हो, जो फूटे बर्तनमें रखा हो, जिसे मुँहसे फूँक-फूँककर ठंडा किया गया हो, जो जूँठा और अपक्क हो, जिसमेंसे पानी चूटता हो, जिसको किसीने चख लिया हो, जो शुद्धतापूर्वक तैयार न किया गया हो, जिसे फटे आसनोंपर बैठकर भोजन किया गया हो, जो अपने समीपवर्तीको नहीं दिया गया हो, विपरीत दिशा अथवा कोणकी ओर मुँह करके खाया गया हो, दोनों सन्ध्याओंके समय और नाच, बाजा एवं स्वर-तालके साथ जिसको खाया गया हो, जिसे रजस्वला स्त्रीके द्वारा लाया, खाया अथवा देखा गया हो तथा जो और किसी दोषसे युक्त हो—ऐसा कोई भी खाने-पीनेका सामान तुम्हारी पुष्टिके लिये मैं तुम्हें देता हूँ।

यक्ष्मन्! बिना श्रद्धाका हवन, बिना नहाये, बिना जलके, अवहेलनापूर्वक दिया हुआ दान, जो व्यर्थ पड़ा हो अथवा फेंक दी जानेवाली हो, ऐसी वस्तुका दान और अत्यन्त अभिमानसे, द्वेषसे, क्रोधसे तथा कष्ट मानकर किया हुआ दान—इन सबका फल तुम्हें ही मिलेगा! कन्याका मूल्य चुकानेके लिये जो धनोपार्जनकी क्रिया की जाती है तथा जो असत् शास्त्रोंद्वारा सम्पादित होनेवाली क्रियाएँ हैं, उन सबका फल तुम्हारी पुष्टिके लिये तुम्हें देता हूँ। जो कार्य केवल धन कमानेके लिये किया जाता है, धर्मकी दृष्टिसे नहीं तथा जो सत्यकी अवहेलनापूर्वक अध्ययन किया जाता है, वह सब तुम्हारी इच्छा-पूर्तिके लिये तुम्हें दे रहा हूँ। जो मनुष्य गर्भिणी स्त्रीके साथ समागम करते, सन्ध्या और नित्यकर्मका उल्लङ्घन करते तथा असत्-शास्त्रोंके अनुसार कार्य या उनकी चर्चा करके दूषित होते हैं, ऐसे मनुष्योंको दबानेकी तुममें पूरी शक्ति होगी।

दु:सह! जहाँ एक ही पङ्क्तिमें दो तरहका भोजन परोसा जाता हो, अतिथि-सत्कार और बलिवैश्वदेवका उद्देश्य न रखकर केवल अपने लिये भोजन बनाया जाता हो, भोजनमें भेद रखा जाता हो अर्थात् किसीके लिये अच्छा और किसीके लिये खराब बनता हो और जहाँ घरमें रोज-रोज कलह होता हो, वहाँ तुम्हारा निवास है। जहाँ गाय-घोड़े आदि वाहन बिना खिलाये-पिलाये बाँध दिये जाते हों और संध्याके पहले ही जिस घरको धो-बुहारकर साफ नहीं किया जाता हो, वहाँ रहनेवाले मनुष्योंको तुमसे भय प्राप्त होगा। जो मनुष्य बिना व्रतके ही उपवास करते, जूए और स्त्रियोंमें आसक्त रहते, दु:सह वचन बोलते और बिडालव्रती होते—बिल्लियोंकी तरह ऊपरसे साधु बनकर छिपे-छिपे अपना उल्लू सीधा करते हैं, वे सब तुम्हारे उपकारी हैं। जो ब्रह्मचर्यपालनके बिना ही अध्ययन और विद्वान् हुए बिना ही यज्ञ करते हैं, तपोवनमें रहकर भी ग्राम्य विषय भोगोंका सेवन करते और अपने मनको जीतनेका यत्न नहीं करते तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र अपने-अपने कर्मसे भ्रष्ट होते हैं, ऐसे लोग परलोककी इच्छासे जो भी चेष्टा करते हैं, उसका सारा फल तुम्हींको मिलेगा।

यक्ष्मन्! तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी उपाय बताता हूँ, सुनो। जो लोग बलिवैश्वदेवके अन्तमें तुम्हारे नामके उच्चारणपूर्वक तुम्हें बलि अर्पण करते हैं और **'यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः'** कहकर उसे त्यागते हैं, जो शुद्धतापूर्वक बना हुआ अन्न विधिपूर्वक भोजन करते, बाहर-भीतरसे पवित्र रहते, लोलुपता नहीं रखते और स्त्रियोंके वशीभूत नहीं होते, ऐसे मनुष्योंके घरोंको तुम त्याग देना। जहाँ हविष्यसे देवताओंकी और श्राद्धान्नसे पितरोंकी पूजा होती हो तथा कुलकी स्त्रियों, बहनों और अतिथियोंका स्वागत-सत्कार होता हो, उस घरको भी छोड़ देना। जहाँ बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष तथा स्वजनवर्गमें प्रेम हो, जहाँकी स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक रहती हों, बाहर जानेके लिये उत्सुक नहीं होतीं तथा लज्जाकी रक्षा करती हैं, उस घरपर भी दृष्टि न डालना। जहाँ अवस्था और सम्बन्धके अनुसार शयन, आसन और भोजनकी व्यवस्था हो, जहाँके निवासी दयालु, सत्कर्मपरायण और साधारण सामग्रीसे युक्त हों तथा जिस घरके लोग गुरु, वृद्ध एवं ब्राह्मणोंके खड़े रहनेपर स्वयं भी आसनपर नहीं बैठते, वह घर भी तुम्हें छोड़ देना चाहिये। देवता, पितर, मनुष्य और अतिथियोंके भोजनसे बचा हुआ अन्न ही जिसका भोजन है, उस पुरुषके घरमें भी तुम पैर न रखना।

जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसक, दूसरोंको पीड़ा न देनेवाले तथा दोषदृष्टिसे रहित हों, ऐसे पुरुषोंको तुम छोड़ देना। जो अपने पतिकी सेवामें संलग्न रहती, दुष्टा स्त्रियोंका साथ नहीं करती तथा कुटुम्बके लोगों एवं पतिके भोजन करनेसे बचे हुए अन्नको ही खाकर अपने शरीरका पोषण करती है, ऐसी स्त्रीको भी तुम हाथ न लगाना।

जो सदा यज्ञ, अध्ययन, वेदाभ्यास और दानमें मन लगाता है, यज्ञ कराने, शास्त्र पढ़ाने तथा उत्तम दान ग्रहण करनेसे ही जिसकी जीविका चलती हो, ऐसे ब्राह्मणको भी तुम त्याग देना। दुःसह! जो सदा दान, अध्ययन और यज्ञके लिये उद्यत रहता और अपने लिये उत्तम एवं विशुद्ध शस्त्रग्रहणकी वृत्तिसे जीविका चलाता हो, उस क्षत्रियके पास भी तुम न जाना। जो दान, अध्ययन और यज्ञ—इन तीन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त हो और पशु पालन, व्यापार एवं कृषिसे जीविका चलाता हो, ऐसे पापरहित वैश्यको भी त्याग देना। यक्ष्मन्! जो दान, यज्ञ और द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहता और ब्राह्मण आदिकी सेवासे ही जीवन निर्वाह करता हो—ऐसे शूद्रका भी त्याग कर देना।

जहाँ गृहस्थ पुरुष श्रुति-स्मृतिके अनुकूल उपायसे जीविका चलाता हो, उसकी पत्नी उसीकी अनुगामिनी हो, पुत्र गुरु, देवता और पिताका पूजन करता हो तथा पत्नी भी पतिकी पूजामें संलग्न रहती हो, वहाँ अलक्ष्मीका भय कैसे हो सकता है। यक्ष्मन्! जो प्रतिदिन संध्याके समय पानीसे धोया जाता और स्थान-स्थानपर फूलोंसे पूजित होता है, उस घरकी ओर तुम आँख उठाकर देख भी नहीं सकते। जिस घरमें बिछी हुई शय्याको सूर्य न देखते हों अर्थात् जहाँ लोग सूर्योदयसे पहले ही सोकर उठ जाते हों, जहाँ प्रतिदिन अग्नि और जल प्रस्तुत रहता हो, सूर्योदय होनेतक दीप जलता एवं सूर्यका पूर्ण प्रकाश पहुँचता हो,वह घर लक्ष्मीका निवास-स्थान है। जहाँ साँड़, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, ब्राह्मण तथा ताँबेके पात्र हों, उस घरमें तुम्हारे लिये स्थान नहीं है।

दुःसह! जहाँ पके या कच्चे अन्नोंका अनादर और शास्त्रोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन होता हो, उस घरमें तुम इच्छानुसार विचरण करो। जिस घरमें मनुष्यकी हड्डी हो और एक दिन तथा एक रात मुर्दा पड़ा रहा हो, उसमें तुम्हारा तथा अन्य राक्षसोंका भी निवास रहे। जो अपने भाई-बन्धुको तथा सपिण्ड एवं समानोदक मनुष्योंको अन्न और जल दिये बिना ही भोजन करते हैं, उस समय उन लोगोंपर तुम आक्रमण करो। जहाँ पुरवासी पहलेसे ही बड़े-बड़े उत्सव मनानेमें प्रसिद्ध हो चुके हों और पहलेकी ही भाँति अब अपने घरपर उत्सव मनाते हों, ऐसे घरोंमें न जाना। जो सूपकी हवासे, भीगे कपड़ेके जलकी बूँदोंसे तथा नखके अग्रभागके जलसे स्नान करते हों, उन कुलक्षणी पुरुषोंके पास अवश्य जाओ। जो पुरुष देशाचार, प्रतिज्ञा, कुलधर्म, जप, होम, मङ्गल, देवयज्ञ, उत्तम शौच तथा लोक-प्रचलित धर्मोंका भलीभाँति पालन करता हो, उसके संसर्गमें तुम्हें नहीं जाना चाहिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—दुःसहसे ऐसी बात कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर उसने भी ब्रह्माजीकी आज्ञाका उसी प्रकार पालन किया।

दुःसहकी सन्तानोंद्वारा होनेवाले विघ्न और उनकी शान्तिके उपाय

मार्कण्डेयजी कहते हैं—दुःसहकी पत्नी निर्माष्टि हुई। वह कलिकी कन्या थी। कलिकी पत्नीने रजस्वला होनेपर चाण्डालका दर्शन किया था, उसीसे इस कन्याका जन्म हुआ था। दुःसह और निर्माष्टिकी सोलह सन्तानें हुईं जो समस्त संसारमें व्याप्त हैं। इनमें आठ पुत्र थे और आठ कन्याएँ। ये सब-के-सब अत्यन्त भयंकर थे। दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अङ्गध्रुक्, शकुनि, गण्डप्रान्तरति, गर्भहा तथा सस्यहा—ये आठ पुत्र थे। नियोजिका, विरोधिनी, स्वयंहारिका, भ्रामणी, ऋतुहारिका, स्मृतिहरा, बीजहरा तथा विद्वेषिणी—ये आठ कन्याएँ थीं, जो सम्पूर्ण जगत्को भय देनेवाली हुईं। अब मैं इनके कर्म तथा इनसे होनेवाले दोषोंकी शान्तिके उपाय बतलाऊँगा। पहले आठ

पुत्रोंके विषयमें सुनो। दन्ताकृष्टि छोटे बच्चोंके दाँतोंमें स्थित होकर उनमें रगड़ पैदा करता है। इस प्रकार वह दुःसह नामक अलक्ष्मी-पुत्रको वहाँ बुलाना चाहता है। उसकी शान्तिके लिये सोये हुए बालककी शय्या और दाँतोंपर सफेद सरसों छींटना चाहिये तथा सुवर्चला (ब्राह्मी) नामक ओषधिसे स्नान कराने और उत्तम शास्त्रोंका पाठ करानेसे भी यह दोष दूर होता है। दुःसहका दूसरा पुत्र तथोक्ति जब आता है, तब वह बारंबार 'यही हो, यही हो' ऐसा कहता हुआ मनुष्योंको शुभाशुभमें लगा देता है। यदि अकस्मात् शुभाशुभकी प्रवृत्ति हो तो उसे तथोक्तिकी ही प्रेरणा समझनी चाहिये। यदि शुभका कथन या श्रवण हो तो विद्वान् पुरुष उसे मङ्गलमय बतावे और यदि अशुभका श्रवण या कथन हो तो उसकी शान्तिके लिये भगवान् विष्णु, चराचरगुरु ब्रह्मा तथा अपने-अपने कुलदेवताके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। जो अन्यके गर्भमें दूसरे गर्भोंको रखने और बदलनेमें प्रसन्नताका अनुभव करता है तथा कोई बात कहनेके लिये उत्सुक मनुष्यके मुखसे किसी और ही बातको कहला देता है, वह दुःसहका तीसरा पुत्र परिवर्त है। उसकी शान्तिके लिये भी तत्त्ववेत्ता पुरुष पीली सरसों छिड़के और रक्षोघ्न-मन्त्रोंका पाठ करे।

अङ्गध्रुक् नामक चौथा कुमार वायुके समान मनुष्योंके अङ्गोंमें प्रवेश करके स्फुरण (फड़कने) आदिके द्वारा शुभाशुभ फलकी सूचना देता है। उसकी शान्तिके लिये कुशोंसे शरीरको झाड़े। दुःसहका पाँचवाँ कुमार शकुनि कौवे आदि पक्षियोंके अथवा कुत्ते-सियार आदि पशुओंके शरीरमें स्थित होकर अपनी बोलीसे शुभाशुभ फलको सूचित करता है। उसमें भी अशुभसूचक शब्द होनेपर कार्यारम्भका परित्याग करना चाहिये और शुभसूचक शब्द होनेपर अत्यन्त शीघ्रताके साथ कार्यारम्भ कर देना चाहिये। ऐसा प्रजापतिका कथन है। द्विजश्रेष्ठ! गण्डप्रान्तरति नामक छठा कुमार गण्डप्रान्तोंमें आधे मुहूर्ततक स्थित हो सब प्रकारके कार्यारम्भका नाश और माङ्गलिक कर्म तथा अनिन्दनीयता (प्रतिष्ठा)-का अपहरण करता है। ब्राह्मणोंके आशीर्वाद, देवताओंकी स्तुति, मूलशान्ति, गोमूत्र और सरसों मिले हुए जलसे स्नान, जन्मकालिक नक्षत्र और ग्रहोंके पूजन, धर्ममय उपनिषदोंके पाठ, शास्त्रोंके दर्शन तथा गण्डान्तमें पैदा हुए बालककी अवज्ञा (कुछ कालतक उसका मुँह न देखने)-से उसके दोषकी शान्ति होती है। सातवाँ कुमार 'गर्भहा' बड़ा भयंकर है, जो स्त्रियोंके गर्भमें प्रवेश करके गर्भस्थ पिण्डको अपना ग्रास बना लेता है। प्रतिदिन पवित्रतापूर्वक रहने, प्रसिद्ध मन्त्र (कवच आदि) लिखकर बाँधने, उत्तम फूलों आदिकी माला धारण करने, पवित्र गृहमें रहने तथा अधिक परिश्रम न करनेसे गर्भवती स्त्रीकी उसके भयसे रक्षा होती है। अतः इसके लिये सदा चेष्टा करनी चाहिये। इसी प्रकार आठवाँ कुमार सस्यहा है, वह खेतीकी उपजको नष्ट करता है। उसकी भी शान्ति करनी चाहिये; इसके लिये उपाय है—खेतमें पुराना जूता रखना, अपसव्य होकर वहाँ जाना, चाण्डालका उसमें प्रवेश कराना, खेतके बाहर पूजा चढ़ाना और चन्द्रमा एवं जल (वरुण)-के नामों या मन्त्रोंका कीर्तन करना।

दुःसहकी पहली कन्या नियोजिका है। वह मनुष्योंको परायी स्त्री और पराये धनके अपहरण आदिमें लगा देती है। पवित्र ग्रन्थों, मन्त्रों अथवा स्तुतियोंके पाठसे तथा क्रोध-लोभ आदि दुर्गुणोंका त्याग करनेसे उसकी शान्ति होती है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि 'नियोजिका मुझे इन दुष्कर्मोंमें लगा रही है' यों विचारकर उसका विरोध करते हुए उन कर्मोंका त्याग करे। जब कोई अपनेको गाली दे या मार बैठे तो भी यही सोचकर कि नियोजिकाने ही इसे इस बुराईमें लगाया है, क्रोध आदिके वशीभूत न हो। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष सदा इस बातका स्मरण करता रहे कि नियोजिका

ही मुझको और मेरे चित्तको परस्त्री-संसर्गमें लगाती है। दूसरी कन्याका नाम विरोधिनी है। वह परस्पर प्रेम रखनेवाले स्त्री-पुरुषोंमें, भाई-बन्धुओंमें, मित्रोंमें, पिता-मातामें, पिता-पुत्रमें तथा सजातीय पुरुषोंमें विरोध डाला करती है। अतः बलिकर्म (पूजोपहारसमर्पण) करने, कठोर बातोंको सहने तथा शास्त्रीय आचार-विचारका पालन करनेके द्वारा उसके भयसे अपनी रक्षा करे। तीसरी कन्याका नाम स्वयंहारिका है। वह खलिहानसे अनाज, घर और गोशालेसे दूध-घी तथा बढ़नेवाले द्रव्यसे उसकी वृद्धि नष्ट कर देती है और सदा अन्तर्धान रहती है। इतना ही नहीं, रसोईघरसे अधपका अन्न तथा अन्नभंडारसे अनाज चुरा लेती है और परोसी हुई रसोईको भोजन करनेवाले मनुष्यके साथ स्वयं भी भोजन करती है। मनुष्योंके जूठे अन्नतक चुरा लेती है। जोते हुए खेत, घर और शालासे ऋद्धि-सिद्धिको हड़प लेती है। गायों और स्त्रियोंके थनोंसे दूध गायब कर देती है। दहीसे घी, तिलसे तेल, कुसुम्भ आदिका रंग तथा रूईसे सूत हर लेती है। इस प्रकार स्वयंहारिका निरन्तर अपहरणमें ही लगी रहती है। उससे रक्षा होनेके लिये अपने घरमें मोरके जोड़े रखे। स्त्रीकी कृत्रिम मूर्ति बनाकर स्थापित करे, घरकी दीवारपर रक्षाके मन्त्र और वाक्य लिखे, घरके भीतर जूठन न रहने दे, हवनकी अग्निसे तथा देवताको धूप देनेसे जो भस्म हो, उसे लेकर दूध आदिके बर्तनोंमें लगा दे [गाय और स्त्रीके स्तनोंमें तथा अन्नभंडार आदिमें भी उस भस्मका स्पर्श करा दे।] इससे रक्षा होती है। जो एक स्थानपर निवास करनेवाले पुरुषके मनमें उद्वेग पैदा करती है, वह भ्रामणी नामकी कन्या है। उसकी शान्तिके लिये आसन, शय्या तथा उस भूमिपर, जहाँ मनुष्य रहता हो, पीली सरसों छींट दे। साथ ही एकाग्रचित्त होकर पृथ्वी-सूक्तका जप करे।

दुःसहकी पाँचवीं कन्या स्त्रियोंके मासिक धर्म नष्ट करती है। इसलिये उसे ऋतुहारिका जानना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये स्त्रीको तीर्थमें, देवालयके समीप, चैत्य वृक्षके नीचे, पर्वतके शिखरपर तथा नदीके संगम एवं सरोवरोंमें नहलाना चाहिये। साथ ही चिकित्साशास्त्रके ज्ञाता अच्छे वैद्यको बुलाकर उसकी दी हुई उत्तम ओषधियोंका सेवन भी कराना चाहिये। छठी कन्याका नाम स्मृतिहरा है। यह स्त्रियोंकी स्मरणशक्तिको हर लेती है। पवित्र एवं एकान्त स्थानमें रहनेसे उसकी शान्ति होती है। सातवीं कन्या बीजहरा कहलाती है। यह अत्यन्त भयानक है। स्त्री-पुरुषोंके रज-वीर्यका अपहरण किया करती है। पवित्र अन्नके भोजन तथा नित्य स्नान करनेसे उसकी शान्ति होती है। आठवीं कन्या विद्वेषिणी है, जो सम्पूर्ण जगत्को भय देनेवाली है। यह स्त्री अथवा पुरुषको लोगोंका द्वेषपात्र बना देती है। उसकी शान्तिके लिये मधु, घृत, क्षीरमिश्रित तिलोंका हवन एवं मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे।

दक्ष प्रजापतिकी संतति तथा स्वायम्भुव सर्गका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—भृगुसे उनकी पत्नी ख्यातिने धाता और विधाता नामक दो देवताओंको उत्पन्न किया। देवाधिदेव भगवान् नारायणकी धर्मपत्नी श्रीलक्ष्मीदेवी भी ख्यातिके ही गर्भसे प्रकट हुईं। महात्मा मेरुकी दो कन्याएँ थीं—आयति और नियति। ये ही धाता और विधाताकी पत्नियाँ हुईं। इन दोनोंसे दो पुत्र हुए—प्राण तथा मेरे महायशस्वी पिता मृकण्डु। श्रीमृकण्डुसे मेरा जन्म हुआ, मेरी माता मनस्विनी देवी थीं। मेरी पत्नी धूम्रवतीके गर्भसे मेरे पुत्र वेदशिराका जन्म हुआ। अब प्राणकी सन्तानका वर्णन सुनो। प्राणका पुत्र द्युतिमान् और द्युतिमान्‌का अजरा हुआ। उन

दोनोंके बहुत-से पुत्र-पौत्र हुए।

मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। महात्मा पौर्णमासके दो पुत्र हुए—विरजा और पर्वत। अङ्गिराकी पत्नी स्मृतिने चार कन्याओंको जन्म दिया। उनके नाम ये हैं—सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति। इसी प्रकार महर्षि अत्रिकी पत्नी अनसूयाने चन्द्रमा, दुर्वासा तथा योगी दत्तात्रेय—इन तीन पापरहित पुत्रोंको उत्पन्न किया। पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिसे दत्तोलि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अपने पूर्वजन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'अगस्त्य'के नामसे प्रसिद्ध था। क्षमा प्रजापति पुलहकी पत्नी थीं। उसने कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। क्रतुकी पत्नी सन्नतिने साठ हजार बालखिल्य नामक ऊर्ध्वरेता महर्षियोंको उत्पन्न किया। वसिष्ठकी पत्नी ऊर्जाके गर्भसे सात पुत्र उत्पन्न हुए—रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सबल, अनघ, सुतपा और शुक्र। ये सभी सप्तर्षि हुए।

ब्रह्मन्! अग्नितत्त्वके अभिमानी देवता अग्नि ब्रह्माजीके प्रथम पुत्र थे। उनकी पत्नी स्वाहाने तीन पुत्र उत्पन्न किये, जो बड़े ही उदार और तेजस्वी हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—पावक, पवमान और शुचि। इनमें शुचि जलको सोखनेवाला है। इन तीनोंके वंशमें प्रत्येकके पंद्रह-पंद्रहके क्रमसे पैंतालीस पुत्र हुए। इनके साथ पिता अग्नि और उनके तीन पुत्रोंकी संख्या जोड़नेसे कुल उनचास अग्नि होते हैं। ये सब-के-सब दुर्जय माने जाते हैं। ब्रह्माजीके द्वारा उत्पन्न जो अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, अनग्निक और साग्निक पितर बतलाये गये हैं, उनसे स्वधाने दो कन्याओंको जन्म दिया, जिनके नाम थे—मेना और धारिणी। वे दोनों ही उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न तथा सभी गुणोंसे सुशोभित, ब्रह्मवादिनी एवं योगिनी थीं। इस प्रकार यह दक्ष कन्याओंकी वंश-परम्पराका वर्णन हुआ। जो श्रद्धापूर्वक इसका चिन्तन करता है, वह निःसन्तान नहीं रहता।

क्रौष्टुकि बोले—भगवन्! आपने जो अभी स्वायम्भुव मन्वन्तरकी चर्चा की है, उसका वर्णन मैं अच्छी तरह सुनना चाहता हूँ। मन्वन्तरके कालमान, देवता, देवर्षि, राजा और इन्द्र—इन सबका वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! मन्वन्तरकी अवधि इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालकी होती है, यह बात बतायी जा चुकी है। अब मानव-वर्षसे मन्वन्तरका कालमान सुनो। तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। देवताओंके मानसे आठ लाख बावन हजार वर्षोंका यह काल है। सबसे पहले मनु स्वायम्भुव हैं। इसके बाद स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष हैं। ये छः मनु बीत चुके हैं। इस समय वैवस्वत मनुका राज्य है। भविष्यमें सावर्णि नामवाले पाँच मनु, रौच्य मनु तथा भौम मनु—ये सात और होनेवाले हैं। इनका विस्तृत वर्णन मन्वन्तरोंके प्रकरणमें करेंगे। ब्रह्मन्! इस समय मन्वन्तरोंके देवता, ऋषि, इन्द्र और पितरोंका परिचय देता हूँ तथा उनकी उत्पत्ति, संग्रह एवं संतानोंका भी वर्णन करता हूँ। साथ ही यह भी बतलाता हूँ कि मनु और उनके पुत्रोंके राज्यका क्षेत्र कितना था।

पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रथम त्रेतायुगमें प्रियव्रतके पुत्रों अर्थात् स्वायम्भुव मनुके पौत्रोंने पृथ्वीके वर्ष-विभाग किये थे। प्रजापति कर्दमजीकी पुत्री प्रजावती राजा प्रियव्रतको ब्याही गयी थी, उसके गर्भसे दो कन्याएँ और दस पुत्र हुए। कन्याओंके नाम थे—सम्राट् और कुक्षि। उन दोनोंके दसों भाई प्रजापतिके समान तेजस्वी और बड़े शूरवीर थे। उनमें सातके नाम इस प्रकार हैं—आग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य और सवन। इनके सिवा मेधा, अग्निबाहु और मित्र—ये तीन और थे, जो तपस्या और योगमें तत्पर रहते थे। इन्हें अपने पूर्वजन्मके

वृत्तान्तोंका स्मरण था। अतएव इन महाभाग्यशाली पुरुषोंने राज्य-भोगमें मन नहीं लगाया। राजा प्रियव्रतने शेष सातों पुत्रोंको सातों द्वीपोंके राजपदपर धर्मपूर्वक अभिषिक्त कर दिया। अब द्वीपोंका वर्णन सुनो।

प्रियव्रतने जम्बूद्वीपमें आग्नीध्रको राजा बनाया। प्लक्षद्वीपका राज्य मेधातिथिको सौंपा। शाल्मलद्वीपमें वपुष्मान्को और कुशद्वीपमें ज्योतिष्मान्को राजा बनाया। द्युतिमान् क्रौञ्चद्वीपके, भव्य शाकद्वीपके तथा सवन पुष्करद्वीपके स्वामी बनाये गये। पुष्करराज सवनके दो पुत्र हुए—महावीर और धातकि। उन्होंने पुष्करद्वीपको दो भागोंमें बाँटकर बसाया। भव्यके सात पुत्र थे, उनके नाम ये हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, बनीयक, कुशोत्तर, मेधावी और महाद्रुम। उन्होंने अपने-अपने नामसे शाकद्वीपके सात खण्ड किये। द्युतिमान्के भी कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार, अर्थकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये सात ही पुत्र थे। उनके नामसे क्रौञ्चद्वीपके सात खण्ड हुए। राजा ज्योतिष्मान्के कुशद्वीपमें भी उनके पुत्रोंके नामपर सात खण्ड बने, उनके नाम इस प्रकार हैं—उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन, धृतिमान, प्रभाकर तथा कापिल। शाल्मलद्वीपके स्वामी वपुष्मान्के भी सात पुत्र हुए—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और केतुमान्। इनके नामपर भी पूर्ववत् उक्त द्वीपके सात खण्ड बनाये गये। प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके भी सात ही पुत्र हुए और उनके नामसे प्लक्षद्वीपके भी सात खण्ड बन गये। उन खण्डोंके नाम इस प्रकार हैं—शाकभव, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक तथा ध्रुव। प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपतकके पाँच द्वीपोंमें वर्णाश्रम-धर्म विभागपूर्वक स्थित है। वहाँ धर्मका सदा स्वाभाविक रूपसे पालन होता है। कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं की जाती। उन पाँचों द्वीपों और उनके वर्षोंमें सब धर्म सामान्य रूपसे सर्वत्र प्रचलित हैं।

ब्रह्मन्! राजा प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राज्य दिया था। उनके नौ पुत्र हुए, जो प्रजापतिके समान शक्तिशाली थे। उनमें सबसे बड़ेका नाम नाभि था, उससे छोटा किम्पुरुष था। तीसरेका नाम हरि, चौथेका इलावृत, पाँचवेंका रम्य, छठेका हिरण्वक, सातवेंका कुरु, आठवेंका भद्राश्व और नवेंका केतुमाल था। इन पुत्रोंके नामपर ही जम्बूद्वीपके नौ खण्ड हुए। हिमवर्षको छोड़कर शेष जो किम्पुरुष आदि वर्ष हैं, उनमें सुखकी अधिकता है और बिना यत्न किये स्वभावसे ही वहाँ सब कामनाओंकी सिद्धि होती है। उनमें किसी प्रकारके विपर्यय (असुख, अकाल मृत्यु आदि) तथा जरा-मृत्युका कोई भय नहीं है और न वहाँ धर्म-अधर्म अथवा उत्तम, मध्यम, अधम आदिका ही कोई भेद है। उन आठ वर्षोंमें न चार युगोंकी व्यवस्था है, न छः ऋतुओंकी। वहाँ किसी विशेष ऋतुके कोई चिह्न नहीं दीख पड़ते। आग्नीध्रकुमार नाभिके पुत्र ऋषभ और ऋषभके भरत हुए, जो अपने सौ भाइयोंमें सबसे बड़े थे। ऋषभ अपने पुत्रको राज्य दे महाप्रव्रज्या (संन्यास) ग्रहण करके तपस्या करने लगे। वे महर्षि पुलहके आश्रममें ही रहते थे। उन्होंने हिम नामक वर्षको, जो सबसे दक्षिण है, अपने पुत्र भरतको दिया था; इसलिये महात्मा भरतके नामपर इसका नाम भारतवर्ष हो गया।

भरतके पुत्र सुमति हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। भरतने उनको राज्य देकर वनका आश्रय लिया। राजा प्रियव्रतके पुत्रों तथा उनके भी पुत्र-पौत्रोंने स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका उपभोग किया। द्विजश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हें स्वायम्भुव मन्वन्तरकी सृष्टि बतलायी अब और क्या सुनाऊँ?

जम्बूद्वीप और उसके पर्वतोंका वर्णन

क्रौष्टुकिने पूछा—ब्रह्मन्! द्वीप, समुद्र, पर्वत और वर्ष कितने हैं तथा उनमें कौन-कौन-सी नदियाँ हैं? महाभूत (पृथ्वी) और लोकालोकका प्रमाण क्या है? चन्द्रमा और सूर्यका व्यास, परिमाण तथा गति कितनी है? महामुने! ये सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! समूची पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। अब उसके सब स्थानोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। महाभाग! जम्बूद्वीपसे लेकर पुष्करद्वीपतक जितने द्वीपोंकी मैंने चर्चा की है, उन सबका विस्तार इस प्रकार है। क्रमशः एक द्वीपसे दूसरा द्वीप दुगुना बड़ा है; इसी क्रमसे जम्बूद्वीप, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्करद्वीप स्थित हैं। ये क्रमशः लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दही, दूध और जलके समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। ये समुद्र भी एककी अपेक्षा दूसरे दुगुने बड़े हैं।

अब मैं जम्बूद्वीपकी स्थितिका वर्णन करता हूँ। इसकी लंबाई-चौड़ाई एक लाख योजनकी है। इसमें हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत तथा शृङ्गी—ये सात वर्षपर्वत हैं। इनमें मेरु तो सबके बीचमें है, उसके सिवा जो नील और निषध नामक दो और मध्यवर्ती पर्वत हैं, वे एक-एक लाख योजनतक फैले हुए हैं। निषधसे दक्षिणमें तथा नीलसे उत्तरमें जो दो-दो पर्वत हैं, उनका विस्तार क्रमशः दस-दस हजार योजन कम है। अर्थात् हेमकूट और श्वेत नब्बे-नब्बे हजार योजनतक तथा हिमवान् और शृङ्गी अस्सी-अस्सी हजार योजनतक फैले हुए हैं। वे सभी दो-दो हजार योजन ऊँचे और उतने ही चौड़े हैं। इस जम्बूद्वीपके छः वर्षपर्वत समुद्रके भीतरतक प्रवेश किये हुए हैं। यह पृथ्वी दक्षिण और उत्तरमें नीची और बीचमें ऊँची तथा चौड़ी है। जम्बूद्वीपके तीन खण्ड दक्षिणमें हैं और तीन खण्ड उत्तरमें। इनके मध्यभागमें इलावृत वर्ष है, जो आधे चन्द्रमाके आकारमें स्थित है। उसके पूर्वमें भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल वर्ष है। इलावृत वर्षके मध्यभागमें सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जिसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। वह सोलह हजार योजन नीचेतक पृथ्वीमें समाया हुआ है तथा उसकी चौड़ाई भी सोलह हजार योजन ही है। वह शराव (पुरवे)-की आकृतिका होनेके कारण चोटीकी ओर बत्तीस हजार योजन चौड़ा है। मेरुपर्वतका रंग पूर्वकी ओर सफेद, दक्षिणकी ओर पीला, पश्चिमकी ओर काला और उत्तरकी ओर लाल है। यह रंग क्रमशः ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र तथा क्षत्रियका है। मेरुपर्वतके ऊपर क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्रादि आठ लोकपालोंके निवासस्थान हैं। इनके बीचमें ब्रह्माजीकी सभा है। वह सभामण्डप चौदह हजार योजन ऊँचा है। उसके नीचे विष्कम्भ (आधार) रूपसे चार पर्वत हैं, जो दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं। वे क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व। इन चारों पर्वतोंके ऊपर चार बड़े-बड़े वृक्ष हैं, जो ध्वजाकी भाँति उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मन्दराचलपर कदम्ब, गन्धमादन पर्वतपर जम्बू, विपुलपर पीपल तथा सुपार्श्वके ऊपर बरगदका महान् वृक्ष है। इन पर्वतोंका विस्तार ग्यारह-ग्यारह सौ योजनका है। मेरुके पूर्वभागमें जठर और देवकूट पर्वत हैं, जो नील और निषध पर्वततक फैले हुए हैं। निषध और पारियात्र—ये दो पर्वत मेरुके पश्चिम भागमें स्थित हैं। पूर्ववाले पर्वतोंकी भाँति ये भी नीलगिरितक फैले हुए हैं। हिमवान् और कैलासपर्वत मेरुके दक्षिण भागमें स्थित हैं। ये पूर्वसे पश्चिमकी ओर फैलते हुए समुद्रके भीतरतक चले गये हैं। इसी प्रकार उसके उत्तर भागमें शृङ्गवान् और जारुधि

नामक पर्वत हैं। ये भी दक्षिण भागवाले पर्वतोंकी भाँति समुद्रके भीतरतक फैले हुए हैं। द्विजश्रेष्ठ! ये मर्यादा-पर्वत कहलाते हैं।

हिमवान् और हेमकूट आदि पर्वतोंका पारस्परिक अन्तर नौ-नौ हजार योजन है। ये इलावृतवर्षके मध्यभागमें मेरुकी चारों दिशाओंमें स्थित हैं। गन्धमादन पर्वतपर जो जामुनके फल गिरते हैं, वे हाथीके शरीरके बराबर होते हैं। उनमेंसे जो रस निकलता है, उससे जम्बू नामकी नदी प्रकट होती है, जहाँसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है। वह नदी जम्बूवृक्षके मूलभूत मेरुपर्वतकी परिक्रमा करती हुई बहती है और वहाँके निवासी उसीका जल पीते हैं। भद्राश्ववर्षमें भगवान् विष्णु हयग्रीवरूपसे, भारतवर्षमें कच्छपरूपसे, केतुमालवर्षमें वाराहरूपसे तथा उत्तरकुरुमें मत्स्यरूपसे विराजते हैं।

द्विजश्रेष्ठ! मन्दर आदि चार पर्वतोंपर जो चार वन और सरोवर हैं, उनके नाम सुनो। मेरुसे पूर्वके पर्वतपर चैत्ररथ नामक वन है, दक्षिण शैलपर नन्दन वन है, पश्चिमके पर्वतपर वैभ्राज वन है और उत्तरवाले पर्वतपर सावित्र नामक वन है। पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें मानस, पश्चिममें शीतोद और उत्तरमें महाभद्रनामक सरोवर है। शीतार्त, चक्रमुञ्ज, कुलीर, सुकङ्कवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानील, भवाचल, सुबिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध तथा देवशैल—ये महान् पर्वत मन्दराचलसे पूर्व दिशामें स्थित हैं। त्रिकूट, शिखराद्रि, कलिङ्ग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान्, श्वेतोदर, समूल, वसुधार,रत्नवान्, एकशृङ्ग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक, पञ्चशैल, कैलास और हिमालय—ये मेरुके दक्षिणभागमें स्थित हैं। सुरक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिङ्गल, पिञ्जर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु, अञ्जन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्रशिखर, पारियात्र और शृङ्गवान्—ये मेरुके पश्चिम विष्कम्भ विपुल गिरिसे पश्चिममें स्थित हैं। शङ्खकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील, स्वर्णशृङ्ग, शातशृङ्ग, पुष्पक, मेघ, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर तथा जारुधि—ये सभी पर्वत मेरुके उत्तरभागमें स्थित हैं। इन पर्वतोंकी कन्दराएँ बड़ी मनोहर हैं। हरे-भरे वन और स्वच्छ जलवाले सरोवर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ पुण्यात्मा मनुष्योंका जन्म होता है। द्विजश्रेष्ठ! ये स्थान इस पृथ्वीके स्वर्ग हैं। इनमें स्वर्गसे भी अधिक गुण हैं। यहाँ नूतन पाप-पुण्यका उपार्जन नहीं होता। ये देवताओंके लिये भी पुण्यभोगके ही स्थान हैं। इन पर्वतोंपर विद्याधर, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस, देवता तथा गन्धर्वोंके सुन्दर एवं विशाल वासस्थान हैं। ये परम पवित्र तथा देवताओंके मनोहर उपवनोंसे सुशोभित हैं। वहाँके सरोवर भी बड़े सुन्दर हैं। वहाँ सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली वायु चलती है। इन पर्वतोंपर मनुष्योंमें कहीं वैमनस्य नहीं होता।

इस प्रकार मैंने चार पत्रोंसे सुशोभित पार्थिव कमलका वर्णन किया है। भद्राश्व और भारत आदि वर्ष चारों दिशाओंमें इस कमलके पत्र हैं। मेरुके दक्षिणभागमें जिस भारत नामक वर्षकी चर्चा की गयी है, वही कर्मभूमि है। अन्य स्थानोंमें पाप-पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती। अतः भारतवर्षको ही सबसे प्रधान समझना चाहिये। क्योंकि यहाँ सब कुछ प्रतिष्ठित है। भारतवर्षसे मनुष्य स्वर्गलोक, मोक्ष, मनुष्यलोक, नरक, तिर्यग्योनि अथवा और कोई गति—जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

श्रीगङ्गाजीकी उत्पत्ति, किम्पुरुष आदि वर्षोंकी विशेषता तथा भारतवर्षके विभाग, नदी, पर्वत और जनपदोंका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! विश्वयोनि भगवान् नारायणका जो ध्रुवाधार* नामक पद है, उसीसे त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। वहाँसे चलकर वे सुधाकी उत्पत्तिके स्थान और जलके आधारभूत चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट हुईं और सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कसे अत्यन्त पवित्र हो मेरुपर्वतके शिखरपर गिरीं। वहाँ उनकी चार धाराएँ हो गयीं। मेरुके शिखरों और तटोंसे नीचे गिरती-बहती गङ्गाका जल चारों ओर बिखर गया और आधार न होनेके कारण नीचे गिरने लगा। इस प्रकार वह जल मन्दर आदि चारों पर्वतोंपर बराबर-बराबर बँट गया। अपने वेगसे बड़े-बड़े पर्वतोंको विदीर्ण करती हुई गङ्गाकी जो धारा पूर्व दिशाकी ओर गयी, वह सीताके नामसे विख्यात हुई। सीता चैत्ररथ नामक वनको जलसे आप्लावित करती हुई वरुणोद सरोवरमें गयी और वहाँसे शीतान्त पर्वत तथा अन्य पहाड़ोंको लाँघती हुई पृथ्वीपर पहुँची। वहाँसे भद्राश्ववर्षमें होती हुई समुद्रमें मिल गयीं। इसी प्रकार मेरुके दक्षिण गन्धमादनपर्वतपर जो गङ्गाकी दूसरी धारा गिरी, वह अलकनन्दाके नामसे विख्यात हुई। अलकनन्दा मेरुकी घाटियोंपर फैले हुए नन्दन वनमें, जो देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाला है, बहती हुई बड़े वेगसे चलकर मानसरोवरमें पहुँची। उस सरोवरको अपने जलसे परिपूर्ण करके गङ्गा शैलराजके रमणीय शिखरपर आयीं। वहाँसे क्रमशः दक्षिणमें स्थित समस्त पर्वतोंको अपने जलसे आप्लावित करती हुई महागिरि हिमवान्‌पर जा पहुँचीं। वहाँ भगवान् शङ्करने गङ्गाजीको अपने शीशपर धारण कर लिया और फिर नहीं छोड़ा। तब राजा भगीरथने आकर उपवास और स्तुतिके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की। उससे प्रसन्न होकर महादेवजीने गङ्गाको छोड़ दिया। फिर वे सात धाराओंमें विभक्त होकर दक्षिण समुद्रमें जा मिलीं। उनकी तीन धाराएँ तो पूर्व दिशाकी ओर गयीं। एक धारा भगीरथके पीछे-पीछे दक्षिण दिशाकी ओर बहने लगी।

मेरुगिरिके पश्चिममें जो विपुल नामक पर्वत है, उसपर गिरी हुई महानदी गङ्गाकी धारा स्वरक्षुके नामसे विख्यात हुई। वहाँसे वैराज पर्वतपर होती हुई स्वरक्षु शीतोद सरोवरमें गयी और उसे आप्लावित करके त्रिशिख पर्वतपर पहुँच गयी। फिर वहाँसे अन्य पर्वतोंके शिखरोंपर होती हुई केतुमालवर्षमें पहुँचकर खारे पानीके समुद्रमें मिल गयी। मेरुके उत्तरीय पाद सुपार्श्वपर्वतपर

* इसीको शिशुमार चक्र भी कहते हैं

गिरी हुई गङ्गाकी धारा सोमाके नामसे विख्यात हुई और सावित्र वनको पवित्र करती हुई महाभद्र सरोवरमें जा पहुँची। वहाँसे शङ्खकूट पर्वतपर जा क्रमशः वृषभ आदि शैलमालाओंको लाँघती हुई उत्तरकुरु नामक वर्षमें बहने लगी। अन्ततोगत्वा महासागरमें जा मिली।

द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने तुम्हें गङ्गाजीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कह सुनाया। साथ ही जम्बूद्वीपका निवेश और उसके वर्ष-विभाग भी बतला दिये। किम्पुरुष आदि समस्त वर्षोंमें प्रजा बड़े सुखसे रहती है। उसे किसी प्रकारका भय नहीं सताता। उनमें कोई छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच नहीं होता। जम्बूद्वीपके नवों वर्षोंमें सात-सात कुल पर्वत हैं और प्रत्येक देशमें पर्वतोंसे निकली हुई अनेकानेक नदियाँ हैं। विप्रवर! किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, वहाँ पृथ्वीसे ही प्रचुर जल निकलता है; किन्तु भारतवर्षमें वर्षाके जलसे विशेष कार्य चलता है। उक्त आठ वर्षोंमें वार्क्षी, स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्था, मानसी तथा कर्मजा सिद्धियाँ मनुष्योंको प्राप्त होती हैं। कामना पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष आदि वृक्षोंसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, उसे वार्क्षी-सिद्धि कहते हैं। स्वभावसे ही प्राप्त होनेवाली सिद्धि स्वाभाविकी कहलाती है। देशसे या स्थानविशेषसे जो कार्यसिद्धि होती है, उसका नाम देश्या है। जलकी सूक्ष्मतासे होनेवाली सिद्धि तोयोत्था कही गयी है। ध्यानसे ही प्राप्त होनेवाली सिद्धिको मानसी कहते हैं तथा उपासना आदि कर्मसे जो सिद्धि प्राप्त होती है; वह कर्मजा कहलाती है। किम्पुरुष आदि वर्षोंमें युगकी व्यवस्था और आधि-व्याधि नहीं है। वहाँ पाप पुण्यका अनुष्ठान भी नहीं देखा जाता।

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन्! आपने जम्बूद्वीपका संक्षेपसे वर्णन किया; किन्तु महाभाग! अभी-अभी आपने जो यह कहा कि भारतवर्षको छोड़कर और कहीं किया हुआ कर्म पुण्य और पापका जनक नहीं होता, केवल भारतवर्षसे ही मोक्ष तथा स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं पाताल आदि लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है। मनुष्योंके लिये और किसी भूमिपर कर्मका विधान नहीं है, केवल यह भारत ही कर्मभूमि है। अतः भारतवर्षका वृत्तान्त विस्तारके साथ बतलाइये। जितने इसके भेद हों, जैसी इस देशकी स्थिति हो और जो-जो यहाँ पर्वत हों, उन सबका भलीभाँति वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन्! सुनो, भारतवर्षके नौ विभाग हैं, उन सबके बीचमें समुद्रका अन्तर है; अतः एक विभागके मनुष्यका दूसरे विभागमें जाना असम्भव है। उक्त नौ विभागोंके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप, वारुणद्वीप और नवाँ यह भारतवर्ष। भारत भी समुद्रसे घिरा है। यह उत्तरसे दक्षिणतक एक हजार योजन बड़ा है। इसके पूर्वमें किरात और पश्चिममें यवन रहते हैं। बीचमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका निवास है। ब्राह्मण आदि वर्णोंके लोग यहाँ यज्ञ, शस्त्र-ग्रहण और व्यवसाय आदि कर्मोंसे अपनेको पवित्र करते हैं; तथा इन्हींसे इनका जीवन-निर्वाह भी होता है। इतना ही नहीं, इन्हीं कर्मोंसे वे स्वर्ग, मोक्ष और पुण्य प्राप्त करते हैं तथा इन्हींको ठीक-ठीक न करनेसे इन्हें पाप भोगना पड़ता है।

महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात ही यहाँ कुल-पर्वत हैं। इनके निकट और भी हजारों पर्वत हैं। ये सभी अत्यन्त विस्तृत, ऊँचे तथा रमणीय हैं। इनके शिखर भी बहुत से हैं। इनके सिवा कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुराचल, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुराचल, पुष्पगिरि, दुर्जयन्त, रैवत, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर, श्रीपर्वत और चकोर आदि सैकड़ों पर्वत और हैं, जिनसे मिले हुए म्लेच्छ और आर्य जनपद विभागपूर्वक स्थित हैं। वे लोग

जिन श्रेष्ठ नदियोंका जल पीते हैं, उनके नाम सुनो। गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा (चिनाब), यमुना, शतद्रु (सतलज), वितस्ता (झेलम), इरावती (रावी), कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, विपाशा (व्यास), देविका, रंक्षु, निश्चीरा, गण्डकी, कौशिकी (कोसी)—ये सभी नदियाँ हिमालयकी तलैटीसे निकली हुई हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वेणा, सानन्दना, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती (बेतवा), क्षिप्रा तथा अवन्ती—इन नदियोंका उद्गमस्थान पारियात्र पर्वत है। महानद शोण (सोन), नर्मदा, सुरथा, अद्रिजा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रेणि, विपाशा, वंजुला, सुमेरुजा, शुक्तिमती, शकुली, त्रिदिवाक्रमु और वेगवाहिनी—ये नदियाँ स्कन्दपर्वतकी शाखाओंसे निकली हैं। शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्वा, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती, करतोया, महागौरी दुर्गा तथा अन्तःशिवा—ये पुण्यसलिला कल्याणमयी नदियाँ विन्ध्याचलकी घाटियोंसे निकली हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णावेणी, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या तथा कावेरी—ये श्रेष्ठ सह्यपर्वतकी शाखाओंसे प्रकट हुई हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती—ये मलयाचलसे निकली हैं। इनका जल बहुत शीतल होता है। पितृसोमा, ऋषिकुल्या, इक्षुका, त्रिदिवा, लाङ्गूलिनी और वंशकरा—ये महेन्द्रपर्वतसे निकली मानी जाती हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, नन्दगा, मन्दवाहिनी, कृशा और पलाशिनी—इनका उद्गम शुक्तिमान् पर्वतसे हुआ है। ये सभी नदियाँ पवित्र हैं, सभी गङ्गा और सरस्वतीके समान हैं तथा सभी साक्षात् या परम्परासे समुद्रमें मिली हैं। ये सब-की-सब जगत्‌के लिये माता-सदृश हैं। इन सबको पापहारिणी माना गया है। द्विजश्रेष्ठ! इनके अतिरिक्त और भी हजारों छोटी नदियाँ हैं, जिनमें कुछ तो केवल वर्षाकालमें बहती हैं और कुछ सदा ही बहनेवाली हैं।

मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोसल, अर्बुद, अर्कलिङ्ग, मल्लक और वृक—ये प्रायः मध्यदेशके जनपद कहे गये हैं। सह्यपर्वतके उत्तरका भूभाग, जहाँ गोदावरी नदी बहती है, सम्पूर्ण भूमण्डलमें सबसे अधिक मनोरम प्रदेश है। वहाँ महात्मा भार्गवका मनोहर नगर गोवर्धन है। वहाँ अनेक जनपद हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—वाह्लीक (बलख), वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, शूद्र, पह्लव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु (सिंध), सौवीर, मद्र, शतद्रुज, कलिङ्ग, पारद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, कैकेय और दशमालिक। ये क्षत्रियोंके उपनिवेश हैं तथा इनमें वैश्य और शूद्रकुलके लोग भी रहते हैं। काम्बोज (खंभात), दरद, बर्बर, हर्षवर्धन, चीन, तुषार, बहुल बाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड, औपध और अनिभद्र—ये सब किरातोंकी जातियाँ हैं। तामस, हंसमार्ग, काश्मीर, गणराष्ट्र, शूलिक, कुहक, ऊर्णा तथा दार्व—ये समस्त देश उत्तरमें स्थित हैं।

अब पूर्वके देशोंका वर्णन सुनो—अन्नारक, मुद्गरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवङ्ग, रङ्गेय, मालद, मलवर्तिक, ब्राह्मोत्तर, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह (मिथिला), ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध और गोमन्त—ये पूर्व दिशाके जनपद हैं। अब दक्षिण दिशाके जनपद बतलाये जाते हैं। पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, गोलाङ्गूल, शैलूष, मूषिक, कुसुम, वनवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिङ्ग, आभीर, वैशिक्य, आटव्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यमालेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्धन, नैषिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद, वनदारक—ये सभी दक्षिणप्रदेशके जनपद हैं। अब अपरान्त देशोंका वर्णन सुनो। सूर्पारक, कालिबल, दुर्ग,

अनीकट, पुलिन्द, सुमीन, रूपप, श्वापद, कुरुमिन, कठाक्षर, कारसमर, लोहजङ्घ, वाजेय, राजभद्रक, नासिक्याव, नर्मदाके उत्तरके देश, भीरुकच्छ माहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त्य और अर्बुद—ये अपरान्त-प्रदेश हैं। अब विन्ध्यनिवासियोंके देश बतलाये जाते हैं। सरज, करूष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक, तोशल, कोसल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, तुम्बुल, पटु, नैषध, अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति—ये सभी जनपद विन्ध्याचलकी घाटियोंमें बसे हैं।

अब पर्वतीय देशोंका वर्णन किया जाता है—नीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस, कुन्तप्रावरण, ऊर्ण, दार्व, कृत्रक, त्रिगर्त, मालव, किरात और तामस। ये पर्वतोंके आश्रयमें बसे हैं। इतने देशोंसे परिपूर्ण यह भारतवर्ष है। इसमें चारों दिशाओंके देशोंकी स्थिति है। इसमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंकी व्यवस्था है। भारतवर्षके दक्षिण, पश्चिम तथा पूर्वमें महासागर है और उत्तरकी ओर धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान हिमालय पर्वतकी स्थिति है। यह भारतवर्ष सब प्रकारकी उन्नतिका बीज है। यहाँ शुभकर्म करनेसे ब्रह्मपद, इन्द्रपद, देवलोक और मरुद्गणोंका स्थान भी मिलता है। इसी प्रकार यहाँ निन्दित कर्म करनेसे मनुष्यको मृग, पशु, सर्प तथा स्थावरोंकी योनि भी मिल सकती है। ब्रह्मन्! इस जगत्में भारतवर्षके सिवा दूसरा कोई देश कर्मभूमि नहीं है। ब्रह्मर्षे! देवताओंके मनमें भी सदा यह अभिलाषा रहा करती है कि 'हम देवयोनिसे भ्रष्ट होनेपर भारतवर्षमें मनुष्यके रूपमें उत्पन्न हों।' उनका कहना है कि 'भारतवर्षके मनुष्य वह कार्य कर सकते हैं, जो देवता और असुरोंके लिये भी असम्भव है; किन्तु खेदकी बात है कि ये मनुष्य कर्मबन्धनमें बँधकर अपने कर्मोंकी ख्याति—अपनी कीर्ति फैलानेको उत्सुक रहते हैं और लेशमात्र सांसारिक सुखके प्रलोभनमें पड़कर नित्य अक्षय सुखकी प्राप्तिके लिये कोई भी कर्म नहीं करते।'

भारतवर्षमें भगवान् कूर्मकी स्थितिका वर्णन

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन्! आपने मुझसे भारतवर्षका भलीभाँति वर्णन किया तथा वहाँकी नदियों, पर्वतों और जनपदोंको भी बतलाया। इसके पहले आपने यह कहा था कि भारतवर्षमें भगवान् श्रीहरि कूर्मरूपसे निवास करते हैं, सो उनकी स्थिति कहाँ और किस प्रकार है, यह सब सुननेको मेरी इच्छा हो रही है। कूर्मरूपी भगवान् जनार्दन किस रूपमें स्थित हैं, उनसे मनुष्योंके शुभ-अशुभकी सूचना कैसे मिलती है? भगवान् कूर्मका मुख कैसा है? और उनके चरण कौन हैं? ये सारी बातें बताइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! कूर्मरूपधारी भगवान् श्रीहरि नौ भेदोंसे युक्त इस भारतवर्षको आक्रान्त करके स्थित हैं। उनका मुख पूर्व दिशाकी ओर है। उनके चारों ओर नौ भागोंमें विभक्त होकर सम्पूर्ण नक्षत्र और देश स्थित हैं। उन्हें बतलाता हूँ, सुनो। वेदि, मद्र, अरिमाण्डव्य, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, घोषसंख्य, खस, सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक, उद्देहक, पाञ्चाल, सङ्केत, कंक, मारुत, कालकोटि, पाखण्ड, पारियात्रनिवासी, कापिञ्जल, कुरुबाह्य, उदुम्बर तथा गजाह्वय (हस्तिनापुर आदि)-के मनुष्य भगवान् कूर्मके मध्यभाग (कटिप्रदेश)-में स्थित हैं। कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिरा—ये तीन नक्षत्र उक्त स्थानके निवासियोंके लिये शुभाशुभके सूचक होते हैं। वृषध्वज, अञ्जन, जम्बू, मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, खर्मक, कर्वटाशन, चन्द्रेश्वर, खश,

मगध, मैथिल, पौण्ड्र, वदनदन्तुर, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्र, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयगिरि, काशी, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्धमान और कोसल—ये देश कूर्मभगवान्‌के मुखभागमें स्थित हैं। आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य—ये तीन नक्षत्र भी उनके मुखमें हैं।

अब कूर्मभगवान्‌के दक्षिण चरणमें जो देश हैं, उनके नाम सुनो—कलिङ्ग (उड़ीसा), वङ्ग (बंगाल), जठर, कोसल, मूषिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण, मत्स्य, अन्ध्र, विन्ध्यवासी, विदर्भ (बरार), नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी, कैष्किन्ध्य, हेमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, नग्न, निषाद, काकुलालक, पर्ण तथा शबर। ये देश भगवान् कूर्मके पूर्व-दक्षिण दिशावाले चरणमें स्थित हैं। आश्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र भी वहीं हैं। लङ्का, कालाजिन, शैलिक, निकट, महेन्द्र, मलय और दर्दुर पर्वतोंके पास बसे हुए जनपद, कर्कोटक वनमें रहनेवाले लोग तथा भृगुकच्छ, कोङ्कण, सम्पूर्ण आभीर-प्रदेश, वेण्या नदीके तटपर बसे हुए देश, अवन्ति, दासपुर, आकणी, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गोनर्द, चित्रकूट, चोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कावेरीके तटवर्ती देश, ऋष्यमूक पर्वतपर बसे हुए प्रदेश, नासिक, शङ्ख, शुक्ति आदि तथा वैदूर्य पर्वतके समीपवर्ती देश, वारिचर कोल, चर्मपट्ट, गणवाह्य, कृष्णाद्वीपवासी, सूर्याद्रि और कुमुदाद्रिके निवासी, औखा वन, पिशिक, कर्मनायक, दक्षिण, कौरुष, ऋषिक, तापसाश्रम, ऋषभ, सिंहल, काञ्चीनिवासी, त्रिलिङ्ग, कुञ्जरदरी तथा कच्छमें रहनेवाले लोग और ताम्रवर्णी नदीके तटवर्ती देश—ये भगवान् कूर्मकी दायीं कुक्षिमें स्थित हैं। उत्तरा-फाल्गुनी, हस्त तथा चित्रा—ये तीन नक्षत्र भी वहीं हैं।

काम्बोज, पह्लव, वडवामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त, वनितामुख, द्रावण, शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात, पारद, पाण्ड्य, पारशव, कल, धूर्तक, हैमगिरिक, सिन्धु, कालक, वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविड, महार्णव—ये देश कूर्मभगवान्‌के दक्षिण चरणमें स्थित हैं। स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्र भी वहीं हैं। मणिमेघ, क्षुराद्रि, खञ्जन, अस्तगिरि, अपरान्तिक, हैहय, शान्तिक, विप्रशस्तक, कोङ्कण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अङ्गतक, शर्कर, शाल्मवेश्मक, गुरुस्वर, फाल्गुनक, वेणुमतीनिवासी, फाल्गुलुक, घोर, गुरुह, चकल, एकेक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव, सुचूलिक तथा अश्वकेश—ये देश भगवान् कच्छपके पुच्छभागमें स्थित हैं। वहीं ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढा नक्षत्र भी हैं। माण्डव्य, चण्डखार, अश्मक, ललन, कुशात्त, लडह, स्त्रीबाह्य, बालिक, नृसिंह, वेणुमतीवासी, बलावस्थ, धर्मबद्ध, उलूक तथा उरुकर्मनिवासी मनुष्य भगवान् कूर्मके बायें चरणमें स्थित हैं। उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठाकी भी वहीं स्थिति है। कैलास, हिमवान्, धनुष्मान्, वसुमान्, क्रौञ्च, कुरुवक, क्षुद्रवीण, रसालय, भोगप्रस्थ, यामुन, अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्नीज्य, अर्दन, अश्वमुख, चिविड, केशधारी, दासेरक, वाटधान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात, तक्षशिलाश्रय, अम्बाल, मालव, मद्र, वेणुक, वदन्तिक, पिङ्गल, मानकलह, हूण, कोहलक, माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हेमतारक, यशोमत्य, गान्धार, स्वर, सागरराशि, यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामक तथा क्षेमधूर्त—ये कूर्मभगवान्‌की बायीं कुक्षिमें हैं। शतभिष, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तरभाद्रपदा— ये तीन नक्षत्र भी वहीं हैं। किन्नरराज्य, पशुपाल, कीचक, काश्मीरक, अभिसारजन, दरद, अङ्गण, कुरट, अन्नदारक, एकपाद, खश, घोष, स्वर्ग, भौम, अनवद्य, यवन, हिङ्ग, चीरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव तथा गन्धर्व—ये कच्छपभगवान्‌के पूर्व-उत्तरवाले चरणके आश्रित हैं। रेवती, अश्विनी और भरणी भी वहीं हैं।

विप्रवर! उक्त देशोंमें क्रमशः ये ही नक्षत्र ऐसे हैं, जिनके कारण मनुष्योंको पीड़ा होती है अर्थात् जब इनके साथ दुष्ट ग्रहोंका योग होता है तो ये उनसे प्रभावित होकर प्रजाको कष्ट देते हैं और उत्तम ग्रहोंके योग होनेपर ये वहाँके मनुष्योंको

अभ्युदयकी प्राप्ति कराते हैं। जिस नक्षत्रराशिका जो ग्रह स्वामी है, उसीके अशुभ भावमें रहनेपर उस देशके लोगोंको कष्ट होता है और वही ग्रह जब उच्च स्थानमें होता है तो शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है। नक्षत्रों और ग्रहोंमें होनेवाला शुभाशुभ फल साधारणतया सब देशोंमें सभी मनुष्योंको प्राप्त होता है। यदि अपने नक्षत्र खराब हों अथवा जन्मके समय ग्रह अशुभ स्थानोंमें पड़े हों तो मनुष्यको कष्ट भोगना पड़ता है। यह बात प्रत्येकके लिये सामान्य रूपसे लागू होती है। इसी प्रकार यदि नक्षत्र और ग्रह अच्छे पड़े हों तो उसका फल शुभ होता है। पुण्यात्मा मनुष्यके ग्रह यदि अशुभ स्थानोंमें हों तो उन्हें द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, सुहृद्, पुत्र एवं भार्याकी भी हानि उठानी पड़ती है। यदि पुण्य थोड़ा है तो अपने शरीरपर भी भय आ सकता है और जिन्होंने अधिक मात्रामें पाप-ही-पाप किये हैं, उन्हें तो सर्वत्र ही द्रव्य आदि तथा शरीर—सभीकी हानि उठानी पड़ती है। जो सर्वथा निष्पाप हैं, उन्हें ग्रह आदिसे कभी कहीं भी भय नहीं है। नक्षत्र और ग्रहसे प्राप्त शुभाशुभ फलको मनुष्य कभी तो अकेले भोगता है और कभी कभी साधारणतया सम्पूर्ण दिशा, देश, जन-समुदाय, राजा अथवा पुत्रके साथ भोगता है। जब ग्रह दूषित नहीं होते तो मनुष्य परस्पर अपनी रक्षा करते हैं और ग्रहोंके दूषित हो जानेपर उन्हें शुभ फलोंसे वञ्चित होना पड़ता है। यहाँ कूर्मभगवान्‌के विग्रहमें जो नक्षत्रोंकी स्थिति बतायी गयी है, वे नक्षत्र उन-उन देशोंके लिये सामान्य रूपसे शुभ या अशुभ होते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि अपने देश नक्षत्र तथा ग्रहजनित पीड़ाको उपस्थित देख उसकी विधिपूर्वक शान्ति करे। साथ ही लोकवादोंका भी शमन करे। आकाशसे देवताओं तथा दैत्य आदिके जो शस्त्र पृथ्वीपर गिरते हैं, उन्हें लोकमें 'लोकवाद' कहा गया है। विद्वान् पुरुष उन सबकी शान्ति करे, लोकवादोंकी कभी भी उपेक्षा न करे; क्योंकि उनकी शान्ति करनेसे ही उनके द्वारा प्राप्त होनेवाले भयका निवारण होता है। लोकवादों और ग्रहोंके अनुकूल होनेपर शुभ फलका उदय एवं पापका नाश होता है तथा प्रतिकूल होनेपर वे बुद्धि एवं धन आदिका भी नाश कर डालते हैं। अतः उनकी शान्तिके लिये द्रोहका त्याग तथा उपवास करे। देवस्थानों तथा देववृक्षोंको प्रणाम करना भी उत्तम माना गया है। जप, होम, दान और स्नान करे तथा क्रोधको त्याग दे। विद्वान् पुरुष किसीसे भी द्रोह न करे। सब प्राणियोंके प्रति मित्रभाव रखे। दुर्वचन न कहे और बढ़-बढ़कर बातें न बनावे।

इस प्रकार मैंने भारतवर्षमें स्थित भगवान् कूर्मके स्वरूपका वर्णन किया। वे अचिन्त्यात्मा नारायण हैं, उन्हींमें सम्पूर्ण जगत्‌की स्थिति है। उन्हींमें सम्पूर्ण देवता और नक्षत्र-मण्डल हैं। उन्हींके भीतर अग्नि, पृथ्वी और सोम हैं। मेष आदि तीन राशियाँ भगवान् कूर्मके मध्यभाग (कटिप्रदेश)में हैं। मिथुन और कर्क मुखमें स्थित हैं। पूर्व और दक्षिणवाले चरणमें कर्क तथा सिंह हैं। सिंह, कन्या और तुला—ये तीन राशियाँ उनकी कुक्षिमें हैं। तुला और वृश्चिक दक्षिण-पश्चिमवाले चरणमें हैं। पृष्ठभागमें वृश्चिक और धन स्थित हैं, वायव्यकोणवाले चरणमें धन, मकर और कुम्भ हैं। उत्तर कुक्षिमें कुम्भ और मीनकी स्थिति है तथा ईशानकोणवाले चरणमें मीन और मेष राशि हैं। ब्रह्मन्! भगवान् कूर्मके श्रीविग्रहमें सम्पूर्ण देश स्थित हैं, उन देशोंमें नक्षत्र हैं, नक्षत्रोंमें राशियाँ हैं और राशियोंमें ग्रहोंकी स्थिति है। अतः ग्रह नक्षत्रोंमें पीड़ा होनेपर देशोंमें भी पीड़ा होती है, ऐसा जानना चाहिये और इसकी शान्तिके लिये विधिवत् स्नान करके दान होम आदिका अनुष्ठान करना चाहिये।

भद्राश्व आदि वर्षोंका संक्षिप्त वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार मैंने भारतवर्षका यथावत् वर्णन किया। इस देशमें ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगों तथा चार वर्णोंकी व्यवस्था है। अब शैलराज देवकूटके पूर्व जो भद्राश्ववर्ष है, उसका वर्णन सुनो। वहाँ श्वेतपर्ण, नील, पर्वतश्रेष्ठ शैवाल, कौरञ्ज तथा पर्णशालाग्र—ये पाँच कुलपर्वत हैं। इनसे उत्पन्न हुए और भी बहुतेरे छोटे-छोटे पर्वत हैं। उनसे लगे हुए अनेक प्रकारके हजारों जनपद हैं, जिनके नाम कुमुदसंकाश, शुद्धसानु और सुमङ्गल आदि हैं। सीता, शङ्खावती, भद्रा तथा चक्रावर्ता आदि वहाँकी नदियाँ हैं, जिनके पाट बहुत विस्तृत हैं। उनका जल बहुत ठंडा होता है। भद्राश्ववर्षके सभी मनुष्य शङ्ख तथा शुद्ध सुवर्णके समान कान्तिमान् होते हैं। उन्हें दिव्य पुरुषोंका संग प्राप्त होता है। वे बड़े पुण्यात्मा होते हैं। उनमें उत्तम-मध्यमका भेद नहीं होता, सब समान ही देखे जाते हैं। वे स्वभावतः सहनशीलता आदि आठ गुणोंसे युक्त होते हैं। वहाँ चार भुजाधारी भगवान् विष्णु हयग्रीवरूपसे विराजमान रहते हैं। वे मस्तक, हृदय, लिङ्ग, चरण, हाथ और तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं। उन जगदीश्वरके अङ्गोंमें भी पूर्ववत् देशोंकी स्थिति जाननी चाहिये।

अब उससे पश्चिममें स्थित केतुमालवर्षका वर्णन सुनो। वहाँ विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत, विशोक और वर्धमान—ये सात कुल-पर्वत हैं। इनके सिवा और भी बहुत-से पर्वत हैं जहाँ लोग निवास करते हैं। उस देशमें मौलि, महाकाय, शाकपोत, करम्भक तथा अङ्गुल आदि सैकड़ों जनपद हैं। वहाँके लोग वड्क्षुश्यामा, स्वकम्बला, अमोघा, कामिनी श्यामा तथा अन्यान्य सहस्रों नदियोंके जल पीते हैं। उस देशमें भगवान् श्रीहरि वराहरूपसे विराजमान हैं। वे अपने हाथ, पैर, मुख, हृदय, पीठ, पँसली आदि अङ्गोंमें बहुत-से देश एवं तीन-तीन नक्षत्र पूर्ववत् धारण करते हैं। वे नक्षत्र भी पहलेकी ही भाँति उन-उन देशोंके लिये शुभाशुभसूचक होते हैं।

मुनिश्रेष्ठ! यह मैंने केतुमालवर्षके विषयमें कुछ बातें बतायी हैं, अब मुझसे उत्तरकुरुवर्षका वर्णन सुनो। वहाँकी भूमि मणिमयी और वायु सुगन्धित तथा सर्वदा सुख देनेवाली होती है। जो लोग देवलोकसे च्युत होते हैं, वे ही उस देशमें जन्म लेते हैं। उस देशमें गिरिराज चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त—ये दो कुलपर्वत हैं। वहाँ भद्रसोमा नामवाली महानदी पवित्र एवं स्वच्छ जलकी धारा बहाती हुई निरन्तर बहती रहती है। इसके सिवा और भी हजारों नदियाँ बहती हैं। कुलपर्वतोंके अतिरिक्त और भी अनेक पर्वत हैं तथा सैकड़ों एवं सहस्रों वन हैं, जहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट नाना प्रकारके फल उपलब्ध होते हैं। उत्तरकुरुवर्षमें भी भगवान् श्रीकृष्ण पूर्वकी ओर सिर करके मत्स्यरूपमें विराजमान रहते हैं। उनके भिन्न भिन्न नौ अवयवोंमें तीन तीनके क्रमसे सभी नक्षत्र नौ भागोंमें विभक्त होकर स्थित हैं; इसी प्रकार वहाँके देश भी नौ भागोंमें विभक्त हैं। उस देशमें चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप नामक दो द्वीप हैं, जो समुद्रके भीतर स्थित हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने उत्तरकुरुवर्षका वर्णन किया; अब किम्पुरुष आदिका वर्णन सुनो।

वहाँके स्त्री पुरुष रोग और शोकसे रहित होते हैं। उस वर्षमें प्लक्षखण्ड नामक एक मनोहर वन है, जो नन्दनवनके समान रमणीय जान पड़ता है। वहाँके पुरुष सदा उस वनके फलोंका रस पीते हैं। इससे उनकी जवानी सदा स्थिर रहती है और वहाँकी स्त्रियोंके शरीरसे कमलकी सुगन्ध आती है। किम्पुरुषवर्षके बाद अब हरिवर्षका

परिचय दिया जाता है। वहाँके मनुष्य चाँदीके समान गौरवर्णके होते हैं। देवलोकसे च्युत होनेके कारण उन सबका स्वरूप देवताओंके ही समान होता है। हरिवर्षके सभी मनुष्य उत्तम इक्षुरसका पान करते हैं। वहाँ किसीको वृद्धावस्थाका कष्ट नहीं भोगना पड़ता। वे सब-के-सब अजर होते हैं। जबतक जीते हैं, नीरोग रहते हैं। अब जम्बूद्वीपके बीचमें स्थित इलावृतवर्षका वर्णन सुनो—इसे मेरुवर्ष भी कहा गया है। वहाँ सूर्य नहीं तपता और मनुष्योंको वृद्धावस्था नहीं सताती। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और ग्रहोंकी किरणें वहाँ प्रकाशमें नहीं आतीं, क्योंकि स्वयं मेरुपर्वतकी प्रभा उन सबकी अपेक्षा बढ़कर होती है। वहाँके मनुष्य जामुनके फलका रस पीते और कमलकी-सी कान्ति धारण करनेवाले, कमलके समान सुगन्धित एवं कमलदलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले होते हैं। इलावृतवर्षके मध्यमें मेरुपर्वतकी स्थिति है। वह शराव (पुरवे)-के समान नीचे पतला और ऊपर चौड़ा होता गया है। उस वर्षमें महागिरि मेरु ही एक पर्वत है और उसीसे इलावृतवर्षकी प्रसिद्धि हुई है। इसके बाद रम्यकवर्षका वर्णन करता हूँ, सुनो। वहाँ हरे पत्तोंसे सुशोभित एक ऊँचा बरगदका वृक्ष है। उसीके फलका रस पीकर वहाँके निवासी जीवन निर्वाह करते हैं। वे जरा और दुर्गन्धसे रहित तथा अत्यन्त निर्मल होते हैं। एक-दूसरेके प्रति प्रगाढ़ प्रेम ही उनका प्रधान गुण है। उसके उत्तरमें हिरण्मय नामक वर्ष है, जहाँ प्रचुर कमल-वनोंसे सुशोभित हिरण्वती नामकी नदी बहती है। वहाँके मनुष्य बहुत बड़े बलवान्, तेजस्वी, यक्षके समान सुन्दर, महान् पराक्रमी, धनवान् तथा नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले होते हैं।

स्वरोचिष् तथा स्वारोचिष मनुके जन्म एवं चरित्रका वर्णन

क्रौष्टुकि बोले—महामुने! आपने मेरे प्रश्नके अनुसार पृथ्वी, समुद्र आदिकी स्थिति तथा प्रमाण आदिका भलीभाँति वर्णन किया। अब मैं मन्वन्तरों, उनके स्वामियों, देवताओं, ऋषियों तथा मनुपुत्रोंका परिचय सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेयजीने कहा—मुने! मैंने तुम्हें स्वायम्भुव मन्वन्तरकी बातें तो बता दीं अब स्वारोचिष नामक दूसरे मन्वन्तरका वर्णन सुनो। वरुणा नदीके तटपर अरुणास्पद नामक नगरमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे। उनका रूप अश्विनीकुमारोंके समान मनोहर था। वे स्वभावसे मृदु, सदाचारी तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी थे। अतिथियोंके प्रति उनका सदा ही प्रेम बना रहता था। रातको घरपर आये हुए अभ्यागतोंको वे ठहरनेके लिये स्थान देते और उनके भोजन आदिकी भी व्यवस्था करते थे। उनके मनमें प्रायः यह विचार उठा करता था कि 'मैं रमणीय वन, उद्यान तथा भाँति-भाँतिके नगरोंसे सुशोभित सम्पूर्ण भूमण्डलको घूम-घूमकर देखूँ।' एक दिन उनके घरपर कोई अतिथि पधारे, जो नाना प्रकारकी ओषधियोंके प्रभावको जाननेवाले तथा मन्त्रविद्यामें प्रवीण थे। ब्राह्मणने श्रद्धापूर्ण हृदयसे अतिथिका स्वागत-सत्कार किया। बातचीतके प्रसङ्गमें अभ्यागतने ब्राह्मणसे अनेकों देशों, रमणीय नगरों, वनों, नदियों, पर्वतों और पुण्यतीर्थोंकी बातें बतायीं। यह सब सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'विप्रवर! आपने अनेक देश देखनेके कारण बहुत परिश्रम उठाया है तो भी न तो आप अत्यन्त बूढ़े हुए और न जवानीने ही आपका साथ छोड़ा। थोड़े ही समयमें आप सारी पृथ्वीपर कैसे भ्रमण कर लेते हैं?'

आगन्तुक ब्राह्मणने कहा—'ब्रह्मन्! मन्त्र और ओषधियोंके प्रभावसे मेरी गति कहीं भी नहीं रुकती। मैं आधे दिनमें एक हजार योजन चलता हूँ।

आगन्तुक ब्राह्मण बड़े विद्वान् थे; अतः गृहस्थ ब्राह्मणको उनकी बातोंपर पूर्ण विश्वास हो गया और वे बड़े आदरके साथ बोले—'भगवन्! मुझपर भी कृपा कीजिये और अपने मन्त्रका प्रभाव दिखलाइये। इस पृथ्वीको देखनेकी मेरी बड़ी इच्छा है।' यह सुनकर उदारचित्त आगन्तुक ब्राह्मणने उन्हें पैरमें लगानेके लिये एक लेप दिया और वे जिस दिशाको जाना चाहते थे, उसे अपने मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। वह लेप अपने पैरोंमें लगाकर ब्राह्मण देवता अनेकों झरनोंसे सुशोभित हिमालय पर्वतको देखनेके लिये गये। उन्होंने सोचा था कि 'मैं आधे दिनमें एक हजार योजन दूर जाऊँगा और शेष आधे दिनमें पुनः घर लौट आऊँगा।' वे हिमालयके शिखरपर पहुँच गये; किन्तु शरीरमें अधिक थकावट नहीं हुई। उन्होंने वहाँकी पर्वतीय भूमिपर पैदल ही विचरना आरम्भ किया। बर्फपर चलनेके कारण उनके पैरोंमें लगा हुआ दिव्य ओषधिका लेप धुल गया। इससे उनकी तीव्र-गति कुण्ठित हो गयी। अब वे इधर-उधर घूमकर हिमालयके अत्यन्त मनोहर शिखरोंका अवलोकन करने लगे। वहाँ सिद्ध और गन्धर्व रहते थे। किन्नरगण विहार करते थे तथा इधर-उधर देवता आदिके क्रीडा-विहारसे वहाँकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। सैकड़ों दिव्य अप्सराओंसे भरे हुए वहाँके मनोहर शिखरोंका दर्शन करनेसे ब्राह्मणदेवताको तृप्ति नहीं हुई। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया।

फिर दूसरे दिन आनेका विचार करके जब वे घर जानेको उद्यत हुए तो उन्हें अपने पैरोंकी गति कुण्ठित जान पड़ी। वे सोचने लगे—'अहो! यहाँ बर्फके पानीसे मेरे पैरका लेप धुल गया। इधर यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मैं अपने घरसे बहुत दूर चला आया हूँ। अब तो घरपर न पहुँच सकनेके कारण मेरे अग्निहोत्र आदि नित्यकर्मकी हानि होना चाहती है। यहाँ रहकर यह सब कैसे करूँगा। यह तो मेरे ऊपर बहुत बड़ा संकट आ रहा है। इस अवस्थामें यदि मुझे किन्हीं तपस्वी महात्माका दर्शन हो जाता तो वे घर पहुँचनेके लिये मुझे कोई उपाय बतलाते।'

इस प्रकार विचार करते हुए ब्राह्मण देवता हिमालयपर विचरने लगे। चरणोंकी ओषधिजनित शक्ति नष्ट हो जानेके कारण उन्हें बड़ी चिन्ता हो रही थी। इस प्रकार वहाँ घूमते हुए ब्राह्मणपर एक श्रेष्ठ अप्सराकी दृष्टि पड़ी, जो अपने मनोहर रूपके कारण बड़ी शोभा पा रही थी। उसका नाम वरूथिनी था। उन्हें देखते ही वरूथिनी कामदेवके वशीभूत हो गयी। उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके प्रति तत्काल उसका प्रेम हो गया। वह सोचने लगी, 'ये कौन हैं? इनका रूप तो बड़ा ही मनोहर है। यदि ये मुझे ठुकरा न दें तो मेरा जन्म सफल हो जाय। मैंने बहुत-से देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व और नागोंको देखा है; किन्तु एक भी इन महात्माके समान रूपवान् नहीं है। जिस प्रकार इनमें मेरा अनुराग हो गया है, उसी प्रकार यदि ये भी मुझमें अनुरक्त हो जायँ तो मेरा काम बन जाय। फिर तो मैं यह समझूँगी कि मैंने बहुत बड़े पुण्यका उपार्जन किया है।'

इस प्रकार चिन्ता करती हुई वह दिव्यलोककी सुन्दरी युवती कामदेवसे व्याकुल हो अत्यन्त मनोहर रूप धारण किये उनके सामने उपस्थित हुई। सुन्दर रूपवाली वरूथिनीको देखकर ब्राह्मणकुमार स्वागतपूर्वक उसके पास गये और इस प्रकार बोले—'नूतन कमलके समान कान्तिवाली सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? और यहाँ क्या करती हो? मैं ब्राह्मण हूँ और अरुणास्पद नगरसे यहाँ आया हूँ। मेरे पैरोंमें दिव्य लेप लगा हुआ था, जो बर्फके जलसे धुल गया है। इसीलिये मैं दूर-गमनकी शक्तिसे रहित होनेके कारण यहाँ आ गया हूँ।'

वरूथिनी बोली—ब्रह्मन्! मैं अप्सरा हूँ। मेरा नाम वरूथिनी है। मैं इस रमणीय पर्वतपर ही सदा विचरण करती हूँ। आज आपके दर्शनसे कामदेवके वशीभूत हो गयी हूँ। बताइये, मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ। इस समय सर्वथा आपके अधीन हूँ।

ब्राह्मणने कहा—कल्याणी! मैं जिस उपायसे अपने घरपर जा सकूँ और मेरे समस्त नित्यकर्मोंकी हानि न हो, वही मुझे बतलाओ। भद्रे! नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका छूटना ब्राह्मणके लिये बहुत बड़ी हानि है; अतः इससे बचनेके लिये तुम हिमालयसे मेरा उद्धार करो। ब्राह्मणोंका परदेशमें रहना कदापि उचित नहीं है। देश देखनेकी उत्कण्ठाने ही मुझसे यह अपराध कराया है। श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने घरमें मौजूद रहे, तभी उसके समस्त कर्मोंकी सिद्धि होती है और जो इस प्रकार प्रवास करता है, उसके नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी हानि ही होती है; अतः यशस्विनि! अब अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम ऐसी चेष्टा करो, जिससे मैं सूर्यास्तके पहले ही अपने घरपर पहुँच जाऊँ।

वरूथिनी बोली—महाभाग! ऐसा न कहिये। ऐसा दिन कभी न आवे, जब कि आप मुझे छोड़कर अपने घर चले जायँ। ब्राह्मणकुमार! यहाँसे अधिक रमणीय स्वर्ग भी नहीं है। इसीलिये हमलोग स्वर्गलोक छोड़कर यहीं रहा करती हैं। आपने मेरे मनको हर लिया है। मैं कामदेवके वशमें हूँ; आपको सुन्दर हार, वस्त्र, आभूषण, भक्ष्य-भोज्य तथा अङ्गराग आदि सभी भोग-सामग्री दूँगी। आप यहीं रहिये। यहाँ रहनेसे आपके शरीरमें कभी बुढ़ापा नहीं आयेगा; क्योंकि यह देवताओंकी भूमि है। यह यौवनकी पुष्टि करनेवाली है।

यों कहकर वह कमलनयनी अप्सरा बावली-सी हो गयी और 'मुझपर कृपा कीजिये' ऐसा मधुर वाणीमें कहती हुई सहसा अनुरागपूर्वक उनका आलिङ्गन करने लगी।

तब ब्राह्मणने कहा—अरी ओ दुष्टे! मेरे शरीरका स्पर्श न कर। जो तेरे ही जैसा हो, वैसे किसी अन्य पुरुषके पास चली जा। मैं तो किसी और भावसे प्रार्थना करता हूँ और तू और ही भावसे मेरे पास आती है। गार्हपत्य आदि तीनों अग्नियाँ ही मेरे आराध्य देव हैं। अग्निशाला ही मेरे लिये रमणीय स्थान है तथा कुशासनसे सुशोभित

वैसी ही मेरी प्रिया है। वरूथिनी! यदि ब्राह्मण भोगके लिये चेष्टा करे तो उसकी वह चेष्टा अच्छी नहीं मानी जाती। परन्तु यदि वह नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके पालनके लिये चेष्टा करता है तो वह इहलोकमें क्लेशयुक्त जान पड़नेपर भी परलोकमें उत्तम फल देनेवाली होती है।

वरूथिनी बोली—ब्रह्मन्! मैं वेदनासे मर रही हूँ। मेरी रक्षा करनेसे आपको परलोकमें पुण्यका ही फल मिलेगा और दूसरे जन्ममें भी अनेकानेक भोग प्राप्त होंगे। इस प्रकार मेरा मनोरथ पूर्ण करनेसे लोक-परलोक दोनों ही सधते हैं, दोनों ही आपको लाभ पहुँचानेमें सहायक होते हैं। यदि आप मेरी प्रार्थना ठुकरा देंगे तो मेरी मृत्यु होगी और आपको भी पाप लगेगा।

ब्राह्मणने कहा—वरूथिनी! मेरे गुरुजनोंने उपदेश दिया है कि परायी स्त्रीकी अभिलाषा कदापि न करे; अतः मैं तुझे नहीं चाहता। भले ही तू बिलखाया करे अथवा सूखकर दुबली हो जाय।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यों कहकर उन महाभाग ब्राह्मणने पवित्र हो जलका आचमन किया और गार्हपत्य-अग्निको प्रणाम करके मन-ही-मन कहा—'भगवन् अग्निदेव! आप ही सब कर्मोंकी सिद्धिके कारण हैं। आपसे ही आहवनीय और दक्षिणाग्निका प्रादुर्भाव हुआ है। आपको तृप्त करनेसे देवता वृष्टि करते और अन्न आदिकी वृद्धिमें कारण बनते हैं। अन्नसे ही सम्पूर्ण जगत्का जीवन-निर्वाह होता है और किसीसे नहीं। इस प्रकार आपसे ही जगत्की रक्षा होती है। इस सत्यके प्रभावसे मैं सूर्यास्त होनेके पहले ही अपने घर पहुँच जाऊँ। यदि कभी ठीक समयपर मैंने वैदिक कर्मका परित्याग न किया हो तो इस सत्यके प्रभावसे मैं आज घर पहुँचकर डूबनेसे पहले ही सूर्यको देखूँ। यदि कभी मेरे मनमें पराये धन तथा परायी स्त्रीकी अभिलाषा न हुई हो तो मेरा यह मनोरथ सिद्ध हो जाय।'

ब्राह्मणकुमारके ऐसा कहनेपर उनके शरीरमें गार्हपत्य-अग्निने प्रवेश किया; फिर तो वे ज्वालाओंके

बीचमें प्रकट हुए मूर्तिमान् अग्निदेवकी भाँति उस प्रदेशको प्रकाशित करने लगे। उधर उन तेजस्वी ब्राह्मणके प्रति उनकी ओर देखती हुई देवाङ्गनाका अनुराग और भी बढ़ गया। अग्निदेवके प्रवेश करनेपर वे ब्राह्मणकुमार जैसे आये थे, उसी प्रकार तुरंत वहाँसे चल दिये और एक ही क्षणमें घर पहुँचकर उन्होंने शास्त्रोक्त विधिसे सब कर्मोंका अनुष्ठान पूरा किया। उनके चले जानेके बाद उस सर्वाङ्गसुन्दरी अप्सराने लंबी-लंबी साँसें लेकर शेष दिन और रात्रि व्यतीत की। उसका हृदय ब्राह्मणके प्रति पूर्णरूपसे आसक्त हो गया था। वह बारंबार आहें भरती, हाहाकार करती, रोती और अपनेको मन्दभागिनी मानकर धिक्कारती थी। उस समय उसका मन आहार, विहार, सुरम्य वन तथा रमणीय कन्दराओंमें भी सुख नहीं पाता था।

मुने! कलि नामका एक गन्धर्व था, जो पहलेसे ही वरूथिनीमें आसक्त हो रहा था; किन्तु उस अप्सराने उसको फटकार दिया था। उस दिन

उसने वरूथिनीको विरहिणीकी अवस्थामें देखा तो मन-ही-मन विचार किया—'क्या कारण है, जो आज वरूथिनी इस पर्वतपर लंबी साँसें खींचती हुई म्लान-मुखसे विचर रही है?' इसका रहस्य जाननेके लिये कलिने उत्कण्ठापूर्वक बहुत देरतक ध्यान किया और समाधिके प्रभावसे उसने सब बातोंको भलीभाँति जान लिया। इसके बाद सोचा, 'अब समय बितानेकी आवश्यकता नहीं। यह वरूथिनी एक मनुष्यपर आसक्त हुई है। उसका रूप धारण कर लेनेपर यह निश्चय ही मेरे साथ रमण करेगी, अतः इसी उपायको कार्यमें लाऊँगा।'

ऐसा निश्चय करके गन्धर्वने अपने प्रभावसे ब्राह्मणका रूप धारण किया और जहाँ वरूथिनी बैठी थी, उधर ही विचरण करने लगा। उसे देखकर उस सुन्दरीके नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। वह पास आकर बारंबार कहने लगी—'ब्रह्मन्! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। आपके त्याग देनेपर मैं अपने प्राणोंका परित्याग कर दूँगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो आपको अत्यन्त कष्टदायक पाप लगेगा और आपकी सम्पूर्ण क्रियाएँ भी नष्ट हो जायँगी। यदि आपने मुझे अपनाया तो मेरी जीवनरक्षासे होनेवाला धर्म आपको अवश्य प्राप्त होगा।'

कलि बोला—सुन्दरी! क्या करूँ, एक ओर तो मेरी धार्मिक क्रिया नष्ट हो रही है और दूसरी ओर तुम प्राण देनेकी बात कहती हो। इससे मैं संकटमें पड़ गया हूँ। अच्छा, इस समय मैं तुमसे जैसा कहूँ, वैसा ही करनेके लिये तुम तैयार रहो तो तुम्हारे साथ मेरा समागम हो सकता है, अन्यथा नहीं।

वरूथिनीने कहा—ब्रह्मन्! प्रसन्न होइये; आप जो कहेंगे, वही करूँगी। इस समय आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना मेरा कर्तव्य है।

कलि बोला—सुन्दरी! सम्भोगके समय तुम आँखें बंद किये रहो, मेरी ओर दृष्टि न डालो तो

मेरे साथ तुम्हारा संसर्ग हो सकता है।

वरूथिनीने कहा—ऐसा ही होगा। आपका कल्याण हो। आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही हो। मुझे इस समय सब प्रकारसे आपकी आज्ञाके अधीन रहना है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर वह गन्धर्व वरूथिनीके साथ पुष्पित काननोंसे सुशोभित पर्वतके मनोरम शिखरोंपर, सुन्दर सरोवरोंमें, रमणीय कन्दराओंमें, नदियोंके किनारे तथा अन्य मनोरम प्रदेशोंमें आनन्दपूर्वक विहार करने लगा। सम्भोगके समय वरूथिनी अपनी आँखें बंद कर लेती और ब्राह्मणके तेजस्वी स्वरूपका चिन्तन किया करती थी। तत्पश्चात् समयानुसार ब्राह्मणके स्वरूपका ध्यान करते-करते उस अप्सराने गन्धर्वके वीर्यसे गर्भ धारण किया। वरूथिनीको गर्भिणी जानकर ब्राह्मणरूपधारी गन्धर्वने उसे आश्वासन दिया और प्रेमपूर्वक उससे विदा ले वह अपने घर चला गया। गर्भकी अवधि पूर्ण होनेपर प्रज्वलित अग्निकी भाँति तेजस्वी बालकका जन्म हुआ, मानो सूर्य अपनी किरणोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको

प्रकाशित कर रहा हो। वह बालक भगवान् भास्करकी भाँति स्वरोचिष् (अपनी किरणों)-से सुशोभित हो रहा था; इसलिये वह स्वरोचिष् नामसे ही विख्यात हुआ। वह महान् सौभाग्यशाली शिशु अपनी अवस्था और सद्गुणोंके साथ-ही-साथ प्रतिदिन उसी प्रकार बढ़ने लगा, जैसे चन्द्रमा अपनी कलाओंके साथ शुक्ल पक्षमें दिनोंदिन बढ़ता रहता है। महाभाग स्वरोचिष्ने क्रमशः वेद, धनुर्वेद तथा अन्यान्य विद्याओंको ग्रहण किया। धीरे-धीरे उसकी तरुण अवस्था आ गयी। एक दिन वह मन्दराचल पर्वतपर विचर रहा था। इतनेमें ही उसकी दृष्टि एक सुन्दरी कन्यापर पड़ी, जो भयसे व्याकुल हो रही थी। कन्याने भी उसे देखा और घबराकर कहा—'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' उसके नेत्र भयसे कातर हो रहे थे। स्वरोचिष्ने आश्वासन देते हुए कहा—'डरो मत; बताओ, क्या बात है?' वीरोचित वाणीमें उसके इस प्रकार पूछनेपर उस कन्याने बारंबार लंबी साँसें खींचते हुए अपना सारा हाल कह सुनाया।

कन्या बोली—वीरवर! मैं इन्दीवराक्ष नामक विद्याधरकी पुत्री हूँ। मेरा नाम मनोरमा है। मरुधन्वाकी पुत्री मेरी माता हैं। मन्दार विद्याधरकी कन्या विभावरी मेरी एक सखी है और पार मुनिकी पुत्री कलावती मेरी दूसरी सखी है। एक दिन मैं उन दोनोंके साथ परम उत्तम कैलास पर्वतके तटपर गयी। वहाँ मुझे एक मुनि दिखायी दिये, जिनका शरीर तपस्याके कारण अत्यन्त दुर्बल हो रहा था। भूखसे उनका कण्ठ सूख गया था। शरीरमें कान्तिका अभाव था और आँखोंकी पुतली भीतर धँसी हुई थी। यह देखकर मैंने उनका उपहास किया। इससे कुपित होकर उन्होंने मुझे शाप देते हुए कहा—'ओ नीच! अरी दुष्ट तपस्विनी! तूने मेरी हँसी उड़ायी है, इसलिये शीघ्र ही एक राक्षस तुझपर आक्रमण करेगा।' इस प्रकार शाप देनेपर मेरी सखियोंने मुनिको बहुत फटकारा और कहा—'तुम्हारी ब्राह्मणताको धिक्कार है। तुममें क्षमा न होनेके कारण तुम्हारी की हुई सारी तपस्या व्यर्थ है। जान पड़ता है, तुम क्रोधसे ही अत्यन्त दुर्बल हो रहे हो, तपस्यासे नहीं। ब्राह्मणका स्वभाव तो क्षमाशील होता है। क्रोधको काबूमें रखना ही तपस्या है।'

सखियोंकी ये बातें सुनकर उन अमिततेजस्वी साधुने उन दोनोंको भी शाप दे दिया—'एकके सब अङ्गोंमें कोढ़ हो जायगी और दूसरी क्षयरोगसे ग्रस्त होगी।' मुनिकी बात सच हुई, मेरी सखियोंको तत्काल वैसा ही रोग हो गया। इसी प्रकार मेरे पीछे-पीछे एक महान् राक्षस दौड़ा चला आ रहा है। वह पास ही तो गरज रहा है, क्या आपको उसकी भयंकर आवाज नहीं सुनायी देती। आज तीसरा दिन बीत रहा है, किन्तु वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता। महामते! मैं सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंका हृदय (रहस्य) जानती हूँ और यह सब आपको

दिये देती हूँ। आप इस राक्षससे मेरी रक्षा कीजिये। पिनाकधारी भगवान् रुद्रने पहले यह रहस्य स्वायम्भुव मनुको दिया था। मनुने वसिष्ठजीको, वसिष्ठजीने मेरे नानाको और नानाने दहेजके रूपमें मेरे पिताको दिया था। मैंने बाल्यावस्थामें अपने पितासे ही इसकी शिक्षा पायी थी। यह सम्पूर्ण अस्त्रोंका हृदय है, जो समस्त शत्रुओंका संहार करनेवाला है। आप इसे शीघ्र ही ग्रहण करें और ब्राह्मणके शापसे प्रेरित होकर आये हुए इस दुरात्माको मार डालें।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—स्वरोचिष्‌ने 'बहुत अच्छा' कहकर मनोरमाकी प्रार्थना स्वीकार की। फिर मनोरमाने आचमन करके रहस्य एवं उपसंहार-विधिके सहित वह सम्पूर्ण अस्त्रोंका हृदय उन्हें दे दिया। इसी बीचमें भयानक आकारवाला वह राक्षस जोर-जोरसे गर्जना करता हुआ शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने मनोरमाको पकड़ लिया। वह बेचारी 'बचाओ, बचाओ' कहती हुई करुणाभरी वाणीमें विलाप करने लगी। तब स्वरोचिष्‌को बड़ा क्रोध हुआ और उसने अत्यन्त भयंकर प्रचण्ड अस्त्र हाथमें ले उसे धनुषपर चढ़ाकर एकटक नेत्रोंसे राक्षसकी ओर देखा। यह देख वह निशाचर भयसे व्याकुल हो उठा और मनोरमाको छोड़कर विनीत भावसे बोला—'वीरवर! मुझपर प्रसन्न होइये, इस अस्त्रको शान्त कीजिये और मेरी बात सुनिये। आज आपने परम बुद्धिमान् ब्रह्ममित्रके दिये हुए अत्यन्त भयंकर शापसे मेरा उद्धार कर दिया। महाभाग! आपसे बढ़कर दूसरा कोई मेरा उपकारी नहीं है।'

स्वरोचिष्‌ने पूछा—महात्मा ब्रह्ममित्र मुनिने तुम्हें किस कारणसे और कैसा शाप दिया था?

राक्षस बोला—ब्रह्ममित्र मुनि आठों अङ्गोंसे

युक्त आयुर्वेदके ज्ञाता हैं। उन्होंने अथर्ववेदके तेरहवें अधिकारतकका ज्ञान प्राप्त किया है। मैं इस मनोरमाका पिता और खड्गधारी विद्याधरराज नलनाभका पुत्र इन्दीवराक्ष हूँ। पूर्वकालमें एक दिन मैंने ब्रह्ममित्र मुनिके पास जाकर प्रार्थना की—'भगवन्! मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्रका ज्ञान प्रदान कीजिये।' अनेकों बार विनीत भावसे प्रार्थना करनेपर भी जब उन्होंने मुझे आयुर्वेदकी शिक्षा नहीं दी, तब मैंने दूसरे उपायका अवलम्बन किया। जिस समय वे दूसरे विद्यार्थियोंको आयुर्वेद पढ़ाते, उस समय मैं भी अदृश्य रहकर वह विद्या सीखा करता। जब शिक्षा पूरी हो गयी, तब मुझे बड़ा हर्ष हुआ और मैं बार-बार हँसने लगा। हँसनेकी आवाज सुनकर मुनि मुझे पहचान गये और क्रोधसे गर्दन हिलाते हुए कठोर वचनोंमें बोले—'खोटी बुद्धिवाले विद्याधर! तूने राक्षसकी भाँति अदृश्य होकर मुझसे विद्याका अपहरण किया है और मेरी अवहेलना करके हँसी उड़ायी है, इसलिये मेरे शापसे तू राक्षस हो जा।' उनके

यों कहनेपर मैंने प्रणाम आदिके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। तब वे कोमल हृदयवाले ब्राह्मण मुझसे इस प्रकार बोले—'विद्याधर! मैंने जो बात कही है, वह अवश्य होगी, टल नहीं सकती। किन्तु तुम राक्षस होकर पुनः अपने स्वरूपको प्राप्त कर लोगे। निशाचरावस्थामें स्मरण शक्तिके नष्ट हो जानेपर क्रोधके वशीभूत हो जब तुम अपनी ही संतानको खा डालनेकी इच्छा करोगे, उस समय प्रचण्ड अस्त्रके तेजसे संतप्त होनेपर तुम्हें फिरसे चेत हो जायगा और पूर्ववत् अपने शरीरको धारण करके गन्धर्वलोकमें निवास करोगे।' महाभाग! मैं वही हूँ, आपने महान् भयदायी राक्षस-देहसे मेरा उद्धार किया है, अतः मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं अपनी पुत्री मनोरमाको आपकी सेवामें दे रहा हूँ। इसे पत्नीरूपमें ग्रहण करें। महामते! ब्रह्ममित्र मुनिसे सम्पूर्ण अष्टाङ्ग आयुर्वेदका जो मैंने अध्ययन किया है, वह सब आपको देता हूँ, स्वीकार करें।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यों कहकर विद्याधरने

अपने पूर्व रूपको धारण कर लिया। दिव्य वस्त्र, दिव्य माला और दिव्य आभूषण उसकी शोभा बढ़ाने लगे। फिर उसने स्वरोचिषको आयुर्वेद-विद्या प्रदान की और उसकी सेवामें अपनी कन्या सौंप दी। तदनन्तर स्वरोचिष्‌ने पिताद्वारा दी हुई मनोरमाके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। इसके बाद इन्दीवराक्ष पुत्रीको सान्त्वना दे दिव्य गतिसे अपने लोकको चला गया। फिर स्वरोचिष् अपनी सुन्दरी पत्नीके साथ उस उद्यानमें गया, जहाँ उसकी दोनों सखियाँ मुनिके शापवश रोगसे व्याकुल थीं। अब वह आयुर्वेदके तत्त्वोंका ज्ञाता हो चुका था; अतः रोगनाशक औषधों और रसोंका प्रयोग करके उसने उन दोनोंको रोगमुक्त कर दिया। व्याधिसे छुटकारा पानेपर वे दोनों सुन्दरी कन्याएँ अपने शरीरकी दिव्य कान्तिसे हिमालय पर्वतके उस रम्य प्रदेशको प्रकाशित करने लगीं।

इस प्रकार रोग-मुक्त हुई कन्याओंमेंसे एकने स्वरोचिषसे प्रसन्नतापूर्वक कहा—'प्रभो! मेरी बात सुनिये। मैं मन्दार विद्याधरकी पुत्री हूँ। मेरा नाम विभावरी है। उपकारी पुरुष! मैं अपनेको आपकी सेवामें दे रही हूँ, स्वीकार कीजिये। साथ ही आपको एक ऐसी विद्या दूँगी, जिससे सब जीवोंकी बोली आपकी समझमें आने लगेगी; अतः आप मुझपर कृपा करें।' धर्मज्ञ स्वरोचिष्‌ने 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब दूसरी कन्या इस प्रकार बोली—'आर्य! वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् ब्रह्मर्षि पार मेरे पिता हैं। कुमारावस्थासे ही ब्रह्मचर्यका पालन करनेके कारण उन्होंने विवाह नहीं किया था। एक बार पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरासे उनका सम्पर्क हो गया। इससे मेरा जन्म हुआ। मेरी माता इस निर्जन वनमें मुझे धरतीपर सुला अकेली

छोड़कर चली गयी। फिर एक महात्मा गन्धर्वने मुझे ले लिया और स्नेहपूर्वक लालन-पालन किया। एक बार देव-शत्रु अलिने मेरे पालक पितासे मुझे माँगा, किन्तु उन्होंने देनेसे इन्कार कर दिया। तब उस राक्षसने सोये हुए मेरे पिताको मार डाला। इस दुर्घटनासे मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं आत्महत्या करनेको तैयार हो गयी। उस समय भगवान् शङ्करकी धर्मपत्नी सत्यवादिनी सतीदेवीने मुझे ऐसा करनेसे रोका और कहा—'सुन्दरी! तू शोक मत कर। महाभाग स्वरोचिष् तेरे पति होंगे। उनका पुत्र मनु होगा। सब प्रकारकी निधियाँ आदरपूर्वक तेरी आज्ञाका पालन करेंगी और तुझे इच्छानुसार धन देंगी। वत्से! जिस विद्याके प्रभावसे तुझे वे निधियाँ प्राप्त होंगी, उसे तू मुझसे ग्रहण कर। यह महापद्मपूजित पद्मिनी नामकी विद्या है।' सत्यपरायणा दक्षकन्या सतीने मुझसे ऐसा ही कहा था। निश्चय ही आप स्वरोचिष् हैं। आज मैं अपने प्राणदाताको वह विद्या और यह शरीर अर्पण करती हूँ। आप प्रसन्न होकर मुझे स्वीकार करें।'

कलावतीकी यह प्रार्थना सुनकर स्वरोचिष्ने 'एवमस्तु' कहा। विभावरी और कलावतीकी स्नेहपूर्ण दृष्टिसे विवाहका अनुमोदन पाकर उन्होंने उन दोनोंका पाणिग्रहण किया। फिर अपनी तीनों पत्नियोंके साथ वे रमणीय वनों तथा झरनोंसे सुशोभित गिरिराजके शिखरपर विहार करने लगे। स्वरोचिष्ने छः सौ वर्षोंतक उन स्त्रियोंके साथ रमण किया। वे धर्मका विरोध न करते हुए सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान करते और विषयोंको भी भोगते थे। तदनन्तर स्वरोचिष्के विजय, मेरुनन्द तथा महाबली प्रभाव—ये तीन पुत्र हुए। इन्दीवरकी पुत्री मनोरमाने विजयको जन्म दिया था, विभावरीके गर्भसे मेरुनन्द और

कलावतीके गर्भसे प्रभाव उत्पन्न हुए थे। सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाली जो पद्मिनी नामकी विद्या थी, उसके प्रभावसे स्वरोचिष्ने अपने तीनों पुत्रोंके लिये तीन नगर बनवाये। पूर्व दिशामें कामरूप नामक पर्वतके ऊपर विजय नामका नगर बसाया और उसे अपने पुत्र विजयके अधिकारमें दे दिया। उत्तर दिशामें मेरुनन्दके लिये नन्दवती नामकी पुरी बनवायी, जिसकी चहारदीवारी बहुत ऊँची थी। कलावतीके पुत्र प्रभावके लिये दक्षिण देशमें उन्होंने ताल नामक नगर बसाया। इस प्रकार तीन नगरोंमें तीनों पुत्रोंको रखकर पुरुषश्रेष्ठ स्वरोचिष् अपनी पत्नियोंके साथ अत्यन्त मनोहर प्रदेशोंमें विहार करने लगे। एक दिन वे हाथमें धनुष लिये वनमें घूम रहे थे। उस समय उन्हें बहुत दूरपर एक सूअर दिखायी दिया। उसे देखकर उन्होंने धनुष खींचा, इतनेमें ही एक हरिणी उनके पास आकर बोली—'वीरवर! आप कृपा करके मुझपर ही बाण मारिये। इस सूअरको मारनेसे क्या लाभ। मुझको ही तुरंत मार गिराइये।

आपका चलाया हुआ बाण मुझे समस्त दुःखोंसे मुक्त कर देगा।'

स्वरोचिष्ने कहा—मुझे तेरे शरीरमें कोई रोग नहीं दिखायी देता; फिर क्या कारण है कि तू अपने प्राणोंको त्याग देना चाहती है?

मृगी बोली—जिस पुरुषमें मेरा चित्त लगा हुआ है, उसका मन दूसरी स्त्रियोंमें आसक्त है, अतः उसके बिना मेरी मृत्यु निश्चित है। ऐसी दशामें बाणोंकी चोट सहनेके सिवा मेरे लिये यहाँ दूसरी कौन-सी दवा है।

स्वरोचिष्ने कहा—भीरु! वह कौन-सा पुरुष है, जो तुझे नहीं चाहता? अथवा किसके प्रति तेरा अनुराग है, जिसे न पानेके कारण तू अपने प्राण त्याग देनेको तैयार हो गयी है?

मृगी बोली—आर्य! आपका कल्याण हो। मैं आपको ही प्राप्त करना चाहती हूँ। आपने ही मेरा चित्त चुराया है। इसीलिये मैं स्वेच्छासे मृत्युका वरण करती हूँ। आप मुझको बाण मारिये।

स्वरोचिष्ने कहा—देवि! तू चञ्चल कटाक्षवाली मृगी है और मैं मनुष्यरूपधारी जीव हूँ; फिर मेरे-जैसे पुरुषका तेरे साथ किस प्रकार संयोग होगा?

मृगी बोली—यदि मुझमें आपका चित्त अनुरक्त हो तो मेरा आलिङ्गन कीजिये। यदि आपका हृदय शुद्ध होगा तो मैं आपकी इच्छाके अनुसार कार्य करूँगी और इतनेसे ही मैं यह समझूँगी कि आपने मेरा बड़ा आदर किया।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब स्वरोचिष्ने उस हरिणीका आलिङ्गन किया। फिर तो वह तत्काल दिव्यरूपधारिणी देवीके रूपमें प्रकट हो गयी। यह देख स्वरोचिष्को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो?' वह प्रेम और लज्जासे कुण्ठित वाणीमें बोली—'महामते! मैं इस वनकी देवी हूँ। देवताओंके प्रार्थना करनेपर मैं आपकी सेवामें आयी हूँ, आप मेरे गर्भसे मनुको उत्पन्न कीजिये।'

वनदेवीके यों कहनेपर स्वरोचिष्ने उसके गर्भसे तत्काल ही अपने-जैसा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित था। उसके जन्म लेते ही देवताओंके यहाँ बाजे बजने लगे। गन्धर्वराज गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। नाग और तपस्वी ऋषि जलके छींटोंसे उस बालकका अभिषेक करने लगे। देवताओंने उसके ऊपर चारों ओरसे फूलोंकी वृष्टि की। उसके तेजको देखकर पिताने उसका नाम द्युतिमान् रखा, क्योंकि उसकी द्युतिसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं! वह महान् बलवान् और अत्यन्त पराक्रमी था। स्वरोचिष्का पुत्र होनेके कारण स्वारोचिषके नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई। तदनन्तर स्वरोचिष् अपनी स्त्रियोंके साथ ले तपस्या करनेके लिये दूसरे तपोवनमें चले गये।

वहाँ उनके साथ घोर तपस्या करके समस्त पापोंसे रहित हो वे निर्मल लोकोंको प्राप्त हुए। तत्पश्चात् भगवान् प्रजापतिने स्वारोचिषके पुत्र द्युतिमान्को मनुके पदपर प्रतिष्ठित किया। अब उनके मन्वन्तरका वर्णन सुनो—स्वारोचिष मन्वन्तरमें पारावत और तुषित नामके देवता तथा विपश्चित् नामक इन्द्र हुए। ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर तथा अर्ववीर—ये ही उस समयके सप्तर्षि थे। महात्मा स्वारोचिषके चैत्र और किम्पुरुष आदि सात पुत्र हुए, जो महान् पराक्रमी और पृथ्वीके पालक थे। जबतक स्वारोचिष मन्वन्तर था, तबतक इन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंने सारी पृथ्वीका राज्य भोगा। उनका मन्वन्तर द्वितीय कहलाता है। स्वरोचिष् और स्वारोचिषके जन्म और चरित्रका श्रवण करके श्रद्धालु मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

पद्मिनी विद्याके अधीन रहनेवाली आठ निधियोंका वर्णन

क्रौष्टुकिने कहा—भगवन्! आपने स्वरोचिष् तथा स्वारोचिषके जन्म एवं चरित्रका सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया। अब सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाली पद्मिनी विद्याके अधीन जो-जो निधियाँ हैं, उनका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! पद्मिनी नामकी जो विद्या है, उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीजी हैं। वे सम्पूर्ण निधियोंकी आधार हैं। पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील तथा शङ्ख—ये आठ निधियाँ हैं। देवताओंकी कृपा तथा साधु-महात्माओंकी सेवासे प्रसन्न होकर जब ये निधियाँ कृपा-दृष्टि करती हैं तो मनुष्यको सदा धन प्राप्त होता है। अब इनके स्वरूपका वर्णन सुनो। पद्म नामक जो प्रथम निधि है, वह सत्त्वगुणका आधार है। उसके प्रभावसे मनुष्य सोने, चाँदी और ताँबे आदि धातुओंका अधिक मात्रामें संग्रह एवं क्रय-विक्रय करता है। इतना ही नहीं, वह यज्ञोंका अनुष्ठान करता, दक्षिणा देता तथा सभामण्डप एवं देवमन्दिर बनवाता है। महापद्म नामकी जो दूसरी निधि है, वह भी सात्त्विक है। उसके आश्रित हुए मनुष्यमें सत्त्वगुणकी प्रधानता होती है। वह पद्मराग आदि मणि, मोती और मूँगा आदिका संग्रह एवं क्रय-विक्रय करता है। योगी पुरुषोंको दान देता और उनके लिये आश्रम बनवाता है तथा स्वयं भी उन्हींके स्वभावका हो जाता है। उसके पुत्र-पौत्र आदि भी उसी स्वभावके होते हैं। महापद्मनिधि मनुष्यकी सात पीढ़ियोंतक उसका त्याग नहीं करती। मकर नामकी तीसरी निधि तमोगुणी होती है। उसकी दृष्टि पड़नेपर सुशील मनुष्य भी प्रायः तमोगुणी बन जाता है। वह बाण, खड्ग, ऋष्टि, धनुष, ढाल तथा दंशन करनेवाली वस्तुओंका संग्रह करता, राजाओंके साथ मैत्री जोड़ता, शौर्यसे जीविका चलानेवाले क्षत्रियों तथा उनके प्रेमियोंको धन देता है। अस्त्र-शस्त्रोंके सिवा और किसी वस्तुके क्रय-विक्रयमें उसका मन नहीं लगता। यह निधि एक ही मनुष्यतक सीमित रहती है। उसके पुत्रोंका साथ नहीं देती। वह मनुष्य धनके कारण लुटेरोंके हाथसे अथवा संग्राममें मारा जाता है। कच्छप नामकी जो निधि है, उसकी दृष्टि पड़नेपर भी मनुष्यमें तमोगुणकी प्रधानता होती है। क्योंकि वह भी तामसी निधि है। वह मनुष्य सब व्यवहार पुण्यात्माओंके साथ

ही करता है। किन्तु किसीपर विश्वास नहीं करता। जैसे कछुआ अपने सब अङ्गोंको समेट लेता है, उसी प्रकार वह सब ओरसे रत्नोंका संग्रह करके उनकी रक्षाके लिये व्याकुल रहता है। धनके नष्ट हो जानेके भयसे न तो वह दान करता है और न उसे अपने उपभोगमें ही लाता है। अपितु उसे पृथ्वीमें गाड़कर रखता है। वह निधि भी एक ही पीढ़ीतक रहती है।

मुकुन्द नामकी जो पाँचवीं निधि है, वह रजोगुणमयी है। उसकी दृष्टि पड़नेपर मनुष्य रजोगुणी होता है और वीणा, वेणु एवं मृदङ्ग आदि बाद्योंका संग्रह करता है। वह गाने और नाचनेवालोंको ही धन देता तथा सूत, बन्दी, धूर्त एवं नट आदिको प्रतिदिन भोगकी वस्तुएँ अर्पित करता है। यह निधि भी एक ही मनुष्यतक रह जाती है। इससे भिन्न जो नन्द नामकी महानिधि है, वह रजोगुण और तमोगुण दोनोंसे संयुक्त है। उसकी दृष्टि पड़नेपर मनुष्य अधिक जड़ताको प्राप्त होता है। वह समस्त धातुओं, रत्नों और पवित्र धान्य आदिका संग्रह तथा क्रय-विक्रय करता है। महामुने! वह मनुष्य स्वजनों तथा घरपर आये हुए अतिथियोंका आधार होता है, परन्तु अपमानकी थोड़ी-सी भी बात नहीं सहन करता। जब कोई उसकी स्तुति करता है, तब वह बहुत प्रसन्न होता है। स्तुति करनेवाला याचक जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब उसे देता है। उसका स्वभाव कोमल बन जाता है। उसके बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं, जो संतानवती और अत्यन्त सुन्दरी होती हैं। नन्दनामक निधि आठ भागसे बढ़ते बढ़ते सात पीढ़ीतक मनुष्यका साथ देती है। वह सब पुरुषोंको दीर्घायु बनाती और दूरसे आये हुए बन्धु-बान्धवोंका भरण-पोषण करती है। परलोकके प्रति उसके हृदयमें आदर नहीं होता। इस निधिको पाया हुआ पुरुष सहवासियोंपर स्नेह नहीं रखता। पहलेके मित्रोंसे उदासीन हो जाता और दूसरोंसे प्रेम करता है। इसी प्रकार जो महानिधि सत्त्वगुण और रजोगुण दोनोंको साथ-साथ धारण करती है, उसका नाम नील है। उसके सम्पर्कमें आनेवाला पुरुष भी सत्त्वगुण एवं रजोगुणसे युक्त होता है। वह वस्त्र, कपास, धान्य, फल, फूल, मोती, मूँगा, शङ्ख, सीपी, काष्ठ तथा जलसे पैदा होनेवाली अन्यान्य वस्तुओंका संग्रह एवं क्रय-विक्रय करता है। वह मनुष्य तालाब और बावली बनवाता, बगीचे लगाता, नदियोंपर पुल बँधवाता तथा अच्छे-अच्छे वृक्षोंको रोपता है। चन्दन और फूल आदि भोगोंका उपभोग करके ख्याति लाभ करता है। यह नीलनिधि तीन पीढ़ियोंतक चलती है। शङ्ख नामकी जो आठवीं निधि है, वह रजोगुण और तमोगुणसे युक्त होती है तथा अपने स्वामीको भी ऐसे ही गुणोंसे युक्त बना देती है। ब्रह्मन्! यह निधि एक ही पुरुषतक सीमित रहती है, दूसरेको नहीं मिलती। क्रौष्टुके! जिसके पास शङ्ख नामक निधि होती है, उसके स्वरूपका वर्णन सुनो। वह अपने कमाये हुए अन्न और वस्त्रका अकेला ही उपभोग करता है। उसके कुटुम्बी लोग खराब अन्न खाते हैं। उन्हें पहननेको अच्छे वस्त्र नहीं मिलते। शङ्खनिधिसे युक्त मनुष्य सदा अपना ही पेट पालनेमें लगा रहता है। मित्र, भार्या, भ्राता, पुत्र तथा बधू आदिको कुछ भी नहीं देता। इस प्रकार ये निधियाँ मनुष्योंके अर्थकी अधिष्ठात्री देवी कहलाती हैं। जिस निधिका जैसा स्वभाव बतलाया गया है, उसकी दृष्टि पड़नेपर मनुष्य वैसे ही स्वभावका हो जाता है। पद्मिनी नामकी विद्या इन सब निधियोंकी स्वामिनी है। यह साक्षात् लक्ष्मीजीका स्वरूप है।

राजा उत्तमका चरित्र तथा औत्तम मन्वन्तरका वर्णन

क्रौष्टुकि बोले—ब्रह्मन्! आपने स्वारोचिष मन्वन्तरका वृत्तान्त मुझे विस्तारके साथ सुनाया, साथ ही मेरे प्रश्नके अनुसार आठ निधियोंका भी वर्णन किया। स्वायम्भुव मन्वन्तरका वर्णन तो पहले ही हो चुका है। अब उत्तम नामक तीसरे मन्वन्तरकी कथा सुनाइये।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजा उत्तानपादके सुरुचिके गर्भसे एक उत्तम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो महान् बलवान् और पराक्रमी था। शत्रु और मित्रमें तथा पुत्र और पराये मनुष्यमें उसका समान भाव था। वह धर्मका ज्ञाता था और दुष्टोंके लिये यमराजके समान भयङ्कर एवं साधु-पुरुषोंके लिये चन्द्रमाके समान आनन्ददायी था। राजकुमार उत्तमने बभ्रुकुमारी बहुलाके साथ विवाह किया था। वे सदा उसीमें आसक्त रहते थे। उनका मन और किसी काममें नहीं लगता था, स्वप्नमें भी उनका चित्त बहुलामें ही लगा रहता था। वे सदा रानीकी इच्छाके अनुसार ही चलते थे तो भी वह कभी उनके अनुकूल नहीं होती थी। एक समय दूसरे-दूसरे राजाओंके समक्ष ही रानीने राजाकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया। इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे कुपित सर्पकी भाँति फुफकारते हुए द्वारपालसे बोले—'दरबान! तू इस दुष्टहृदया स्त्रीको निर्जन वनमें ले जाकर छोड़ दे। यह मेरी आज्ञा है, अतः तुझे इसपर कुछ सोच-विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

तब राजाकी आज्ञाको अविचारणीय मानकर द्वारपाल रानीको रथपर बिठा वनमें छोड़ आया। राजाके द्वारा इस प्रकार निर्जन वनमें त्यागी जानेपर बहुलाने उनकी दृष्टिसे दूर होनेके कारण अपने ऊपर राजाका बहुत बड़ा अनुग्रह माना। उधर राजा अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते हुए समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है, कोई ब्राह्मण उनके दरबारमें आया और अत्यन्त दुःखितचित्त होकर इस प्रकार कहने लगा।

ब्राह्मण बोला—महाराज! मैं बहुत दुःखी हूँ, मेरी बात सुनिये; क्योंकि राजाके सिवा और किसीसे मनुष्योंकी संकटसे रक्षा नहीं हो सकती। रातको सोते समय मेरे घरका दरवाजा खोले बिना ही कोई मेरी स्त्रीको चुरा ले गया है। आप उसे पता लगाकर ला देनेकी कृपा करें। राजन्! हमारी आय और धर्मका छठा भाग आप वेतनके रूपमें ग्रहण करते हैं, इसलिये आप ही हमलोगोंके रक्षक हैं। आपसे रक्षित होनेके कारण ही मनुष्य रात्रिमें निश्चिन्त होकर सोते हैं।

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! आपकी स्त्री शरीरसे कैसी है, यह मैंने कभी नहीं देखा है। उसकी अवस्था क्या है, यह भी आपको ही बतलाना

होगा। साथ ही यह भी सूचित कीजिये कि आपकी ब्राह्मणीका स्वभाव कैसा है?

ब्राह्मण बोला—राजन्! मेरी स्त्रीकी दृष्टिसे क्रूरता टपकती है। उसकी कद तो बहुत ऊँची है, किन्तु बाँहें छोटी, मुँह दुबला-पतला और शरीर कुरूप है। यह मैं उसकी निन्दा नहीं करता, ठीक-ठीक हुलिया बतलाता हूँ। उसकी बातें बड़ी कड़वी होती हैं तथा स्वभावसे भी वह कोमल नहीं है। उसकी पहली अवस्था कुछ-कुछ बीत चुकी है।

राजाने कहा—ब्राह्मण! ऐसी स्त्री लेकर क्या करोगे? मैं तुम्हें दूसरी भार्या देता हूँ। अच्छे स्वभावकी स्त्री ही कल्याणमयी एवं सुख देनेवाली होती है। वैसी स्त्री तो केवल दुःखका ही कारण है। रूप और शील दोनोंसे हीन होनेके कारण वह स्त्री त्याग देनेयोग्य है।

ब्राह्मण बोला—राजन्! अपनी पत्नीकी रक्षा करनी चाहिये—यह श्रुतिका उत्तम आदेश है। उसकी रक्षा न करनेपर उससे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती है। वर्णसंकर अपने पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिरा देता है। पत्नी न होनेके कारण मेरे नित्यकर्म छूट रहे हैं। इससे प्रतिदिन धर्ममें बाधा आती है, जिसके कारण मेरा पतन अवश्यम्भावी है। उसके गर्भसे जो मेरी संतति होगी, वह धर्मका पालन करनेवाली होगी। प्रभो! इस प्रकार मैंने अपनी पत्नीका वृत्तान्त आपके सामने निवेदन किया है। आप उसे लाइये, क्योंकि आप ही प्रजाकी रक्षाके अधिकारी हैं।

ब्राह्मणकी ऐसी बात सुनकर और उसपर भलीभाँति विचार करके राजा उत्तम सब सामग्रियोंसे युक्त अपने विशाल रथपर आरूढ़ हुए और पृथ्वीपर इधर-उधर घूमने लगे। एक दिन एक बहुत बड़े वनमें किसी तपस्वीका उत्तम आश्रम दिखायी दिया। तब रथसे उतरकर वे उस आश्रममें गये। वहाँ उन्हें एक मुनिका दर्शन हुआ, जो कुशासनपर विराजमान थे और अपने तेजसे अग्निकी भाँति प्रज्वलित हो रहे थे। राजाको आया देख मुनि शीघ्रतापूर्वक उठकर खड़े हो गये और स्वागतपूर्वक उनका सम्मान करते हुए शिष्यसे बोले, 'अर्घ्य ले आओ।' शिष्यने धीरेसे कहा—'मुने! क्या इन्हें अर्घ्य देना उचित है? इस बातका भलीभाँति विचार करके जैसी आज्ञा दें, उसका पालन करूँ।' तब मुनिने राजाके वृत्तान्तको ध्यानद्वारा जानकर केवल आसन दे बातचीतके द्वारा उनका सत्कार किया।

ऋषिने पूछा—राजन्! मैं जानता हूँ, आप महाराज उत्तानपादके पुत्र उत्तम हैं। बताइये, किसलिये यहाँ आये हैं? इस वनमें कौन-सा कार्य सिद्ध करनेका विचार है?

राजाने कहा—मुने! एक ब्राह्मणके घरसे किसी अपरिचित व्यक्तिने उसकी स्त्रीको चुरा लिया है। उसीकी खोज करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। इस समय आपसे एक बात पूछता हूँ, कृपा करके बताइये। जब मैं आपके आश्रमपर आया तो प्रथम दृष्टि पड़ते ही आपने मुझे अर्घ्य देनेका विचार किया; किन्तु फिर उसे रोक क्यों दिया?

ऋषि बोले—राजन्! आपको देखकर मैंने जल्दीमें अर्घ्य देनेकी आज्ञा प्रदान कर दी थी; किन्तु इस शिष्यने मुझे सावधान किया। मेरे प्रसादसे यह भी मेरी ही भाँति संसारके भूत, भविष्य और वर्तमानका हाल जानता है। इसने कहा, 'विचारकर आज्ञा दीजिये।' तब मैंने भी आपका वृत्तान्त जान लिया। इसीलिये आपको विधिपूर्वक अर्घ्य नहीं दिया। राजन्! इसमें संदेह नहीं कि आप स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न

होनेके कारण अर्घ्य पानेके अधिकारी हैं तथापि हमलोग आपको अर्घ्यका उत्तम पात्र नहीं मानते।

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! मैंने जानकर या अनजानमें ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिससे बहुत दिनोंके पश्चात् आनेपर भी मैं आपसे अर्घ्य पानेका अधिकारी न रहा?

ऋषि बोले—राजन्! क्या आप इस बातको भूल गये कि आपने अपनी पत्नीका वनमें परित्याग किया है और उसके साथ ही आप धर्मको भी छोड़ बैठे हैं? एक पक्षतक भी नित्य-कर्म छोड़ देनेसे मनुष्य अस्पृश्य हो जाता है; फिर आपने तो एक वर्षसे उसको छोड़ रखा है। अतः आपके विषयमें क्या कहना है। नरेश्वर! पतिका स्वभाव कैसा ही हो, पत्नीको उचित है कि वह सदा पतिके अनुकूल रहे। इसी प्रकार पतिका भी कर्तव्य है कि वह दुष्ट स्वभाववाली पत्नीका भी पालन-पोषण करे।* ब्राह्मणकी वह पत्नी जिसका अपहरण हुआ है, सदा पतिके प्रतिकूल ही चलती है तथापि धर्मपालनकी इच्छासे वह आपके पास गया और पत्नीको खोजनेके लिये प्रेरित करता रहा। आप तो धर्मसे विचलित हुए दूसरे-दूसरे मनुष्योंको धर्ममें लगाते हैं; फिर जब आप स्वयं ही विचलित होंगे, तब आपको कौन धर्ममें लगायेगा।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिके यों कहनेपर राजा लज्जित हो गये। आपका कहना ठीक है, यों कहकर उन्होंने ब्राह्मणकी पत्नीके विषयमें पूछा—'भगवन्! आप भूत और भविष्यके यथार्थ ज्ञाता हैं। बताइये, ब्राह्मणकी पत्नीको कौन ले गया है?'

ऋषि बोले—राजन्! अद्रिके पुत्र बलाक नामके राक्षसने उसका अपहरण किया है। उत्पलावत वनमें जानेपर आप उस ब्राह्मणकी पत्नीको देख सकेंगे। जाइये, शीघ्र ही उस श्रेष्ठ ब्राह्मणका पत्नीसे संयोग कराइये, जिससे आपकी तरह उसे भी दिनोंदिन पापका भागी न होना पड़े।

तदनन्तर उन महामुनिको प्रणाम करके राजा उत्तम पुनः अपने रथपर आरूढ़ हुए और उनके बताये हुए उत्पलावत वनमें गये। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणकी पत्नीको देखा। उसका स्वरूप ठीक वैसा ही था, जैसा कि ब्राह्मणने बतलाया था। वह श्रीफल खा रही थी। राजाने उससे पूछा—'भद्रे! तुम इस वनमें कैसे आयीं? सब बातें स्पष्ट रूपसे बताओ। जान पड़ता है, तुम विशालके पुत्र सुशर्माकी स्त्री हो।'

ब्राह्मणीने कहा—मैं वनवासी ब्राह्मण अतिरात्रकी

---

* पक्षेण कर्मणो हान्या प्रयात्यस्पृश्यतां नरः। किमत्र वार्षिकी धर्म्य हानिस्ते नित्यकर्मणः॥
पत्न्यानुकूल्यता भाव्यं यथाशीलेऽपि भर्तरि। दुःशीलापि तथा भार्या पोषणीया नरेश्वर॥ (६९।५८-५९)

पुत्री हूँ और विशालके पुत्रकी, जिसका नाम अभी-अभी आपने बताया है, पत्नी हूँ। मुझे दुरात्मा राक्षस बलाक यहाँ हर लाया है। मैं घरके भीतर सो रही थी, उस समय इसने मेरा अपने भ्राता और माताासे वियोग कराया। मैं यहाँ बहुत दुखी रहती हूँ। उसने मुझे इस अत्यन्त गहन वनमें छोड़ रखा है। न तो मेरा उपभोग करता है और न मुझे खा ही डालता है। इसका कुछ कारण समझमें नहीं आता।

राजा बोले—ब्राह्मणकुमारी! क्या तुम्हें मालूम है कि वह राक्षस तुमको यहाँ छोड़कर कहाँ गया है? मुझे तुम्हारे पतिने ही यहाँ भेजा है।

ब्राह्मणीने कहा—वह निशाचर इसी वनके भीतर रहता है। यदि आपको उससे भय न हो तो इसमें प्रवेश करके देखिये।

तदनन्तर राजाने ब्राह्मणीके दिखाये हुए मार्गसे उस वनके भीतर प्रवेश किया और उस राक्षसको परिवारके साथ बैठे देखा। राजाको देखते ही राक्षसने दूरसे ही पृथ्वीपर मस्तक टेक दिया और उनके निकट गया।

राक्षस बोला—राजन्! आपने मेरे घरपर पधारकर मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा की है। मैं आपके राज्यमें निवास करता हूँ; अतः बताइये, आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ? आप यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये और इस आसनपर बैठिये।

राजाने कहा—निशाचर! तुमने मेरा सब काम कर दिया। सब प्रकारसे मेरा आतिथ्य-सत्कार हो गया। अब बताओ, तुम ब्राह्मणकी स्त्रीको क्यों उठा लाये हो? यदि कहीं तुम उसे अपनी भार्या बनानेके लिये लाये हो तो यह ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि वह सुन्दरी नहीं है और तुम्हारे घरमें दूसरी स्त्रियाँ भी हैं ही। यदि उसे अपना भक्ष्य बनानेका विचार रहा हो तो अबतक तुमने

उसे खाया क्यों नहीं? इसका कारण बताओ।

राक्षस बोला—राजन्! हमलोग मनुष्यको नहीं खाते। मनुष्यभक्षी राक्षस दूसरे ही हैं। हम तो पुण्यका फल ही खाया करते हैं। इसके सिवा यदि कोई स्त्री या पुरुष हमारा आदर या अनादर कर दे तो हम उसके अच्छे-बुरे स्वभावको भी खा जाते हैं। यदि मनुष्यके क्षमा-स्वभावको हम खा लें तो वे क्रोधी बन जाते हैं और दुष्ट-स्वभावको भक्षण कर लें तो वे उत्तम गुणोंसे सम्पन्न होते हैं। महाराज! मेरे घरमें अनेक युवती स्त्रियाँ हैं, जो रूपमें अप्सराओंकी समानता करनेवाली हैं। उनके रहते हुए मनुष्यकी स्त्रियोंमें मेरा अनुराग कैसे हो सकता है!

राजाने कहा—निशाचर! यदि यह ब्राह्मणी न तो तुम्हारे उपभोगके कामकी है न आहारके तो ब्राह्मणके घरमें प्रवेश करके तुमने इसका अपहरण क्यों किया?

राक्षस बोला—राजन्! वह श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदमन्त्रोंका

जाता है। मैं जिस किसी यज्ञमें जाता हूँ, रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ करके वह मुझे दूर भगा देता है। मन्त्रोंद्वारा उसके उच्चाटन करनेसे हमलोग भूखे रह जाते हैं। ऐसी दशामें हम कहाँ जायँ। प्रायः सभी यज्ञोंमें वह ऋत्विज बना करता है। इसीलिये हमने उसके सामने यह विघ्न खड़ा किया है, क्योंकि कोई भी पुरुष पत्नीके बिना यज्ञ-कर्म करनेके योग्य नहीं रहता। राजन्! मैं आपका विनीत सेवक हूँ, आपके राज्यकी प्रजा हूँ; अतः आप अपने किसी कार्यके लिये आज्ञा देकर मुझपर कृपा कीजिये।

राजाने कहा—राक्षस! तुम पहले कह चुके हो कि हम मनुष्यके स्वभावको खा जाते हैं; अतः हम तुमसे जो काम कराना चाहते हैं, उसे सुनो। तुम इस ब्राह्मणीकी दुष्टताको भक्षण कर लो, जिससे यह विनयशील हो जाय। इसके बाद इसे इसके घरमें पहुँचा आओ। इतना कर देनेपर मैं समझूँगा कि तुमने अपने घरपर आये हुए मुझ अतिथिका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर दिया।

राजाके यों कहनेपर वह राक्षस अपनी मायासे ब्राह्मणीके शरीरमें प्रवेश कर गया और अपनी शक्तिसे उसके दुष्ट स्वभावको खा गया। फिर तो ब्राह्मणकी पत्नी भयंकर दुष्टतासे मुक्त हो गयी और राजासे बोली—'महाराज! मुझे अपने ही कर्मके फलसे अपने महात्मा स्वामीसे विलग होना पड़ा है। यह निशाचर तो उसमें निमित्तमात्र बना है। न इसका दोष है, न मेरे महात्मा पतिका दोष है; सब दोष मेरा ही है। क्योंकि मनुष्यको अपनी ही करनीका फल भोगना पड़ता है। पूर्वजन्ममें मैंने किसीका वियोग कराया होगा, वह आज मुझपर भी आ पड़ा है। इसमें दूसरेका क्या दोष है।'

राक्षस बोला—राजन्! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं इस ब्राह्मणीको इसके स्वामीके घरपर पहुँचा आता हूँ; इसके सिवा और भी यदि मेरे योग्य कोई कार्य हो तो उसके लिये आज्ञा दीजिये।

राजाने कहा—निशाचर! यह कार्य हो जानेपर मैं समझूँगा कि तुमने मेरा सारा कार्य सिद्ध कर दिया। वीर! यदि किसी कार्यके समय मैं तुम्हारा स्मरण करूँ तो तुम मेरे पास आ जाना।

'बहुत अच्छा' कहकर राक्षसने उस ब्राह्मणपत्नीको, जो दुष्टता दूर हो जानेसे अब अच्छे स्वभावकी हो गयी थी, ले जाकर उसके पतिके घरमें पहुँचा दिया। राजा भी उसे भेजकर मन-ही-मन इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अब मैं अपने विषयमें क्या करूँ, क्या करनेसे मेरा भला होगा। महात्मा महर्षिने मुझे अर्घ्यके अयोग्य बतलाया है, यह तो मेरे लिये बड़े कष्टकी बात है। अब मैं क्या करूँ। पत्नीको तो मैंने त्याग दिया, अब उसका पता कैसे लगे अथवा उन ज्ञानचक्षु महर्षिसे ही चलकर पूछूँ।' यों विचारकर राजा फिर रथपर आरूढ़ हुए और उस स्थानपर गये, जहाँ वे त्रिकालवेत्ता धर्मात्मा महामुनि रहते थे। रथसे उतरकर उन्होंने मुनिके पास जा उन्हें प्रणाम किया और राक्षससे मिलने, ब्राह्मणीके दिखायी देने तथा उसकी दुष्टताके दूर होने आदिका सब वृत्तान्त ठीक-ठीक कह सुनाया।

ऋषिने कहा—राजन्! तुमने जो कुछ किया है, वह सब मुझे पहलेसे ही मालूम हो चुका है। मेरे पास तुम जिस कार्यसे आये हो, वह भी मुझसे छिपा नहीं है। मनुष्योंके लिये पत्नी धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धिका कारण है। तुमने उसका त्याग करके विशेषतः धर्मको भी त्याग दिया है। राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी क्यों न हो, पत्नीके न होनेपर वह अपने कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रहता। तुमने अपनी

पत्नीका त्याग करके अच्छा नहीं किया। जैसे स्त्रियोंके लिये पतिका त्याग अनुचित है, उसी प्रकार पुरुषोंके लिये स्त्रीका त्याग भी उचित नहीं है।*

राजा बोले—भगवन्! क्या करूँ, यह सब मेरे कर्मोंका फल है। मैं सदा पत्नीके अनुकूल ही चलता था, फिर भी वह मेरे अनुकूल न हुई। इसलिये मैंने उसे त्याग दिया। उसके वियोगकी पीड़ासे मेरी अन्तरात्मा व्यथित हो रही है। मैंने उसे वनमें छोड़ा था; पता नहीं वह कहाँ चली गयी। अथवा उसे वनमें सिंह, व्याघ्र या निशाचरोंने तो नहीं खा लिया।

ऋषिने कहा—राजन्! उसे सिंह, व्याघ्र या निशाचरोंने नहीं खाया है। वह इस समय रसातलमें है। उसका चरित्र अभीतक नष्ट नहीं हुआ है।

राजा बोले—ब्रह्मन्! यह तो बड़ी अद्भुत बात है। उसे पातालमें कौन ले गया और वह अबतक दूषित कैसे नहीं हुई है, यह सब यथार्थ रूपसे बतलानेकी कृपा करें।

ऋषिने कहा—पातालमें नागराज कपोत एक विख्यात पुरुष हैं। एक दिन उन्होंने तुम्हारी त्यागी हुई सुन्दरी पत्नीको महान् वनके भीतर भटकते हुए देखा। उसका सारा हाल जानकर वे उसपर आसक्त हो गये और उसे पाताललोकमें ले गये। नागराज कपोतके नन्दा नामकी एक पुत्री तथा मनोरमा नामकी स्त्री है। नन्दाने बहुलाको देखकर सोचा, 'हो-न-हो यह मेरी माताकी सौत बननेवाली है।' यों विचारकर वह उसे अपने घरमें ले गयी और अन्तःपुरमें छिपाकर रख दिया। कपोतने जब-जब नन्दासे बहुलाको माँगा, तब-तब उसने उनको कोई उत्तर नहीं दिया। तब पिताने उसे शाप दे दिया—'जा, तू गूँगी हो जायगी।' इस प्रकार शापग्रस्त होकर नन्दा उसके साथ रहती है। नागराज, उसे ले गये और उसकी कन्याने उसे अपने संरक्षणमें रख लिया।

राजा बोले—महामुने! मुझे तो बहुला प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है; किन्तु वह मेरे प्रति सदा दुष्टताका ही बर्ताव करती है। इसका क्या कारण है?

ऋषिने कहा—पाणिग्रहणके समय सूर्य, मंगल और शनैश्चरकी तुम्हारे ऊपर तथा शुक्र और बृहस्पतिकी तुम्हारी पत्नीके ऊपर दृष्टि थी। उस मुहूर्तमें उसपर चन्द्रमा और बुध भी, जो परस्पर शत्रुभाव रखनेवाले हैं, अनुकूल थे और तुम्हारे ऊपर प्रतिकूल। इसीलिये तुम्हें पत्नीकी प्रतिकूलताका विशेष कष्ट सहना पड़ा है। अच्छा, अब जाओ; धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करो और पत्नीके साथ रहकर सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान करो।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महर्षिके यों कहनेपर राजा उन्हें प्रणाम करके रथपर आरूढ़ हुए और अपने नगरको लौट आये। वहाँ आनेपर उन्होंने उस ब्राह्मणको देखा, जो अपनी शीलवती भार्याके साथ बहुत प्रसन्न था।

ब्राह्मणने कहा—नृपश्रेष्ठ! आप धर्मके ज्ञाता हैं। आपने मेरी पत्नीको लाकर मेरे धर्मकी रक्षा की है। इससे मैं कृतार्थ हो गया।

राजा बोले—द्विजश्रेष्ठ! आप तो अपने धर्मका पालन करके कृतार्थ हो रहे हैं, किन्तु मैं संकटमें पड़ा हूँ; क्योंकि मेरी पत्नी घरमें नहीं है।

ब्राह्मणने कहा—महाराज! यदि आपकी पत्नी जीवित है और व्यभिचारिणी नहीं हुई है तो आप स्त्रीके बिना रहकर पाप क्यों कमा रहे हैं।

---

*त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम्। अत्याज्यो हि यथा भर्ता स्त्रीणां भार्या तथा नृणाम्॥ (७१। ११)

राजा बोले—ब्रह्मन्! यदि मैं पत्नीको लाऊँ भी तो वह सदा मेरे प्रतिकूल रहती है; अतः उससे दुःख ही मिलेगा, सुख नहीं। क्योंकि वह मुझसे मैत्री नहीं रखती। आप कोई ऐसा यत्न करें जिससे वह मेरे अधीन हो जाय।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! आपके प्रति रानीका प्रेम होनेके लिये श्रेष्ठ यज्ञ करना उपकारक होगा; अतः मित्रकी कामना रखनेवाले लोग जिसका अनुष्ठान किया करते हैं, वह मित्रविन्दानामक यज्ञ मैं आरम्भ करता हूँ। राजन्! जिन स्त्री-पुरुषोंमें परस्पर प्रेम न हो, उनमें मित्रविन्दा प्रेम उत्पन्न करती है। इसलिये आपके कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे मैं उसीका अनुष्ठान करूँगा।

ब्राह्मणके यों कहनेपर राजाने यज्ञकी सब सामग्री एकत्रित करायी और उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने मित्रविन्दा-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। उसने राजाकी स्त्रीमें प्रेम उत्पन्न करनेके लिये एक-एक करके सात यज्ञ किये। जब उसे यह निश्चय हो गया कि रानीके हृदयमें राजाके प्रति मित्रभाव जाग्रत् हो गया है, तब उसने राजासे कहा—'महाराज! अब आप अपनी प्रिय पत्नीको अपने साथ रखिये और उसके साथ उत्तम भोग भोगते हुए श्रद्धापूर्वक यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने उस महापराक्रमी सत्यप्रतिज्ञ निशाचरको स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वह राक्षस राजाके पास आ पहुँचा और प्रणाम करके बोला—'क्या आज्ञा है?' तब राजाने विस्तारके साथ अपना सारा वृत्तान्त निवेदन किया। फिर वह राक्षस पातालमें जाकर रानीको ले आया। आनेपर उसने हार्दिक अनुरागके साथ पतिको देखा और बड़ी प्रसन्नताके साथ बारंबार कहा—'मुझपर प्रसन्न होइये।' तब राजाने अपनी मानिनी स्त्रीको हृदयसे लगाकर कहा—'प्रिये! तुम बार बार मुझसे ऐसा क्यों कहती हो। मैं तो तुमपर प्रसन्न ही हूँ।'

रानी बोली—महाराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे एक याचना करती हूँ; आप उसे पूर्ण करके मेरा आदर कीजिये।

राजाने कहा—प्रिये! तुम्हें जो कुछ भी अभीष्ट हो, वह निःशङ्क होकर कहो। तुम्हारे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मैं तुम्हारे अधीन हूँ।

रानी बोली—नाथ! मेरे लिये नागराजने मेरी सखीको शाप दे दिया, जिससे वह गूँगी हो गयी है। यदि आप मेरे प्रेमवश उसके संकटका निवारण कर सकें तो उसकी मूकता दूर करनेके लिये प्रयत्न कीजिये। यदि ऐसा हो गया तो मैं समझूँगी, मेरा सब कार्य सिद्ध हो गया।

तब राजाने उस ब्राह्मणको बुलाकर पूछा—'विप्रवर! इसमें कैसी क्रिया होनी चाहिये, जो उसकी मूकता दूर कर सके?'

ब्राह्मण बोला—राजन्! मैं आपके कहनेसे सारस्वती इष्टि करूँगा, जिससे आपकी ये महारानी

अपनी सखीकी वाक्‌शक्तिको कार्यक्षम बनाकर उसके ऋणसे उऋण हो जायँ।

तदनन्तर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने सारस्वती इष्टि आरम्भ की। उसने नन्दाकी मूकता दूर करनेके लिये एकाग्रचित्त होकर सारस्वत सूक्तोंका जप किया। इससे वह नागकन्या बोलने लगी। उन दिनों गर्गमुनि रसातलमें रहा करते थे। उन्होंने नन्दाको बताया, 'तुम्हारी सखी बहुलाके पतिने यह अत्यन्त दुष्कर उपकार किया है।' यह बात जानकर शीघ्रगामिनी नन्दा राजाके नगरमें आयी और अपनी सखी महारानी बहुलाको छातीसे लगाकर तथा राजाकी भी बारंबार प्रशंसा करके आसनपर बैठकर मधुर वाणीमें बोली—'वीर!

आपने इस समय मेरा जो उपकार किया है, इससे मेरा हृदय आकृष्ट हो गया है। अतः मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो। राजन्! तुम्हें एक महापराक्रमी पुत्र प्राप्त होगा और इस पृथ्वीपर उसका अखण्ड राज्य रहेगा। वह सब शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मपरायण, बुद्धिमान् एवं मन्वन्तरका स्वामी मनु होगा।

राजाको इस प्रकार वर देकर नागराज-कन्या नन्दा अपनी सखीको हृदयसे लगा पाताललोकको चली गयी। तदनन्तर रानीके साथ विहार एवं प्रजापालन करते हुए राजा उत्तमके कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। फिर महात्मा राजाको रानी बहुलाके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ,जो पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रकी भाँति कान्तिमान् था। उसके जन्म लेनेपर समस्त प्रजाको महान् आनन्द हुआ। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उसे देखकर मुनियोंने कहा—'यह राजा उत्तमके वंशमें और उत्तम समयमें उत्पन्न हुआ है तथा इसका प्रत्येक अङ्ग उत्तम है; इसलिये यह औत्तम नामसे विख्यात होगा।'

इस प्रकार राजा उत्तमका पुत्र औत्तम नामक मनु हुआ। अब उसके प्रभावका वर्णन सुनो। जो राजा उत्तमके उपाख्यान और औत्तमके जन्मकी कथा प्रतिदिन सुनता है, उसका कभी किसीसे द्वेष नहीं होता। इस चरित्रको सुनने और पढ़नेवालेका कभी प्रिय पत्नी, पुत्र अथवा बन्धुओंसे वियोग नहीं होता। औत्तम मन्वन्तर तीसरा कहा जाता है। उसमें स्वधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन तथा वशवर्ती—ये देवताओंके पाँच गण थे। इनका जैसा नाम, वैसा ही गुण था। ये पाँचों देवगण यज्ञभोगी माने गये हैं। ये सभी गण बारह-बारह व्यक्तियोंके समुदाय हैं। उक्त मन्वन्तरमें सुशान्ति नामक इन्द्र हुए, जो सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इन्द्रपदको प्राप्त हुए थे। आज भी मनुष्य विघ्नोंका नाश करनेके लिये सुशान्तिके नामाक्षरोंसे विभूषित एक गाथाका गान किया करते हैं। वह इस प्रकार है—

सुशान्तिर्देवराट् कान्तः सुशान्तिं सम्प्रयच्छति।
सहितः शिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्त्तिभिः।

'शिव, सत्य एवं वशवर्ती आदि देवगणोंके साथ परम सुन्दर देवराज सुशान्ति उत्तम शान्ति प्रदान करते हैं।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—औत्तम मनुके अज, परशुचि और दिव्य—ये तीन पुत्र थे, जो देवताओंके समान तेजस्वी तथा महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके मन्वन्तरमें उन्हींके वंशज इस पृथ्वीका पालन करते रहे। इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है, यह बात पहले बतलायी जा चुकी है। महात्मा वसिष्ठके सात पुत्र ही इस तीसरे मन्वन्तरमें सप्तर्षि थे। इस प्रकार यह तीसरे मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब तामस मनुके चौथे मन्वन्तरका वर्णन किया जाता है। यद्यपि तामस मनुका जन्म मनुष्येतर योनिमें हुआ था तो भी उन्होंने अपने यशसे त्रिभुवनको आलोकित कर दिया था। ब्रह्मन्! अन्य सभी मनुओंकी भाँति चौथे मनुका जन्म भी अलौकिक है। उसे बतलाता हूँ, सुनो।

तामस मनुकी उत्पत्ति तथा मन्वन्तरका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस पृथ्वीपर स्वराष्ट्र नामक एक विख्यात राजा हो गये हैं, जो बड़े पराक्रमी थे। उन्होंने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया था और वे संग्राममें कभी पीठ नहीं दिखाते थे। राजाके मन्त्रीकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने राजाको बहुत बड़ी आयु प्रदान की थी। राजाके सौ स्त्रियाँ थीं, किन्तु वे उनकी भाँति बड़ी आयुसे युक्त न होनेके कारण समयानुसार मृत्युको प्राप्त हुईं। इसी प्रकार धीरे-धीरे राजाके मन्त्री और सेवक भी कालके गालमें चले गये। उन सबके अभावमें राजाका चित्त उद्विग्न रहने लगा। प्रतिदिन उनकी शक्ति क्षीण होने लगी। उन्हें वीर्यसे हीन एवं दुखी जानकर विमर्द नामके एक राजाने आक्रमण किया और उनको राज्यच्युत कर दिया। राज्यसे च्युत होनेपर वे विरक्त हो वनमें चले गये और वितस्ता (झेलम) नदीके तटपर रहकर तपस्या करने लगे। वे गर्मीमें पञ्चाग्नि सेवन करते, बरसातमें मैदानमें रहकर वर्षाके जलको शरीरपर सहते और जाड़ेकी ऋतुमें पानीके भीतर शयन करते, निराहार रहते एवं उत्तम व्रतोंका पालन करते। एक बार वर्षाकालमें जब कि वे तपस्या कर रहे थे, लगातार कई दिनोंतक वृष्टि होती रही। इससे बाढ़ आ गयी। राजा भी जलकी प्रखर धारामें बह गये। चारों ओर अन्धकार छा रहा था। जलमें बहते-बहते उन्हें संयोगवश एक हरिणी मिल गयी। उन्होंने उसकी पूँछ पकड़ ली, फिर उस प्रवाहके साथ बहते और अन्धकारमें इधर उधर भटकते हुए राजा किसी तरह तटपर पहुँचे। वहाँ भी बहुत दूरतक कीचड़ थी, जिसको पार करना अत्यन्त ही कठिन था; तथापि वे हरिणीकी पूँछसे खिंचते हुए उस कीचड़से पार हो एक वनमें जा पहुँचे। हरिणीके स्पर्शसे उन्हें आनन्दका अनुभव होने लगा। उस अन्धकारमें भ्रमण करते हुए वे कामदेवके वशीभूत हो गये। राजाको अनुरागवश अपनी पीठका स्पर्श करते जान उस वनके भीतर मृगीने कहा—'राजन्! आप काँपते हुए हाथोंसे मेरी पीठका स्पर्श क्यों करते हैं? आपके कार्यकी सिद्धि तो किसी और ही प्रकारसे हो गयी है।'

राजाने पूछा—मृगी! तू कौन है? और मनुष्यकी तरह कैसे बोलती है?

मृगी बोली—राजन्! मैं पहले आपकी प्यारी

पत्नी थी। मेरा नाम उत्पलावती था। मैं दृढधन्वाकी पुत्री और आपकी सौ रानियोंमें प्रधान थी।

राजाने पूछा—उत्पलावती तो बड़ी पतिव्रता और धर्मपरायणा थी। वह ऐसी किस प्रकार हुई? उसने कौन-सा ऐसा कर्म किया था, जिससे उसे मृगीकी योनिमें आना पड़ा।

मृगी बोली—राजन्! मैं बाल्यावस्थामें जब पिताके घरपर थी, सखियोंके साथ एक दिन वनमें घूमने गयी थी। वहाँ मैंने मृगीके साथ समागम करते हुए एक मृगको देखा। मैं उसके बिलकुल निकट थी, अतः मैंने उस मृगीको मारा। मुझसे डरकर वह मृगी अन्यत्र चली गयी। तब मृगने कुपित होकर कहा—'ओ मूर्खे! तू क्यों इतनी मतवाली हो रही है, तेरी इस दुष्टताको धिक्कार है।' उस मृगकी मनुष्यके समान वाणी सुनकर मैं डर गयी और बोली—'तुम कौन हो?' उसने उत्तर दिया—'मैं निर्वृतिचक्षु नामक मुनिका पुत्र हूँ। मेरा नाम सुतपा है। मृगीसे सम्भोग करनेकी इच्छा होनेके कारण मैं मृग हो गया। प्रेमवश मैंने इस मृगीका अनुसरण किया था और इसने भी मेरी अभिलाषा की थी; परन्तु तूने आकर मुझसे उसका वियोग करा दिया, इसलिये मैं तुझे अभी शाप देता हूँ।' मैंने कहा—'मुने! मैंने अनजानमें आपका अपराध किया है; अतः कृपा करके मुझे शाप न दीजिये।' मेरे यों कहनेपर वे मुनि इस प्रकार बोले—'यदि तुझे अपनेको दे सकूँ—तेरे गर्भसे पुत्र उत्पन्न कर सकूँ तो तुझे शाप नहीं दूँगा।' मैंने कहा—'मैं न तो मृगी हूँ और न वनमें मृगीका रूप धारण करके ही घूमती हूँ; अतः मेरी ओरसे अपना मन हटा लीजिये। आपको दूसरी कोई मृगी मिल जायगी।' मेरी यह बात सुनकर मुनिकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उनका ओठ काँपने लगा। वे बोले—'ओ नादान! तू कहती है मैं मृगी नहीं हूँ तो ले तू मृगी ही हो जायगी।' तब मैं अत्यन्त दुःखित हो मुनिको प्रणाम करके बोली—'मुने! मुझपर प्रसन्न होइये। मैं अभी बालिका हूँ। बोलनेका ढंग नहीं जानती। मुनिवर! पिताके न रहनेपर ही स्त्री स्वयं अपना पति चुनती है। मेरे पिताजी तो अभी जीवित हैं, फिर कैसे मैं आपका वरण कर सकती हूँ।* अथवा सारा अपराध मेरा ही है, फिर भी आप प्रसन्न होइये। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ।' तब मुनिश्रेष्ठ सुतपाने कहा—'मेरी बात झूठी नहीं हो सकती। तू मरनेपर इसी वनमें मृगी होगी। उस समय सिद्धवीर्य मुनिके पुत्र महाबाहु लोल तेरे गर्भमें आयेंगे। उनके गर्भमें आते ही तुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण होगा, फिर स्मरण-शक्ति प्राप्त करके तू मानवोंकी भाँति बोलने लगेगी। उस गर्भके उत्पन्न होनेपर तू मृगीके शरीरसे मुक्त हो जायगी और पतिसे समादृत हो उन लोकोंमें जायगी, जहाँ कुकर्मी मनुष्य कदापि नहीं जा सकते। लोल भी बड़े पराक्रमी होंगे और अपने पिताके शत्रुओंको मारकर सारी पृथ्वी अपने अधिकारमें कर लेंगे। तत्पश्चात् वे मनुके पदपर प्रतिष्ठित होंगे।' इस प्रकार शाप मिलनेपर मैं तिर्यग्योनिमें आयी हूँ। आपके शरीरका स्पर्श होनेमात्रसे मेरे उदरमें गर्भ स्थापित हो गया है।

मृगीके यों कहनेपर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा—'मेरा पुत्र मेरे शत्रुओंको परास्त करके इस पृथ्वीपर मनु होगा, यह कितने आनन्दकी बात है।' तदनन्तर कुछ कालके पश्चात् मृगीने उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया।

---

* पितर्यसति नारीभिर्व्रियते हि पतिः स्वयम्॥ नास्ति तातेऽर्थं चाहं नृपोऽपि मुनिसत्तम। (७४। ३४-३५)

उसके उत्पन्न होनेपर सम्पूर्ण भूत आनन्दका अनुभव करने लगे। विशेषतः राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई। मृगी भी शापसे छूटकर उत्तम लोकोंको चली गयी। तदनन्तर सब ऋषियोंने आकर उसकी भावी समृद्धि देख उस बालकका नामकरण किया—'तामसी योनिमें पड़ी हुई माताके गर्भसे इसका जन्म हुआ है, इसलिये यह बालक संसारमें तामस नामसे विख्यात होगा।' तत्पश्चात् पिता अपने पुत्र तामसका लालन-पालन करने लगे। जब तामसको कुछ समझ हुई तो उसने पितासे पूछा—'तात! आप कौन हैं? मैं आपका पुत्र किस प्रकार हुआ? मेरी माता कौन हैं और आप किसलिये यहाँ आये हैं? यह सब सच-सच बताइये।'

तब पिताने अपने राज्यसे च्युत होने आदिसे लेकर सब वृत्तान्त पुत्रको बतलाया। ये सब बातें सुनकर तामसने भगवान् सूर्यकी आराधना की और उनसे उपसंहारसहित सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र प्राप्त किये। अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता होकर उसने सम्पूर्ण शत्रुओंको परास्त किया और उन्हें पिताके पास ले आकर उनकी आज्ञा मिलनेपर छुटकारा दिया। वह सदा अपने धर्मके पालनमें लगा रहता था। उसके पिता भी शरीर त्यागनेके पश्चात् तप और यज्ञसे उपार्जित पुण्यलोकोंमें गये। सारी पृथ्वीको जीतकर तामस राजा हुआ और फिर मनुके पदपर प्रतिष्ठित हुआ। अब तामस मन्वन्तरका वर्णन सुनो। उसमें सत्य, सुधी, सुरूप और हरि—ये चार देवगण हुए। इनमेंसे एक-एक गणमें सत्ताईस-सत्ताईस देवता हैं। उन देवताओंके इन्द्रका नाम शिखी था। वे अत्यन्त बली और महापराक्रमी थे। उन्होंने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इस पदको प्राप्त किया था। ज्योतिर्धर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर—ये ही सात उस समयके सप्तर्षि थे। नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु और जङ्घ आदि महाबली राजा तामस मनुके पुत्र थे।
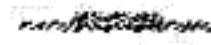
रैवत मनुकी उत्पत्ति और उनके मन्वन्तरका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन्! पाँचवें मनुका नाम रैवत था। उनकी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें ऋतवाक् नामसे प्रसिद्ध एक महर्षि थे। उनके बहुत समयतक कोई पुत्र नहीं हुआ। दीर्घ कालके पश्चात् हुआ भी तो रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें उसका जन्म हुआ। उन्होंने बालकके जातकर्म आदि संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये। उपनयन आदि भी कराये, किन्तु वह सुशील न हो सका। जबसे उसका जन्म हुआ, तभीसे वे महर्षि भी दीर्घकालव्यापी रोगसे ग्रस्त हो गये। उसकी माता भी कोढ़ आदिसे पीड़ित हो बहुत दुःख उठाने लगी। बालकके पिता अत्यन्त दुःखी होकर सोचने लगे—'यह कैसा अनर्थ प्राप्त हुआ!' उधर उस दुष्टबुद्धिवाले पुत्रने दूसरे मुनिकुमारकी स्त्रीका अपहरण कर लिया। इससे खिन्नचित्त होकर ऋतवाक्ने कहा—'मनुष्योंका बिना पुत्रके रहना अच्छा है; किन्तु कुपुत्रका होना कदापि उत्तम नहीं है। कुपुत्र तो पिता-माताके हृदयको सदा ही सालता रहता है और स्वर्गमें गये हुए पितरोंको भी नरकमें गिरा देता है। वह तो केवल माता-पिताको दुःख देनेके लिये ही होता है। उस पापात्मा पुत्रके जन्मको धिक्कार है। जिनके पुत्र सब लोगोंके प्रिय, परोपकारी, शान्त तथा उत्तम कर्मोंमें लगे रहनेवाले होते हैं, वे ही धन्य हैं। मुझे इस जन्ममें कुपुत्रके कारण सुख नहीं मिला और परलोकसे विमुख होना पड़ा।

कुपुत्रका आश्रय लेनेवाला। मेरा यह अधम जन्म केवल नरकमें ले जानेवाला है, उत्तम गतिकी प्राप्ति करानेवाला नहीं।'

इस प्रकार अत्यन्त दुष्ट पुत्रके दुराचारोंसे ऋतवाक् मुनिका हृदय जलने लगा। उन्होंने गर्गमुनिसे इसका कारण पूछा।

ऋतवाक् बोले—महामुने! पूर्वकालमें उत्तम व्रतका पालन करते हुए मैंने सब वेदोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया और उन्हें समाप्त करके वैदिक विधिके अनुसार स्त्रीके साथ विवाह किया; फिर स्त्रीको साथ रखकर वेदों और स्मृतियोंमें बताये हुए सभी कर्तव्य कर्मोंका अनुष्ठान किया। आजतक किसी भी क्रियाके अनुष्ठानमें न्यूनता नहीं आने दी। मुने! 'पुम्' नामके नरकसे डरते हुए मैंने गर्भाधानकी विधिसे पुत्रोत्पत्तिका उद्देश्य रखकर स्त्रीके साथ समागम किया है, कामोपभोगके लिये नहीं। यह सब होनेपर भी ऐसे कुपुत्रका जन्म क्यों हुआ? क्या यह मेरे दोषसे अथवा अपने दोषसे उत्पन्न हुआ है, जो अपनी दुष्टतासे हमारे लिये दुःखदायी और बन्धुजनोंके लिये शोककारक हो गया है?

गर्गने कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारा यह पुत्र रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें उत्पन्न हुआ है, अतः दूषित समयमें जन्म ग्रहण करनेके कारण यह तुम्हारे लिये दुःखदायी हो गया है।

ऋतवाक् बोले—मेरे एक ही पुत्र था सो भी रेवती नक्षत्रके अन्तिम भागमें उत्पन्न होनेके कारण इसमें ऐसी दुष्टता आ गयी; इसलिये रेवतीका शीघ्र ही पतन हो जाय।

मुनिके इस प्रकार शाप देते ही रेवती नक्षत्र आकाशसे गिरा। सारा संसार चकितचित्त होकर यह दृश्य देख रहा था। वह नक्षत्र कुमुदगिरिके चारों ओर गिर पड़ा। वहाँके वन, गुफाएँ तथा झरने आदि सहसा उद्भासित हो उठे। रेवती नक्षत्रके गिरनेसे कुमुदगिरिका नाम रैवतक पर्वत हो गया। उस नक्षत्रकी जो कान्ति थी, वह कमलमण्डित सरोवरके रूपमें प्रकट हुई। उस समय उस सरोवरसे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्याका प्रादुर्भाव हुआ। वह रेवतीकी कान्तिसे प्रकट हुई थी, इसलिये प्रमुच मुनिने उसे देखकर उसका नाम रेवती रख दिया। वह उनके आश्रमके पास ही प्रकट हुई थी, इसलिये वे ही पिताकी भाँति उसका पालन-पोषण करने लगे। जब कन्या यौवनावस्थामें पदार्पण कर चुकी, तब प्रमुच मुनि उसके लिये योग्य वर पूछनेके विचारसे अग्निशालामें गये। उनके प्रश्न करनेपर अग्निदेवने उत्तर दिया—'इस कन्याके स्वामी राजा दुर्गम होंगे, जो महाबली महापराक्रमी, प्रियवक्ता और धर्मवत्सल हैं।'

इसी बीचमें मृगयाके प्रसङ्गसे राजा दुर्गम मुनिके आश्रमपर आ पहुँचे। वे प्रियव्रतके वंशमें उत्पन्न अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी थे। उनके

पिताका नाम विक्रमशील था और वे कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। आश्रममें पहुँचनेपर जब उन्हें ऋषि नहीं दिखायी दिये, तब उन्होंने रेवतीको 'प्रिये' कहकर सम्बोधित किया और पूछा—'सुन्दरी! बताओ तो सही, मुनिश्रेष्ठ प्रमुच इस आश्रमसे कहाँ गये हैं? मैं उन्हें प्रणाम करना चाहता हूँ।'

मुनि अग्निशालामें बैठे हुए थे, वहींसे राजाका वार्तालाप और 'प्रिये' सम्बोधन सुनकर वे तुरंत ही बाहर निकले। उन्होंने देखा, राजोचित चिह्नोंसे युक्त महात्मा राजा दुर्गम विनीत भावसे सामने खड़े हैं। उन्हें देखकर मुनिने गौतम नामक शिष्यसे कहा—'गौतम! इन महाराजके लिये अर्घ्य लाओ।' राजा अर्घ्य स्वीकार करके जब आसनपर विराजमान हुए, तब महामुनि प्रमुचने स्वागतपूर्वक पूछा—'राजन्! आपके घर, सेना, खजाना, मित्र, भृत्य, मन्त्री तथा शरीरकी कुशल तो है न?'

राजाने कहा—सुव्रत! आपकी कृपासे मेरे यहाँ सब कुशलसे हैं, कहीं भी कुशलका अभाव नहीं है।

ऋषि बोले—राजन्! मेरे यहाँ एक कन्या है। इसके लिये वर ढूँढ़नेकी इच्छासे मैंने अग्निदेवसे पूछा था—'इसका पति कौन होगा?' अग्निदेवने कहा—'राजा दुर्गम ही इसके स्वामी होंगे।' इसलिये अब आप मेरी दी हुई इस कन्याको ग्रहण करें। आपने भी 'प्रिये' कहकर इसको सम्बोधित किया है, अतः अब क्यों विचार करते हैं।

मुनिकी बात सुनकर राजा दुर्गम मौन रह गये। तब महर्षि प्रमुच अपनी कन्याका वैवाहिक कार्य सम्पन्न करनेको उद्यत हुए। अपने विवाहके लिये पिताको उद्यत देख कन्याने विनयसे मस्तक झुकाकर कहा—'पिताजी! यदि आपका मुझपर प्रेम है तो कृपा करके मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही कीजिये।'

ऋषि बोले—भद्रे! ऋतवाक् नामसे विख्यात तपस्वी मुनिने रेवती नक्षत्रपर क्रोध करके उसे नक्षत्रमण्डलसे नीचे गिरा दिया है।

कन्याने कहा—पिताजी! क्या ऋतवाक् मुनिने ही ऐसी तपस्या की है, आपने नहीं? यदि आप

भी तपस्वी हैं तो रेवती नक्षत्रको पुनः आकाशमें स्थापित कीजिये। आप उसी नक्षत्रमें मेरा विवाह क्यों नहीं करते?

ऋषि बोले—भद्रे! तेरा कल्याण हो, अब तू प्रसन्न हो जा। मैं तेरे लिये रेवती नक्षत्रको पुनः चन्द्रमाके मार्गमें स्थापित करता हूँ।

तदनन्तर महामुनि प्रमुचने अपनी तपस्याके प्रभावसे रेवती नक्षत्रको पुनः पहलेकी ही भाँति चन्द्रमण्डलसे संयुक्त कर दिया। फिर उसी नक्षत्रमें वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए कन्याका विधिपूर्वक विवाह किया और प्रसन्न होकर अपने

जामातासे कहा—'राजन्! बताइये, मैं इस विवाहमें दहेजके रूपमें आपको क्या दूँ? मेरी तपस्या अप्रतिहत है। मैं आपको दुर्लभ वस्तु भी दे सकता हूँ।'

राजाने कहा—मुने! मेरा जन्म स्वायम्भुव मनुके वंशमें हुआ है। अतः मैं आपकी कृपासे ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो मन्वन्तरका स्वामी हो।

ऋषि बोले—राजन्! तुम्हारी यह कामना पूर्ण होगी। तुम्हारा पुत्र मनु होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका उपभोग करेगा और धर्मका ज्ञाता होगा।

तब राजा उस स्त्रीको साथ ले अपने नगरको चले गये। उनसे रेवतीके गर्भसे रैवतका जन्म हुआ, जो सब धर्मोंसे सम्पन्न और मनुष्योंसे अजेय थे। वे सब शास्त्रोंके ज्ञाता और वेदविद्याके विशारद थे। उनके मन्वन्तरमें सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अमिताभ—ये चार देवगण थे। इनमेंसे प्रत्येक गणमें चौदह-चौदह देवता थे। इन चारों देवगणोंके स्वामी विभु नामक इन्द्र थे, जिन्होंने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इस पदको प्राप्त किया था। हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य, महामुनि तथा वेद-वेदान्तोंके पारगामी महाभाग वसिष्ठ—ये सात रैवत मन्वन्तरके सप्तर्षि थे। बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य तथा सत्यक आदि रैवत मनुके पुत्र थे।

चाक्षुष मनुकी उत्पत्ति और उनके मन्वन्तरका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! यह मैंने तुम्हें पाँचवें मन्वन्तरकी कथा सुनायी है। अब चाक्षुष मनुके छठे मन्वन्तरका वृत्तान्त सुनो। ब्रह्मन्! वे पूर्वजन्ममें ब्रह्माजीके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे, इसलिये इस जन्ममें भी उनका नाम चाक्षुष ही हुआ। राजर्षि महात्मा अनमित्रकी पत्नी भद्राने एक पुत्रको जन्म दिया, जो बहुत ही विद्वान्, पवित्र, पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण रखनेवाला और समर्थ था। उस पुत्रको गोदमें लेकर माता बारंबार पुचकारती, प्यारसे बुलाती और स्नेहवश छातीसे चिपका लेती थी; किन्तु वह तो पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण रखनेवाला था, अतः माताकी गोदमें पड़ा-पड़ा हँसने लगा। इसपर माता बोली—'बेटा! यह क्या? मैं तो डर गयी हूँ; तुम्हारे मुखपर यह हास्य कैसा? क्या तुम्हें असमयमें ही बोध हो गया? क्या तुम कोई शुभ देख रहे हो?'

पुत्र बोला—माँ! क्या तुम नहीं देखती; सामने जो यह बिल्ली खड़ी है मुझे खा जाना चाहती है। दूसरी ओर जातहारिणी मुझे हड़प लेनेको तैयार है। यह अदृश्यभावसे खड़ी है। इधर तुम पुत्र-प्रेमके कारण अत्यन्त स्नेहवश मेरी ओर देखती, बारंबार मुझे बुलाती और छातीसे लगाती हो। तुम्हारे शरीरमें रोमाञ्च हो आता है; वात्सल्य-स्नेहके कारण तुम्हारे नेत्र आँसुओंसे भीग रहे हैं। यही सब देखकर मुझे हँसी आ गयी। जैसे ये दोनों स्वार्थवश स्निग्ध हृदयसे मेरी ओर देखती हैं, उसी प्रकार तुम भी स्वार्थको लेकर ही मुझसे स्नेह करती जान पड़ती हो। अन्तर इतना ही है कि बिल्ली और जातहारिणी तो मुझे अभी खा जाना चाहती हैं और तुम धीरे-धीरे मुझसे प्राप्त होनेवाले उपभोगयोग्य फलकी कामना रखती हो।

माताने कहा—बेटा! मैं उपकारके लिये नहीं, प्रेमके कारण ही तुम्हें छातीसे लगाती हूँ। यदि इससे तुम्हें प्रसन्नता नहीं होती तो इसका

अर्थ यह है कि तुमने मुझे त्याग दिया। लो, तुमसे प्राप्त होनेवाले स्वार्थका मैंने परित्याग कर दिया।

यों कहकर वह बालकको वहीं छोड़ सूतिका गृहसे बाहर निकल गयी। उसी समय जातहारिणीने उस शुद्धात्मा बालकको हड़प लिया और उसे ले जाकर राजा विक्रान्तकी पत्नीके शयन-गृहमें सुला दिया। फिर रानीके नवजात पुत्रको ले जाकर दूसरेके घरमें रख दिया और उसके बालकको ले जाकर अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार नवजात शिशुओंको चुरानेवाली वह क्रूर राक्षसी तीसरे घरके बालकको खा लिया करती थी। बालकोंके चुराने और बदलनेका काम वह प्रतिदिन करती थी। राजा विक्रान्तने अपने घरमें आये हुए बालकका क्षत्रियोचित संस्कार कराया और बड़ी प्रसन्नताके साथ नामकरण-संस्कारकी विधि पूरी करके उसका नाम आनन्द रखा। जब बालक कुछ बड़ा हुआ, तब उसका उपनयन संस्कार करते समय आचार्यने कहा—'वत्स! पहले अपनी माँके पास जाकर उन्हें प्रणाम करो।' गुरुकी बात सुनकर बालक हँस पड़ा और बोला—'गुरुदेव! मैं किस माताको प्रणाम करूँ—जन्म देनेवाली अथवा पालन करनेवालीको? मैं राजा अनमित्रके घरमें उनकी धर्मपत्नी गिरिभद्रा देवीके गर्भसे उत्पन्न हुआ; किन्तु जातहारिणी मुझे उठा ले आयी और यहाँ हैमिनीके पास छोड़कर इसके पुत्रको स्वयं उठा ले गयी। फिर उसे भी विप्रवर बोधके गृहमें ले जाकर उसने रख दिया और उनके पुत्रको हड़पकर भक्षण कर लिया। रानी हैमिनीका पुत्र वहाँ ब्राह्मणोचित संस्कारोंके साथ पालित हो रहा है और मेरा यहाँ आप संस्कार करा रहे हैं। मुझे आपकी आज्ञाका पालन करना है; अतः बताइये, किस माताके पास प्रणाम करनेके लिये जाऊँ?'

गुरु बोले—बेटा! यह बड़ा गहन संकट उपस्थित हुआ। मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आता। मोहसे मेरी बुद्धि भ्रान्त हो रही है।

आनन्दने कहा—ब्रह्मर्षे! संसारकी ऐसी ही व्यवस्था है। इसमें मोहके लिये कहाँ अवसर है। सोचिये तो कौन किसका पुत्र है और कौन किसका बन्धु। जीव जन्म लेनेके बादसे ही मनुष्योंका सम्बन्धी होता है, किन्तु मरते ही उसके सभी सम्बन्धी छूट जाते हैं। यहाँ भी जिसका जन्म हुआ है और जन्मके साथ ही बन्धु-बान्धवोंसे सम्बन्ध जुड़ गया है, उस देहका अन्त होते ही सारा सम्बन्ध टूट जाता है। इसीलिये मैं कहता हूँ, संसारमें रहनेवाले जीवका कोई भी बन्धु-बान्धव नहीं है। भला, कौन किसीके साथ सदा ही बन्धुत्व निभाता है। मैंने तो इसी जन्ममें दो माताएँ और दो पिता प्राप्त किये। फिर यदि दूसरी देह धारण करनेपर ये सम्बन्ध बदलें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। अतः अब मैं तपस्या करूँगा। आप विशाल नामक ग्रामसे इस राजाके पुत्रको, जो चैत्र नामसे विख्यात है, यहाँ बुला लीजिये।

आनन्दकी बात सुनकर राजा अपनी स्त्री और बन्धु बान्धवोंके साथ बड़े विस्मयमें पड़े और उसकी ओरसे ममता हटाकर उन्होंने उसे वन जानेकी अनुमति दे दी। फिर अपने पुत्र चैत्रको बुलाकर उसे राज्य करनेके योग्य बनाया और जिसने पुत्र-बुद्धिसे उसका पालन किया था, उस ब्राह्मणका भी भलीभाँति सम्मान किया। आनन्द तपस्यामें लगे थे। उन्हें तपस्या करते देख ब्रह्माजीने पूछा—'वत्स! बताओ तो सही, किसलिये इतना कठोर तप करते हो?

आनन्दने कहा—भगवन्! मैं आत्मशुद्धिके लिये तपस्या कर रहा हूँ। बन्धनके हेतुभूत जो मेरे कर्म हैं, उनका नाश हो जाय—यही इस तपस्याका उद्देश्य है।

ब्रह्माजी बोले—जिसके कर्म-भोगका अधिकार क्षीण हो जाता है, वही मुक्तिके योग्य होता है। जिसके पास कर्मोंका संचय है, वह नहीं। तुम तो सत्त्वाधिकारी हो, मुक्ति कैसे पा सकोगे। तुम्हें छठा मनु होना है; चलो, अपने अधिकारका पालन करो। तुम्हारे लिये तपस्याकी आवश्यकता नहीं है। मनुकी मर्यादाका पालन करके तुम मुक्त हो जाओगे।

ब्रह्माजीके यों कहनेपर परम बुद्धिमान् आनन्दने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और तपस्यासे विरत होकर मनुका कार्य पूर्ण करनेके लिये वहाँसे चल दिये। ब्रह्माजीने उन्हें तपस्यासे हटाते समय चाक्षुष नामसे सम्बोधित किया था, इसलिये वे उसी नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने राजा उग्रकी कन्या विदर्भासे विवाह किया और उसके गर्भसे विख्यात पराक्रमी—अनेक पुत्र उत्पन्न किये। चाक्षुष मन्वन्तरमें आर्य्य, प्रसूत, भव्य, यूथग और लेख—ये पाँच देवगण थे। इन सभी गणोंमें आठ-आठ देवताओंका संनिवेश था। सब देवता यज्ञभोजी एवं अमृताशी थे। इन सबके स्वामी मनोजव नामक इन्द्र थे, जिन्होंने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंका आधिपत्य प्राप्त किया था। उस समय सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात सप्तर्षि थे। ऊरु, पूरु और शतद्युम्न आदि महाबली नरेश चाक्षुष मनुके पुत्र थे, जिन्होंने इस पृथ्वीका राज्य किया। इस समय वैवस्वत नामके सातवें मनु राज्य करते हैं। उनके मन्वन्तरमें जो देवता आदि हुए हैं, उनका वर्णन सुनो।

वैवस्वत मन्वन्तरकी कथा तथा सावर्णिक मन्वन्तरका संक्षिप्त परिचय

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा भगवान् सूर्यकी पत्नी हैं। उनके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ, जो विख्यात यशस्वी और अनेक विषयोंके ज्ञानमें पारङ्गत थे। विवस्वान्के पुत्र होनेके कारण ही वे वैवस्वत कहलाये। जब भगवान् सूर्य संज्ञाकी ओर देखते तो वे अपनी आँखें मूंद कर लेती थीं। इससे रुष्ट होकर सूर्यने संज्ञासे यह निष्ठुर वचन कहा—'ओ मूर्खे! तू मुझे देखकर सदा नेत्रोंका संयम करती (आँखें मूँद लेती) है। इसलिये तेरे गर्भसे प्रजाजनोंको संयम (शासन)-में रखनेवाला यम उत्पन्न होगा।'

यह सुनकर संज्ञादेवी भयसे व्याकुल हो उठीं। उनकी दृष्टि चञ्चल हो गयी। यह देख सूर्यने फिर कहा—'तूने इस समय मुझे देखकर

अपनी दृष्टि चञ्चल की है, इसलिये चञ्चल लहरोंसे युक्त नदी तेरी कन्याके रूपमें उत्पन्न होगी। तदनन्तर पतिके शापसे संज्ञाने एक पुत्र और पुत्रीको जन्म दिया। पुत्रका नाम यम हुआ और पुत्री यमुना नामसे विख्यात महानदी हुई। संज्ञा सूर्यके तेजको बड़े कष्टसे सहन करती थी। वह उसके लिये असह्य था। उसने सोचा—'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँ जानेसे मुझे शान्ति मिलेगी और मेरे स्वामी मुझपर कुपित भी नहीं होंगे?' इस तरह अनेक प्रकारसे विचार करके प्रजापतिकुमारी संज्ञाने पिताके घरका आश्रय लेना ही ठीक समझा। वहाँ जानेके लिये उद्यत होकर उसने अपनी छायाको ही सूर्यदेवकी पत्नी बनाया और उससे कहा—'तू इस घरमें रह और मेरी ही तरह सब संतानों तथा भगवान् सूर्यके प्रति भी उत्तम बर्ताव करना।'

यों कहकर संज्ञादेवी अपने पिताके घर चली गयीं। वहाँ उन्होंने त्वष्टा प्रजापतिका दर्शन किया, उन्होंने भी बड़े आदरके साथ पुत्रीका स्वागत-सत्कार किया। वे कुछ कालतक वहाँ रहीं। इसके बाद पिताने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाते हुए कहा—'बेटी! तुम तीनों लोकके स्वामी भगवान् सूर्यकी पत्नी हो। अतः तुम्हें अधिक समयतक पिताके घरमें नहीं ठहरना चाहिये। अब तुम स्वामीके घर जाओ। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।'

पिताके यों कहनेपर संज्ञाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चली गयीं। वे सूर्यके तेजसे बहुत डरती थीं और उनके तापका सामना करना नहीं चाहती थीं; इसलिये उत्तरकुरुमें जाकर घोड़ीके रूपमें रहने और तपस्या करने लगीं। उधर छायासंज्ञाको ही संज्ञा समझकर भगवान् सूर्यने उससे दो पुत्र और एक मनोहर कन्या उत्पन्न की। छायासंज्ञा अपनी संतानोंको जितना प्यार करती थी, उतना संज्ञाके पुत्र-पुत्रीको नहीं। मनु तो उसके इस बर्तावको सह लेते थे, किन्तु यमसे सहन नहीं हुआ। उन्होंने क्रोधमें आकर उसे मारनेके लिये लात उठायी, किन्तु फिर क्षमा-भावका आश्रय ले उसके शरीरपर लात नहीं लगायी। तब छायासंज्ञाने कुपित हो यमको शाप दिया—'मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूँ, किन्तु तुम मर्यादाका उल्लङ्घन करके मुझे मारनेके लिये लात उठा रहे हो; इसलिये तुम्हारा यह पैर आज ही पृथ्वीपर गिर पड़ेगा।'

माताका दिया हुआ शाप सुनकर यम भयसे व्याकुल हो उठे और अपने पिताके पास जा उन्हें प्रणाम करके बोले—'पिताजी! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है; ऐसा तो कभी किसीने भी नहीं देखा होगा कि माता वात्सल्य छोड़कर अपने पुत्रको शाप दे डाले। दुर्गुणी पुत्रोंके प्रति भी माताका दुर्भाव नहीं होता।' यमराजकी यह बात सुनकर भगवान् सूर्यने छायासंज्ञाको बुलाकर पूछा—'संज्ञा कहाँ गयी?' वह बोली—'नाथ! मैं ही तो त्वष्टा प्रजापतिकी कन्या और आपकी पत्नी संज्ञा हूँ। आपने मुझसे ही ये संतान उत्पन्न किये हैं।' सूर्यने कई बार घुमा-फिराकर पूछा, किन्तु उसने सच्ची बात नहीं बतायी। तब सूर्यदेव उसे शाप देनेको उद्यत हुए, यह देख उसने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। असली बातका पता लगनेपर भगवान् सूर्य विश्वकर्माके घर गये। विश्वकर्माने अपने घर पधारे हुए त्रिलोकपूजित सूर्यदेवका बड़ी भक्तिके साथ पूजन किया। फिर संज्ञाका पता पूछनेपर उन्होंने कहा—'भगवन्! वह मेरे घरपर आयी अवश्य थी, किन्तु मैंने पुनः उसे

आपके ही घर भेज दिया।' तब सूर्यने समाधिस्थ होकर देखा, वह घोड़ीका रूप धारणकर उत्तरकुरु देशमें तपस्या कर रही है। उसकी तपस्याका एक ही उद्देश्य है, मेरे स्वामीकी आकृति सौम्य एवं शुभ हो जाय।' सूर्यको उसकी तपस्याका उद्देश्य ज्ञात हो गया; अतः उन्होंने विश्वकर्मासे कहा—'आप मेरे तेजको छाँट दीजिये।' तब उन्होंने संवत्सररूप चक्रवाले सूर्यके तेजको छाँट दिया, उस समय देवताओंने उनकी बड़ी प्रशंसा की। तदनन्तर देवताओं और ऋषियोंने सम्पूर्ण त्रिभुवनके पूजनीय भगवान् सूर्यका स्तवन आरम्भ किया—

देवा ऊचुः

नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः।
यजुःस्वरूपरूपाय साम्नां धामवते नमः॥
ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः।
शुद्धज्योतिःस्वरूपाय विशुद्धायामलात्मने॥
वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने।
नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये॥
सर्वकारणभूताय निष्ठाय ज्ञानचेतसाम्।
नमः सूर्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे॥
भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः।
शर्वरीहेतवे चैव संध्याज्योत्स्नाकृते नमः॥

देवता बोले—भगवन्! ऋग्वेदस्वरूप आपको नमस्कार है। सामवेदरूप आपको प्रणाम है। यजुर्वेदस्वरूप आपको नमस्कार है। आप ही समस्त सामोंके अधिष्ठान हैं, आपको प्रणाम है। आप ज्ञानके एकमात्र आधार एवं अन्धकारका नाश करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप शुद्ध ज्योतिर्मय है। आप स्वभावसे ही परम शुद्ध एवं निर्मलात्मा हैं, आपको प्रणाम है। आप सबसे महान्, सर्वश्रेष्ठ, सबसे परे और साक्षात् परमात्मा हैं। आपका स्वरूप सम्पूर्ण जगत्में व्यापक है। आप सबके आत्मरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप सबकी उत्पत्तिके कारण, ज्ञानका चिन्तन करनेवाले पुरुषोंके प्राप्तव्य स्थान, सूर्यस्वरूप तथा प्रकाशात्मरूप हैं। आपको नमस्कार है। प्रभाका विस्तार करनेवाले आपको नमस्कार है। दिनकी सृष्टि करनेवाले आपको प्रणाम है। रात्रिके हेतु भी आप ही हैं तथा संध्या और चाँदनीकी सृष्टि भी आप ही करते हैं; आपको नमस्कार है।

त्वं सर्वमेतद् भगवन् जगदुद्भ्रमता त्वया।
भ्रमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥
त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्वं संजायते शुचि।
क्रियते त्वत्करैः स्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता॥
होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते।
तावद् यावन्न संयोगि जगदेतत् त्वदंशुभिः॥

भगवन्! आप ही यह सम्पूर्ण जगत् हैं। आपमें ही चराचर प्राणियोंसहित समस्त ब्रह्माण्ड ओतप्रोत है; अतएव ऊर्ध्वलोकमें जब आप भ्रमण करते हैं तो आपके साथ यह ब्रह्माण्ड भी घूमता है। आपकी किरणोंका स्पर्श पाकर ही सम्पूर्ण वस्तुएँ पवित्र होती हैं। आपकी किरणें ही अपने स्पर्शसे जल आदिको पवित्र करती हैं। जबतक इस जगत्में आपकी दिव्य रश्मियोंका संयोग नहीं होता, तबतक होम-दान आदि धर्म सफल नहीं हो पाते।

ऋचस्ते सकला ह्येता यजूंष्येतानि चान्यतः।
सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः॥
ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः।
यतः साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः॥
त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च।
मूर्तामूर्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः॥
निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः।

प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजःशमनं कुरु॥

ऋग्वेदकी ये सम्पूर्ण ऋचाएँ, दूसरी ओर यजुर्वेदके ये सब मन्त्र तथा सामवेदकी सम्पूर्ण श्रुतियाँ आपके ही अङ्गोंसे प्रकट होती हैं। जगन्नाथ! आप ऋग्वेदमय हैं, आप ही यजुर्वेदमय हैं तथा आप ही सामवेदमय हैं। नाथ! इस प्रकार आप त्रयीमय हैं—तीनों वेद आपके ही स्वरूप हैं। आप ही ब्रह्मके पर और अपर रूप हैं। मूर्त, अमूर्त, स्थूल और सूक्ष्म सभी रूपोंमें आपकी ही स्थिति है। निमेष, काष्ठा आदि जो कालके छोटे-छोटे विभाग हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं। आप ही क्षयात्मक (प्रतिक्षण बीतनेवाला) कालरूप हैं। भगवन्! आप प्रसन्न होइये और अपनी इच्छासे ही अपने प्रचण्ड तेजको शान्त कीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—देवताओं और देवर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोराशि अविनाशी भगवान् सूर्यने विश्वकर्माके द्वारा अपने तेजको कम कर दिया। उनका जो ऋग्वेदमय तेज था, उससे पृथ्वीका निर्माण हुआ। यजुर्वेदमय तेजसे द्युलोककी रचना हुई और सामवेदमय तेज ही स्वर्गलोकके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ। विश्वकर्माने सूर्यके तेजके सोलह भागोंमेंसे पंद्रह भाग छाँट दिये और उनके द्वारा शंकरजीका त्रिशूल, भगवान् विष्णुका चक्र, वसुगणोंके भयंकर शङ्कु, अग्निकी शक्ति, कुबेरकी शिबिका तथा अन्यान्य देवता, यक्ष एवं विद्याधरोंके लिये भयंकर अस्त्र शस्त्र बनाये। भगवान् सूर्य तबसे अपने तेजके सोलहवें भागको धारण करते हैं। तेज कम होनेके बाद वे अश्वका रूप धारण करके उत्तरकुरु नामक देशमें गये और वहाँ उन्होंने घोड़ीके रूपमें संज्ञाको देखा। उन्हें आते देख संज्ञाको पराये पुरुषकी आशङ्का हुई, इसलिये वह अपने पृष्ठभागकी रक्षा करती हुई सामनेकी ओरसे उनके सम्मुख गयी; फिर वहाँ उनके मिलनेपर पहले दोनोंकी नासिकाका संयोग हुआ। इससे अश्वरूपधारिणी संज्ञाके मुखसे दो पुत्र प्रकट हुए, जो नासत्य और दस्र नामसे प्रसिद्ध हुए। फिर वीर्यपातके अनन्तर रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो ढाल, तलवार और कवच धारण किये, बाण और तरकससे सुसज्जित हो घोड़ेपर चढ़ा हुआ ही प्रकट हुआ था।

तत्पश्चात् भगवान् सूर्यने संज्ञाको अपने अनुपम स्वरूपका दर्शन कराया। उनके इस रूपको देखकर संज्ञाको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उसने भी अपना रूप धारण कर लिया। तब सूर्यदेव अपनी प्रीतिमती पत्नी संज्ञाको साथ ले अपने निवास-स्थानपर आये। भगवान् सूर्यके जो प्रथम पुत्र थे, उनकी वैवस्वत नामसे प्रसिद्धि हुई। दूसरे पुत्रका नाम यम था। वे माताके शापसे ग्रस्त थे। पिताने इनके शापका अन्त इस प्रकार किया था—'कीड़े यमके पैरका मांस लेकर पृथ्वीपर गिर पड़ेंगे। फिर इनका पैर ठीक हो जायगा।' यम धर्मपर दृष्टि रखते थे और मित्र तथा शत्रुके प्रति उनका समान भाव था। अतः सूर्यने प्रजाओंके धर्माधर्मका फल देनेके लिये उन्हें यमराजके पदपर प्रतिष्ठित किया। यमुना कलिन्दपर्वतके बीचसे बहनेवाली नदी हो गयी। दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य नियुक्त किये गये। रेवन्तको भी गुह्यकोंका स्वामी बनाया गया। अब छायासंज्ञाके पुत्रोंकी जहाँ नियुक्ति हुई, उसका हाल सुनो। छायासंज्ञाके ज्येष्ठ पुत्रका वर्ण (रूप-रंग) वैवस्वत मनुके ही समान था, अतः वे सावर्णिक नामसे प्रसिद्ध हुए। वे ही आठवें मनु होंगे। उस समय राजा बलि इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित रहेंगे। छायाके दूसरे पुत्र शनैश्चरको पिताने ग्रहोंके

मध्यमें नियुक्त किया। तीसरी संतान तपती नामकी कन्या थी। उसने राजा संवरणको अपना स्वामी बनाया और उनसे कुरु नामक पुत्रको जन्म दिया। ये कुरु एक प्रसिद्ध राजा हुए।

वैवस्वत मन्वन्तरमें आठ देवगण माने गये हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, मरुत्, भृगु तथा अङ्गिरा। इनमें आदित्यगण, मरुद्गण तथा रुद्रगण कश्यपजीके पुत्र हैं। साध्यगण, वसुगण और विश्वेदेवगण—ये धर्मके पुत्र हैं। भृगुगण भृगुके और आङ्गिरसगण महर्षि अङ्गिराके पुत्र हैं। ब्रह्मन्! यह सब मारीच सर्ग है। मरीचिनन्दन कश्यपकी संतान होनेके कारण इन्हें मारीच कहते हैं। इस मन्वन्तरमें जो इन्द्र हैं, उनका नाम ऊर्जस्वी है। वे महात्मा यज्ञभागके भोक्ता हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानमें जो इन्द्र होते हैं, उन सबका लक्षण एक-सा ही समझना चाहिये।

अब वर्तमान त्रिलोकीका वर्णन सुनो। भूर्लोक तो यह पृथ्वी है। अन्तरिक्षको भुवर्लोक या भुवर्लोक माना गया है और दिव्यलोकको स्वर्लोक कहते हैं। अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र तथा जमदग्नि—ये ही इस मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करूष और पृषध्र—ये नौ वैवस्वत मनुके पुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार मैंने तुमसे यह वैवस्वत मन्वन्तरका वर्णन किया है। इसका श्रवण और पाठ करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता और महान् पुण्यका भागी होता है।

क्रौष्टुकि बोले—महामुने! आपने स्वायम्भुव आदि सात मनुओंका वर्णन किया तथा उनके मन्वन्तरोंमें जो देवता, राजा और मुनि हुए थे, उनको भी बतलाया। इस कल्पमें जो दूसरे सात मनु होंगे, उनका परिचय दीजिये तथा उनके मन्वन्तरोंमें जो देवता आदि होनेवाले हैं, उनका भी वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! छायासंज्ञाके पुत्र सावर्णिका नाम मैं तुम्हें बतला चुका हूँ। वे सब बातोंमें अपने बड़े भाई वैवस्वत मनुके ही समान हैं। वे ही आठवें मनु होंगे। परशुराम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्यशृङ्ग तथा अश्वत्थामा—ये सात सावर्णि मन्वन्तरमें सप्तर्षि होंगे। सुतपा, अमिताभ और मुख्य—ये तीन देवगण होंगे। इनमेंसे प्रत्येक गण पृथक्-पृथक् बीस-बीस देवताओंका समुदाय होगा। तपस्तप, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेज, रश्मि तथा वक्रतु आदि देवता सुतपागणके बीस देवताओंके अन्तर्गत हैं। प्रभु, विभु और विभास आदि देवता अमिताभ नामक द्वितीय गणके बीस देवताओंके अन्तर्गत हैं। तीसरे गणके जो बीस देवता हैं, उनमें दम, दान्त, रित, सोम और वित्त आदि प्रधान हैं। ये मुख्यगणके देवता कहे गये हैं। ये सभी मन्वन्तरके स्वामी होंगे। ये मरीचिनन्दन प्रजापति कश्यपके ही पुत्र हैं। विरोचनके पुत्र बलि इनके इन्द्र होंगे। वे बलि आज भी अपनी प्रतिज्ञाके बन्धनसे बँधकर पाताललोकमें विराजमान हैं। विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति तथा विष्णु आदि सावर्णि मनुके पुत्र होंगे।

सावर्णि मनुकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें देवी-माहात्म्य

प्रथमोऽध्यायः

मेधा ऋषिका राजा सुरथ और समाधिको भगवतीकी महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वधका प्रसङ्ग सुनाना

विनियोग

[प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः ।

प्रथम चरित्रके ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्तदन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली देवताकी प्रसन्नताके लिये प्रथम चरित्रके जपमें विनियोग किया जाता है।

ध्यान

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

भगवान् विष्णुके सो जानेपर मधु और कैटभको मारनेके लिये कमलजन्मा ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया था, उन महाकाली देवीका मैं सेवन करता हूँ। वे अपने दस हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शङ्ख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे समस्त अङ्गोंमें दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके शरीरकी कान्ति नीलमणिके समान है तथा वे दस मुख और दस पैरोंसे युक्त हैं।]

ॐ नमश्चण्डिकायै॥

'ॐ ऐं' मार्कण्डेय उवाच॥ १॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥ २॥
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥ ३॥
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥ ४॥
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा॥ ५॥
तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः॥ ६॥
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः॥ ७॥

मार्कण्डेयजी बोले— ॥ १ ॥ सूर्यके पुत्र सावर्णि जो आठवें मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनो॥ २॥ सूर्यकुमार महाभाग सावर्णि भगवती महामायाके अनुग्रहसे जिस प्रकार मन्वन्तरके स्वामी हुए, वही प्रसङ्ग सुनाता हूँ॥ ३॥ पूर्वकालकी बात है, स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा थे, जो चैत्रवंशमें उत्पन्न हुए थे। उनका समस्त भूमण्डलपर अधिकार था॥ ४॥ वे प्रजाका अपने औरस पुत्रोंकी भाँति धर्मपूर्वक पालन करते थे; फिर भी उस समय कोलाविध्वंसी[2] नामके क्षत्रिय उनके शत्रु हो

---

१. ॐ चण्डीदेवीको नमस्कार है।

२. 'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन कालमें राजधानी थी। जिन क्षत्रियोंने उसपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

गये ॥ ५ ॥ राजा सुरथकी दण्डनीति बड़ी प्रबल थी। उनका शत्रुओंके साथ संग्राम हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी संख्यामें कम थे तो भी राजा सुरथ युद्धमें उनसे परास्त हो गये ॥ ६ ॥ तब वे युद्धभूमिसे अपने नगरको लौट आये और केवल अपने देशके राजा होकर रहने लगे (समूची पृथ्वीसे अब उनका अधिकार जाता रहा) किंतु वहाँ भी उन प्रबल शत्रुओंने उस समय महाभाग राजा सुरथपर आक्रमण कर दिया ॥ ७ ॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ ८ ॥
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ ९ ॥
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥ १० ॥
तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ ११ ॥
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः[१]।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥ १२ ॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥ १३ ॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥ १४ ॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥ १५ ॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ १६ ॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ १७ ॥
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ १८ ॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ १९ ॥

राजाका बल क्षीण हो चला था; इसलिये उनके दुष्ट, बलवान् एवं दुरात्मा मन्त्रियोंने वहाँ उनकी राजधानीमें भी राजकीय सेना और खजानेको वहाँसे हथिया लिया ॥ ८ ॥ सुरथका प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, इसलिये वे शिकार खेलनेके बहाने घोड़ेपर सवार हो वहाँसे अकेले ही एक घने

जङ्गलमें चले गये ॥ ९ ॥ वहाँ उन्होंने विप्रवर मेधा मुनिका आश्रम देखा, जहाँ कितने ही हिंसक जीव [अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर] परम शान्तभावसे रहते थे। मुनिके बहुत-से शिष्य उस वनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १० ॥ वहाँ जानेपर मुनिने उनका सत्कार किया और वे उन मुनिश्रेष्ठके आश्रमपर इधर उधर विचरते हुए कुछ कालतक वहाँ रहे ॥ ११ ॥ फिर ममतासे आकृष्टचित्त होकर उस आश्रममें इस प्रकार चिन्ता करने लगे—

१. पाठान्तर—ममत्वाकृष्टमानसः।

'पूर्वकालमें मेरे पूर्वजोंने जिसका पालन किया था, वही नगर आज मुझसे रहित है। पता नहीं, मेरे दुराचारी भृत्यगण उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते हैं या नहीं। जो सदा मदकी वर्षा करनेवाला और शूरवीर था, वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओंके अधीन होकर न जाने किन भोगोंको भोगता होगा? जो लोग मेरी कृपा, धन और भोजन पानेसे सदा मेरे पीछे-पीछे चलते थे, वे निश्चय ही अब दूसरे राजाओंका अनुसरण करते होंगे। उन अपव्ययी लोगोंके द्वारा सदा खर्च होते रहनेके कारण अत्यन्त कष्टसे जमा किया हुआ मेरा वह खजाना खाली हो जायगा।' ये तथा और भी कई बातें राजा सुरथ निरन्तर सोचते रहते थे। एक दिन उन्होंने वहाँ विप्रवर मेधाके आश्रमके निकट एक वैश्यको देखा और उससे पूछा—'भाई! तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है? तुम क्यों शोकग्रस्त और अनमने-से दिखायी देते हो?' राजा सुरथका यह प्रेमपूर्वक कहा हुआ वचन सुनकर वैश्यने विनीत-भावसे उन्हें प्रणाम करके कहा— ॥ १२—१९ ॥

वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ २१ ॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥ २२ ॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ २३ ॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥ २४ ॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥ २५ ॥

वैश्य बोला— ॥ २० ॥ राजन्! मैं धनियोंके कुलमें उत्पन्न एक वैश्य हूँ। मेरा नाम समाधि है ॥ २१ ॥ मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रोंने धनके लोभसे मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है। मैं इस समय धन, स्त्री और पुत्रसे वञ्चित हूँ। मेरे विश्वसनीय बन्धुओंने मेरा ही धन लेकर मुझे दूर कर दिया है, इसलिये दुखी होकर मैं वनमें चला आया हूँ। यहाँ रहकर मैं इस बातको नहीं जानता कि मेरे पुत्रोंकी, स्त्रीकी और स्वजनोंकी कुशल है या नहीं। इस समय घरमें वे कुशलसे रहते हैं अथवा उन्हें कोई कष्ट है? ॥ २२—२४ ॥ वे मेरे पुत्र कैसे हैं? क्या वे सदाचारी हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं ॥ २५ ॥

राजोवाच ॥ २६ ॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ २७ ॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥ २८ ॥

राजाने पूछा— ॥ २६ ॥ जिन लोभी स्त्री-पुत्र आदिने धनके कारण तुम्हें घरसे निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारे चित्तमें इतना स्नेह क्यों है? ॥ २७—२८ ॥

वैश्य उवाच ॥ २९ ॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥ ३० ॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥ ३१ ॥

पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते॥ ३२॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते॥ ३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्[1]॥ ३४॥

वैश्य बोला— ॥ २९॥ आप मेरे विषयमें जो बात कहते हैं, वह सब ठीक है॥ ३०॥ किंतु क्या करूँ, मेरा मन निष्ठुरता नहीं धारण करता। जिन्होंने धनके लोभमें पड़कर पिताके प्रति स्नेह, पतिके प्रति प्रेम तथा आत्मीय जनके प्रति अनुरागको तिलाञ्जलि दे मुझे घरसे निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मेरे हृदयमें इतना स्नेह है। महामते! गुणहीन बन्धुओंके प्रति भी जो मेरा चित्त इस प्रकार प्रेममग्न हो रहा है, यह क्या है—इस बातको मैं जानकर भी नहीं जान पाता। उनके लिये मैं लंबी साँसें ले रहा हूँ और मेरा हृदय अत्यन्त दुःखित हो रहा है॥ ३१—३३॥ उन लोगोंमें प्रेमका सर्वथा अभाव है तो भी उनके प्रति जो मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पाता, इसके लिये क्या करूँ॥ ३४॥

मार्कण्डेय उवाच॥ ३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ॥ ३६॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम्॥ ३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ॥ ३८॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं— ॥ ३५॥ ब्रह्मन्! तदनन्तर राजाओंमें श्रेष्ठ सुरथ और वह समाधि नामक वैश्य दोनों साथ-साथ मेधा मुनिकी सेवामें उपस्थित हुए और उनके साथ यथायोग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठे। तत्पश्चात् वैश्य और राजाने कुछ वार्तालाप आरम्भ किया॥ ३६—३८॥

राजोवाच॥ ३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्॥ ४०॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि॥ ४१॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निकृतः[2] पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः॥ ४२॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ॥ ४३॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि॥ ४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता॥ ४५॥

राजाने कहा— ॥ ३९॥ भगवन्! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, उसे बताइये॥ ४०॥ मेरा चित्त अपने अधीन न होनेके कारण वह बात मेरे मनको बहुत दुःख देती है। मुनिश्रेष्ठ! जो राज्य मेरे हाथसे चला गया है, उसमें और उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें मेरी ममता हो रही है॥ ४१॥ यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है, अज्ञानीकी भाँति मुझे उसके लिये दुःख होता है; यह क्या है? इधर यह वैश्य भी घरसे अपमानित होकर आया है। इसके पुत्र, स्त्री और भृत्योंने इसको छोड़ दिया है॥ ४२॥ स्वजनोंने भी इसका परित्याग कर दिया है, तो भी इसके हृदयमें उनके प्रति अत्यन्त स्नेह है। इस प्रकार यह तथा मैं दोनों ही बहुत दुखी हैं॥ ४३॥ जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा गया है, उस विषयके लिये भी हमारे मनमें ममताजनित आकर्षण पैदा हो रहा है। महाभाग! हम दोनों समझदार हैं; तो भी हममें जो मोह पैदा हुआ है, यह क्या है? विवेकशून्य पुरुषकी भाँति मुझमें और इसमें भी यह मूढ़ता प्रत्यक्ष दिखायी देती है॥ ४४-४५॥

---

१. पा०—निष्ठुरः। २. पा०—एतकैनैतः।

ऋषिरुवाच ॥ ४६ ॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥ ४७ ॥
विषयश्च[1] महाभाग याति[2] चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥ ४८ ॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते[3] न हि केवलम् ॥ ४९ ॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥ ५० ॥
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥ ५१ ॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति ॥ ५२ ॥
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्[4] किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥ ५३ ॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा[5]।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥ ५४ ॥
महामाया हरेश्चैषा[6] तया संमोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ ५५ ॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५६ ॥
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ ५७ ॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥ ५८ ॥

ऋषि बोले— ॥ ४६ ॥ महाभाग! विषयमार्गका ज्ञान सब जीवोंको है ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार विषय भी सबके लिये अलग-अलग हैं। कुछ प्राणी दिनमें नहीं देखते और दूसरे रातमें ही नहीं देखते ॥ ४८ ॥ तथा कुछ जीव ऐसे हैं, जो दिन और रात्रिमें भी बराबर ही देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैं; किंतु केवल वे ही ऐसे नहीं होते ॥ ४९ ॥ पशु-पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्योंकी समझ भी वैसी ही होती है, जैसी उन मृग और पक्षियोंकी होती है ॥ ५० ॥ तथा जैसी मनुष्योंकी होती है, वैसी ही उन मृग-पक्षी आदिकी होती है। यह तथा अन्य बातें भी प्रायः दोनोंमें समान ही हैं। समझ होनेपर भी इन पक्षियोंको तो देखो, ये स्वयं भूखसे पीड़ित होते हुए भी मोहवश बच्चोंकी चोंचमें कितने चावसे अन्नके दाने डाल रहे हैं! नरश्रेष्ठ! क्या तुम नहीं देखते कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किये हुए उपकारका बदला पानेके लिये पुत्रोंकी अभिलाषा करते हैं? यद्यपि उन सबमें समझकी कमी नहीं है, तथापि वे संसारकी स्थिति (जन्म-मरणकी परम्परा) बनाये रखनेवाले भगवती महामायाके प्रभावद्वारा ममतामय भँवरसे युक्त मोहके गहरे गर्तमें गिराये जाते हैं। इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपा जो भगवती महामाया हैं, उन्हींसे यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भगवती महामाया

---

१. पा०—याश्च। २. पा०—यान्ति। ३. पा०—किंनु ते। ४. पा०—नन्वेते। ५. पा०—रिणः। ६. पा०—चैतत्।

देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको मुक्तिके लिये वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या, संसार-बन्धन और मोक्षकी हेतुभूता सनातनी देवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरोंकी भी अधीश्वरी हैं॥ ५१—५८॥

राजोवाच॥ ५९॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्॥ ६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च[1] किं द्विज।
यत्प्रभावा[2] च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा॥ ६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥ ६२॥

राजाने पूछा— ॥ ५९॥ भगवन्! जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं? ब्रह्मन्! उनका आविर्भाव कैसे हुआ? तथा उनके चरित्र कौन-कौन हैं? ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! उन देवीका जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ॥ ६०—६२॥

ऋषिरुवाच॥ ६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥ ६४॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥ ६५॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते॥ ६६॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ॥ ६७॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः॥ ६८॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ ६९॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्[3]।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्॥ ७०॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥ ७१॥

ऋषि बोले— ॥ ६३॥ राजन्! वास्तवमें तो वे देवी नित्यस्वरूपा ही हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका रूप है तथा उन्होंने समस्त विश्वको व्याप्त कर रखा है, तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकारसे होता है। वह मुझसे सुनो। यद्यपि वे नित्य और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रकट होती हैं, उस समय लोकमें उत्पन्न हुई कहलाती हैं। कल्पके अन्तमें जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णवमें निमग्न हो रहा था और सबके प्रभु भगवान् विष्णु शेषनागकी शय्या बिछाकर योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे, उस समय उनके कानोंकी मैलसे दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभके नामसे विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्माजीका वध करनेको तैयार हो गये। भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें विराजमान प्रजापति

१. पा०—कर्म चास्याश्च। २. पा०—यत्स्वभावा। ३. किसी किसी प्रतिमें इसके बाद ही 'ब्रह्मोवाच' है तथा 'निद्रां भगवतीम्' इस श्लोकार्धके स्थानमें—'स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः॥' ऐसा पाठ है।

ब्रह्माजीने जब उन दोनों भयानक असुरोंको अपने पास आया और भगवान्‌को सोया हुआ देखा तो एकाग्रचित्त होकर उन्होंने भगवान् विष्णुको जगानेके लिये उनके नेत्रोंमें निवास करनेवाली योगनिद्राका स्तवन आरम्भ किया। जो इस विश्वकी अधीश्वरी, जगत्‌को धारण करनेवाली, संसारका पालन और संहार करनेवाली तथा तेज:स्वरूप भगवान् विष्णुकी अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवीकी भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे॥ ६४—७१॥

ब्रह्मोवाच॥ ७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका॥ ७३॥
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः॥ ७४॥
त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्॥ ७५॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥ ७६॥
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः॥ ७७॥
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी॥ ७८॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा॥ ७९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥ ८०॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी॥ ८१॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके॥ ८२॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा[3]।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति[4] यो जगत्॥ ८३॥
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च॥ ८४॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता॥ ८५॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥ ८६॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥ ८७॥

ब्रह्माजीने कहा— ॥ ७२॥ देवि! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके रूपमें तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेष रूपसे उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो। देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो। देवि! तुम्हीं इस विश्व ब्रह्माण्डको धारण करती हो। तुमसे ही इस जगत्‌की सृष्टि होती है। तुम्हींसे इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्पके अन्तमें सबको अपना ग्रास बना लेती हो। जगन्मयी देवि! इस जगत्‌की उत्पत्तिके समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-कालमें स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्तके समय संहार रूप धारण करनेवाली हो। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोह-रूपा, महादेवी और महासुरी हो। तुम्हीं तीनों गुणोंको उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शङ्ख और

१. पा०—सा त्वं। २. पा०—महेश्वरी। ३. पा०—यया। ४. पा०—पातात्ति।

धनुष धारण करनेवाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिघ—ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं। तुम सौम्य और सौम्यतर हो—इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो। सर्वस्वरूपे देवि! कहीं भी सत्-असत्‌रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्थामें तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है। जो इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान्‌को भी जब तुमने निद्राके अधीन कर दिया है तो तुम्हारी स्तुति करनेमें यहाँ कौन समर्थ हो सकता है। मुझको, भगवान् शंकरको तथा भगवान् विष्णुको भी तुमने ही शरीर धारण कराया है; अतः तुम्हारी स्तुति करनेकी शक्ति किसमें है। देवि! तुम तो अपने इन उदार प्रभावोंसे ही प्रशंसित हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोहमें डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णुको शीघ्र ही जगा दो। साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान् असुरोंको मार डालनेकी बुद्धि उत्पन्न कर दो॥ ७३—८७॥

ऋषिरुवाच॥ ८८॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा॥ ८९॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं[1] मधुकैटभौ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः॥ ९०॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः॥ ९१॥
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ॥ ९२॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः॥ ९३॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ॥ ९४॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्॥ ९५॥

ऋषि कहते हैं—॥ ८८॥ राजन्! जब ब्रह्माजीने वहाँ मधु और कैटभको मारनेके उद्देश्यसे भगवान् विष्णुको जगानेके लिये तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी योगनिद्राकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान्‌के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी दृष्टिके समक्ष खड़ी हो गयीं। योगनिद्रासे मुक्त

होनेपर जगत्‌के स्वामी भगवान् जनार्दन उस एकार्णवके जलमें शेषनागकी शय्यासे जाग उठे। फिर उन्होंने उन दोनों असुरोंको देखा। वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोधसे लाल आँखें किये ब्रह्माजीको खा जानेके लिये उद्योग कर रहे थे। तब भगवान् श्रीहरिने उठकर उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध किया। वे दोनों भी अत्यन्त बलके कारण उन्मत्त हो रहे थे। इधर

[1] पा०—र्थो हन्तुं

महामायाने भी उन्हें मोहमें डाल रखा था; इसलिये वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—'हम तुम्हारी वीरतासे संतुष्ट हैं। तुम हमलोगोंसे कोई वर माँगो'॥ ८९—९५॥

श्रीभगवानुवाच ॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥९७॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम[1]॥९८॥

श्रीभगवान् बोले— ॥९६॥ यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। यहाँ दूसरे किसी वरसे क्या लेना है॥ ९७-९८॥

ऋषिरुवाच ॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्॥१००॥
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः[2]।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥१०१॥

ऋषि कहते हैं— ॥९९॥ इस प्रकार धोखेमें आ जानेपर जब उन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌में जल-ही-जल देखा तब कमलनयन भगवान्‌से कहा—'जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो'॥ १००-१०१॥

ऋषिरुवाच ॥१०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता।
कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः॥१०३॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते॥ ऐं ॐ॥१०४॥

ऋषि कहते हैं— ॥१०२॥ तब 'तथास्तु' कहकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान्‌ने उन दोनोंके मस्तक अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट

डाले। इस प्रकार ये देवी महामाया ब्रह्माजीकी स्तुति करनेपर स्वयं प्रकट हुई थीं। अब पुनः तुमसे उनके प्रभावका वर्णन करता हूँ, सुनो॥ १०३-१०४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

उवाच १४, अर्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६, एवम् ॥१०४॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'मधु-कैटभ-वध' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥१॥

---

१. पा०—मया। २. मार्कण्डेयपुराणकी कई प्रतियोंमें यहाँ 'प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः।' इतना अधिक पाठ है।

द्वितीयोऽध्यायः

देवताओंके तेजसे देवीका प्रादुर्भाव और महिषासुरकी सेनाका वध

विनियोग

[ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता, उष्णिक् छन्दः, शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजम्, वायुस्तत्त्वम्, यजुर्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः।

ॐ मध्यम चरित्रके विष्णु ऋषि, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक् छन्द, शाकम्भरी शक्ति, दुर्गा बीज, वायु तत्त्व और यजुर्वेद स्वरूप है। श्रीमहालक्ष्मीकी प्रसन्नताके लिये मध्यम चरित्रके पाठमें इसका विनियोग है।

ध्यान

ॐ अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

मैं कमलके आसनपर बैठी हुई महिषासुरमर्दिनी भगवती महालक्ष्मीका भजन करता हूँ, जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती हैं तथा जिनके श्रीविग्रहकी कान्ति मूँगेके समान लाल है।]

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच॥१॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरंदरे॥२॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥३॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ॥४॥
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम्॥५॥
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति॥६॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना॥७॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम्॥८॥

ऋषि कहते हैं— ॥१॥ पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें पूरे सौ वर्षोंतक घोर संग्राम हुआ था। उसमें असुरोंका स्वामी महिषासुर था और देवताओंके नायक इन्द्र थे। उस युद्धमें देवताओंकी सेना महाबली असुरोंसे परास्त हो गयी। सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर महिषासुर इन्द्र बन बैठा॥२-३॥ तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्माजीको आगे करके उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान थे॥४॥ देवताओंने महिषासुरके पराक्रम तथा अपनी पराजयका यथावत् वृत्तान्त उन दोनों देवेश्वरोंसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया॥५॥ वे बोले—'भगवन्! महिषासुर सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण तथा अन्य देवताओंके भी अधिकार छीनकर स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बना बैठा है॥६॥ उस दुरात्मा महिषने समस्त देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया है। अब वे मनुष्योंकी भाँति पृथ्वीपर विचरते हैं॥७॥ दैत्योंकी यह सारी करतूत हमने आपलोगोंसे कह सुनायी। अब हम आपकी ही शरणमें आये हैं। उसके वधका कोई उपाय सोचिये'॥८॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ॥ ९ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च॥ १०॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत॥ ११ ॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्॥ १२ ॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥ १३ ॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा॥ १४॥
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः॥ १५॥
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका॥ १६॥
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा॥ १७॥
भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा॥ १८॥

इस प्रकार देवताओंके वचन सुनकर भगवान् विष्णु और शिवने दैत्योंपर बड़ा क्रोध किया। उनकी भौंहें तन गयीं और मुँह टेढ़ा हो गया॥ ९॥ तब अत्यन्त कोपमें भरे हुए चक्रपाणि श्रीविष्णुके मुखसे एक महान् तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी बड़ा भारी तेज निकला। वह सब मिलकर एक हो गया॥ १०-११॥ महान् तेजका वह पुञ्ज जाज्वल्यमान पर्वत-सा जान पड़ा। देवताओंने देखा, वहाँ उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो रही थीं॥ १२॥ सम्पूर्ण देवताओंके शरीरसे प्रकट हुए उस तेजकी कहीं तुलना नहीं थी। एकत्रित होनेपर वह एक नारीके रूपमें परिणत हो गया और अपने प्रकाशसे तीनों लोकोंमें व्याप्त जान पड़ा॥ १३॥ भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे उस देवीका मुख प्रकट हुआ। यमराजके तेजसे उसके सिरमें बाल निकल आये। श्रीविष्णुभगवान्‌के तेजसे उसकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं॥ १४॥ चन्द्रमाके

तेजसे दोनों स्तनोंका और इन्द्रके तेजसे मध्यभाग (कटिप्रदेश)-का प्रादुर्भाव हुआ। वरुणके तेजसे जङ्घा और पिंडली तथा पृथ्वीके तेजसे नितम्बभाग प्रकट हुआ ॥ १५ ॥ ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण और सूर्यके तेजसे उनकी अँगुलियाँ हुईं। वसुओंके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ और कुबेरके तेजसे नासिका प्रकट हुई ॥ १६ ॥ उस देवीके दाँत प्रजापतिके तेजसे और तीनों नेत्र अग्निके तेजसे प्रकट हुए थे ॥ १७ ॥ उसकी भौंहें संध्याके और कान वायुके तेजसे उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके तेजसे भी उस कल्याणमयी देवीका आविर्भाव हुआ ॥ १८ ॥

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः[१] ॥ १९ ॥
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य[२] स्वचक्रतः ॥ २० ॥
शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ २१ ॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य[३] कुलिशादमराधिपः।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥ २२ ॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ २३ ॥
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म[४] च निर्मलम् ॥ २४ ॥
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥ २५ ॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥ २६ ॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥ २७ ॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ २८ ॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम्।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ २९ ॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥ ३० ॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम्।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ ३१ ॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ ३२ ॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥ ३३ ॥
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्[५] ॥ ३४ ॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः।

तदनन्तर समस्त देवताओंके तेजःपुञ्जसे प्रकट हुई देवीको देखकर महिषासुरके सताये हुए देवता बहुत प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥ पिनाकधारी भगवान् शङ्करने अपने शूलसे एक शूल निकालकर उन्हें दिया; फिर भगवान् विष्णुने भी अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके भगवतीको अर्पण किया ॥ २० ॥ वरुणने भी शङ्ख भेंट किया, अग्निने उन्हें शक्ति दी और वायुने धनुष तथा बाणसे भरे हुए दो तरकस प्रदान किये ॥ २१ ॥ सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथीसे उतारकर एक घण्टा भी प्रदान किया ॥ २२ ॥ यमराजने कालदण्डसे दण्ड, वरुणने पाश, प्रजापतिने स्फटिकाक्षकी माला तथा ब्रह्माजीने कमण्डलु भेंट किया ॥ २३ ॥ सूर्यने देवीके समस्त रोम-कूपोंमें अपनी किरणोंका तेज भर दिया। कालने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी ॥ २४ ॥ क्षीरसमुद्रने उज्ज्वल हार तथा कभी जीर्ण न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किये। साथ

---

१. कई प्रतियोंमें इसके बाद 'ततो देवा ददुस्तस्यै स्वानि स्वान्यायुधानि च। ऊचुर्जयजयेत्युच्चैर्जयन्तीं ते जयैषिणः ।' इतना पाठ अधिक है। २. पा०—ट्य। ३. पा०—ट्य। ४. पा०—तस्यै चर्म। ५. पा०—वाहनाम्।

ही उन्होंने दिव्य चूड़ामणि, दो कुण्डल, कड़े, उज्ज्वल अर्धचन्द्र, सब बाहुओंके लिये केयूर, दोनों चरणोंके लिये निर्मल नूपुर, गलेकी सुन्दर हँसली और सब अँगुलियोंमें पहननेके लिये रत्नोंकी बनी अँगूठियाँ भी दीं। विश्वकर्माने उन्हें अत्यन्त निर्मल फरसा भेंट किया॥ २५—२७॥ साथ ही अनेक प्रकारके अस्त्र और अभेद्य कवच दिये; इनके सिवा मस्तक और वक्षःस्थलपर धारण करनेके लिये कभी न कुम्हलानेवाले कमलोंकी मालाएँ दीं॥ २८॥ जलधिने उन्हें सुन्दर कमलका फूल भेंट किया। हिमालयने सवारीके लिये सिंह तथा भाँति-भाँतिके रत्न समर्पित किये॥ २९॥ धनाध्यक्ष कुबेरने मधुसे भरा पानपात्र दिया तथा सम्पूर्ण नागोंके राजा शेषने, जो इस पृथ्वीको धारण करते हैं, उन्हें बहुमूल्य मणियोंसे विभूषित नागहार भेंट दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओंने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवीका सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अट्टहासपूर्वक उच्चस्वरसे गर्जना की। उनके भयंकर नादसे सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा॥ ३०—३२॥ देवीका वह अत्यन्त उच्चस्वरसे किया हुआ सिंहनाद कहीं समा न सका, आकाश उसके सामने लघु प्रतीत होने लगा। उससे बड़े जोरकी प्रतिध्वनि हुई, जिससे सम्पूर्ण विश्वमें हलचल मच गयी और समुद्र काँप उठे॥ ३३॥ पृथ्वी डोलने लगी और समस्त पर्वत हिलने लगे। उस समय देवताओंने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ सिंहवाहिनी भवानीसे कहा—'देवि! तुम्हारी जय हो'॥ ३४॥ साथ ही महर्षियोंने भक्तिभावसे विनम्र होकर उनका स्तवन किया।

दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः॥ ३५॥
संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः॥ ३६॥
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा॥ ३७॥
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम्॥ ३८॥
दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम्॥ ३९॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः॥ ४०॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः॥ ४१॥
अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः॥ ४२॥
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकै:[१] परिवारितः॥ ४३॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः॥ ४४॥
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः[२]।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः॥ ४५॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा॥ ४६॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा॥ ४७॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे॥ ४८॥
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका॥ ४९॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः॥ ५०॥
मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।

---

१. पा०—कैकरदर्शनः। २. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'वृतः कालो रथानां च रणे पञ्चाशतायुतैः। युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारितः॥' इतना अधिक पाठ है।

सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षोभग्रस्त देख दैत्यगण अपनी समस्त सेनाको कवच आदिसे सुसज्जित कर, हाथोंमें हथियार ले सहसा उठकर खड़े हो गये। उस समय महिषासुरने बड़े क्रोधमें आकर कहा—'आः! यह क्या हो रहा है।' फिर वह सम्पूर्ण असुरोंसे घिरकर उस सिंहनादकी ओर लक्ष्य करके दौड़ा और आगे पहुँचकर उसने देवीको देखा, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही थीं॥ ३५—३७॥ उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दबी जा रही थी। माथेके मुकुटसे आकाशमें रेखा-सी खिंच रही थी तथा वे अपने धनुषकी टङ्कारसे सातों पातालोंको क्षुब्ध किये देती थीं॥ ३८॥ देवी अपनी हजारों भुजाओंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके खड़ी थीं। तदनन्तर उनके साथ दैत्योंका युद्ध छिड़ गया॥ ३९॥ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे सम्पूर्ण

दिशाएँ उद्भासित होने लगीं। चिक्षुर नामक महान् असुर महिषासुरका सेनानायक था॥ ४०॥ वह देवीके साथ युद्ध करने लगा। अन्य दैत्योंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर चामर भी लड़ने लगा। साठ हजार रथियोंके साथ आकर उदग्र नामक महादैत्यने लोहा लिया॥ ४१॥ एक करोड़ रथियोंको साथ लेकर महाहनु नामक दैत्य युद्ध करने लगा। जिसके रोएँ तलवारके समान तीखे थे, वह असिलोमा नामका महादैत्य पाँच करोड़ रथी सैनिकोंसहित युद्धमें आ डटा॥ ४२॥ साठ लाख रथियोंसे घिरा हुआ बाष्कल नामक दैत्य भी उस युद्धभूमिमें लड़ने लगा॥ ४३॥ परिवारित[1] नामक राक्षस हाथीसवार और घुड़सवारोंके अनेक दलों तथा एक करोड़ रथियोंकी सेना लेकर युद्ध करने लगा। बिडाल नामक दैत्य पाँच अरब रथियोंसे घिरकर लोहा लेने लगा। इनके अतिरिक्त और भी हजारों महादैत्य रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेना साथ लेकर वहाँ देवीके साथ युद्ध करने लगे। स्वयं महिषासुर उस रणभूमिमें कोटि कोटि सहस्र रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनासे घिरा हुआ खड़ा था। वे दैत्य देवीके साथ तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, खड्ग, परशु और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए युद्ध कर रहे थे। कुछ दैत्योंने उनपर शक्तिका प्रहार किया, कुछ लोगोंने पाश फेंके॥ ४४—४८॥ तथा कुछ दूसरे दैत्योंने खड्गप्रहार करके देवीको मार डालनेका उद्योग किया। देवीने भी क्रोधमें भरकर खेल-खेलमें ही अपने अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करके दैत्योंके वे समस्त अस्त्र शस्त्र काट डाले। उनके मुखपर परिश्रम या थकावटका रंचमात्र भी चिह्न नहीं था, देवता और ऋषि उनकी स्तुति करते थे और वे भगवती परमेश्वरी दैत्योंके शरीरोंपर अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करती रहीं।

१. परितो वारयति शत्रूनिति व्युत्पत्तिः।

सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥ ५१ ॥
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ॥ ५२ ॥
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥ ५३ ॥
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥ ५४ ॥
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः[1] ॥ ५५ ॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ॥ ५६ ॥
असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥ ५७ ॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ ५८ ॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥ ५९ ॥
श्येनानुकारिणः[2] प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ ६० ॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥ ६१ ॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ॥ ६२ ॥
कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥ ६३ ॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः[3] ॥ ६४ ॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुंधरा ।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥ ६५ ॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ ६६ ॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६७ ॥
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ ६८ ॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ।
यथैषां[4] तुतुषुर्देवाः[5] पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ॐ ॥ ६९ ॥

देवीका वाहन वह सिंह भी क्रोधमें भरकर गर्दनके बालोंको हिलाता हुआ असुरोंकी सेनामें इस प्रकार विचरने लगा, मानो वनोंमें दावानल फैल रहा हो। रणभूमिमें दैत्योंके साथ युद्ध करती हुई अम्बिका देवीने जितने निःश्वास छोड़े, वे सभी तत्काल सैकड़ों-हजारों गणोंके रूपमें प्रकट हो गये और परशु, भिन्दिपाल, खड्ग तथा पट्टिश आदि अस्त्रोंद्वारा असुरोंका सामना करने लगे ॥ ४९—५३ ॥ देवीकी शक्तिसे बढ़े हुए वे गण असुरोंका नाश करते हुए नगाड़ा और शङ्ख आदि बाजे बजाने लगे ॥ ५४ ॥ उस संग्राम-

१. पा०—शरवृष्टिभिः। २. पा०—सेनानु०, शल्यानु०। शैलानु०। ३. किसी किसी प्रतिमें इसके बाद 'लाघवैर्बलिलुप्ताङ्गाः संग्रामे लोमहर्षणे।' इतना पाठ अधिक है। ४. पा०—यथैनं। ५. पा०—तुष्टुवुर्देवाः।

महोत्सवमें कितने ही गण मृदङ्ग बजा रहे थे। तदनन्तर देवीने त्रिशूलसे, गदासे, शक्तिकी वर्षासे और खड्ग आदिसे सैकड़ों महादैत्योंका संहार कर डाला। कितनोंको घंटेके भयङ्कर नादसे मूर्च्छित करके मार गिराया॥ ५५-५६॥ बहुतेरे दैत्योंको पाशसे बाँधकर धरतीपर घसीटा। कितने ही दैत्य उनकी तीखी तलवारकी मारसे दो-दो टुकड़े हो गये॥ ५७॥ कितने ही गदाकी चोटसे घायल हो धरतीपर सो गये। कितने ही मूसलकी मारसे अत्यन्त आहत होकर रक्त वमन करने लगे। कुछ दैत्य शूलसे छाती फट जानेके कारण पृथ्वीपर ढेर हो गये। उस रणाङ्गणमें बाणसमूहोंकी वृष्टिसे कितने ही असुरोंकी कमर टूट गयी॥ ५८-५९॥ बाजकी तरह झपटनेवाले देवपीडक दैत्यगण अपने प्राणोंसे हाथ धोने लगे। किन्हींकी बाँहें छिन्न-भिन्न हो गयीं, कितनोंकी गर्दनें कट गयीं। कितने ही दैत्योंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे। कुछ लोगोंके शरीर मध्यभागमें ही विदीर्ण हो गये। कितने ही महादैत्य जाँघें कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़े। कितनोंको ही देवीने एक बाँह, एक पैर और एक नेत्रवाले करके दो टुकड़ोंमें चीर डाला। कितने ही दैत्य मस्तक कट जानेपर भी गिरकर फिर उठ जाते और केवल धड़के ही रूपमें अच्छे-अच्छे हथियार हाथमें ले देवीके साथ युद्ध करने लगते थे। दूसरे कबन्ध युद्धके बाजोंकी लयपर नाचते थे॥ ६०—६३॥ कितने ही बिना सिरके धड़ हाथोंमें खड्ग, शक्ति और ऋष्टि लिये दौड़ते थे तथा दूसरे-दूसरे महादैत्य 'ठहरो! ठहरो!!' यह कहते हुए देवीको युद्धके लिये ललकारते थे। जहाँ वह घोर संग्राम हुआ था, वहाँकी धरती देवीके गिराये हुए रथ, हाथी, घोड़े और असुरोंकी लाशोंसे ऐसी पट गयी थी कि वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया था॥ ६४-६५॥ दैत्योंकी सेनामें हाथी, घोड़े और असुरोंके शरीरोंसे इतनी अधिक मात्रामें रक्तपात हुआ था कि थोड़ी ही देरमें वहाँ खूनकी बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं॥ ६६॥ जगदम्बाने असुरोंकी विशाल सेनाको क्षणभरमें नष्ट कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे तृण और काठके भारी ढेरको आग कुछ ही क्षणोंमें भस्म कर देती है॥ ६७॥ और वह सिंह भी गर्दनके बालोंको हिला-हिलाकर जोर-जोरसे गर्जना करता हुआ दैत्योंके शरीरोंसे मानो उनके प्राण चुने लेता था॥ ६८॥ वहाँ देवीके गणोंने भी उन महादैत्योंके साथ ऐसा युद्ध किया, जिससे देवतागण उनपर आकाशसे फूल बरसाने लगे और उन सबसे बहुत सन्तुष्ट हुए॥ ६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

उवाच १, श्लोकाः ६८, एवम् ६९, एवमादितः ॥ १७३॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवी-माहात्म्यमें 'महिषासुरकी सेनाका वध' नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः

सेनापतियोंसहित महिषासुरका वध

ध्यान

(ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

जगदम्बाके श्रीअङ्गोंकी कान्ति उदयकालके सहस्रों सूर्योंके समान है। वे लाल रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए हैं। उनके गलेमें मुण्डमाला शोभा पा रही है। दोनों स्तनोंपर रक्तचन्दनका लेप लगा है। वे अपने कर-कमलोंमें जपमालिका, विद्या, अभय तथा वर-मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखारविन्दकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके मस्तकपर चन्द्रमाके साथ ही रत्नमय मुकुट बँधा है तथा वे कमलके आसनपर विराजमान हैं। ऐसी देवीको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।)

ऋषिरुवाच॥ १॥

'ॐ' निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम्॥ २॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः॥ ३॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम्॥ ४॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः॥ ५॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः॥ ६॥
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान्॥ ७॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः॥ ८॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात्॥ ९॥
दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं[1] शतधा तेन नीतं स च महासुरः॥ १०॥

ऋषि कहते हैं— ॥ १॥ दैत्योंकी सेनाको इस प्रकार तहस-नहस होते देख महादैत्य सेनापति चिक्षुर क्रोधमें भरकर अम्बिका देवीसे युद्ध करनेको आगे बढ़ा॥ २॥ वह असुर रणभूमिमें देवीके ऊपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरुगिरिके शिखरपर पानीकी धार बरसा रहा हो॥ ३॥ तब देवीने अपने बाणोंसे उसके बाण-समूहको अनायास ही काटकर उसके घोड़ों और सारथिको भी मार डाला॥ ४॥ साथ ही उसके धनुष तथा अत्यन्त ऊँची ध्वजाको भी तत्काल काट गिराया। धनुष कट जानेपर उसके अङ्गोंको अपने बाणोंसे बींध डाला॥ ५॥ धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर वह असुर ढाल और तलवार लेकर देवीकी ओर दौड़ा॥ ६॥ उसने तीखी धारवाली तलवारसे सिंहके मस्तकपर चोट करके देवीकी भी बायीं भुजामें बड़े वेगसे प्रहार किया॥ ७॥ राजन्! देवीकी बाँहपर पहुँचते ही वह तलवार टूट गयी, फिर तो क्रोधसे लाल आँखें करके उस राक्षसने शूल हाथमें लिया॥ ८॥ और उसे उस महादैत्यने भगवती भद्रकालीके ऊपर चलाया। वह शूल आकाशसे गिरते हुए सूर्यमण्डलकी भाँति अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा॥ ९॥ उस शूलको अपनी

---

१. पा०—तेन तच्छतधा नीतं।

ओर आते देख देवीने भी शूलका प्रहार किया। उससे राक्षसके शूलके सैकड़ों टुकड़े हो गये,

साथ ही महादैत्य चिक्षुरकी भी धज्जियाँ उड़ गयीं। वह प्राणोंसे हाथ धो बैठा॥ १० ॥

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः॥ ११ ॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम्॥ १२ ॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत्॥ १३ ॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा॥ १४ ॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः॥ १५ ॥
ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम्॥ १६ ॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः॥ १७ ॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम्॥ १८ ॥
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी॥ १९ ॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्[1]॥ २० ॥

महिषासुरके सेनापति उस महापराक्रमी चिक्षुरके मारे जानेपर देवताओंको पीड़ा देनेवाला चामर हाथीपर चढ़कर आया। उसने भी देवीके ऊपर शक्तिका प्रहार किया, किन्तु जगदम्बाने उसे अपने हुंकारसे ही आहत एवं निष्प्रभ करके तत्काल पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ११-१२॥ शक्तिको टूटकर गिरी हुई देख चामरको बड़ा क्रोध हुआ। अब उसने शूल चलाया, किन्तु देवीने उसे भी अपने बाणोंद्वारा काट डाला॥ १३॥ इतनेमें ही देवीका सिंह उछलकर हाथीके मस्तकपर चढ़ बैठा और उस दैत्यके साथ खूब जोर लगाकर बाहुयुद्ध करने लगा॥ १४॥ वे दोनों लड़ते-लड़ते हाथीसे पृथ्वीपर आ गये और अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक दूसरेपर बड़े भयंकर प्रहार करते हुए लड़ने लगे॥ १५॥ तदनन्तर सिंह बड़े वेगसे आकाशकी ओर उछला और उधरसे गिरते समय उसने पंजोंकी मारसे चामरका

१. इसके बाद किसी किसी प्रतिमें—
'कालं च कालदण्डेन कालदंष्ट्रासिपातनैः। उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत्॥
असिलोमानमसिना[illegible] रणे त्वरे। गणैः सिंहेन देव्या च जयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः॥
—ये दो श्लोक अधिक हैं।'

सिर धड़से अलग कर दिया॥ १६॥ इसी प्रकार

उदग्र भी शिला और वृक्ष आदिकी मार खाकर रणभूमिमें देवीके हाथसे मारा गया तथा कराल भी दाँतों, मुक्कों और थप्पड़ोंकी चोटसे धराशायी हो गया॥ १७॥ क्रोधमें भरी हुई देवीने गदाकी चोटसे उद्धतका कचूमर निकाल डाला। भिन्दिपालसे बाष्कलको तथा बाणोंसे ताम्र और अन्धकको मौतके घाट उतार दिया॥ १८॥ तीन नेत्रोंवाली परमेश्वरीने त्रिशूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्य तथा महाहनु नामक दैत्यको मार डाला॥ १९॥ तलवारकी चोटसे बिडालके मस्तकको धड़से काट गिराया। दुर्धर और दुर्मुख—इन दोनोंको भी अपने बाणोंसे यमलोक भेज दिया॥ २०॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्॥ २१॥
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान्॥ २२॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले॥ २३॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका॥ २४॥
सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च॥ २५॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः॥ २६॥
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं[1] खण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः॥ २७॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत्॥ २८॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे॥ २९॥
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत॥ ३०॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।
तं खड्गचर्मणा सार्द्धं ततः सोऽभून्महागजः॥ ३१॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत॥ ३२॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ३३॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना॥ ३४॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्॥ ३५॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्॥ ३६॥

इस प्रकार अपनी सेनाका संहार होता देख

१. पा०—खण्डखण्डं।

महिषासुरने भैंसेका रूप धारण करके देवीके गणोंको त्रास देना आरम्भ किया॥ २१॥ किन्हींको थूथुनसे मारकर, किन्हींके ऊपर खुरोंका प्रहार करके, किन्हीं-किन्हींको पूँछसे चोट पहुँचाकर, कुछको सींगोंसे विदीर्ण करके, कुछ गणोंको वेगसे, किन्हींको सिंहनादसे, कुछको चक्कर देकर और कितनोंको निःश्वास वायुके झोंकेसे धराशायी कर दिया॥ २२-२३॥ इस प्रकार गणोंकी सेनाको गिराकर वह असुर महादेवीके सिंहको मारनेके लिये झपटा। इससे जगदम्बाको बड़ा क्रोध हुआ॥ २४॥ उधर महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधमें भरकर धरतीको खुरोंसे खोदने लगा तथा अपने सींगोंसे ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंको उठाकर फेंकने और गर्जने लगा॥ २५॥ उसके वेगसे चक्कर देनेके

कारण पृथ्वी क्षुब्ध होकर फटने लगी। उसकी पूँछसे टकराकर समुद्र सब ओरसे धरतीको डुबोने लगा॥ २६॥ हिलते हुए सींगोंके आघातसे विदीर्ण होकर बादलोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके श्वासकी प्रचण्ड वायुके वेगसे उड़े हुए सैकड़ों पर्वत आकाशसे गिरने लगे॥ २७॥ इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्यको अपनी ओर आते देख चण्डिकाने उसका वध करनेके लिये महान् क्रोध किया॥ २८॥ उन्होंने पाश फेंककर उस महान् असुरको बाँध लिया। उस महासंग्राममें बँध जानेपर उसने भैंसेका रूप त्याग दिया॥ २९॥ और तत्काल सिंहके रूपमें वह प्रकट हो गया। उस अवस्थामें जगदम्बा ज्यों ही उसका मस्तक काटनेको उद्यत हुईं, त्यों ही वह खड्गधारी पुरुषके रूपमें दिखायी देने लगा॥ ३०॥ तब देवीने तुरंत ही बाणोंकी वर्षा करके ढाल और तलवारके साथ उस पुरुषको भी बींध डाला। इतनेमें ही वह महान् गजराजके रूपमें परिणत हो गया॥ ३१॥ तथा अपनी सूँड़से देवीके विशाल सिंहको खींचने और गर्जने लगा। खींचते समय देवीने तलवारसे उसकी सूँड़ काट डाली॥ ३२॥ तब उस महादैत्यने पुनः भैंसेका शरीर धारण कर लिया और पहलेकी ही भाँति चराचर प्राणियोंसहित

तीनों लोकोंको व्याकुल करने लगा॥ ३३॥ तब क्रोधमें भरी हुई जगन्माता चण्डिका बारंबार उत्तम मधुका पान करने और लाल आँखें करके हँसने लगीं॥ ३४॥ उधर वह बल और पराक्रमके मदसे उन्मत्त हुआ राक्षस अपने सींगोंसे चण्डीके ऊपर पर्वतोंको फेंकने लगा और डकारने लगा॥ ३५॥ उस समय देवी अपने बाणोंके समूहोंसे उसके फेंके हुए पर्वतोंको चूर्ण करती हुई बोलीं। बोलते समय उनका मुख मधुके मदसे लाल हो रहा था और वाणी लड़खड़ा रही थी॥ ३६॥

देव्युवाच॥ ३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः॥ ३८॥

देवीने कहा—॥ ३७॥ ओ मूढ़! मैं जबतक मधु पीती हूँ तबतक तू क्षणभरके लिये खूब गर्ज ले। मेरे हाथसे यहीं तेरी मृत्यु हो जानेपर अब शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे॥ ३८॥

ऋषिरुवाच॥ ३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत्॥ ४०॥
ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीत्[१]देव्या वीर्येण संवृतः॥ ४१॥
अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः[२]॥ ४२॥
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः॥ ४३॥
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४४॥

ऋषि कहते हैं—॥ ३९॥ यों कहकर देवी उछलीं और उस महादैत्यके ऊपर चढ़ गयीं। फिर अपने पैरसे उसे दबाकर उन्होंने शूलसे उसके कण्ठमें आघात किया। [उनके पैरसे दबा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे दूसरे रूपमें बाहर होने लगा]॥ ४०॥ अभी आधे शरीरसे ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवीने अपने प्रभावसे उसे रोक दिया॥ ४१॥ आधा निकला होनेपर भी वह महादैत्य देवीसे युद्ध करने लगा। तब देवी बहुत बड़ी तलवारसे उसका मस्तक काट गिराया॥ ४२॥

फिर तो हाहाकार करती हुई दैत्योंकी सारी सेना भाग गयी तथा सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४३॥ देवताओंने दिव्य महर्षियोंके साथ दुर्गादेवीका स्तवन किया। गन्धर्वराज गान करने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ ४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

उवाच ३, श्लोकाः ४१, एवम् ४४, एवमादितः॥ २१७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवी-माहात्म्यमें 'महिषासुर-वध' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

---

१. पा०—एवाति देव्या। २. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद—

'एवं स महिषो नाम ससैन्यः ससुहृद्गणः। त्रैलोक्यं मोहयित्वा तु तया देव्या विनाशितः॥
त्रैलोक्यस्थैस्तदा भूतैर्महिषे विनिपातिते। जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः॥'—इतना अधिक पाठ है।

चतुर्थोऽध्यायः

इन्द्रादि देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति

ध्यान

(ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओरसे घेरे रहते हैं, उन 'जया' नामवाली दुर्गादेवीका ध्यान करे। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा काले मेघके समान श्याम है। वे अपने कटाक्षोंसे शत्रुसमूहको भय प्रदान करती हैं। उनके मस्तकपर आबद्ध चन्द्रमाकी रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंहके कंधेपर चढ़ी हुई हैं और अपने तेजसे तीनों लोकोंको परिपूर्ण कर रही हैं।)

ऋषिरुवाच[1]॥१॥

'ॐ' शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः॥२॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः॥३॥

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥४॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥५॥

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥६॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥८॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्वं[2]-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥९॥

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री॥१०॥

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा॥११॥

---

१. किसी-किसी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच' के बाद 'ततः सुरगणाः सर्वे देव्या इन्द्रपुरोगमाः। स्तुतिमारेभिरे कर्तुं निहते महिषासुरे।' इतना पाठ अधिक है।

२. पा०—च अम्ब०।

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण॥ १२॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन॥ १३॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य॥ १४॥
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥ १५॥
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन॥ १६॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥ १७॥
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि॥ १८॥
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी॥ १९॥
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत्॥ २०॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्॥ २१॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि॥ २२॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते॥ २३॥
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥ २४॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥ २५॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥ २६॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः॥ २७॥

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर तथा उसकी दैत्य-सेनाके देवीके हाथसे मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता प्रणामके लिये गर्दन तथा कंधे झुकाकर उन भगवती दुर्गाका उत्तम वचनोंद्वारा स्तवन करने लगे। उस समय उनके सुन्दर अङ्गोंमें अत्यन्त हर्षके कारण रोमाञ्च हो आया था॥ २॥ [देवता बोले—]'सम्पूर्ण देवताओंकी शक्तिका समुदाय ही जिनका स्वरूप

है तथा जिन देवोंने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है, समस्त देवताओं और महर्षियोंकी पूजनीया उन जगदम्बाको हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं। वे हमलोगोंका कल्याण करें ॥ ३ ॥ जिनके अनुपम प्रभाव और बलका वर्णन करनेमें भगवान् शेषनाग, ब्रह्माजी तथा महादेवजी भी समर्थ नहीं हैं, वे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत्का पालन एवं अशुभ भयका नाश करनेका विचार करें ॥ ४ ॥ जो पुण्यात्माओंके घरोंमें स्वयं ही लक्ष्मीरूपसे, पापियोंके यहाँ दरिद्रतारूपसे, शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंके हृदयमें बुद्धिरूपसे, सत्पुरुषोंमें श्रद्धारूपसे तथा कुलीन मनुष्यमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उन आप भगवती दुर्गाको हम नमस्कार करते हैं। देवि! सम्पूर्ण विश्वका पालन कीजिये ॥ ५ ॥ देवि! आपके इन अचिन्त्य रूपका, असुरोंका नाश करनेवाले भारी पराक्रमका तथा समस्त देवताओं और दैत्योंके समक्ष युद्धमें प्रकट किये हुए आपके अद्भुत चरित्रोंका हम किस प्रकार वर्णन करें ॥ ६ ॥ आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिमें कारण हैं। आपमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये तीनों गुण मौजूद हैं; तो भी दोषोंके साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता। भगवान् विष्णु और महादेवजी आदि देवता भी आपका पार नहीं पाते। आप ही सबका आश्रय हैं। यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है; क्योंकि आप सबकी आदिभूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं ॥ ७ ॥ देवि! सम्पूर्ण यज्ञोंमें जिसके उच्चारणसे सब देवता तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आप पितरोंकी भी तृप्तिका कारण हैं, अतएव सब लोग आपको स्वधा भी कहते हैं ॥ ८ ॥ देवि! जो मोक्षकी प्राप्तिका साधन है, अचिन्त्य महाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषोंसे रहित,

जितेन्द्रिय, तत्त्वको ही सार वस्तु माननेवाले तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या आप ही हैं ॥ ९ ॥ आप शब्दस्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथके मनोहर पदोंके पाठसे युक्त सामवेदका भी आधार आप ही हैं। आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्योंसे युक्त) हैं। इस विश्वकी उत्पत्ति एवं पालनके लिये आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका)-के रूपमें प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत्की घोर पीड़ाका नाश करनेवाली हैं ॥ १० ॥ देवि! जिससे समस्त शास्त्रोंके सारका ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही हैं। दुर्गम भवसागरसे पार उतारनेवाली नौकारूप दुर्गादेवी भी आप ही हैं। आपकी कहीं भी आसक्ति नहीं है। कैटभके शत्रु भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें एकमात्र निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान् चन्द्रशेखरद्वारा सम्मानित गौरीदेवी भी आप ही हैं ॥ ११ ॥ आपका मुख मन्द मुसकानसे

सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बका अनुकरण करनेवाला और उत्तम सुवर्णकी मनोहर कान्तिसे कमनीय है; तो भी उसे देखकर महिषासुरको क्रोध हुआ और सहसा उसने उसपर प्रहार कर दिया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ १२॥ देवि! वही मुख जब क्रोधसे युक्त होनेपर उदयकालके चन्द्रमाकी भाँति लाल और तनी हुई भौंहोंके कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर जो महिषासुरके प्राण तुरंत नहीं निकल गये, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्यकी बात है; क्योंकि क्रोधमें भरे हुए यमराजको देखकर भला, कौन जीवित रह सकता है॥ १३॥ देवि! आप प्रसन्न हों। परमात्मस्वरूपा आपके प्रसन्न होनेपर जगत्‌का अभ्युदय होता है और क्रोधमें भर जानेपर आप तत्काल ही कितने कुलोंका सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभवमें आयी है; क्योंकि महिषासुरकी यह विशाल सेना क्षणभरमें आपके कोपसे नष्ट हो गयी है॥ १४॥ सदा अभ्युदय प्रदान करनेवाली आप जिनपर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देशमें सम्मानित हैं, उन्हींको धन और यशकी प्राप्ति होती है, उन्हींका धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हृष्ट-पुष्ट स्त्री, पुत्र और भृत्योंके साथ धन्य माने जाते हैं॥ १५॥ देवि! आपकी ही कृपासे पुण्यात्मा पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकारके धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाता है; इसलिये आप तीनों लोकोंमें निश्चय ही मनोवाञ्छित फल देनेवाली हैं॥ १६॥ मा दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो॥ १७॥ देवि! इन राक्षसोंके मारनेसे संसारको सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकालतक नरकमें रहनेके लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राममें मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गलोकमें जायँ—निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओंका वध करती हैं॥ १८॥ आप शत्रुओंपर शस्त्रोंका प्रहार क्यों करती हैं? समस्त असुरोंको दृष्टिपातमात्रसे ही भस्म क्यों नहीं कर देतीं? इसमें एक रहस्य है। 'ये शत्रु भी हमारे शस्त्रोंसे पवित्र होकर उत्तम लोकोंमें जायँ'—इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है॥ १९॥ खड्गके तेज:पुञ्जकी भयङ्कर दीप्तिसे तथा आपके त्रिशूलके अग्रभागकी घनीभूत प्रभासे चौंधियाकर जो असुरोंकी आँखें फूट नहीं गयीं, उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियोंसे युक्त चन्द्रमाके समान आनन्द प्रदान करनेवाले आपके इस सुन्दर मुखका दर्शन करते थे॥ २०॥ देवि! आपका शील दुराचारियोंके बुरे बर्तावको दूर करनेवाला है। साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तनमें भी नहीं आ सकता और जिसकी कभी दूसरोंसे तुलना भी नहीं हो सकती; तथा आपका बल और पराक्रम तो उन दैत्योंका भी नाश करनेवाला है, जो कभी देवताओंके पराक्रमको भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओंपर भी अपनी दया ही प्रकट की है॥ २१॥ वरदायिनी देवि! आपके इस पराक्रमकी किसके साथ तुलना हो सकती है। तथा शत्रुओंको भय देनेवाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके सिवा और कहाँ है!

हृदयमें कृपा और युद्धमें निष्ठुरता—ये दोनों बातें तीनों लोकोंके भीतर केवल आपमें ही देखी गयी हैं ॥ २२ ॥ माता:! आपने शत्रुओंका नाश करके इस समस्त त्रिलोकीकी रक्षा की है। उन शत्रुओंको भी युद्धभूमिमें मारकर स्वर्गलोकमें पहुँचाया है तथा उन्मत्त दैत्योंसे प्राप्त होनेवाले हमलोगोंके भयको भी दूर कर दिया है, आपको हमारा नमस्कार है ॥ २३ ॥ देवि! आप शूलसे हमारी रक्षा करें। अम्बिके! खड्गसे भी हमारी रक्षा करें तथा घण्टाकी ध्वनि और धनुषकी टंकारसे भी आप हमलोगोंकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशामें आप हमारी रक्षा करें तथा ईश्वरि! अपने त्रिशूलको घुमाकर आप उत्तर दिशामें भी हमारी रक्षा करें ॥ २५ ॥ तीनों लोकोंमें आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयङ्कर रूप विचरते रहते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस भूलोककी रक्षा करें ॥ २६ ॥ अम्बिके! आपके कर पल्लवोंमें शोभा पानेवाले खड्ग, शूल और गदा आदि जो जो अस्त्र हों, उन सबके द्वारा आप सब ओरसे हमलोगोंकी रक्षा करें ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २८ ॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ २९ ॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ ३० ॥

ऋषि कहते हैं—॥ २८ ॥ इस प्रकार जब देवताओंने जगन्माता दुर्गाकी स्तुति की और नन्दनवनके दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चन्दन आदिके द्वारा उनका पूजन किया, फिर सबने मिलकर जब भक्तिपूर्वक दिव्य धूपोंकी सुगन्ध निवेदन की, तब देवीने प्रसन्नवदन होकर प्रणाम करते हुए सब देवताओंसे कहा—॥ २९-३० ॥

देव्युवाच ॥ ३१ ॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥ ३२ ॥

देवी बोलीं—॥ ३१ ॥ देवताओ! तुम सब लोग मुझसे जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, उसे माँगो ॥ ३२ ॥

देवा ऊचुः ॥ ३३ ॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥ ३४ ॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ ३५ ॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ ३६ ॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥ ३७ ॥

देवता बोले—॥ ३३ ॥ भगवतीने हमारी सब इच्छा पूर्ण कर दी, अब कुछ भी बाकी नहीं है ॥ ३४ ॥ क्योंकि हमारा यह शत्रु महिषासुर मारा गया। महेश्वरि! इतनेपर भी यदि आप हमें और वर देना चाहती हैं ॥ ३५ ॥ तो हम जब-जब आपका स्मरण करें, तब-तब आप दर्शन देकर हमलोगोंके महान् संकट दूर कर दिया करें तथा प्रसन्नमुखी अम्बिके! जो मनुष्य इन स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, समृद्धि और वैभव देनेके साथ ही उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्तिको भी बढ़ानेके लिये आप सदा हमपर प्रसन्न रहें ॥ ३६-३७ ॥

---

१. पा०—पैः सुधूपिता। २. मार्कण्डेयपुराणकी आधुनिक प्रतियोंमें—'दत्तान्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता।'—इतना पाठ अधिक है। किसी-किसी प्रतिमें—'कर्त्तव्यमपरं यच्च दुष्करं तन्न विद्महे। इत्याकर्ण्य वचो देव्याः प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः॥'—इतना और अधिक पाठ है।

ऋषिरुवाच ॥ ३८ ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ ३९ ॥
इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ ४० ॥
पुनश्च गौरीदेहात्सा[1] समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ४१ ॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ ह्रीं ॐ ॥ ४२ ॥

ऋषि कहते हैं — ॥ ३८ ॥ राजन्! देवताओंने जब अपने तथा जगत्के कल्याणके लिये भद्रकाली देवीको इस प्रकार प्रसन्न किया, तब वे 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥ ३९ ॥ भूपाल! इस प्रकार पूर्वकालमें तीनों लोकोंका हित चाहनेवाली देवी जिस प्रकार देवताओंके शरीरोंसे प्रकट हुई थीं, वह सब कथा मैंने कह सुनायी ॥ ४० ॥ अब पुनः देवताओंका उपकार करनेवाली वे देवी दुष्ट दैत्यों तथा शुम्भ-निशुम्भका वध करने एवं सब लोकोंकी रक्षा करनेके लिये गौरीदेवीके शरीरसे जिस प्रकार प्रकट हुई थीं, वह सब प्रसङ्ग मेरे मुँहसे सुनो। मैं उसका तुमसे यथावत् वर्णन करता हूँ ॥ ४१-४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

उवाच ५, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५, एवम् ४२, एवमादितः ॥ २५९ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'शक्रादिस्तुति' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

---

१. किसी किसी प्रतिमें 'गौरीदेहा त्सा' 'गौरी देहात्सा' इत्यादि पाठ भी उपलब्ध होते हैं।

पञ्चमोऽध्यायः

देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति, चण्ड-मुण्डके मुखसे अम्बिकाके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना और दूतका निराश लौटना

विनियोग

[ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, **भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्,** सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः **स्वरूपम्,** महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे **विनियोगः।**

ॐ इस उत्तर चरित्रके रुद्र ऋषि हैं, महासरस्वती देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, भीमा शक्ति है, भ्रामरी बीज है, सूर्य तत्त्व है और सामवेद स्वरूप है। महासरस्वतीकी प्रसन्नताके लिये उत्तर चरित्रके पाठमें इसका विनियोग किया जाता है।

ध्यान

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

जो अपने करकमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, शरद्-ऋतुके शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकोंकी आधारभूता और शुम्भ आदि दैत्योंका नाश करनेवाली हैं तथा गौरीके शरीरसे जिनका प्राकट्य हुआ है, उन महासरस्वती देवीका मैं निरन्तर भजन करता हूँ।]

'ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच॥ १॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥ २॥
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च॥ ३॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च[1]।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः॥ ४॥
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्॥ ५॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः॥ ६॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः॥ ७॥

ऋषि कहते हैं— ॥ १॥ पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरोंने अपने बलके घमंडमें आकर शचीपति इन्द्रके हाथसे तीनों लोकोंका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये॥ २॥ वे ही दोनों सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, यम और वरुणके अधिकारका भी उपयोग करने लगे। वायु और अग्निका कार्य भी वे ही करने लगे। उन दोनोंने सब देवताओंको अपमानित, राज्यभ्रष्ट, पराजित तथा अधिकारहीन करके स्वर्गसे निकाल दिया। उन दोनों महान् असुरोंसे तिरस्कृत देवताओंने अपराजिता देवीका स्मरण किया और सोचा 'जगदम्बाने हमलोगोंको वर दिया था कि आपत्तिकालमें स्मरण करनेपर मैं तुम्हारी सब आपत्तियोंका तत्काल नाश कर दूँगी'॥ ३—६॥ यह विचारकर देवता गिरिराज हिमालयपर गये और वहाँ भगवती विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे॥ ७॥

देवा ऊचुः॥ ८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ९॥

---

१. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति' इतना पाठ अधिक है।

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ १० ॥
कल्याण्यै प्रणतां[1] वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥ ११ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ १२ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥ १३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै ॥ १४ ॥ नमस्तस्यै ॥ १५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै ॥ १७ ॥ नमस्तस्यै ॥ १८ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ १९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ २० ॥ नमस्तस्यै ॥ २१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ २३ ॥ नमस्तस्यै ॥ २४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ २६ ॥ नमस्तस्यै ॥ २७ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ २८ ॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ २९ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ३२ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३३ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ३५ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३६ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ३७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ३८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ३९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४० ॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ४१ ॥ नमस्तस्यै ॥ ४२ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ४४ ॥ नमस्तस्यै ॥ ४५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ४७ ॥ नमस्तस्यै ॥ ४८ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ४९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ५० ॥ नमस्तस्यै ॥ ५१ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५२ ॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ५३ ॥ नमस्तस्यै ॥ ५४ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ५६ ॥ नमस्तस्यै ॥ ५७ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ५८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ५९ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६० ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६१ ॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ६२ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६३ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ६५ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६६ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ६७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ६८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ६९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७० ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ७१ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७२ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै ॥ ७४ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७५ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ७६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥ ७७ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै ॥ ७८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८० ॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ८१ ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ८२ ॥

देवता बोले— ॥ ८ ॥ देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको सर्वदा नमस्कार है। प्रकृति एवं

---

१. वृद्ध्यै सिद्ध्यै च प्रणतां देवीं प्रति नमः नतिं कुर्मः इत्यन्वयः। यद् वा प्रणमन्तीति प्रणन्तः, तेषां प्रणतानिति षष्ठीबहुवचनान्तं बोध्यम्। इति शान्तनव्यां टीकायां स्पष्टम्। 'प्रणताः' इति पाठान्तरम्।

भद्राको प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बाको नमस्कार करते हैं॥ ९॥ रौद्राको नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्रीको बारंबार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवीको सतत प्रणाम है॥ १०॥ शरणागतोंका कल्याण करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवीको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसोंकी लक्ष्मी), राजाओंकी लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी)-स्वरूपा आप जगदम्बाको बार-बार नमस्कार है॥ ११॥ दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकटसे पार उतारनेवाली), सारा (सबकी सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवीको सर्वदा नमस्कार है॥ १२॥ अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवीको हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा बारंबार प्रणाम है। जगत्की आधारभूता कृति देवीको बारंबार नमस्कार है॥ १३॥ जो देवी सब प्राणियोंमें विष्णुमायाके नामसे कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १४—१६॥ जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १७—१९॥ जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २०—२२॥ जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २३—२५॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २६—२८॥ जो देवी सब प्राणियोंमें छायारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २९—३१॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३२—३४॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३५—३७॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्ति (क्षमा)-रूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३८—४०॥ जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४१—४३॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४४—४६॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४७—४९॥ जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५०—५२॥ जो देवी सब प्राणियोंमें कान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५३—५५॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५६—५८॥ जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५९—६१॥ जो देवी सब प्राणियोंमें स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६२—६४॥ जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६५—६७॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६८—७०॥ जो देवी सब प्राणियोंमें मातारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार

हैं ॥ ७१—७३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें भ्रान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ७४—७६ ॥ जो जीवोंके इन्द्रियवर्गकी अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियोंमें सदा व्याप्त रहनेवाली हैं, उन व्याप्तिदेवीको बारंबार नमस्कार है ॥ ७७ ॥ जो देवी चैतन्यरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ७८—८० ॥ पूर्वकालमें अपने अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे देवताओंने जिनकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्रने बहुत दिनोंतक जिनका सेवन किया, वह कल्याणकी साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मङ्गल करे तथा सारी आपत्तियोंका नाश कर डाले ॥ ८१ ॥ उद्दण्ड दैत्योंसे सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरीको इस समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्तिसे विनम्र पुरुषोंद्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश कर देती हैं, वे जगदम्बा हमारा संकट दूर करें ॥ ८२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ ८४ ॥
साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ८५ ॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः[1] समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ ८६ ॥
शरीरकोशाद्यत्तस्याः[2] पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति[3] समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ ८७ ॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ ८८ ॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ८९ ॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ ९० ॥
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ ९१ ॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥ ९२ ॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥ ९३ ॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ ९४ ॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥ ९५ ॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ९६ ॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥ ९७ ॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ ९८ ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
वह्निरपि[4] ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ ९९ ॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥ १०० ॥

ऋषि कहते हैं— ॥ ८३ ॥ राजन्! इस प्रकार जब देवता स्तुति कर रहे थे, उस समय पार्वती देवी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेके लिये वहाँ आयीं ॥ ८४ ॥ उन सुन्दर भौंहोंवाली भगवतीने देवताओंसे पूछा—'आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' तब उन्हींके शरीरकोशसे प्रकट हुई शिवादेवी बोलीं— ॥ ८५ ॥ 'शुम्भदैत्यसे तिरस्कृत और युद्धमें निशुम्भसे पराजित हो यहाँ एकत्रित हुए ये समस्त देवता यह मेरी ही स्तुति

१. पा०—समस्तैः। २. पा०—कोषा। ३. पा०—कौषिकी। ४. पा०—ह्यपि।

कर रहे हैं'॥ ८६॥ पार्वतीजीके शरीरकोशसे अम्बिकाका प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिये वे समस्त लोकोंमें 'कौशिकी' कही जाती हैं॥ ८७॥ कौशिकीके प्रकट होनेके बाद पार्वतीदेवीका शरीर काले रंगका हो गया, अतः वे हिमालयपर रहनेवाली कालिकादेवीके नामसे विख्यात हुईं॥ ८८॥ तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्ड वहाँ आये और उन्होंने परम मनोहर रूप धारण करनेवाली अम्बिकादेवीको देखा॥ ८९॥ फिर वे शुम्भके पास जाकर बोले—'महाराज! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्य कान्तिसे हिमालयको प्रकाशित कर रही है॥ ९०॥ वैसा उत्तम रूप कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा। असुरेश्वर! पता लगाइये, वह देवी कौन है और उसे पकड़ लीजिये॥ ९१॥ स्त्रियोंमें तो वह रत्न है, उसका प्रत्येक अङ्ग बहुत ही सुन्दर है तथा वह अपने श्रीअङ्गोंकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रकाश फैला रही है। दैत्यराज! अभी वह हिमालयपर ही मौजूद है, आप उसे देख सकते हैं॥ ९२॥ प्रभो! तीनों लोकोंमें मणि, हाथी और घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सब इस समय आपके घरमें शोभा पाते हैं॥ ९३॥ हाथियोंमें रत्नभूत ऐरावत, यह पारिजातका वृक्ष और यह उच्चैःश्रवा घोड़ा—यह सब आपने इन्द्रसे ले लिया है॥ ९४॥ हंसोंसे जुता हुआ यह विमान भी आपके आँगनमें शोभा पाता है। यह रत्नभूत अद्भुत विमान, जो पहले ब्रह्माजीके पास था, अब आपके यहाँ लाया गया है॥ ९५॥ यह महापद्म नामक निधि आप कुबेरसे छीन लाये हैं। समुद्रने भी आपको किञ्जल्किनी नामकी माला भेंट की है, जो केसरोंसे सुशोभित है और जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं॥ ९६॥ सुवर्णकी वर्षा करनेवाला वरुणका छत्र भी आपके घरमें शोभा पाता है तथा यह श्रेष्ठ रथ, जो पहले प्रजापतिके अधिकारमें था, अब आपके पास मौजूद है॥ ९७॥ दैत्येश्वर! मृत्युकी उत्क्रान्तिदा नामवाली शक्ति भी आपने छीन ली है तथा वरुणका पाश और समुद्रमें होनेवाले सब प्रकारके रत्न आपके भाई निशुम्भके अधिकारमें हैं। अग्निने भी स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपकी सेवामें अर्पित किये हैं॥ ९८-९९॥ दैत्यराज! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिये हैं। फिर जो यह स्त्रियोंमें रत्नरूप कल्याणमयी देवी है, इसे आप क्यों नहीं अपने अधिकारमें कर लेते?॥ १००॥

ऋषिरुवाच॥ १०१॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः।[1]
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्॥ १०२॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु॥ १०३॥
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने।
सा[2] देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा॥ १०४॥

ऋषि कहते हैं—॥ १०१॥ चण्ड-मुण्डका यह वचन सुनकर शुम्भने महादैत्य सुग्रीवको दूत बनाकर देवीके पास भेजा और कहा—'तुम मेरी आज्ञासे उसके सामने ये-ये बातें कहना और ऐसा उपाय करना जिससे प्रसन्न होकर वह शीघ्र ही यहाँ आ जाय'॥ १०२-१०३॥ वह दूत पर्वतके अत्यन्त रमणीय प्रदेशमें, जहाँ देवी मौजूद थीं, गया और मधुर वाणीमें कोमल वचन बोला॥ १०४॥

दूत उवाच॥ १०५॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः॥ १०६॥
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत्॥ १०७॥

---

१. पा०—इसके बाद कहीं-कहीं 'शुम्भ उवाच' इतना अधिक पाठ है। २. पा०—तां च देवीं ततः।

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक्॥१०८॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गजरत्नं[1] च हृत्वा[2] देवेन्द्रवाहनम्॥१०९॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम्॥११०॥
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने॥१११॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम्॥११२॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः॥११३॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज॥११४॥

दूत बोला— ॥१०५॥ देवि! दैत्यराज शुम्भ इस समय तीनों लोकोंके परमेश्वर हैं। मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत हूँ और यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ॥१०६॥ उनकी आज्ञा सदा सब देवता एक स्वरसे मानते हैं। कोई उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण देवताओंको परास्त कर चुके हैं। उन्होंने तुम्हारे लिये जो संदेश दिया है, उसे सुनो॥१०७॥ 'सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे अधिकारमें है। देवता भी मेरी आज्ञाके अधीन चलते हैं। सम्पूर्ण यज्ञोंके भागोंको मैं ही पृथक्-पृथक् भोगता हूँ॥१०८॥ तीनों लोकोंमें जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब मेरे अधिकारमें हैं। देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत, जो हाथियोंमें रत्नके समान है, मैंने छीन लिया है॥१०९॥ क्षीरसागरका मन्थन करनेसे जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था, उसे देवताओंने मेरे पैरोंपर पड़कर समर्पित किया है॥११०॥ सुन्दरी! उनके सिवा और भी जितने रत्नभूत पदार्थ देवताओं, गन्धर्वों और नागोंके पास

थे, वे सब मेरे ही पास आ गये हैं॥१११॥ देवि! हमलोग तुम्हें संसारकी स्त्रियोंमें रत्न मानते हैं, अतः तुम हमारे पास आ जाओ; क्योंकि रत्नोंका उपभोग करनेवाले हम ही हैं॥११२॥ चञ्चल कटाक्षोंवाली सुन्दरी! तुम मेरी या मेरे भाई महापराक्रमी निशुम्भकी सेवामें आ जाओ; क्योंकि तुम रत्नस्वरूपा हो॥११३॥ मेरा वरण करनेसे तुम्हें तुलनारहित महान् ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी। अपनी बुद्धिसे यह विचार कर तुम मेरी पत्नी बन जाओ'॥११४॥

ऋषिरुवाच॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्॥११६॥

ऋषि कहते हैं— ॥११५॥ दूतके यों कहनेपर कल्याणमयी भगवती दुर्गादेवी, जो इस जगत्को धारण करती हैं, मन-ही-मन गम्भीर भावसे मुसकरायीं और इस प्रकार बोलीं— ॥११६॥

[1] पा०—गजरत्नानि हृत्वा। [2] पा०—हृतं

देव्युवाच ॥ ११७ ॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम्।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥ ११८ ॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ ११९ ॥
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥ १२० ॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ॥ १२१ ॥

देवीने कहा— ॥११७॥ दूत! तुमने सत्य कहा है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है। शुम्भ तीनों लोकोंका स्वामी है और निशुम्भ भी उसीके समान पराक्रमी है ॥ ११८ ॥ किंतु इस विषयमें मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसे मिथ्या कैसे करूँ। मैंने अपनी अल्पबुद्धिके कारण पहलेसे जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसको सुनो ॥ ११९ ॥ 'जो मुझे संग्राममें जीत लेगा, जो मेरे अभिमानको चूर्ण कर देगा तथा संसारमें जो मेरे समान बलवान् होगा, वही मेरा स्वामी होगा' ॥१२० ॥ इसलिये शुम्भ अथवा महादैत्य निशुम्भ स्वयं ही यहाँ पधारें और मुझे जीतकर शीघ्र ही मेरा पाणिग्रहण कर लें, इसमें विलम्बकी क्या आवश्यकता है ॥ १२१ ॥

दूत उवाच ॥ १२२ ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥ १२३ ॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥ १२४ ॥
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ॥ १२५ ॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ १२६ ॥

दूत बोला— ॥१२२॥ देवि! तुम घमंडमें भरी हो, मेरे सामने ऐसी बातें न करो। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो शुम्भ-निशुम्भके सामने खड़ा हो सके ॥ १२३ ॥ देवि! अन्य दैत्योंके सामने भी सारे देवता युद्धमें नहीं ठहर सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर कैसे ठहर सकती हो ॥ १२४ ॥ जिन शुम्भ आदि दैत्योंके सामने इन्द्र आदि देवता भी युद्धमें खड़े नहीं हुए, उनके सामने तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ॥ १२५ ॥ इसलिये तुम मेरे ही कहनेसे शुम्भ-निशुम्भके पास चली चलो। ऐसा करनेसे तुम्हारे गौरवकी रक्षा होगी; अन्यथा जब वे केश पकड़कर घसीटेंगे, तब तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा खोकर जाना पड़ेगा ॥ १२६ ॥

देव्युवाच ॥ १२७ ॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥ १२८ ॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत्[1] ॥ ॐ ॥ १२९ ॥

देवीने कहा— ॥१२७॥ तुम्हारा कहना ठीक है, शुम्भ बलवान् हैं और निशुम्भ भी बड़े पराक्रमी हैं; किंतु क्या करूँ। मैंने पहले बिना सोचे-समझे प्रतिज्ञा कर ली है ॥१२८॥ अतः अब तुम जाओ; मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सब दैत्यराजसे आदरपूर्वक कहना। फिर वे जो उचित जान पड़े, करें ॥१२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
उवाच ९, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४, एवम् १२९, एवमादितः ॥ ३८८ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'देवी-दूत-संवाद' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

---

१. पा०—यत्।

षष्ठोऽध्यायः

धूम्रलोचन-वध

ध्यान

(ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये॥

मैं सर्वज्ञेश्वर भैरवके अङ्कमें निवास करनेवाली परमोत्कृष्ट पद्मावती देवीका चिन्तन करता हूँ। वे नागराजके आसनपर बैठी हैं, नागोंके फणोंमें सुशोभित होनेवाली मणियोंकी विशाल मालासे उनकी देहलता उद्भासित हो रही है। सूर्यके समान उनका तेज है, तीन नेत्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे हाथोंमें माला, कुम्भ, कपाल और कमल लिये हुए हैं तथा उनके मस्तकमें अर्द्धचन्द्रका मुकुट सुशोभित है।)

ऋषिरुवाच॥ १॥

'ॐ इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्॥ २॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम्॥ ३॥
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्॥ ४॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा॥ ५॥

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ देवीका यह कथन सुनकर दूतको बड़ा अमर्ष हुआ और उसने दैत्यराजके पास जाकर सब समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनाया॥ २॥ दूतके उस वचनको सुनकर दैत्यराज कुपित हो उठा और दैत्यसेनापति धूम्रलोचनसे बोला—॥ ३॥ 'धूम्रलोचन! तुम शीघ्र अपनी सेना साथ लेकर जाओ और उस दुष्टाको केश पकड़कर घसीटते हुए जबरदस्ती यहाँ ले आओ॥ ४॥ उसकी रक्षा करनेके लिये यदि कोई दूसरा खड़ा हो तो वह देवता, यक्ष अथवा गन्धर्व—कोई भी क्यों न हो, उसे अवश्य मार डालना'॥ ५॥

ऋषिरुवाच॥ ६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ॥ ७॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः॥ ८॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम्॥ ९॥

ऋषि कहते हैं—॥ ६॥ शुम्भके इस प्रकार आज्ञा देनेपर वह धूम्रलोचन दैत्य साठ हजार असुरोंकी सेनाको साथ लेकर वहाँसे तुरंत चल

दिया॥ ७॥ वहाँ पहुँचकर उसने हिमालयपर रहनेवाली उन देवीको देखा और ललकारकर कहा—'अरी! तू शुम्भ-निशुम्भके पास चल। यदि इस समय प्रसन्नतापूर्वक मेरे स्वामीके समीप नहीं चलेगी तो मैं बलपूर्वक झोंटा पकड़कर घसीटते हुए तुझे ले चलूँगा'॥ ८-९॥

देव्युवाच॥ १०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम्॥ ११॥

देवी बोलीं—॥ १०॥ तुम्हें दैत्योंके राजाने भेजा है, तुम स्वयं भी बलवान् हो और तुम्हारे साथ विशाल सेना भी है; ऐसी दशामें यदि मुझे बलपूर्वक ले चलोगे तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ॥ ११॥

ऋषिरुवाच॥ १२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः॥ १३॥
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका[1]।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः॥ १४॥
ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम्।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः॥ १५॥
कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रम्य[2] चाधरेणान्यान्[3] स जघान[4] महासुरान्॥ १६॥
केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी[5]।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक्॥ १७॥
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः॥ १८॥
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना॥ १९॥

ऋषि कहते हैं—॥ १२॥ देवीके यों कहनेपर असुर धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा, तब अम्बिकाने 'हुं' शब्दके उच्चारणमात्रसे उसको भस्म कर दिया॥ १३॥ फिर तो क्रोधमें भरी हुई दैत्योंकी विशाल सेना और अम्बिकाने एक-दूसरेपर तीखे सायकों, शक्तियों तथा फरसोंकी वर्षा आरम्भ की॥ १४॥ इतनेमें ही देवीका वाहन सिंह क्रोधमें भरकर भयंकर गर्जना करके गर्दनके बालोंको हिलाता हुआ असुरोंकी सेनामें कूद पड़ा॥ १५॥ उसने कुछ दैत्योंको पंजोंकी मारसे, कितनोंको अपने जबड़ोंसे और कितने ही महादैत्योंको पटककर ओठकी दाढ़ोंसे घायल करके मार डाला॥ १६॥ उस सिंहने अपने नखोंसे कितनोंके पेट फाड़

डाले और थप्पड़ मारकर कितनोंके सिर धड़से अलग कर दिये॥ १७॥ कितनोंकी भुजाएँ और मस्तक काट डाले तथा अपनी गर्दनके बाल

१. पा०—तथाम्बिकाम्। २. पा०—आक्रान्त्या। ३. पा०—चरणेनान्यान्। ४. यहाँ तीन तरहके पाठान्तर मिलते हैं—संजघान, निजघान, जघान सु महा०। ५. पा०—केशरी। बंगला प्रतिमें सब जगह 'केशरी' और 'केशर' शब्दमें तालव्य 'श' का प्रयोग है।

हिलाते हुए उसने दूसरे दैत्योंके पेट फाड़कर उनका रक्त चूस लिया ॥ १८ ॥ अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए देवीके वाहन उस महाबली सिंहने क्षणभरमें ही असुरोंकी सारी सेनाका संहार कर डाला ॥ १९ ॥

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥ २० ॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ २१ ॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ २२ ॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ २३ ॥
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥ ॐ ॥ २४ ॥

शुम्भने जब सुना कि देवीने धूम्रलोचन असुरको मार डाला तथा उसके सिंहने सारी सेनाका सफाया कर डाला, तब उस दैत्यराजको बड़ा क्रोध हुआ। उसका ओठ काँपने लगा। उसने चण्ड और मुण्ड नामक दो महादैत्योंको आज्ञा दी— ॥ २०-२१ ॥ 'हे चण्ड! और हे मुण्ड! तुमलोग बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ जाओ और उस देवीके झोंटे पकड़कर अथवा उसे बाँधकर शीघ्र यहाँ ले आओ। यदि इस प्रकार उसको लानेमें तुम्हें संदेह हो तो युद्धमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों तथा समस्त आसुरी सेनाका प्रयोग करके उसकी हत्या कर डालना ॥ २२-२३ ॥ उस दुष्टाकी हत्या होने तथा सिंहके भी मारे जानेपर उस अम्बिकाको बाँधकर साथ ले शीघ्र ही लौट आना ॥ २४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४, एवमादितः ॥ ४१२ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'धूम्रलोचन-वध' नामक छठा अध्याय पूरा हुआ ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः

चण्ड और मुण्डका वध

ध्यान

(ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम्॥

मैं मातङ्गी देवीका ध्यान करता हूँ। वे रत्नमय सिंहासनपर बैठकर पढ़ते हुए तोतेका मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीरका वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमलपर रखे हुए हैं और मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करती हैं। कह्लार-पुष्पोंकी माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अङ्गमें कसी हुई चोली शोभा पा रही है। लाल रंगकी साड़ी पहने हाथमें शङ्खमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदनपर मधुका हल्का-हल्का नशा जान पड़ता है और ललाटमें बेंदी शोभा दे रही है।)

ऋषिरुवाच ॥ १ ॥

'ॐ' आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ २ ॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥ ३ ॥
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ ४ ॥

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा[1]॥ ५॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी॥ ६॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा॥ ७॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा॥ ८॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम्॥ ९॥
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्॥ १०॥
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यति[2]भैरवम्॥ ११॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्॥ १२॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि॥ १३॥
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा॥ १४॥
असिना निहताः केचित्केचित्[3]खट्वाङ्गताडिताः।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा॥ १५॥
क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्॥ १६॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः॥ १७॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम्॥ १८॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला॥ १९॥
उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्[4]॥ २०॥

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ तदनन्तर शुम्भकी आज्ञा पाकर वे चण्ड-मुण्ड आदि दैत्य चतुरङ्गिणी सेनाके साथ अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो चल दिये॥ २॥ फिर गिरिराज हिमालयके सुवर्णमय ऊँचे शिखरपर पहुँचकर उन्होंने सिंहपर बैठी हुई देवीको देखा। वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं॥ ३॥ उन्हें देखकर दैत्यलोग तत्परतासे पकड़नेका उद्योग करने लगे। किसीने धनुष तान लिया, किसीने तलवार सँभाली और कुछ लोग देवीके पास आकर खड़े हो गये॥ ४॥ तब अम्बिकाने उन शत्रुओंके प्रति बड़ा क्रोध किया। उस समय क्रोधके कारण उनका मुख काला पड़ गया॥ ५॥ ललाटमें भौंहें टेढ़ी हो गयीं और वहाँसे तुरंत विकरालमुखी काली प्रकट हुईं, जो तलवार और पाश लिये हुए थीं॥ ६॥ विचित्र खट्वाङ्ग धारण किये और चीतेके चर्मकी साड़ी पहने नर-मुण्डोंकी मालासे विभूषित थीं। उनके शरीरका मांस सूख गया था, केवल हड्डियोंका ढाँचा था, जिससे वे अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थीं॥ ७॥ उनका मुख बहुत विशाल था, जीभ लपलपानेके कारण वे और भी डरावनी प्रतीत होती थीं। उनकी आँखें भीतरको धँसी हुई और लाल थीं, वे अपनी भयंकर गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजा रही थीं॥ ८॥ बड़े-बड़े दैत्योंका वध करती हुई वे कालिकादेवी बड़े वेगसे दैत्योंकी उस सेनापर टूट पड़ीं और उन सबको भक्षण करने लगीं॥ ९॥ वे पार्श्वरक्षकों, अङ्कुशधारी महावतों, योद्धाओं और घंटासहित कितने ही हाथियोंको

---

१. पा०—मसी०। २. पा०—यत्यति। ३. पा०—ता रथै। ४. शान्तनवी टीकाकारने यहाँ एक श्लोक अधिक पाठ माना है, जो इस प्रकार है—

'छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रश्चक्रे नादं सुभैरवम्। तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम्।'

एक ही हाथसे पकड़कर मुँहमें डाल लेती थीं ॥ १० ॥ इसी प्रकार घोड़े, रथ और सारथिके साथ रथी सैनिकोंको मुँहमें डालकर वे उन्हें बड़े भयानक रूपसे चबा डालती थीं ॥ ११ ॥ किसीके बाल पकड़ लेतीं, किसीका गला दबा देतीं, किसीको पैरोंसे कुचल डालतीं और किसीको छातीके धक्केसे गिराकर मार डालती थीं ॥ १२ ॥ वे असुरोंके छोड़े हुए बड़े बड़े अस्त्र-शस्त्र मुँहसे पकड़ लेतीं और रोषमें भरकर उनको दाँतोंसे पीस डालतीं ॥ १३ ॥ कालीने बलवान् एवं दुरात्मा दैत्योंकी वह सारी सेना रौंद डाली, खा डाली

और कितनोंको मार भगाया ॥ १४ ॥ कोई तलवारके घाट उतारे गये, कोई खट्वाङ्गसे पीटे गये और कितने ही असुर दाँतोंके अग्रभागसे कुचले जाकर मृत्युको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ इस प्रकार देवीने असुरोंकी उस सारी सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। यह देख चण्ड उन अत्यन्त भयानक कालीदेवीकी ओर दौड़ा ॥ १६ ॥ तथा महादैत्य मुण्डने भी अत्यन्त भयङ्कर बाणोंकी वर्षासे तथा हजारों बार चलाये हुए चक्रोंसे उन भयानक नेत्रोंवाली देवीको आच्छादित कर दिया ॥ १७ ॥ वे अनेकों चक्र देवीके मुखमें समाते हुए ऐसे जान पड़े, मानो सूर्यके बहुतेरे मण्डल बादलोंके उदरमें प्रवेश कर रहे हों ॥ १८ ॥ तब भयङ्कर गर्जना करनेवाली कालीने अत्यन्त रोषमें भरकर विकट अट्टहास किया। उस समय उनके विकराल वदनके भीतर कठिनतासे देखे जा सकनेवाले दाँतोंकी प्रभासे वे अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थीं ॥ १९ ॥ देवीने बहुत बड़ी तलवार हाथमें ले 'हं' का उच्चारण करके चण्डपर धावा किया और उसके केश पकड़कर उसी तलवारसे उसका मस्तक काट डाला ॥ २० ॥

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ २१ ॥
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ २२ ॥
शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ २३ ॥

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ २४ ॥

चण्डको मारा गया देख मुण्ड भी देवीकी ओर दौड़ा। तब देवीने रोषमें भरकर उसे भी तलवारसे घायल करके धरतीपर सुला दिया ॥ २१ ॥ महापराक्रमी चण्ड और मुण्डको मारा गया देख मरनेसे बची हुई बाकी सेना भयसे व्याकुल हो चारों ओर भाग गयी ॥ २२ ॥ तदनन्तर कालीने चण्ड और मुण्डका मस्तक हाथमें ले चण्डिकाके पास जाकर प्रचण्ड अट्टहास करते हुए कहा— ॥ २३ ॥ 'देवि! मैंने चण्ड और मुण्ड नामक इन दो महापशुओंको तुम्हें भेंट किया है। अब युद्धयज्ञमें तुम शुम्भ और निशुम्भका स्वयं ही वध करना' ॥ २४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ २५ ॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥ २६ ॥
यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥ ॐ ॥ २७ ॥

ऋषि कहते हैं— ॥ २५ ॥ वहाँ लाये हुए उन चण्ड मुण्ड नामक महादैत्योंको देखकर कल्याणमयी चण्डीने कालीसे मधुर वाणीमें कहा— ॥ २६ ॥ देवि! तुम चण्ड और मुण्डको लेकर मेरे पास आयी हो, इसलिये संसारमें चामुण्डाके नामसे तुम्हारी ख्याति होगी ॥ २७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७, एवमादितः ॥ ४३९ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'चण्ड-मुण्ड-वध' नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

रक्तबीज-वध

ध्यान

('ॐ' अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखैरहमित्येव विभावये भवानीम्॥

मैं अणिमा आदि सिद्धिमयी किरणोंसे आवृत भवानीका ध्यान करता हूँ। उनके शरीरका रंग लाल है। नेत्रोंमें करुणा लहरा रही है तथा हाथोंमें पाश, अङ्कुश, बाण और धनुष शोभा पाते हैं।)

ऋषिरुवाच॥१॥

'ॐ' चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः॥२॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह॥३॥
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः॥४॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया॥५॥
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम॥६॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः॥७॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम्॥८॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका[2] चोपबृंहयत्॥९॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना॥१०॥
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः॥११॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः॥१२॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः॥१३॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥१४॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते॥१५॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा॥१६॥
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी॥१७॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ॥१८॥
यज्ञवाराहमतुलं[3] रूपं या बिभ्रतो[4] हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्॥१९॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः॥२०॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा॥२१॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ चण्ड और मुण्ड नामक दैत्योंके मारे जाने तथा बहुत-सी सेनाका संहार हो जानेपर दैत्योंके राजा प्रतापी शुम्भके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और उसने दैत्योंकी सम्पूर्ण सेनाको युद्धके लिये कूच करनेकी आज्ञा दी॥२-३॥ वह बोला—'आज उदायुध नामके छियासी दैत्य-सेनापति अपनी सेनाओंके साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें। कम्बु नामवाले दैत्योंके

१. पा०—स च। २. पा०—तान्नादानम्बिका। ३. पा०—यज्ञे वाराह०। ४. पा०—ती।

चौरासी सेनानायक अपनी वाहिनीसे घिरे हुए यात्रा करें॥ ४॥ पचास कोटिवीर्य-कुलके और सौ धौम्र-कुलके असुर सेनापति मेरी आज्ञासे सेनासहित कूच करें॥ ५॥ कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय असुर भी युद्धके लिये तैयार हो मेरी आज्ञासे तुरंत प्रस्थान करें'॥ ६॥ भयानक शासन करनेवाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा दे सहस्रों बड़ी-बड़ी सेनाओंके साथ युद्धके लिये प्रस्थित हुआ॥ ७॥ उसकी अत्यन्त भयंकर सेना आती देख चण्डिकाने अपने धनुषकी टंकारसे पृथ्वी और आकाशके बीचका भाग गुँजा दिया॥ ८॥ राजन्! तदनन्तर देवीके सिंहने भी बड़े जोर-जोरसे दहाड़ना आरम्भ किया, फिर अम्बिकाने घंटेके शब्दसे उस ध्वनिको और भी बढ़ा दिया॥ ९॥ धनुषकी टंकार, सिंहकी दहाड़ और घंटेकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। उस भयंकर शब्दसे कालीने अपने विकराल मुखको और भी बढ़ा लिया तथा इस प्रकार वे विजयिनी हुईं॥ १०॥ उस तुमुल नादको सुनकर दैत्योंकी सेनाओंने चारों ओरसे आकर चण्डिकादेवी, सिंह तथा कालीदेवीको क्रोधपूर्वक घेर लिया॥ ११॥ राजन्! इसी बीचमें असुरोंके विनाश तथा देवताओंके अभ्युदयके लिये ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवोंकी शक्तियाँ, जो अत्यन्त पराक्रम और बलसे सम्पन्न थीं, उनके शरीरोंसे निकलकर उन्हींके रूपमें चण्डिकादेवीके पास गयीं॥ १२-१३॥ जिस देवताका जैसा रूप, जैसी वेश-भूषा और जैसा वाहन है, ठीक वैसे ही साधनोंसे सम्पन्न हो उसकी शक्ति असुरोंसे युद्ध करनेके लिये आयी॥ १४॥ सबसे पहले हंसयुक्त विमानपर बैठी हुई अक्षसूत्र और कमण्डलुसे सुशोभित ब्रह्माजीकी शक्ति उपस्थित हुई, जिसे ब्रह्माणी कहते हैं॥ १५॥ महादेवजीकी शक्ति वृषभपर आरूढ़ हो हाथोंमें श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये महानागका कङ्कण पहने, मस्तकमें चन्द्ररेखासे विभूषित हो वहाँ आ पहुँची॥ १६॥

कार्तिकेयजीकी शक्तिरूपा जगदम्बिका उन्हींका रूप धारण किये श्रेष्ठ मयूरपर आरूढ़ हो हाथमें शक्ति लिये दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये आयीं॥ १७॥ इसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति गरुड़पर विराजमान हो शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा खड्ग हाथमें लिये वहाँ आयी॥ १८॥ अनुपम यज्ञवाराहका रूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी जो शक्ति है, वह भी वाराह शरीर धारण करके वहाँ उपस्थित हुई॥ १९॥ नारसिंही शक्ति भी नृसिंहके समान शरीर धारण करके वहाँ आयी। उसकी गर्दनके बालोंके झटकेसे आकाशके तारे बिखरे पड़ते थे॥ २०॥ इसी प्रकार इन्द्रकी शक्ति वज्र हाथमें लिये गजराज ऐरावतपर बैठकर आयी। उसके भी सहस्र नेत्र थे। इन्द्रका जैसा रूप है, वैसा ही उसका भी था॥ २१॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम्॥ २२॥
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी॥ २३॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः॥ २४॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः॥ २५॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥ २६॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः॥ २७॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता॥ २८॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र[1] कात्यायनी स्थिता॥ २९॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः॥ ३०॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः॥ ३१॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा॥ ३२॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति॥ ३३॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना॥ ३४॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः॥ ३५॥
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः॥ ३६॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा॥ ३७॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा॥ ३८॥

तदनन्तर उन देव-शक्तियोंसे घिरे हुए महादेवजीने चण्डिकासे कहा—'मेरी प्रसन्नताके लिये तुम शीघ्र ही इन असुरोंका संहार करो' ॥ २२ ॥ तब देवीके शरीरसे अत्यन्त भयानक और परम उग्र चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई, जो सैकड़ों गीदड़ियोंकी भाँति आवाज करनेवाली थी ॥ २३ ॥ उस अपराजिता देवीने धूमिल जटावाले महादेवजीसे कहा—'भगवन्! आप शुम्भ-निशुम्भके पास दूत बनकर जाइये ॥ २४ ॥ और उन अत्यन्त गर्वीले दानव शुम्भ एवं निशुम्भ—दोनोंसे कहिये। साथ ही उनके अतिरिक्त भी जो दानव युद्धके लिये वहाँ उपस्थित हों,

उनको भी यह संदेश दीजिये ॥ २५ ॥ 'दैत्यो! यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो पातालको लौट जाओ। इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य मिल जाय और देवता यज्ञभागका उपभोग करें ॥ २६ ॥ यदि बलके

१. पा०—जग्मुर्यतः

घमंडमें आकर तुम युद्धकी अभिलाषा रखते हो तो आओ। मेरी शिवाएँ (योगिनियाँ) तुम्हारे कच्चे मांससे तृप्त हों' ॥ २७ ॥ चूँकि उस देवीने भगवान् शिवको दूतके कार्यमें नियुक्त किया था, इसलिये वह 'शिवदूती' के नामसे संसारमें विख्यात हुई ॥ २८ ॥ वे महादैत्य भी भगवान् शिवके मुँहसे देवीके वचन सुनकर क्रोधमें भर गये और जहाँ कात्यायनी विराजमान थीं, उस ओर बढ़े ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे दैत्य अमर्षमें भरकर पहले ही देवीके ऊपर बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे ॥ ३० ॥ तब देवीने भी खेल-खेलमें ही धनुषकी टंकार की और उससे छोड़े हुए बड़े-बड़े बाणोंद्वारा दैत्योंके चलाये हुए बाण, शूल, शक्ति और फरसोंको काट डाला ॥ ३१ ॥ फिर काली उनके आगे होकर शत्रुओंको शूलके प्रहारसे विदीर्ण करने लगी और खट्वाङ्गसे उनका कचूमर निकालती हुई रणभूमिमें विचरने लगी ॥ ३२ ॥

ब्रह्माणी भी जिस जिस ओर दौड़ती, उसी-उसी ओर अपने कमण्डलुका जल छिड़ककर शत्रुओंके ओज और पराक्रमको नष्ट कर देती थी ॥ ३३ ॥ माहेश्वरीने त्रिशूलसे तथा वैष्णवीने चक्रसे और अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई कुमार कार्तिकेयकी शक्तिने शक्तिसे दैत्योंका संहार आरम्भ किया ॥ ३४ ॥ इन्द्रशक्तिके वज्रप्रहारसे विदीर्ण हो सैकड़ों दैत्य-दानव रक्तकी धारा बहाते हुए पृथ्वीपर सो गये ॥ ३५ ॥ वाराही शक्तिने कितनोंको अपनी थूथुनकी मारसे नष्ट किया, दाढ़ोंके अग्रभागसे कितनोंकी छाती छेद डाली तथा कितने ही दैत्य चक्रकी चोटसे विदीर्ण हो गये ॥ ३६ ॥ नारसिंही भी दूसरे-दूसरे महादैत्योंको अपने नखोंसे विदीर्ण करके खाती और सिंहनादसे दिशाओं एवं आकाशको गुँजाती हुई युद्ध-क्षेत्रमें विचरने लगी ॥ ३७ ॥ कितने ही असुर शिवदूतीके प्रचण्ड अट्टहाससे अत्यन्त भयभीत हो पृथ्वीपर गिर पड़े और गिरनेपर उन्हें शिवदूतीने उस समय अपना ग्रास बना लिया ॥ ३८ ॥

इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ ३९ ॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान्।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥ ४० ॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां[1] तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥ ४१ ॥
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ ४२ ॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु[2] सुस्राव शोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४३ ॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ ४४ ॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ ४५ ॥

१. पा०—न्यास्त०। २. पा०—तस्य।

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः॥४६॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम्॥४७॥
वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः॥४८॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम्॥४९॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक्।
मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः॥५०॥
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः॥५१॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत्।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम्॥५२॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं[1] वदनं कुरु॥५३॥
मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना[2]॥५४॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति॥५५॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे[3]।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम्॥५६॥
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम्॥५७॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम्॥५८॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः।
तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्॥५९॥
देवी शूलेन वज्रेण[4] बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः।
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम्॥६०॥
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः[5]।
नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः॥६१॥
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप॥६२॥
तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः॥ॐ॥६३॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए मातृगणोंको नाना प्रकारके उपायोंसे बड़े-बड़े असुरोंका मर्दन करते देख दैत्यसैनिक भाग खड़े हुए॥३९॥ मातृगणोंसे पीड़ित दैत्योंको युद्धसे भागते देख रक्तबीज नामका महादैत्य क्रोधमें भरकर युद्धके लिये आया॥४०॥ उसके शरीरसे जब रक्तकी बूँद पृथ्वीपर गिरती, तब उसीके समान शक्तिशाली एक दूसरा महादैत्य पृथ्वीपर पैदा हो जाता॥४१॥ महासुर रक्तबीज हाथमें गदा लेकर इन्द्रशक्तिके साथ युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्रीने अपने वज्रसे रक्तबीजको मारा॥४२॥ वज्रसे घायल होनेपर उसके शरीरसे बहुत सा रक्त चूने लगा और उससे उसीके समान रूप तथा पराक्रमवाले योद्धा उत्पन्न होने लगे॥४३॥ उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरीं, उतने ही पुरुष उत्पन्न हो गये। वे सब रक्तबीजके समान ही वीर्यवान्, बलवान् तथा पराक्रमी थे॥४४॥ वे रक्तसे उत्पन्न होनेवाले पुरुष भी अत्यन्त भयङ्कर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए वहाँ मातृगणोंके साथ घोर युद्ध करने लगे॥४५॥ पुनः वज्रके प्रहारसे जब उसका मस्तक घायल हुआ तो रक्त बहने लगा और उससे हजारों पुरुष उत्पन्न हो गये॥४६॥ वैष्णवीने युद्धमें रक्तबीजपर चक्रका प्रहार किया तथा ऐन्द्रीने उस दैत्य-सेनापतिको गदासे चोट पहुँचायी॥४७॥ वैष्णवीके चक्रसे घायल होनेपर उसके शरीरसे जो रक्त बहा और उससे जो उसीके बराबर आकारवाले सहस्रों महादैत्य प्रकट

१. पा०—विस्तरं। २. पा०—योगिना। ३. उसके बाद कहीं कहीं '[illegible]' इतना अधिक पाठ है। ४. पा०—चक्रेण। ५. पा०—शस्त्रसंहतिभिर्हतः।

हुए, उनके द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया ॥ ४८ ॥ कौमारीने शक्तिसे, वाराहीने खड्गसे और माहेश्वरीने त्रिशूलसे महादैत्य रक्तबीजको घायल किया ॥ ४९ ॥ क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्य रक्तबीजने भी गदासे सभी मातृ-शक्तियोंपर पृथक्-पृथक् प्रहार किया ॥ ५० ॥ शक्ति और शूल आदिसे अनेक बार घायल होनेपर जो उसके शरीरसे रक्तकी धारा पृथ्वीपर गिरी, उससे भी निश्चय ही सैकड़ों असुर उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उस महादैत्यके रक्तसे प्रकट हुए असुरोंद्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। इससे देवताओंको बड़ा भय हुआ ॥ ५२ ॥ देवताओंको उदास देख चण्डिकाने कालीसे शीघ्रतापूर्वक कहा—'चामुण्डे! तुम अपना मुख और भी फैलाओ ॥ ५३ ॥ तथा मेरे शस्त्रपातसे गिरनेवाले रक्तबिन्दुओं और उनसे उत्पन्न होनेवाले महादैत्योंको तुम अपने इस उतावले मुखसे खा जाओ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार रक्तसे उत्पन्न होनेवाले महादैत्योंका भक्षण करती हुई तुम रणमें विचरती रहो। ऐसा करनेसे उस दैत्यका सारा रक्त क्षीण हो जानेपर वह स्वयं भी नष्ट हो जायगा ॥ ५५ ॥ उन भयङ्कर दैत्योंको जब तुम खा जाओगी तो दूसरे नये दैत्य उत्पन्न नहीं हो सकेंगे।' कालीसे यों कहकर चण्डिका देवीने शूलसे रक्तबीजको मारा ॥ ५६ ॥ और कालीने अपने मुखमें उसका रक्त ले लिया। तब उसने वहाँ चण्डिकापर गदासे प्रहार किया ॥ ५७ ॥ किंतु उस गदापातने देवीको तनिक भी वेदना नहीं पहुँचायी। रक्तबीजके घायल शरीरसे बहुत-सा

रक्त गिरा ॥ ५८ ॥ किंतु ज्यों ही वह गिरा त्यों ही चामुण्डाने उसे अपने मुखमें ले लिया। रक्त गिरनेसे कालीके मुखमें जो महादैत्य उत्पन्न हुए, उन्हें भी वह चट कर गयी और उसने रक्तबीजका रक्त भी पी लिया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर देवीने रक्तबीजको, जिसका रक्त चामुण्डाने पी लिया था, वज्र, बाण, खड्ग तथा ऋष्टि आदिसे मार डाला ॥ ६० ॥ राजन्! इस प्रकार शस्त्रोंके समुदायसे आहत एवं रक्तहीन हुआ महादैत्य रक्तबीज पृथ्वीपर गिर पड़ा। नरेश्वर! इससे देवताओंको अनुपम हर्षकी प्राप्ति हुई ॥ ६१-६२ ॥ और मातृगण उन असुरोंके रक्तपानके मदसे उद्धत-सा होकर नृत्य करने लगा ॥ ६३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१, एवम् ६३, एवमादितः ॥ ५०२ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'रक्तबीज-वध' नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

निशुम्भ-वध

ध्यान

(ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि॥

मैं अर्धनारीश्वरके श्रीविग्रहकी निरन्तर शरण लेता हूँ। उसका वर्ण बन्धूकपुष्प और सुवर्णके समान रक्त-पीतमिश्रित है। वह अपनी भुजाओंमें सुन्दर अक्षमाला, पाश, अङ्कुश और वरद-मुद्रा धारण करता है; अर्धचन्द्र उसका आभूषण है तथा वह तीन नेत्रोंसे सुशोभित है।)

राजोवाच॥ १॥

'ॐ' विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम्॥ २॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः॥ ३॥

राजाने कहा— ॥१॥ भगवन्! आपने रक्तबीजके वधसे सम्बन्ध रखनेवाला देवी-चरित्रका यह अद्भुत माहात्म्य मुझे बतलाया॥ २॥ अब रक्तबीजके मारे जानेपर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए शुम्भ और निशुम्भने जो कर्म किया, उसको मैं सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

ऋषिरुवाच॥ ४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे॥ ५॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया॥ ६॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः॥ ७॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः॥ ८॥
ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः॥ ९॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः[1]।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ॥ १०॥
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम्।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम्॥ ११॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम्॥ १२॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम्॥ १३॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः।
आयातं[2] मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत्॥ १४॥
आविध्याथ[3] गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता॥ १५॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम्।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले॥ १६॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम्॥ १७॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः॥ १८॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम्॥ १९॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना॥ २०॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः।
पूरयामास गगनं गां तथैव[4] दिशो दश॥ २१॥

---

१. पा०—ऽऽशु शरोत्करैः। २. पा०—आयान्तं। ३. पा०—आगदाम्। ४. पा०—तथोपदिशो।

ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः॥ २२॥
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ॥ २३॥
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः॥ २४॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया॥ २५॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते॥ २६॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ २७॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह॥ २८॥

ऋषि कहते हैं— ॥ ४॥ राजन्! युद्धमें रक्तबीज तथा अन्य दैत्योंके मारे जानेपर शुम्भ और निशुम्भके क्रोधकी सीमा न रही॥ ५॥ अपनी विशाल सेना इस प्रकार मारी जाती देख निशुम्भ अमर्षमें भरकर देवीकी ओर दौड़ा। उसके साथ असुरोंकी प्रधान सेना थी॥ ६॥ उसके आगे, पीछे तथा पार्श्वभागमें बड़े-बड़े असुर थे, जो क्रोधसे ओठ चबाते हुए देवीको मार डालनेके लिये आये॥ ७॥ महापराक्रमी शुम्भ भी अपनी सेनाके साथ मातृगणोंसे युद्ध करके क्रोधवश चण्डिकाको मारनेके लिये आ पहुँचा॥ ८॥ तब देवीके साथ शुम्भ और निशुम्भका घोर संग्राम छिड़ गया। वे दोनों दैत्य मेघोंकी भाँति बाणोंकी भयंकर वृष्टि कर रहे थे॥ ९॥ उन दोनोंके चलाये हुए बाणोंको चण्डिकाने अपने बाणोंके समूहसे तुरंत काट डाला और शस्त्रसमूहोंकी वर्षा करके उन दोनों दैत्यपतियोंके अङ्गोंमें भी चोट पहुँचायी॥ १०॥ निशुम्भने तीखी तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर देवीके श्रेष्ठ वाहन सिंहके मस्तकपर प्रहार किया॥ ११॥ अपने

वाहनको चोट पहुँचनेपर देवीने क्षुरप्र नामक बाणसे निशुम्भकी श्रेष्ठ तलवार तुरंत ही काट डाली और उसकी ढालको भी, जिसमें आठ चाँद जड़े थे, खण्ड-खण्ड कर दिया॥ १२॥ ढाल और तलवारके कट जानेपर उस असुरने शक्ति चलायी, किंतु सामने आनेपर देवीने चक्रसे उसके भी दो टुकड़े कर दिये॥ १३॥ अब तो निशुम्भ क्रोधसे जल उठा और उस दानवने देवीको मारनेके लिये शूल उठाया; किंतु देवीने समीप आनेपर उसे भी मुक्केसे मारकर चूर्ण कर दिया॥ १४॥ तब उसने गदा घुमाकर चण्डीके ऊपर चलायी, परंतु वह भी देवीके त्रिशूलसे कटकर भस्म हो गयी॥ १५॥ तदनन्तर दैत्यराज निशुम्भको फरसा हाथमें लेकर आते देख देवीने बाणसमूहोंसे घायलकर धरतीपर सुला दिया॥ १६॥ उस भयंकर पराक्रमी भाई निशुम्भके धराशायी हो जानेपर शुम्भको बड़ा क्रोध हुआ और अम्बिकाका वध करनेके लिये वह आगे बढ़ा॥ १७॥ रथपर बैठे-बैठे ही उत्तम

आयुधोंसे सुशोभित अपनी बड़ी-बड़ी आठ अनुपम भुजाओंसे समूचे आकाशको ढककर वह अद्भुत शोभा पाने लगा॥ १८॥ उसे आते देख देवीने शङ्ख बजाया और धनुषकी प्रत्यञ्चाका भी अत्यन्त दुस्सह शब्द किया॥ १९॥ साथ ही अपने घंटेके शब्दसे, जो समस्त दैत्य-सैनिकोंका तेज नष्ट करनेवाला था, सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त कर दिया॥ २०॥ तदनन्तर सिंहने भी अपनी दहाड़से, जिसे सुनकर बड़े-बड़े गजराजोंका महान् मद दूर हो जाता था, आकाश, पृथ्वी और दसों दिशाओंको गुँजा दिया॥ २१॥ फिर कालीने आकाशमें उछलकर अपने दोनों हाथोंसे पृथ्वीपर आघात किया। उससे ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे पहलेके सभी शब्द शान्त हो गये॥ २२॥ तत्पश्चात् शिवदूतीने दैत्योंके लिये अमङ्गलजनक अट्टहास किया, इन शब्दोंको सुनकर समस्त असुर थर्रा उठे; किंतु शुम्भको बड़ा क्रोध हुआ॥ २३॥ उस समय देवीने जब शुम्भको लक्ष्य करके कहा—'ओ दुरात्मन्! खड़ा रह, खड़ा रह,' तभी आकाशमें खड़े हुए देवता बोल उठे, 'जय हो, जय हो'॥ २४॥ शुम्भने वहाँ आकर ज्वालाओंसे युक्त अत्यन्त भयानक शक्ति चलायी। अग्निमय पर्वतके समान आती हुई उस शक्तिको देवीने बड़े भारी लूकेसे दूर हटा दिया॥ २५॥ उस समय शुम्भके सिंहनादसे तीनों लोक गूँज उठे। राजन्! उसकी प्रतिध्वनिसे वज्रपातके समान भयानक शब्द हुआ, जिसने अन्य सब शब्दोंको जीत लिया॥ २६॥ शुम्भके चलाये हुए बाणोंके देवीने और देवीके चलाये हुए बाणोंके शुम्भने अपने भयंकर बाणोंद्वारा सैकड़ों और हजारों टुकड़े कर दिये॥ २७॥ तब क्रोधमें भरी हुई चण्डिकाने शुम्भको शूलसे मारा। उसके आघातसे मूर्च्छित हो वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २८॥

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा॥ २९॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम्॥ ३०॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान्॥ ३१॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः॥ ३२॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे॥ ३३॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका॥ ३४॥
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन्॥ ३५॥
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि॥ ३६॥
ततः सिंहश्चखादोग्र[1] दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान्॥ ३७॥
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः॥ ३८॥
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि॥ ३९॥
खण्डं[2] खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे॥ ४०॥
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूती मृगाधिपैः॥ ॐ॥ ४१॥

इतनेमें ही निशुम्भको चेतना हुई और उसने धनुष हाथमें लेकर बाणोंद्वारा देवी, काली तथा सिंहको घायल कर डाला॥ २९॥ फिर उस दैत्यराजने दस हजार बाँहें बनाकर चक्रोंके प्रहारसे चण्डिकाको आच्छादित कर दिया॥ ३०॥ तब दुर्गम पीड़ाका नाश करनेवाली भगवती दुर्गाने कुपित होकर अपने बाणोंसे उन चक्रों तथा

१. पा०—दोग्रदंष्ट्रा०। २. पा०—खण्डखण्डं।

बाणोंको काट गिराया॥ ३१॥ यह देख निशुम्भ दैत्यसेनाके साथ चण्डिकाका वध करनेके लिये हाथमें गदा ले बड़े वेगसे दौड़ा॥ ३२॥ उसके आते ही चण्डीने तीखी धारवाली तलवारसे उसकी गदाको शीघ्र ही काट डाला। तब उसने शूल हाथमें लिया॥ ३३॥ देवताओंको पीड़ा देनेवाले निशुम्भको शूल हाथमें

लिये आते देख चण्डिकाने वेगसे चलाये हुए अपने शूलसे उसकी छाती छेद डाली॥ ३४॥ शूलसे विदीर्ण हो जानेपर उसकी छातीसे एक दूसरा महाबली एवं महापराक्रमी पुरुष 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहता हुआ निकला॥ ३५॥ उस निकलते हुए पुरुषकी बात सुनकर देवी ठठाकर हँस पड़ीं और खड्गसे उन्होंने उसका मस्तक काट डाला। फिर तो वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३६॥ तदनन्तर सिंह अपनी दाढ़ोंसे असुरोंकी गर्दन कुचलकर खाने लगा, वह बड़ा भयंकर दृश्य था। उधर काली तथा शिवदूतीने भी अन्यान्य दैत्योंका भक्षण आरम्भ किया॥ ३७॥ कौमारीकी

शक्तिसे विदीर्ण होकर कितने ही महादैत्य नष्ट हो गये। ब्रह्माणीके मन्त्रपूत जलसे निस्तेज होकर कितने ही भाग खड़े हुए॥ ३८॥ कितने ही दैत्य माहेश्वरीके त्रिशूलसे छिन्न-भिन्न हो धराशायी हो गये। वाराहीके थूथुनके आघातसे कितनोंका पृथ्वीपर कचूमर निकल गया॥ ३९॥ वैष्णवीने भी अपने चक्रसे दानवोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ऐन्द्रीके हाथसे छूटे हुए वज्रसे भी कितने ही प्राणोंसे हाथ धो बैठे॥ ४०॥ कुछ असुर नष्ट हो गये, कुछ उस महायुद्धसे भाग गये तथा कितने ही काली, शिवदूती तथा सिंहके ग्रास बन गये॥ ४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

उवाच २, श्लोकाः ३९, एवम् ४१, एवमादितः॥ ५४३॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'निशुम्भ-वध' नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्याय:

शुम्भ-वध

ध्यान

('ॐ' उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्॥

मैं मस्तकपर अर्द्धचन्द्र धारण करनेवाली शिवशक्तिस्वरूपा भगवती कामेश्वरीका हृदयमें चिन्तन करता हूँ। वे तपाये हुए सुवर्णके समान सुन्दर हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये ही तीन उनके नेत्र हैं तथा वे अपने मनोहर हाथोंमें धनुष-बाण, अंकुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं।)

ऋषिरुवाच॥१॥

'ॐ' निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः॥२॥
बलावलेपाद्दुष्टे[1] त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी॥३॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ राजन्! अपने प्राणोंके समान प्यारे भाई निशुम्भको मारा गया देख तथा सारी सेनाका संहार होता जान शुम्भने कुपित होकर कहा—॥२॥ 'दुष्ट दुर्गे! तू बलके अभिमानमें आकर झूठ-मूठका घमंड न दिखा। तू बड़ी मानिनी बनी हुई है, किन्तु दूसरी स्त्रियोंके बलका सहारा लेकर लड़ती है'॥३॥

देव्युवाच॥४॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः[2]॥५॥

देवी बोलीं—॥४॥ ओ दुष्ट! मैं अकेली ही हूँ। इस संसारमें मेरे सिवा दूसरी कौन है। देख, ये मेरी ही विभूतियाँ हैं, अतः मुझमें ही प्रवेश कर रही हैं॥५॥

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका॥६॥

तदनन्तर ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिका देवीके शरीरमें लीन हो गयीं। उस समय केवल अम्बिका देवी ही रह गयीं॥६॥

देव्युवाच॥७॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव॥८॥

देवी बोलीं—॥७॥ मैं अपनी ऐश्वर्यशक्तिसे अनेक रूपोंमें यहाँ उपस्थित हुई थी। उन सब रूपोंको मैंने समेट लिया। अब अकेली ही युद्धमें खड़ी हूँ। तुम भी स्थिर हो जाओ॥८॥

---

१. पा०—बलाद्दुष्टे। २. इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच' इतना अधिक पाठ है।

ऋषिरुवाच ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम्[1] ॥ १० ॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥ ११ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ १२ ॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ १३ ॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।
सापि[2] तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥ १४ ॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ १५ ॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत्।
अभ्यधावत्तदा[3] देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १६ ॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम्[4] ॥ १७ ॥
हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ १८ ॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥ १९ ॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥ २० ॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ २१ ॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥ २२ ॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ २३ ॥
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥ २४ ॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः[5]।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥ २५ ॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम्।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥ २६ ॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥ २७ ॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥ २८ ॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥ २९ ॥
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ ३० ॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ ३१ ॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ ॐ ॥ ३२ ॥

ऋषि कहते हैं— ॥ ९ ॥ तदनन्तर देवी और शुम्भ दोनोंमें सब देवताओं तथा दानवोंके देखते-देखते भयङ्कर युद्ध छिड़ गया ॥ १० ॥ बाणोंकी वर्षा तथा तीखे शस्त्रों एवं दारुण अस्त्रोंके प्रहारके कारण उन दोनोंका युद्ध सब लोगोंके लिये बड़ा भयानक प्रतीत हुआ ॥ ११ ॥ उस समय अम्बिका देवीने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े, उन्हें दैत्यराज शुम्भने उनके निवारक अस्त्रोंद्वारा काट डाला ॥ १२ ॥ इसी प्रकार शुम्भने भी जो दिव्य अस्त्र चलाये, उन्हें परमेश्वरीने भयङ्कर हुङ्कार शब्दके उच्चारण आदिद्वारा खिलवाड़में ही नष्ट कर डाला ॥ १३ ॥ तब उस असुरने सैकड़ों बाणोंसे देवीको आच्छादित कर दिया। यह देख क्रोधमें भरी हुई उन देवीने भी बाण मारकर उसका धनुष काट डाला ॥ १४ ॥ धनुष कट जानेपर फिर दैत्यराजने शक्ति हाथमें ली, किन्तु देवीने चक्रसे उसके हाथकी शक्तिको

---

१. पा०—हू०। २. पा०—सा च। ३. पा०—वत तां हन्तुं दैत्या०। ४. इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें—'अश्वांश्च पातयामास रथं सारथिना सह।' इतना अधिक पाठ है। ५. पा०—वेगवान्।

भी काट गिराया॥१५॥ तत्पश्चात् दैत्योंके स्वामी शुम्भने सौ चाँदवाली चमकती हुई ढाल और तलवार हाथमें ले उस समय देवीपर धावा किया॥१६॥ उसके आते ही चण्डिकाने अपने धनुषसे छोड़े हुए तीखे बाणोंद्वारा उसकी सूर्य-किरणोंके समान उज्ज्वल ढाल और तलवारको तुरंत काट दिया॥१७॥ फिर उस दैत्यके घोड़े और सारथि मारे गये, धनुष तो पहले ही कट चुका था, अब उसने अम्बिकाको मारनेके लिये उद्यत हो भयंकर मुद्गर हाथमें लिया॥१८॥ उसे आते देख देवीने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसका मुद्गर भी काट डाला, तिसपर भी वह असुर मुक्का तानकर बड़े वेगसे देवीकी ओर झपटा॥१९॥ उस दैत्यराजने देवीकी छातीमें मुक्का मारा, तब उन देवीने भी उसकी छातीमें एक चाँटा जड़ दिया॥२०॥ देवीका थप्पड़ खाकर दैत्यराज शुम्भ पृथ्वीपर गिर पड़ा, किन्तु पुनः सहसा पूर्ववत् उठकर खड़ा हो गया॥२१॥ फिर वह उछला और देवीको ऊपर ले जाकर आकाशमें खड़ा हो गया; तब चण्डिका आकाशमें भी बिना किसी आधारके ही शुम्भके साथ युद्ध करने लगीं॥२२॥ उस समय दैत्य और चण्डिका आकाशमें एक-दूसरेसे लड़ने लगे। उनका वह युद्ध पहले सिद्ध और मुनियोंको विस्मयमें डालनेवाला हुआ॥२३॥ फिर अम्बिकाने शुम्भके साथ बहुत देरतक युद्ध करनेके पश्चात् उसे उठाकर घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया॥२४॥ पटके जानेपर पृथ्वीपर आनेके बाद वह दुष्टात्मा दैत्य पुनः चण्डिकाका वध करनेके लिये उनकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा॥२५॥ तब समस्त दैत्योंके राजा शुम्भको अपनी ओर आते देख देवीने त्रिशूलसे उसकी छाती छेदकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥२६॥ देवीके शूलकी धारसे घायल होनेपर उसके प्राण पखेरू उड़ गये और वह समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतोंसहित समूची पृथ्वीको कँपाता हुआ भूमिपर गिर पड़ा॥२७॥ तदनन्तर उस दुरात्माके मारे

जानेपर सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न एवं पूर्ण स्वस्थ हो गया। आकाश स्वच्छ दिखायी देने लगा॥२८॥ पहले जो उत्पातसूचक मेघ और उल्कापात होते थे, वे सब शान्त हो गये तथा उस दैत्यके मारे जानेपर नदियाँ भी ठीक मार्गसे बहने लगीं॥२९॥ उस समय शुम्भकी मृत्युके बाद सम्पूर्ण देवताओंका हृदय हर्षसे भर गया और गन्धर्वगण मधुर गीत गाने लगे॥३०॥ दूसरे गन्धर्व बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। पवित्र वायु बहने लगी। सूर्यकी प्रभा उत्तम हो गयी॥३१॥ अग्निशालाकी बुझी हुई आग अपने-आप प्रज्वलित हो उठी तथा सम्पूर्ण दिशाओंके भयङ्कर शब्द शान्त हो गये॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः २७, एवम् ३२, एवमादितः॥५७५॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'शुम्भ-वध' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा देवताओंको वरदान

ध्यान

(बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

मैं भुवनेश्वरी देवीका ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा प्रभातकालके सूर्यके समान है। मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है। वे उभरे हुए स्तनों और तीन नेत्रोंसे युक्त हैं। उनके मुखपर मुसकानकी छटा छायी रहती है और हाथोंमें वरद, अङ्कुश, पाश एवं अभय-मुद्रा शोभा पाते हैं।)

ऋषिरुवाच॥ १॥

'ॐ' देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्[1]
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः[2]॥ २॥

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥ ३॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये॥ ४॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः[3]॥ ५॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥ ६॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः॥ ७॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ८॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ९॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये[4] शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १०॥

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ११॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १२॥

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १३॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १४॥

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १५॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १६॥

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १७॥

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १८॥

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १९॥

---

१. पा०—लाभा०। २. पा०—वक्त्रान्तु वि०। ३. पा०—भुक्ति। ४. पा०—माङ्गल्ये।

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २०॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २१॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टि[1] स्वधे ध्रुवे।
महारात्रि[2] महाऽविद्ये[3] नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २२॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु[4] ते॥ २३॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ २४॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥ २५॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥ २६॥
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव॥ २७॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम्॥ २८॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा[5] तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ २९॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥ ३०॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्॥ ३१॥

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥ ३२॥
विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥ ३३॥
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं[6] नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥ ३४॥
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥ ३५॥

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ देवीके द्वारा वहाँ महादैत्यपति शुम्भके मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता अग्निको आगे करके उन कात्यायनी देवीकी स्तुति करने लगे। उस समय अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे उनके मुख-कमल दमक उठे थे और उनके प्रकाशसे दिशाएँ भी जगमगा उठी थीं॥ २॥ देवता बोले—शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हमपर प्रसन्न होओ। सम्पूर्ण जगत्की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरि! विश्वकी रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर जगत्की अधीश्वरी हो॥ ३॥ तुम इस जगत्का एकमात्र आधार हो, क्योंकि पृथ्वीरूपमें तुम्हारी ही स्थिति है। देवि! तुम्हारा पराक्रम अलङ्घनीय है। तुम्हीं जलरूपमें स्थित होकर सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करती हो॥ ४॥ तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्वकी कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत्को

१. पा०—पुष्टे। २. पा०—रात्रे। ३. पा०—महामाये। ४. शान्तनवी टीकाकारने यहाँ एक श्लोक अधिक पाठ माना है, जो इस प्रकार है—

'सर्वतःपाणिपादान्ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखे। सर्वतःश्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते॥'

मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वीपर मोक्षकी प्राप्ति कराती हो॥५॥ देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं। जगदम्ब! एकमात्र तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थोंसे परे एवं परा वाणी हो॥६॥ देवि! जब तुम सर्वस्वरूप एवं स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हो, तब इसी रूपमें तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुतिके लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं?॥७॥ बुद्धिरूपसे सब लोगोंके हृदयमें विराजमान रहनेवाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥८॥ कला, काष्ठा आदिके रूपसे क्रमशः परिणाम (अवस्था-परिवर्तन)-की ओर ले जानेवाली तथा विश्वका उपसंहार करनेमें समर्थ नारायणी! तुम्हें नमस्कार है॥९॥ नारायणी! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है॥१०॥ तुम सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणोंका आधार तथा सर्वगुणमयी हो। नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥११॥ शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार है॥१२॥ नारायणि! तुम ब्रह्माणीका रूप धारण करके हंसोंसे जुते हुए विमानपर बैठती तथा कुश-मिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है॥१३॥ माहेश्वरीरूपसे त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्पको धारण करनेवाली तथा महान् वृषभकी पीठपर बैठनेवाली

नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार है॥१४॥ मोरों और मुर्गोंसे घिरी रहनेवाली तथा महाशक्ति धारण करनेवाली कौमारीरूपधारिणी निष्पापे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥१५॥ शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुषरूप उत्तम आयुधोंको धारण करनेवाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है॥१६॥ हाथमें भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ोंपर धरतीको उठाये वाराहीरूपधारिणी कल्याणमयी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥१७॥ भयङ्कर नृसिंहरूपसे दैत्योंके वधके लिये उद्योग करनेवाली तथा त्रिभुवनकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥१८॥ मस्तकपर किरीट और हाथमें महावज्र धारण करनेवाली, सहस्र नेत्रोंके कारण उद्दीप्त दिखायी देनेवाली और वृत्रासुरके प्राणोंका अपहरण करनेवाली इन्द्रशक्तिरूपा नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥१९॥ शिवदूतीरूपसे दैत्योंकी महती सेनाका संहार करनेवाली, भयङ्कर रूप धारण तथा विकट गर्जना करनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥२०॥ दाढ़ोंके कारण विकराल

मुखवाली मुण्डमालासे विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २१॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा-अविद्यारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २२॥ मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), भूति (ऐश्वर्यरूपा), बाभ्रवी (भूरे रंगकी अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा (सबकी अधीश्वरी) रूपिणी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २३॥ सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है॥ २४॥ कात्यायनी! यह तीन लोचनोंसे विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकारके भयोंसे हमारी रक्षा करे। तुम्हें नमस्कार है॥ २५॥ भद्रकाली! ज्वालाओंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, अत्यन्त भयङ्कर और समस्त असुरोंका संहार करनेवाला तुम्हारा त्रिशूल भयसे हमें बचाये। तुम्हें नमस्कार है॥ २६॥ देवि! जो अपनी ध्वनिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके दैत्योंके तेज नष्ट किये देता है, वह तुम्हारा घंटा हमलोगोंकी पापोंसे उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रोंकी बुरे कर्मोंसे रक्षा करती है॥ २७॥ चण्डिके! तुम्हारे हाथोंमें सुशोभित खड्ग, जो असुरोंके रक्त और चर्बीसे चर्चित है, हमारा मङ्गल करे। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं॥ २८॥ देवि! तुम प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हो और कुपित होनेपर मनोवाञ्छित सभी कामनाओंका नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरणमें जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ २९॥ देवि! अम्बिके!! तुमने अपने स्वरूपको अनेक भागोंमें विभक्त करके नाना प्रकारके रूपोंसे जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्योंका संहार किया है, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी॥ ३०॥ विद्याओंमें, ज्ञानको प्रकाशित करनेवाले शास्त्रोंमें तथा आदिवाक्यों (वेदों)-में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है? तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्वको अज्ञानमय घोर अन्धकारसे परिपूर्ण ममतारूपी गढ़ेमें निरन्तर भटका रही हो॥ ३१॥ जहाँ राक्षस, जहाँ भयङ्कर विषवाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरोंकी सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्रके बीचमें भी साथ रहकर तुम विश्वकी रक्षा करती हो॥ ३२॥ विश्वेश्वरि! तुम विश्वका पालन करती हो। विश्वरूपा हो, इसलिये सम्पूर्ण विश्वको धारण करती हो। तुम भगवान् विश्वनाथकी भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्वको आश्रय देनेवाले होते हैं॥ ३३॥ देवि! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरोंका वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओंके भयसे बचाओ। सम्पूर्ण जगत्का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापोंके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवोंको शीघ्र दूर करो॥ ३४॥ विश्वकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हम तुम्हारे चरणोंपर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोकनिवासियोंकी पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगोंको वरदान दो॥ ३५॥

देव्युवाच॥ ३६॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम्॥ ३७॥

देवी बोलीं—॥ ३६॥ देवताओ! मैं वर देनेको तैयार हूँ। तुम्हारे मनमें जिसकी इच्छा हो, वह वर माँग लो। संसारके लिये उस उपकारक वरको मैं अवश्य दूँगी॥ ३७॥

देवा ऊचुः ॥ ३८ ॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ३९॥

देवता बोले— ॥ ३८ ॥ सर्वेश्वरि! तुम इसी प्रकार तीनों लोकोंकी समस्त बाधाओंको शान्त करो और हमारे शत्रुओंका नाश करती रहो॥ ३९॥

देव्युवाच ॥ ४० ॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥ ४१॥
नन्दगोपगृहे[1] जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥ ४२॥
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान्॥ ४३॥
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः॥ ४४॥
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥ ४५॥
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा॥ ४६॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः॥ ४७॥
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः॥ ४८॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्॥ ४९॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले॥ ५०॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि[2] मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः॥ ५१॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति॥ ५२॥
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम्॥ ५३॥
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति॥ ५४॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥ ॐ॥ ५५॥

देवी बोलीं— ॥ ४० ॥ देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे॥ ४१॥ तब मैं नन्दगोपके घरमें उनकी पत्नी यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण हो विन्ध्याचलमें जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरोंका नाश करूँगी॥ ४२॥ फिर अत्यन्त भयङ्कर रूपसे पृथ्वीपर अवतार ले मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी॥ ४३॥ उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत अनारके फूलकी भाँति लाल हो जायँगे॥ ४४॥ तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोकमें मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे॥ ४५॥ फिर जब पृथ्वीपर सौ वर्षोंके लिये वर्षा रुक जायगी और पानीका अभाव हो जायगा, उस समय मुनियोंके स्तवन करनेपर मैं पृथ्वीपर अयोनिजा-रूपमें प्रकट होऊँगी॥ ४६॥ और सौ नेत्रोंसे मुनियोंकी ओर देखूँगी। अतः मनुष्य 'शताक्षी' इस नामसे मेरा कीर्तन करेंगे॥ ४७॥ देवताओ! उस समय मैं अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा समस्त संसारका भरण पोषण करूँगी। जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक वे शाक ही सबके प्राणोंकी रक्षा करेंगे॥ ४८॥ ऐसा करनेके कारण पृथ्वीपर 'शाकम्भरी' के नामसे मेरी ख्याति होगी। उसी अवतारमें मैं दुर्गम नामक महादैत्यका वध भी करूँगी॥ ४९॥ इससे मेरा नाम 'दुर्गादेवी' के रूपसे प्रसिद्ध होगा। फिर जब मैं भीमरूप

---

१. पा०—कुले। २. पा०—क्षपयिष्यामि। (चर्वयिष्यामि इति वा)।

धारण करके मुनियोंकी रक्षाके लिये हिमालयपर रहनेवाले राक्षसोंका भक्षण करूँगी, उस समय सब मुनि भक्तिसे नतमस्तक होकर मेरी स्तुति करेंगे ॥ ५०-५१ ॥ तब मेरा नाम 'भीमादेवी' के रूपमें विख्यात होगा। जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकोंमें भारी उपद्रव मचायेगा ॥ ५२ ॥ तब मैं तीनों लोकोंका हित करनेके लिये छः पैरोंवाले असंख्य भ्रमरोंका रूप धारण करके उस महादैत्यका वध करूँगी ॥ ५३ ॥ उस समय सब लोग 'भ्रामरी' के नामसे चारों ओर मेरी स्तुति करेंगे। इस प्रकार जब-जब संसारमें दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओंका संहार करूँगी ॥ ५४-५५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ५०, एवम् ५५, एवमादितः ॥ ६३० ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'देवीस्तुति' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः

देवी-चरित्रोंके पाठका माहात्म्य

ध्यान

(ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

मैं तीन नेत्रोंवाली दुर्गादेवीका ध्यान करता हूँ, उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा बिजलीके समान है। वे सिंहके कंधेपर बैठी हुई भयङ्कर प्रतीत होती हैं। हाथोंमें तलवार, ढाल लिये अनेक कन्याएँ उनकी सेवामें खड़ी हैं। वे अपने हाथोंमें चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका स्वरूप अग्निमय है तथा वे माथेपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करती हैं।)

देव्युवाच ॥ १ ॥

'ॐ' एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम्[1] ॥ २ ॥

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ ३ ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ५ ॥

शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ ६ ॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ ७ ॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ ८ ॥

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ९ ॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ १० ॥

---

१. पा०—शम०।

जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं[1] प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम्॥ ११॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः॥ १२॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो[2] धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥ १३॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान्॥ १४॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम्॥ १५॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम॥ १६॥
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते॥ १७॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम्॥ १८॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम्॥ १९॥
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम्।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः॥ २०॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या॥ २१॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति॥ २२॥
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम्॥ २३॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः॥ २४॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः॥ २५॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः॥ २६॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे॥ २७॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा॥ २८॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात्।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा॥ २९॥
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम॥ ३०॥

देवी बोलीं— ॥ १॥ देवताओ! जो एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन इन स्तुतियोंसे मेरा स्तवन करेगा, उसकी सारी बाधा मैं निश्चय ही दूर कर दूँगी॥ २॥ जो मधु-कैटभका नाश, महिषासुरका वध तथा शुम्भ-निशुम्भके संहारके प्रसङ्गका पाठ करेंगे॥ ३॥ तथा अष्टमी, चतुर्दशी और नवमीको भी जो एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक मेरे उत्तम माहात्म्यका श्रवण करेंगे॥ ४॥ उन्हें कोई पाप नहीं छू सकेगा। उनपर पापजनित आपत्तियाँ भी नहीं आयेंगी। उनके घरमें कभी दरिद्रता नहीं होगी तथा उनको कभी प्रेमी जनोंके विछोहका कष्ट भी नहीं भोगना पड़ेगा॥५॥ इतना ही नहीं, उन्हें शत्रुसे, लुटेरोंसे, राजासे, शस्त्रसे, अग्निसे तथा जलकी राशिसे भी कभी भय नहीं होगा॥ ६॥ इसलिये सबको एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्यको सदा पढ़ना और सुनना चाहिये। यह परम कल्याणकारक है॥ ७॥ मेरा माहात्म्य महामारीजनित समस्त उपद्रवों तथा आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके उत्पातोंको शान्त करनेवाला है॥ ८॥ मेरे जिस मन्दिरमें प्रतिदिन विधिपूर्वक मेरे इस माहात्म्यका पाठ किया जाता

१. पा०—प्रतीक्षिष्यामि। २. पा०—सर्वबाधा।

है, उस स्थानको मैं कभी नहीं छोड़ती। वहाँ सदा ही मेरा संनिधान बना रहता है॥ ९॥ बलिदान, पूजा, होम तथा महोत्सवके अवसरोंपर मेरे इस चरित्रका पूरा-पूरा पाठ और श्रवण करना चाहिये॥ १०॥ ऐसा करनेपर मनुष्य विधिको जानकर या बिना जाने भी मेरे लिये जो बलि, पूजा या होम आदि करेगा, उसे मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्रहण करूँगी॥ ११॥ शरत्कालमें जो वार्षिक महापूजा की जाती है, उस अवसरपर जो मेरे इस माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह मनुष्य मेरे प्रसादसे सब बाधाओंसे मुक्त तथा धन, धान्य एवं पुत्रसे सम्पन्न होगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है॥ १२-१३॥ मेरा यह माहात्म्य, मेरे प्रादुर्भावकी सुन्दर कथाएँ तथा युद्धमें किये हुए मेरे पराक्रम सुननेसे मनुष्य निर्भय हो जाता है॥ १४॥ मेरे माहात्म्यका श्रवण करनेवाले पुरुषोंके शत्रु नष्ट हो जाते हैं, उन्हें कल्याणकी प्राप्ति होती तथा उनका कुल आनन्दित रहता है॥ १५॥ सर्वत्र शान्ति-कर्ममें, बुरे स्वप्न दिखायी देनेपर तथा ग्रहजनित भयङ्कर पीड़ा उपस्थित होनेपर मेरा माहात्म्य श्रवण करना चाहिये॥ १६॥ इससे सब विघ्न तथा भयङ्कर ग्रह-पीड़ाएँ शान्त हो जाती हैं और मनुष्योंद्वारा देखा हुआ दुःस्वप्न शुभ स्वप्नमें परिवर्तित हो जाता है॥ १७॥ बालग्रहोंसे आक्रान्त हुए बालकोंके लिये यह माहात्म्य शान्तिकारक है तथा मनुष्योंके संगठनमें फूट होनेपर यह अच्छी प्रकार मित्रता करानेवाला होता है॥ १८॥ यह माहात्म्य समस्त दुराचारियोंके बलका नाश करनेवाला है। इसके पाठमात्रसे राक्षसों, भूतों और पिशाचोंका नाश हो जाता है॥ १९॥ मेरा यह सब माहात्म्य मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध आदि उत्तम सामग्रियोंद्वारा पूजन करनेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे, होम करनेसे, प्रतिदिन अभिषेक करनेसे, नाना प्रकारके अन्य भोगोंका अर्पण करनेसे तथा दान देने आदिसे एक वर्षतक जो मेरी आराधना की जाती है और उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्रका एक बार श्रवण करनेमात्रसे हो जाती है। यह माहात्म्य श्रवण करनेपर पापोंको हर लेता और आरोग्य प्रदान करता है॥ २०—२२॥ मेरे प्रादुर्भावका कीर्तन समस्त भूतोंसे रक्षा करता है तथा मेरा युद्धविषयक चरित्र दुष्ट दैत्योंका संहार करनेवाला है॥ २३॥ इसके श्रवण करनेपर मनुष्योंको शत्रुका भय नहीं रहता। देवताओ! तुमने और ब्रह्मर्षियोंने जो मेरी स्तुतियाँ की हैं॥ २४॥ तथा ब्रह्माजीने जो स्तुतियाँ की हैं, वे सभी कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। वनमें, सूने मार्गमें अथवा दावानलसे घिर जानेपर॥ २५॥ निर्जन स्थानमें, लुटेरोंके दावमें पड़ जानेपर या शत्रुओंसे पकड़े जानेपर अथवा जंगलमें सिंह, व्याघ्र या जंगली हाथियोंके पीछा करनेपर॥ २६॥ कुपित राजाके आदेशसे वध या बन्धनके स्थानमें ले जाये जानेपर अथवा महासागरमें नावपर बैठनेके बाद भारी तूफानसे नावके डगमग होनेपर॥ २७॥ और अत्यन्त भयङ्कर युद्धमें शस्त्रोंका प्रहार होनेपर अथवा वेदनासे पीड़ित होनेपर, किंबहुना सभी भयानक बाधाओंके उपस्थित होनेपर॥ २८॥ जो मेरे इस चरित्रका स्मरण करता है, वह मनुष्य संकटसे मुक्त हो जाता है। मेरे प्रभावसे सिंह आदि हिंसक जन्तु नष्ट हो जाते हैं तथा

लुटेरे और शत्रु भी मेरे चरित्रका स्मरण करनेवाले पुरुषसे दूर भागते हैं॥ २९-३०॥

ऋषिरुवाच ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा ॥ ३२ ॥
पश्यतामेव[1] देवानां तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा ॥ ३३ ॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥ ३४ ॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ ३५ ॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३६ ॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ ३७ ॥
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८ ॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३९ ॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभावे तथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ४० ॥
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं[2] शुभाम् ॥ ॐ ॥ ४१ ॥

ऋषि कहते हैं— ॥ ३१ ॥ यों कहकर प्रचण्ड पराक्रमवाली भगवती चण्डिका सब देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं। फिर समस्त देवता भी शत्रुओंके मारे जानेसे निर्भय हो पहलेकी ही भाँति यज्ञभागका उपभोग करते हुए अपने-अपने अधिकारका पालन करने लगे। संसारका विध्वंस करनेवाले महाभयङ्कर अतुलपराक्रमी देवशत्रु शुम्भ तथा महाबली निशुम्भके युद्धमें देवीद्वारा मारे जानेपर शेष दैत्य पाताललोकमें चले आये॥ ३२—३५॥ राजन्! इस प्रकार भगवती अम्बिका देवी नित्य होती हुई भी पुनः-पुनः प्रकट होकर जगत्‌की रक्षा करती हैं॥ ३६ ॥ वे ही इस विश्वको मोहित करतीं, वे ही जगत्‌को जन्म देतीं तथा वे ही प्रार्थना करनेपर सन्तुष्ट हो विज्ञान एवं समृद्धि प्रदान करती हैं॥ ३७॥ राजन्! महाप्रलयके समय महामारीका स्वरूप धारण करनेवाली वे महाकाली ही इस समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं॥ ३८॥ वे ही समय-समयपर महामारी होतीं और वे ही स्वयं अजन्मा होती हुई भी सृष्टिके रूपमें प्रकट होती हैं। वे सनातनी देवी ही समयानुसार सम्पूर्ण भूतोंकी रक्षा करती हैं॥ ३९॥ मनुष्योंके अभ्युदयके समय वे ही घरमें लक्ष्मीके रूपमें स्थित हो उन्नति प्रदान करती हैं और वे ही अभावके समय दरिद्रता बनकर विनाशका कारण होती हैं॥ ४०॥ पुष्प, धूप और गन्ध आदिसे पूजन करके उनकी स्तुति करनेपर वे धन, पुत्र, धार्मिक बुद्धि तथा उत्तम गति प्रदान करती हैं॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

उवाच १, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३७, एवम् ४१, एवमादितः ॥ ६७१ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'फलस्तुति' नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

---

१. पा०—तां सर्वदेवा०। २. पा०—तथा।

त्रयोदशोऽध्यायः

सुरथ और वैश्यको देवीका वरदान

ध्यान

(ॐबालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे॥

जो उदयकालके सूर्यमण्डलकी-सी कान्ति धारण करनेवाली हैं, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथोंमें पाश, अङ्कुश, वर एवं अभयकी मुद्रा धारण किये रहती हैं, उन शिवा देवीका मैं ध्यान करता हूँ।)

ऋषिरुवाच॥१॥

'ॐ' एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत्॥२॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः॥३॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्॥४॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा॥५॥

ऋषि कहते हैं—॥१॥ राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे देवीके अनुपम माहात्म्यका वर्णन किया। जो इस जगत्‌को धारण करती हैं, उन देवीका ऐसा ही प्रभाव है॥२॥ वे ही विद्या (ज्ञान) उत्पन्न करती हैं। भगवान् विष्णुकी मायास्वरूपा उन भगवतीके द्वारा ही तुम, ये वैश्य तथा अन्यान्य विवेकी जन मोहित होते हैं, मोहित हुए हैं तथा आगे भी मोहित होंगे। महाराज! तुम उन्हीं परमेश्वरीकी शरणमें जाओ॥३-४॥ आराधना करनेपर वे ही मनुष्योंको भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं॥५॥

मार्कण्डेय उवाच॥६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः॥७॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम्।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च॥८॥
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः॥९॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन्।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्॥१०॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ॥११॥
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम्।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः॥१२॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका॥१३॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥६॥ क्रौष्टुकिजी! मेधामुनिके ये वचन सुनकर राजा सुरथने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महाभाग महर्षिको प्रणाम किया। वे अत्यन्त ममता और राज्यापहरणसे बहुत खिन्न हो चुके थे॥७-८॥ महामुने! इसलिये विरक्त होकर वे राजा तथा वैश्य तत्काल तपस्याको चले गये और वे जगदम्बाके दर्शनके लिये नदीके तटपर रहकर तपस्या करने लगे॥९॥ वे वैश्य उत्तम देवीसूक्तका जप करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हुए। वे दोनों नदीके तटपर देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप और हवन आदिके द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने पहले तो आहारको धीरे-धीरे कम किया; फिर बिल्कुल निराहार रहकर देवीमें ही मन लगाये एकाग्रतापूर्वक उनका चिन्तन आरम्भ किया॥१०-११॥ वे दोनों अपने शरीरके रक्तसे प्रोक्षित बलि देते हुए लगातार तीन वर्षोंतक संयमपूर्वक आराधना करते रहे॥१२॥ इसपर प्रसन्न होकर जगत्‌को धारण करनेवाली चण्डिका

देवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा ॥ १३ ॥

देव्युवाच ॥ १४ ॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ १५ ॥

देवी बोलीं— ॥ १४ ॥ राजन्! तथा अपने कुलको आनन्दित करनेवाले वैश्य! तुमलोग जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, वह मुझसे माँगो। मैं संतुष्ट हूँ, अतः तुम्हें वह सब कुछ दूँगी ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ १६ ॥

ततो[१] वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ १७ ॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १८ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं— ॥ १६ ॥ तब राजाने दूसरे जन्ममें नष्ट न होनेवाला राज्य माँगा तथा इस जन्ममें भी शत्रुओंकी सेनाको बलपूर्वक नष्ट करके पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लेनेका वरदान माँगा ॥ १७ ॥ वैश्यका चित्त संसारकी ओरसे खिन्न एवं विरक्त हो चुका था और वे बड़े बुद्धिमान् थे; अतः उस समय उन्होंने तो ममता और अहंतारूप आसक्तिका नाश करनेवाला ज्ञान माँगा ॥ १८ ॥

देव्युवाच ॥ १९ ॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ २० ॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ २१ ॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः ॥ २२ ॥
सावर्णिको नाम[२] मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥ २३ ॥
वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥ २४ ॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ २५ ॥

देवी बोलीं— ॥ १९ ॥ राजन्! तुम थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंको मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे। अब वहाँ तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा ॥ २०-२१ ॥ फिर मृत्युके पश्चात् तुम भगवान् विवस्वान् (सूर्य)-के अंशसे जन्म लेकर इस पृथ्वीपर सावर्णिक मनुके नामसे विख्यात होओगे ॥ २२-२३ ॥ वैश्यवर्य! तुमने भी जिस वरको मुझसे प्राप्त करनेकी इच्छा की है, उसे देती हूँ। तुम्हें मोक्षके लिये ज्ञान प्राप्त होगा ॥ २४-२५ ॥

१. पा० ततो वव्रे।
२. पा० मनुर्नाम।

मार्कण्डेय उवाच ॥ २६ ॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ २७ ॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ २८ ॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ २९ ॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ क्लीं ॐ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं— ॥ २६ ॥ इस प्रकार उन दोनोंको मनोवाञ्छित वरदान देकर तथा उनके द्वारा भक्तिपूर्वक अपनी स्तुति सुनकर देवी अम्बिका तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। इस तरह देवीसे वरदान पाकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ सुरथ सूर्यसे जन्म ले सावर्णि नामक मनु होंगे ॥ २७-२९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥
उवाच ६, अर्धश्लोकः ११, श्लोकाः १२, एवम् २९, एवमादितः ॥७००॥
समस्ता उवाचमन्त्राः ५७, अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५, अवदानानि ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'सुरथ और वैश्यको वरदान' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥१३॥

नवेंसे लेकर तेरहवें मन्वन्तरतकका संक्षिप्त वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—क्रौष्टुकिजी! यह तुमसे सावर्णिक मन्वन्तरका भलीभाँति वर्णन किया गया। साथ ही महिषासुर-वध आदिके रूपमें भगवती दुर्गाकी महिमा भी बतलायी गयी। मुनिश्रेष्ठ! अब दूसरे सावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुनो। दक्षके पुत्र सावर्णि नवें मनु होनेवाले हैं। उनके समयमें जो देवता, मुनि और राजा होंगे, उन सबके नाम सुनो। पार, मरीचिगर्भ और सुधर्मा—ये तीन प्रकारके देवता होंगे। इनमेंसे प्रत्येक वर्गमें बारह-बारह देवता होंगे। इस समय जो छः मुखोंवाले अग्निकुमार कार्तिकेय हैं, वे ही उस मन्वन्तरमें 'अद्भुत' नामवाले इन्द्र होंगे। मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल तथा हव्यवाहन—ये सप्तर्षि होंगे। धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न तथा बृहद्भय—ये दक्षपुत्र सावर्णि मनुके राजकुमार होंगे।

अब दसवें मनुके मन्वन्तरका वर्णन सुनो। दसवें मन्वन्तरमें ब्रह्माजीके पुत्र बुद्धिमान् सावर्णिका अधिकार होगा। ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें सुखासीन और निरुद्ध—ये दो प्रकारके देवता होंगे। उनकी संख्या सौ होगी। उस समय सौ प्रकारके प्राणी उत्पन्न होंगे, इसलिये उनके देवता भी सौ ही होंगे। उस मन्वन्तरमें इन्द्रके समस्त गुणोंसे युक्त 'शान्ति' नामक इन्द्र होंगे। आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वासिष्ठ—ये सप्तर्षि होंगे। सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूमिसेन, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ, भूरिद्युम्न तथा सुपर्वा—ये मनुके पुत्र होंगे।

अब धर्मके पुत्र सावर्णिका मन्वन्तर सुनो। धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें विहङ्गम, कामग तथा निर्माणरति—ये तीन प्रकारके देवता होंगे। इनमेंसे एक-एक तीस-तीस देवताओंका समुदाय है। मास, ऋतु और दिन—ये निर्माणरति कहलायेंगे। रात्रियोंकी संज्ञा विहङ्गम होगी और मुहूर्तसम्बन्धी गण कामग कहलायेंगे। विख्यात पराक्रमी 'वृष' उनके

इन्द्र होंगे। हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणनन्दन ऋष्टि, निश्चर, अनघ, महामुनि विष्टि तथा अग्निदेव—ये सात सप्तर्षि होंगे। सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, हेमधन्वा तथा दृढायु—ये भविष्यमें होनेवाले राजा धर्मसावर्णि मनुके पुत्र होंगे। बारहवाँ मन्वन्तर रुद्रपुत्र सावर्णि मनुका होगा। उसके आनेपर सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण—ये पाँच देवगण होंगे। इनमेंसे प्रत्येक गण दस-दस देवताओंका होगा। महाबली ऋतधामा उनका इन्द्र होगा। द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति तथा तपोधृति—ये सात सप्तर्षि होंगे। देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् तथा मित्रविन्द—ये भावी मनुके वंशज राजा होंगे।

अब 'रौच्य' नामक तेरहवें मनुके समयमें होनेवाले देवताओं, सप्तर्षियों तथा राजाओंका वर्णन सुनो। सुधर्मा, सुकर्मा और सुशर्मा—ये तीन उस समयके देवता होंगे। महाबली एवं महापराक्रमी 'दिवस्पति' उनके इन्द्र होंगे। धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प—ये सात सप्तर्षि होंगे। चित्रसेन, विचित्र, नयति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि तथा सुव्रत—ये रौच्य मनुके पुत्र राजा होंगे।

रौच्य मनुकी उत्पत्ति-कथा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन्! पूर्वकालकी बात है, प्रजापति रुचि ममता और अहङ्कारसे रहित इस पृथ्वीपर विचरते थे। उन्हें किसीसे भय नहीं था। वे बहुत कम सोते थे। उन्होंने न तो अग्निकी स्थापना की थी और न अपने लिये घर ही बना रखा था। वे एक बार भोजन करते और बिना आश्रमके ही रहते थे। उन्हें सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित एवं मुनिवृत्तिसे रहते देख उनके पितरोंने उनसे कहा।

पितर बोले—बेटा! विवाह स्वर्ग और अपवर्गका हेतु* होनेके कारण एक पुण्यमय कार्य है; उसे तुमने क्यों नहीं किया? गृहस्थ पुरुष समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और अतिथियोंकी पूजा करके पुण्यमय लोकोंको प्राप्त करता है। वह 'स्वाहा' के उच्चारणसे देवताओंको, 'स्वधा' शब्दसे पितरोंको तथा अन्नदान (बलिवैश्वदेव) आदिसे भूत आदि प्राणियों एवं अतिथियोंको उनका भाग समर्पित करता है। बेटा! हम ऐसा मानते हैं कि गृहस्थ आश्रमको स्वीकार न करनेपर तुम्हें इस जीवनमें क्लेश-पर-क्लेश उठाना पड़ेगा तथा मृत्युके बाद और दूसरे जन्ममें भी क्लेश ही भोगने पड़ेंगे।

रुचिने कहा—पितृगण! परिग्रहमात्र ही अत्यन्त दुःख एवं पापका कारण होता है तथा उससे मनुष्यकी अधोगति होती है, यही सोचकर मैंने पहले स्त्री संग्रह नहीं किया। मन और इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखकर जो यह आत्मसंयम किया जाता है, वह भी परिग्रह करनेपर मोक्षका साधक नहीं होता। ममतारूप कीचड़में सना हुआ होनेपर भी यह आत्मा जो परिग्रहशून्य चित्तरूपी जलसे

---

* अग्निहोत्र एवं यज्ञ-यागादि कर्ममें लपत्नीक गृहस्थका ही अधिकार है; ये कर्म निष्कामभावसे हों तो मोक्ष देनेवाले होते हैं और सकामभावसे किये जायँ तो स्वर्गादि फलोंके साधक होते हैं। जो उक्त कर्म करते हैं, उन्हींका विवाह स्वर्ग अपवर्गका साधक है। जो विवाह करके गृहस्थोचित शुभ-कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करते, उनके लिये तो विवाह-कर्म घोर बन्धनका ही कारण होता है।

प्रतिदिन धोया जाता है, वह श्रेष्ठ प्रयत्न है। जितेन्द्रिय विद्वानोंको चाहिये कि वे अनेक जन्मोंद्वारा सञ्चित कर्मरूपी पङ्कमें सने हुए आत्माका सद्वासनारूपी जलसे प्रक्षालन करें।

पितर बोले—बेटा! जितेन्द्रिय होकर आत्माका प्रक्षालन करना उचित ही है; किन्तु तुम जिसपर चल रहे हो, वह मोक्षका मार्ग है। किन्तु फलेच्छारहित दान और शुभाशुभके उपभोगसे भी पूर्वकृत अशुभ कर्म दूर होता है। इसी प्रकार दयाभावसे प्रेरित होकर जो कर्म किया जाता है, वह बन्धनकारक नहीं होता। फल-कामनासे रहित कर्म भी बन्धनमें नहीं डालता। पूर्वजन्ममें किया हुआ मानवोंका शुभाशुभ कर्म सुख-दुःखमय भोगोंके रूपमें प्रतिदिन भोगनेपर ही क्षीण होता है।* इस प्रकार विद्वान् पुरुष आत्माका प्रक्षालन करते और उसकी बन्धनोंसे रक्षा करते हैं। ऐसा करनेसे वह अविवेकके कारण पापरूपी कीचड़में नहीं फँसता।

रुचिने पूछा—पितामहो! वेदमें कर्ममार्गको अविद्या कहा गया है, फिर क्यों आपलोग मुझे उस मार्गमें लगाते हैं?

पितर बोले—यह सत्य है कि कर्मको अविद्या ही कहा गया है, इसमें तनिक भी मिथ्या नहीं है; फिर भी इतना तो निश्चित है कि उस विद्याकी प्राप्तिमें कर्म ही कारण है। विहित कर्मका पालन न करके जो अधम मनुष्य संयम करते हैं, वह संयम अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति नहीं कराता; अपितु अधोगतिमें ले जानेवाला होता है। वत्स! तुम तो समझते हो कि मैं आत्माका प्रक्षालन करता हूँ;

किन्तु वास्तवमें तुम शास्त्रविहित कर्मोंके न करनेके कारण पापोंसे दग्ध हो रहे हो! कर्म अविद्या होनेपर भी विधिके पालनद्वारा शोधे हुए विषकी भाँति मनुष्योंका उपकार करनेवाला ही होता है। इसके विपरीत वह विद्या भी विधिकी अवहेलनासे निश्चय ही हमारे बन्धनका कारण बन जाती है।† अतः वत्स! तुम विधिपूर्वक स्त्री-संग्रह करो। ऐसा न हो कि इस लोकका

---

* नरस्तु दानैरशुभं नुद्यतेऽनभिसंहितैः। फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्वकर्म शुभाशुभैः॥
एवं न बन्धो भवति कुर्वतः करुणात्मकम्। न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसंहितम्॥
पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयतेऽहर्निशं तथा। सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम्॥

(९५। १४-१६)

† प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानं तु मन्यते। विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वं तु विदह्यसे॥
अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम्। अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यापि नो हि सा॥

(९५। २१-२२)

लाभ न मिलनेके कारण तुम्हारा जन्म निष्फल हो जाय।

रुचिने कहा—पितरो! अब तो मैं बूढ़ा हो गया; भला, मुझको कौन स्त्री देगा। इसके सिवा मुझ जैसे दरिद्रके लिये स्त्रीको रखना बहुत कठिन कार्य है।

पितर बोले—वत्स! यदि हमारी बात नहीं मानोगे तो हमलोगोंका पतन हो जायगा और तुम्हारी भी अधोगति होगी।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! यों कहकर पितर उनके देखते-देखते वायुके बुझाये हुए दीपककी भाँति सहसा अदृश्य हो गये। पितरोंकी बातसे रुचिका मन बहुत उद्विग्न हुआ। वे अपने विवाहके लिये कन्या प्राप्त करनेकी इच्छासे पृथ्वीपर विचरने लगे। वे पितरोंके वचनरूप आगसे दग्ध हो रहे थे। कोई कन्या न मिलनेसे उन्हें बड़ी भारी चिन्ता हुई। उनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो उठा। इसी अवस्थामें उन्हें यह बुद्धि सूझी कि 'मैं तपस्याके द्वारा श्रीब्रह्माजीकी आराधना

करूँ।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने कठोर नियमका आश्रय ले श्रीब्रह्माजीकी आराधनाके निमित्त सौ वर्षोंतक भारी तपस्या की। तदनन्तर लोकपितामह ब्रह्माजीने उन्हें दर्शन दिया और कहा—'मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।' तब रुचिने जगत्‌के आधारभूत ब्रह्माजीको प्रणाम करके पितरोंके कथनानुसार अपना अभीष्ट निवेदन किया। रुचिकी अभिलाषा सुनकर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'विप्रवर! तुम प्रजापति होओगे। तुमसे प्रजाकी सृष्टि होगी। प्रजाकी सृष्टि तथा पुत्रोंकी उत्पत्ति करनेके साथ ही शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके जब तुम अपने अधिकारका त्याग कर दोगे, तब तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। अब तुम स्त्री-प्राप्तिकी अभिलाषा लेकर पितरोंका पूजन करो। वे ही प्रसन्न होनेपर तुम्हें मनोवाञ्छित पत्नी और पुत्र प्रदान करेंगे। भला, पितर सन्तुष्ट हो जायँ तो वे क्या नहीं दे सकते।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके ये वचन सुनकर रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोंका तर्पण किया और भक्तिसे मस्तक झुकाकर एकाग्र एवं संयत-चित्त हो नीचे लिखे स्तोत्रद्वारा आदरपूर्वक उनकी स्तुति की—

रुचि बोले—जो श्राद्धमें अधिष्ठाता देवताके रूपमें निवास करते हैं तथा देवता भी श्राद्धमें 'स्वधान्त' वचनोंद्वारा जिनका तर्पण करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। भक्ति और मुक्तिकी अभिलाषा रखनेवाले महर्षिगण स्वर्गमें भी मानसिक श्राद्धोंके द्वारा भक्तिपूर्वक जिन्हें तृप्त करते हैं, सिद्धगण दिव्य उपहारोंद्वारा श्राद्धमें जिनको सन्तुष्ट करते हैं, आत्यन्तिक समृद्धिकी इच्छा रखनेवाले गुह्यक भी तन्मय होकर भक्तिभावसे जिनकी पूजा करते हैं, भूलोकमें मनुष्यगण जिनकी सदा आराधना करते हैं, जो श्राद्धोंमें श्रद्धापूर्वक पूजित होनेपर मनोवाञ्छित लोक प्रदान करते हैं, पृथ्वीपर

ब्राह्मणलोग अभिलषित वस्तुकी प्राप्तिके लिये जिनकी अर्चना करते हैं तथा जो आराधना करनेपर प्राजापत्य लोक प्रदान करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। तपस्या करनेसे जिनके पाप धुल गये हैं तथा जो संयमपूर्वक आहार करनेवाले हैं, ऐसे वनवासी महात्मा वनके फल-मूलोंद्वारा श्राद्ध करके जिन्हें तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं मस्तक झुकाता हूँ। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले संयतात्मा ब्राह्मण समाधिके द्वारा जिन्हें सदा तृप्त करते हैं, क्षत्रिय सब प्रकारके श्राद्धोपयोगी पदार्थोंके द्वारा विधिवत् श्राद्ध करके जिनको सन्तुष्ट करते हैं, जो तीनों लोकोंको अभीष्ट फल देनेवाले हैं, स्वकर्मपरायण वैश्य पुष्प, धूप, अन्न और जल आदिके द्वारा जिनकी पूजा करते हैं तथा शूद्र भी श्राद्धोंद्वारा भक्तिपूर्वक जिनकी तृप्ति करते हैं और जो संसारमें सुकालीके नामसे विख्यात हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। पातालमें बड़े-बड़े दैत्य भी दम्भ और मद त्यागकर श्राद्धोंद्वारा जिन स्वधाभोजी पितरोंको सदा तृप्त करते हैं, मनोवाञ्छित भोगोंको पानेकी इच्छा रखनेवाले नागगण रसातलमें सम्पूर्ण भोगों एवं श्राद्धोंसे जिनकी पूजा करते हैं तथा मन्त्र, भोग और सम्पत्तियोंसे युक्त सर्पगण भी रसातलमें ही विधिपूर्वक श्राद्ध करके जिन्हें सर्वदा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। जो साक्षात् देवलोकमें, अन्तरिक्षमें और भूतलपर निवास करते हैं, देवता आदि समस्त देहधारी जिनकी पूजा करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। वे पितर मेरे द्वारा अर्पित किये हुए इस जलको ग्रहण करें। जो परमात्मस्वरूप पितर मूर्तिमान् होकर विमानोंमें निवास करते हैं, जो समस्त क्लेशोंसे छुटकारा दिलानेमें हेतु हैं तथा योगीश्वरगण निर्मल हृदयसे जिनका यजन करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो स्वधाभोजी पितर दिव्यलोकमें मूर्तिमान् होकर रहते हैं, काम्यफलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं और निष्काम पुरुषोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। वे समस्त पितर इस जलसे तृप्त हों, जो चाहनेवाले पुरुषोंको इच्छानुसार भोग प्रदान करते हैं, देवत्व, इन्द्रत्व तथा उससे ऊँचे पदकी प्राप्ति कराते हैं; इतना ही नहीं, जो पुत्र, पशु, धन, बल और गृह भी देते हैं। जो पितर चन्द्रमाकी किरणोंमें, सूर्यके मण्डलमें तथा श्वेत विमानोंमें सदा निवास करते हैं, वे मेरे दिये हुए अन्न, जल और गन्ध आदिसे तृप्त एवं पुष्ट हों। अग्निमें हविष्यका हवन करनेसे जिनको तृप्ति होती है, जो ब्राह्मणोंके शरीरमें स्थित होकर भोजन करते हैं तथा पिण्डदान करनेसे जिन्हें प्रसन्नता प्राप्त होती है, वे पितर यहाँ मेरे दिये हुए अन्न और जलसे तृप्त हों। जो देवताओंसे भी पूजित हैं तथा सब प्रकारसे श्राद्धोपयोगी पदार्थ जिन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, वे पितर यहाँ पधारें। मेरे निवेदन किये हुए पुष्प, गन्ध, अन्न एवं भोज्य पदार्थोंके निकट उनकी उपस्थिति हो। जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, प्रत्येक मासके अन्तमें जिनकी पूजा करनी उचित है, जो अष्टकाओंमें, वर्षके अन्तमें तथा अभ्युदयकालमें भी पूजनीय हैं, वे मेरे पितर यहाँ तृप्ति लाभ करें। जो ब्राह्मणोंके यहाँ कुमुद और चन्द्रमाके समान शान्ति धारण करके आते हैं, क्षत्रियोंके लिये जिनका वर्ण नवोदित सूर्यके समान है, जो वैश्योंके यहाँ सुवर्णके समान उज्ज्वल कान्ति धारण करते हैं तथा शूद्रोंके लिये जो श्याम वर्णके हो जाते हैं, वे समस्त पितर मेरे दिये हुए पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न और जल आदिसे तथा अग्निहोत्रसे

सदा तृप्ति लाभ करें। मैं उन सबको प्रणाम करता हूँ। जो वैश्वदेवपूर्वक समर्पित किये हुए श्राद्धको पूर्ण तृप्तिके लिये भोजन करते हैं और तृप्त हो जानेपर ऐश्वर्यकी सृष्टि करते हैं, वे पितर यहाँ तृप्त हों। मैं उन सबको नमस्कार करता हूँ। जो राक्षसों, भूतों तथा भयानक असुरोंका नाश करते हैं, प्रजाजनोंका अमङ्गल दूर करते हैं, जो देवताओंके भी पूर्ववर्ती तथा देवराज इन्द्रके भी पूज्य हैं, वे यहाँ तृप्त हों। मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। अग्निष्वात्त पितृगण मेरी पूर्व दिशाकी रक्षा करें, बर्हिषद् पितृगण दक्षिण दिशाकी रक्षा करें। आज्यप नामवाले पितर पश्चिम दिशाकी तथा सोमप संज्ञक पितर उत्तर दिशाकी रक्षा करें। उन सबके स्वामी यमराज राक्षसों, भूतों, पिशाचों तथा असुरोंके दोषसे सब ओरसे मेरी रक्षा करें। विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति—ये पितरोंके नौ गण हैं। कल्याण, कल्यताकर्ता, कल्य, कल्यतराश्रय, कल्यता-हेतु तथा अनघ—ये पितरोंके छः गण माने गये हैं। वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वधाता तथा धाता—ये पितरोंके सात गण हैं। महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल—ये पितरोंके पापनाशक पाँच गण हैं। सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद—ये पितरोंके चार गण कहे जाते हैं। इस प्रकार कुल इकतीस पितृगण हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है। वे सब पूर्ण तृप्त होकर मुझपर सन्तुष्ट हों और सदा मेरा हित करें।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार स्तुति करते हुए रुचिके समक्ष सहसा एक बहुत ऊँचा तेजःपुञ्ज प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त था। समस्त संसारको व्याप्त करके स्थित हुए उस महान् तेजको देखकर रुचिने पृथ्वीपर घुटने टेक दिये और इस स्तोत्रका गान किया—

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्॥
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान् नमस्यामि कामदान्॥
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा।
तान् नमस्याम्यहं सर्वान् पितॄनप्युदधावपि॥
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा।
द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥
देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान्।
अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च।
योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु।
स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्त्तिधरांस्तथा।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम्॥

अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितॄनहम्।
अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तयः।
जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः॥

रुचि बोले—जो सबके द्वारा पूजित, अमूर्त, अत्यन्त तेजस्वी, ध्यानी तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं, उन पितरोंको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्र आदि देवताओं, दक्ष, मारीच, सप्तर्षियों तथा दूसरोंके भी नेता हैं, कामनाकी पूर्ति करनेवाले उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मनु आदि राजर्षियों, मुनीश्वरों तथा सूर्य और चन्द्रमाके भी नायक हैं, उन समस्त पितरोंको मैं जल और समुद्रमें भी नमस्कार करता हूँ। नक्षत्रों, ग्रहों, वायु, अग्नि, आकाश और द्युलोक तथा पृथ्वीके भी जो नेता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। जो देवर्षियोंके जन्मदाता, समस्त लोकोंद्वारा वन्दित तथा सदा अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण तथा योगेश्वरोंके रूपमें स्थित पितरोंको सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। सातों लोकोंमें स्थित सात पितृगणोंको नमस्कार है। मैं योगदृष्टिसम्पन्न स्वयम्भू ब्रह्माजीको प्रणाम करता हूँ। चन्द्रमाके आधारपर प्रतिष्ठित तथा योगमूर्तिधारी पितृगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। साथ ही सम्पूर्ण जगत्के पिता सोमको नमस्कार करता हूँ तथा अग्निस्वरूप अन्य पितरोंको भी प्रणाम करता हूँ; क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् अग्नि और सोममय है। जो पितर तेजमें स्थित हैं, जो ये चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं तथा जो जगत्स्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, उन सम्पूर्ण योगी पितरोंको मैं एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करता हूँ। उन्हें बारंबार नमस्कार है। वे स्वधाभोजी पितर मुझपर प्रसन्न हों।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! रुचिके इस प्रकार स्तुति करनेपर वे पितर दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उस तेजसे बाहर निकले। रुचिने जो फूल, चन्दन और अङ्गराग आदि समर्पित किये थे, उन सबसे विभूषित होकर वे पितर सामने खड़े दिखायी दिये। तब रुचिने हाथ जोड़कर पुनः भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और बड़े आदरके

साथ सबसे पृथक्-पृथक् कहा—'आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है।' इससे प्रसन्न होकर पितरोंने मुनिश्रेष्ठ रुचिसे कहा—'वत्स! तुम कोई वर माँगो।' तब उन्होंने मस्तक झुकाकर कहा—'पितरो! इस समय ब्रह्माजीने मुझे सृष्टि करनेका आदेश दिया है; इसलिये मैं दिव्य गुणोंसे सम्पन्न उत्तम पत्नी चाहता हूँ, जिससे सन्तानकी उत्पत्ति हो सके।'

पितरोंने कहा—वत्स! यहीं, इसी समय तुम्हें अत्यन्त मनोहर पत्नी प्राप्त होगी और उसके गर्भसे तुम्हें 'मनु' संज्ञक उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होगी। वह

बुद्धिमान् पुत्र मन्वन्तरका स्वामी होगा और तुम्हारे ही नामपर तीनों लोकोंमें 'रौच्य' के नामसे उसकी ख्याति होगी। उसके भी महाबलवान् और पराक्रमी बहुत-से महात्मा पुत्र होंगे, जो इस पृथ्वीका पालन करेंगे। धर्मज्ञ! तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करोगे और फिर अपना अधिकार क्षीण होनेपर सिद्धिको प्राप्त होओगे। जो मनुष्य इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक हमारी स्तुति करेगा, उसके ऊपर सन्तुष्ट होकर हमलोग उसे मनोवाञ्छित भोग तथा उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे। जो नीरोग शरीर, धन और पुत्र-पौत्र आदिकी इच्छा करता हो, वह सदा इस स्तोत्रसे हमलोगोंकी स्तुति करे। यह स्तोत्र हमलोगोंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला है। जो श्राद्धमें भोजन करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके सामने खड़ा हो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके यहाँ स्तोत्रश्रवणके प्रेमसे हम निश्चय ही उपस्थित होंगे और हमारे लिये किया हुआ श्राद्ध भी निःसन्देह अक्षय होगा। चाहे श्रोत्रिय ब्राह्मणसे रहित श्राद्ध हो, चाहे वह किसी दोषसे दूषित हो गया हो अथवा अन्यायोपार्जित धनसे किया गया हो अथवा श्राद्धके लिये अयोग्य दूषित सामग्रियोंसे उसका अनुष्ठान हुआ हो, अनुचित समय या अयोग्य देशमें हुआ हो या उसमें विधिका उल्लङ्घन किया गया हो अथवा लोगोंने बिना श्रद्धाके या दिखावेके लिये किया हो तो भी वह श्राद्ध इस स्तोत्रके पाठसे हमारी तृप्ति करनेमें समर्थ होता है। हमें सुख देनेवाला यह स्तोत्र जहाँ श्राद्धमें पढ़ा जाता है, वहाँ हमलोगोंको बारह वर्षोंतक बनी रहनेवाली तृप्ति प्राप्त होती है। यह स्तोत्र हेमन्त-ऋतुमें श्राद्धके अवसरपर सुनानेसे हमें बारह वर्षोंके लिये तृप्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार शिशिर ऋतुमें यह कल्याणमय स्तोत्र हमें चौबीस वर्षोंतक तृप्तिकारक होता है। वसन्त ऋतुके श्राद्धमें सुनानेपर यह सोलह वर्षोंतक तृप्तिकारक होता है तथा ग्रीष्म-ऋतुमें पढ़े जानेपर भी यह उतने ही वर्षोंतक तृप्तिका साधक होता है। रुचे! वर्षा-ऋतुमें किया हुआ श्राद्ध यदि किसी अङ्गसे विकल हो तो भी इस स्तोत्रके पाठसे पूर्ण होता है और उस श्राद्धसे हमें अक्षय तृप्ति होती है। शरत्कालमें भी श्राद्धके अवसरपर यदि इसका पाठ हो तो यह हमें पंद्रह वर्षोंतकके लिये तृप्ति प्रदान करता है। जिस घरमें यह स्तोत्र सदा लिखकर रखा जाता है, वहाँ श्राद्ध करनेपर हमारी निश्चय ही उपस्थिति होती है; अतः महाभाग! श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सामने तुम्हें यह स्तोत्र अवश्य सुनाना चाहिये; क्योंकि यह हमारी पुष्टि करनेवाला है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—क्रौष्टुकिजी! तदनन्तर रुचिके समीप उस नदीके भीतरसे छरहरे अङ्गोंवाली मनोहर अप्सरा प्रम्लोचा प्रकट हुई और महात्मा

रुचिसे मधुर वाणीमें विनयपूर्वक बोली—'तपस्वियोंमें श्रेष्ठ रुचि! मेरी एक परम सुन्दरी कन्या है, जो वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करसे उत्पन्न हुई है। मैं

उस सुन्दरी कन्याको तुम्हें पत्नी बनानेके लिये देता हूँ, ग्रहण करो। उसके गर्भसे तुम्हारे पुत्र महाबुद्धिमान् मनुका जन्म होगा।' तब रुचिने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात स्वीकार की। इसके बाद प्रम्लोचाने अपनी कन्या मालिनीको जलके बाहर प्रकट किया। मुनिश्रेष्ठ रुचिने महर्षियोंको बुलाकर नदीके तटपर उसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया। उसीके गर्भसे महापराक्रमी परम बुद्धिमान् पुत्रका जन्म हुआ, जो इस भूमण्डलमें पिताके नामपर 'रौच्य' मनुके नामसे ही विख्यात हुए। उनके मन्वन्तरमें जो देवता, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र नृपगण होनेवाले हैं, उन सबके नाम तुम्हें बतलाये जा चुके हैं। इस मन्वन्तरकी कथा सुननेपर मनुष्योंके धर्मकी वृद्धि, आरोग्यकी प्राप्ति तथा धन-धान्य और पुत्रकी उत्पत्ति होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। महामुने! पितरोंका स्तवन तथा उनके भिन्न-भिन्न गणोंका वर्णन सुनकर मनुष्य उन्हींके प्रसादसे सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करता है।

भौत्य मन्वन्तरकी कथा तथा चौदह मन्वन्तरोंके श्रवणका फल

मार्कण्डेयजी कहते हैं—ब्रह्मन्! इसके पश्चात् अब तुम भौत्य मनुकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनो तथा उस समय होनेवाले देवर्षियों और पृथ्वीका पालन करनेवाले मनु पुत्रों आदिके नाम भी श्रवण करो। अङ्गिरा मुनिके एक शिष्य थे, जिनका नाम भूति था। वे बड़े ही क्रोधी तथा छोटी-सी बातके लिये अपराध होनेपर प्रचण्ड शाप देनेवाले थे। उनकी बातें कठोर होती थीं। उनके आश्रमपर हवा बहुत तेज नहीं बहती थी। सूर्य अधिक गर्मी नहीं पहुँचाते थे और मेघ अधिक कीचड़ नहीं होने देते थे। उन अत्यन्त तेजस्वी क्रोधी महर्षिके भयसे चन्द्रमा अपनी समस्त किरणोंसे परिपूर्ण होनेपर भी अधिक सर्दी नहीं पहुँचाते थे। समस्त ऋतुएँ उनकी आज्ञासे अपने आनेका क्रम छोड़कर आश्रमके वृक्षोंपर सदा ही रहतीं और मुनिके लिये फल-फूल प्रस्तुत करती थीं। महात्मा भूतिके भयसे जल भी उनके आश्रमके समीप मौजूद रहता और उनके कमण्डलुमें भी भरा रहता था।

भूति मुनिके एक भाई थे, जो सुवर्चाके नामसे विख्यात थे। उन्होंने यज्ञमें भूतिको निमन्त्रित किया। वहाँ जानेकी इच्छासे भूतिने अपने परम बुद्धिमान्, शान्त, जितेन्द्रिय, विनीत, गुरुके कार्यमें सदा संलग्न रहनेवाले, सदाचारी और उदार शिष्य मुनिवर शान्तिसे कहा—'वत्स! मैं अपने भाई सुवर्चाके यज्ञमें जाऊँगा। उन्होंने मुझे बुलाया है। तुम्हें यहाँ आश्रमपर रहना है। यहाँ तुम्हारे लिये जो कर्तव्य है, सुनो। मेरे आश्रमपर तुम्हें प्रतिदिन अग्निको प्रज्वलित रखना होगा और सदा ऐसा प्रयत्न करना होगा, जिससे अग्नि बुझने न पाये।'

गुरुकी यह आज्ञा पाकर जब शान्ति नामक

शिष्यने 'बहुत अच्छा' कहकर इसे स्वीकार किया, तब अपने छोटे भाईके बुलानेपर भूति मुनि उनके यज्ञमें चले गये। इधर शान्ति गुरुभक्तिके वशमें होकर उन महात्मा गुरुकी सेवाके लिये जबतक समिधा, फूल और फल आदि जुटाते रहे तथा अन्य आवश्यक कार्य करते रहे, तबतक भूति मुनिके द्वारा रक्षित अग्नि शान्त हो गयी। अग्निको शान्त हुआ देख शान्तिको बड़ा दुःख हुआ और वे भूतिके भयसे बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा, 'यदि इस अग्निके स्थानमें मैं दूसरी अग्नि स्थापित करूँ तो सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले मेरे गुरु अवश्य ही मुझे भस्म कर डालेंगे, मैं पापी अपने गुरुके क्रोध और शापका कारण बनूँगा। मुझे अपने लिये उतना शोक नहीं है, जितना कि गुरुके अपराध करनेका शोक है। अग्नि शान्त हुई देख गुरुदेव मुझे निश्चय ही शाप दे देंगे। जिनके प्रभावसे डरकर देवता भी उनके शासनमें रहते हैं, वे मुझ अपराधीको शापसे दग्ध न करें, इसके लिये क्या उपाय हो सकता है?'

अपने गुरुके डरसे डरे हुए बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ शान्ति मुनिने इस तरह अनेक प्रकारसे सोच-विचार करके अग्निदेवकी शरण ली। उसने मनपर संयम किया और पृथ्वीपर घुटने टेक हाथ जोड़ एकाग्रचित्त हो स्तोत्र आरम्भ किया।

शान्तिने कहा—समस्त प्राणियोंके साधक महात्मा अग्निदेवको नमस्कार है। उनके एक, दो और पाँच स्थान हैं। वे राजसूय-यज्ञमें छः स्वरूप धारण करते हैं। समस्त देवताओंको वृत्ति देनेवाले अत्यन्त तेजस्वी अग्निदेवको नमस्कार है। जो सम्पूर्ण जगत्‌के कारणरूप तथा पालन करनेवाले हैं, उन अग्निदेवको प्रणाम है। अग्ने! तुम सम्पूर्ण देवताओंके मुख हो। भगवन्! तुम्हारे द्वारा ग्रहण किया हुआ हविष्य सब देवताओंको तृप्त करता है। तुम्हीं समस्त देवताओंके प्राण हो। तुममें हवन किया हुआ हविष्य अत्यन्त पवित्र होता है, फिर वही मेघ बनकर जलरूपमें परिणत हो जाता है। फिर उस जलसे सब प्रकारके अन्न आदि उत्पन्न होते हैं। अनिलसारथे! फिर उन समस्त अन्न आदिसे सब जीव सुखपूर्वक जीवन धारण करते हैं। अग्निदेव! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न की हुई ओषधियोंसे मनुष्य यज्ञ करते हैं। यज्ञोंसे देवता, दैत्य तथा राक्षस तृप्त होते हैं। हुताशन! उन यज्ञोंके आधार तुम्हीं हो, अतः अग्ने! तुम्हीं सबके आदिकारण और सर्वस्वरूप हो। देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु वृक्ष, मृग, पक्षी तथा सर्प—ये सभी तुमसे ही तृप्त होते और तुम्हींसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं। तुम्हींसे इनकी उत्पत्ति है और तुम्हींमें इनका लय होता है। देव! तुम्हीं जलकी सृष्टि करते और तुम्हीं उसको पुनः सोख लेते हो। तुम्हारे पकानेसे ही जल प्राणियोंकी पुष्टि करता है। तुम देवताओंमें तेज, सिद्धोंमें कान्ति, नागोंमें विष और पक्षियोंमें वायुरूपसे स्थित हो। मनुष्योंमें क्रोध, पक्षी और मृग आदिमें मोह, वृक्षोंमें स्थिरता, पृथ्वीमें कठोरता, जलमें द्रवत्व तथा वायुमें जलरूपसे तुम्हारी स्थिति है। अग्ने! व्यापक होनेके कारण तुम आकाशमें आत्मारूपसे स्थित हो। अग्निदेव! तुम सम्पूर्ण भूतोंके अन्तःकरणमें विचरते तथा रक्षा पालन करते हो। विद्वान् पुरुष तुमको एक कहते हैं, तथा फिर वे ही तुम्हें तीन प्रकारका बतलाते हैं। तुम्हें आठ रूपोंमें कल्पित करके ऋषियोंने आदियज्ञका अनुष्ठान किया था। महर्षिगण इस विश्वको तुम्हारी सृष्टि बतलाते हैं। हुताशन! तुम्हारे बिना यह सम्पूर्ण जगत् तत्काल नष्ट हो जायगा। ब्राह्मण हव्य कव्य आदिके द्वारा 'स्वाहा' और 'स्वधा' का उच्चारण करते हुए तुम्हारी पूजा करके

अपने कर्मोंके अनुसार विहित उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। देवपूजित अग्निदेव! प्राणियोंके परिणाम, आत्मा और वीर्यस्वरूप तुम्हारी ज्वालाएँ तुमसे ही निकलकर सब भूतोंका दाह करती हैं। परम कान्तिमान् अग्निदेव! संसारको यह सृष्टि तुमने ही की है। तुम्हारा ही यज्ञरूप वैदिक कर्म सर्वभूतमय जगत् है। पीले नेत्रोंवाले अग्निदेव! तुम्हें नमस्कार है। हुताशन! तुम्हें नमस्कार है। पावक! आज तुम्हें नमस्कार है। हव्यवाहन! तुम्हें नमस्कार है। तुम ही खाये-पीये हुए पदार्थोंको पचानेके कारण विश्वके पालक हो। तुम्हीं खेतीको पकानेवाले और जगत्के पोषक हो। तुम्हीं मेघ हो, तुम्हीं वायु हो और तुम्हीं समस्त प्राणियोंका पोषण करनेके लिये खेतीके हेतुभूत बीज हो। भूत, भविष्य और वर्तमान—सब तुम्हीं हो। तुम्हीं सब जीवोंके भीतर प्रकाश हो। तुम्हीं सूर्य और तुम्हीं अग्नि हो। अग्ने! दिन-रात तथा दोनों सन्ध्याएँ तुम्हीं हो। सुवर्ण तुम्हारा वीर्य है। तुम सुवर्णकी उत्पत्तिके कारण हो। तुम्हारे गर्भमें सुवर्णकी स्थिति है। सुवर्णके समान तुम्हारी कान्ति है। मुहूर्त, क्षण, त्रुटि और लव—सब तुम्हीं हो। जगत्प्रभो! कला, काष्ठा और निमेष आदि तुम्हारे ही रूप हैं। यह सम्पूर्ण दृश्य तुम्हीं हो। परिवर्तनशील काल भी तुम्हारा ही स्वरूप है। प्रभो! तुम्हारी जो काली नामकी जिह्वा है, वह कालको आश्रय देनेवाली है। उसके द्वारा तुम पापोंके भयसे हमें बचाओ तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो कराली नामकी जिह्वा है, वह महाप्रलयकी कारणरूपा है। उसके द्वारा हमें पापों तथा इहलोकके महान् भयसे बचाओ। तुम्हारी जो मनोजवा नामकी जिह्वा है, वह लघिमा नामक गुणस्वरूपा है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो सुलोहिता नामकी जिह्वा है, वह सम्पूर्ण भूतोंकी कामनाएँ पूर्ण करती है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो सुधूम्रवर्णा नामकी जिह्वा है, वह प्राणियोंके रोगोंका दाह करनेवाली है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो स्फुलिङ्गिनी नामक जिह्वा है जिससे सम्पूर्ण जीवोंके शरीर उत्पन्न हुए हैं, उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। तुम्हारी जो विश्वा नामकी जिह्वा है, वह समस्त प्राणियोंका कल्याण करनेवाली है। उसके द्वारा तुम पापों तथा इस लोकके महान् भयसे हमारी रक्षा करो। हुताशन! तुम्हारे नेत्र पीले, ग्रीवा लाल और रंग साँवला है। तुम सब दोषोंसे हमारी रक्षा करो और संसारसे हमारा उद्धार कर दो। वह्नि, सप्तार्चि, कृशानु, हव्यवाहन, अग्नि, पावक, शुक्र तथा हुताशन—इन आठ नामोंसे पुकारे जानेवाले अग्निदेव! तुम प्रसन्न हो जाओ। तुम अक्षय, अचिन्त्य समृद्धिमान्, दुःसह एवं अत्यन्त तीव्र वह्नि हो। तुम मूर्तरूपमें प्रकट होकर अविनाशी कहे जानेवाले सम्पूर्ण भयंकर लोकोंको भस्म कर डालते हो अथवा तुम अत्यन्त पराक्रमी हो—तुम्हारे पराक्रमकी कहीं सीमा नहीं है। हुताशन! तुम सम्पूर्ण जीवोंके हृदय-कमलमें स्थित उत्तम, अनन्त एवं स्तवन करने योग्य सत्त्व हो। तुमने इस सम्पूर्ण चराचर विश्वको व्याप्त कर रखा है। तुम एक होकर भी यहाँ अनेक रूपोंमें प्रकट हुए हो। पावक! तुम अक्षय हो, तुम्हीं पर्वतों और वनोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य तथा दिन-रात हो। महासागरके उदरमें बड़वानलके रूपमें तुम्हीं हो तथा तुम्हीं अपनी परा विभूतिके साथ सूर्यकी किरणोंमें स्थित हो। भगवन्! तुम हवन किये हुए

हविष्यका साक्षात् भोजन करते हो, इसलिये बड़े-बड़े यज्ञोंमें नियमपरायण महर्षिगण सदा तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम यज्ञमें स्तुत होकर सोमपान करते हो तथा वषट्कार उच्चारण करके इन्द्रके उद्देश्यसे दिये हुए हविष्यको भी तुम्हीं भोग लगाते हो और इस प्रकार पूजित होकर तुम सम्पूर्ण विश्वका कल्याण करते हो। विप्रगण अभीष्ट फलकी प्राप्तिके लिये सदा तुम्हारा ही यजन करते हैं। सम्पूर्ण वेदाङ्गोंमें तुम्हारी महिमाका गान किया जाता है। यज्ञपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण तुम्हारी ही प्रसन्नताके लिये सर्वदा अङ्गोंसहित वेदोंका पठन-पाठन करते रहते हैं। तुम्हीं यज्ञपरायण ब्रह्मा, सब भूतोंके स्वामी भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र, अर्यमा, जलके स्वामी वरुण, सूर्य तथा चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण देवता और असुर भी तुम्हींको हविष्योंद्वारा संतुष्ट करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं। कितने ही महान् दोषसे दूषित वस्तु क्यों न हो, वह सब तुम्हारी ज्वालाओंके स्पर्शसे शुद्ध हो जाती है। सब स्नानोंमें तुम्हारे भस्मसे किया हुआ स्नान ही सबसे बढ़कर है, इसीलिये मुनिगण सन्ध्याकालमें उसका विशेष रूपसे सेवन करते हैं। शुचि नामवाले अग्निदेव! मुझपर प्रसन्न होओ। वायुरूप! मुझपर प्रसन्न होओ। अत्यन्त निर्मल कान्तिवाले पावक! मुझपर प्रसन्न होओ। विद्युन्मय! आज मुझपर प्रसन्न होओ। हविष्यभोजी अग्निदेव! तुम मेरी रक्षा करो। वह्ने! तुम्हारा जो कल्याणमय स्वरूप है, देव! तुम्हारी जो सात ज्वालामयी जिह्वाएँ हैं, उन सबके द्वारा तुम मेरी रक्षा करो—ठीक उसी तरह, जैसे पिता अपने पुत्रकी रक्षा करता है। मैंने तुम्हारी स्तुति की है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! शान्तिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् अग्निदेव ज्वालाओंसे घिरे हुए उनके सामने प्रकट हुए। ब्रह्मन्! अग्निदेव उस स्तोत्रसे बहुत संतुष्ट थे। शान्ति उनके चरणोंमें पड़ गये; फिर उन्होंने मेघके समान गम्भीर वाणीमें शान्तिसे कहा—'विप्रवर! तुमने जो भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन किया है, उससे मैं सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो।'

शान्तिने कहा—भगवन्! मैं तो कृतार्थ हो गया, क्योंकि आज आपके दिव्य स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ। तथापि मैं भक्तिसे विनीत होकर जो कुछ आपसे कहता हूँ, उसे आप सुनें। देव! मेरे आचार्य अपने आश्रमसे भाईके यज्ञमें गये हैं। वे जब लौटकर आयें तो इस स्थानको आपसे सनाथ देखें। साथ ही यदि आपकी मुझपर कृपा हो तो यह दूसरा वर भी दीजिये। मेरे गुरुदेवके कोई पुत्र नहीं है, उन्हें कोई सुयोग्य पुत्र प्राप्त हो; फिर उस पुत्रमें वे जितना स्नेह करें, उतना ही सम्पूर्ण भूतोंके प्रति भी उनका स्नेह हो। उनका हृदय सबके प्रति कोमल बन जाय।

शान्तिकी यह बात सुनकर अग्निदेवने कहा—'महामुने! तुमने गुरुके लिये वर दो माँगे हैं, अपने लिये नहीं। इससे तुमपर मेरी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी है। तुमने गुरुके लिये जो कुछ माँगा है, वह सब प्राप्त होगा। उनके पुत्र होगा और सम्पूर्ण भूतोंके प्रति उनकी मैत्री भी बढ़ जायगी। उनका पुत्र 'भौत्य' नामसे प्रसिद्ध एवं मन्वन्तरोंका स्वामी होगा; साथ ही वह महाबली, महापराक्रमी और परम बुद्धिमान् होगा। जो एकाग्रचित्त होकर इस स्तोत्रके द्वारा मेरी स्तुति करेगा, उसकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी तथा उसे पुण्यकी भी प्राप्ति होगी। यज्ञोंमें, पर्वके समय, तीर्थोंमें और होमकर्ममें जो धर्मके लिये मेरे इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसके लिये यह अत्यन्त पुष्टिकारक होगा। होम न करने तथा अयोग्य समयमें होम करने आदिके जो दोष हैं और अयोग्य पुरुषोंद्वारा हवन करनेसे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन सबको यह स्तोत्र सुननेमात्रसे शान्त कर देता है। पूर्णिमा, अमावास्या तथा अन्य पर्वोंपर मनुष्योंद्वारा सुना हुआ मेरा यह स्तोत्र उनके पापोंका नाश करनेवाला होता है।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! यों कहकर भगवान् अग्नि उनके देखते-देखते बुझे हुए दीपककी भाँति तत्काल अदृश्य हो गये। अग्निदेवके चले जानेपर शान्तिका चित्त बहुत सन्तुष्ट था। उनके शरीरमें हर्षके कारण रोमाञ्च हो आया था। इसी अवस्थामें उन्होंने गुरुके आश्रममें प्रवेश किया और वहाँ अग्निदेवको पहलेकी ही भाँति प्रज्वलित देखा। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसी बीचमें उनके गुरु भी छोटे भाईके यज्ञसे अपने आश्रमको लौटे। शिष्य शान्तिने गुरुके सामने जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उनके दिये हुए आसन और पूजाको स्वीकार करके गुरुने उनसे कहा—'वत्स! तुमपर तथा अन्य जीवोंपर भी मेरा स्नेह बहुत बढ़ गया है। मैं नहीं जानता, यह क्या बात है। यदि तुम्हें कुछ पता हो तो बताओ।' तब शान्तिने अपने आचार्यसे अग्निके बुझने आदिकी सब बातें यथार्थरूपसे कह सुनायीं। यह सुनकर गुरुके नेत्र स्नेहके कारण सजल हो आये। उन्होंने शान्तिको हृदयसे लगा लिया और उन्हें अङ्ग-उपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान कराया। तदनन्तर भूति मुनिके 'भौत्य' नामक पुत्र हुआ, जो भविष्यमें मनु होगा। उस मन्वन्तरमें चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर तथा धारावृक—ये पाँच देवगण माने गये हैं; इन सबके इन्द्र होंगे शुचि, जो महाबली, महापराक्रमी तथा इन्द्रके समस्त गुणोंसे युक्त होंगे। आग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित—ये सात उस समयके सप्तर्षि होंगे। गुरु, गभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, स्त्रीमानी, प्रवीर, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा सुबल—ये मनुके पुत्र होंगे।

क्रौष्टुकिजी! इस प्रकार मैंने तुमसे चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन किया। उन सबका क्रमशः श्रवण करके मनुष्य पुण्यका भागी होता है तथा उसकी सन्तान कभी क्षीण नहीं होती। प्रथम मन्वन्तरका वर्णन सुनकर मनुष्य धर्मका भागी होता है। स्वारोचिष मन्वन्तरकी कथा सुननेसे उसे सब कामनाओंकी प्राप्ति होती है। औत्तम मन्वन्तरके श्रवणसे धन, तामसके श्रवणसे ज्ञान तथा रैवत मन्वन्तरके श्रवणसे बुद्धि एवं सुन्दरी स्त्रीकी प्राप्ति होती है। चाक्षुष मन्वन्तरके श्रवणसे आरोग्य, वैवस्वतके श्रवणसे बल तथा सूर्यसावर्णिक मन्वन्तरके श्रवणसे गुणवान् पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मसावर्णिक मन्वन्तरके श्रवणसे महिमा बढ़ती है। धर्मसावर्णिकके श्रवणसे कल्याणमयी बुद्धि प्राप्त होती है और रुद्रसावर्णिकके श्रवणसे मनुष्य विजयी होता है। दक्षसावर्णिकके श्रवणसे मनुष्य

अपने कुलमें श्रेष्ठ तथा उत्तम गुणोंसे युक्त होता है तथा रौच्य मन्वन्तरकी कथा सुननेसे वह शत्रुओंकी सेनाका संहार कर डालता है। भौत्य मन्वन्तरकी कथा श्रवण करनेपर मनुष्य देवताकी कृपा प्राप्त करता है; इतना ही नहीं, उसे अग्निहोत्रके पुण्य तथा गुणवान् पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। मन्वन्तरोंके देवता, ऋषि, इन्द्र, मनु, मनुके पुत्र तथा राजवंशोंका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। देवता, ऋषि, इन्द्र, राजा तथा मन्वन्तरोंके स्वामी—ये प्रसन्न होकर कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करते हैं। वैसी बुद्धि पाकर मनुष्य शुभ कर्म करता है, जिससे वह चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त उत्तम गतिका उपभोग करता है।

सूर्यका तत्त्व, वेदोंका प्राकट्य, ब्रह्माजीद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सृष्टि-रचनाका आरम्भ

क्रौष्टुकि बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिका भलीभाँति वर्णन किया और मैंने क्रमशः विस्तारपूर्वक उसे सुना। अब राजाओंका सम्पूर्ण वंश, जिसके आदि ब्रह्माजी हैं, मैं सुनना चाहता हूँ; आप उसका यथावत् वर्णन कीजिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स! प्रजापति ब्रह्माजीको आदि बनाकर जिसकी प्रवृत्ति हुई है तथा जो सम्पूर्ण जगत्का मूल कारण है, उस राजवंशका तथा उसमें प्रकट हुए राजाओंके चरित्रोंका वर्णन सुनो—जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ तथा अन्य सैकड़ों राजा, जिन्होंने पृथ्वीका पालन किया था, उत्पन्न हुए थे। वे सभी धर्मज्ञ, यज्ञकर्ता, शूरवीर तथा परम तत्त्वके ज्ञाता थे। ऐसे वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है। पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माने नाना प्रकारकी प्रजाको उत्पन्न करनेकी इच्छा लेकर दाहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न किया और बायें अँगूठेसे उनकी पत्नीको प्रकट किया। दक्षके अदिति नामकी एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जिसके गर्भसे कश्यपने भगवान् सूर्यको जन्म दिया।

क्रौष्टुकिने पूछा—भगवन्! मैं भगवान् सूर्यके यथार्थ स्वरूपका वर्णन सुनना चाहता हूँ। वे किस प्रकार कश्यपजीके पुत्र हुए? कश्यप और अदितिने कैसे उनकी आराधना की? उनके यहाँ अवतीर्ण हुए भगवान् सूर्यका कैसा प्रभाव है? ये सब बातें यथार्थरूपसे बताइये।

मार्कण्डेयजी बोले—ब्रह्मन्! पहले यह सम्पूर्ण लोक प्रभा और प्रकाशसे रहित था। चारों ओर घोर अन्धकार घेरा डाले हुए था। उस समय परम कारणस्वरूप एक अविनाशी एवं बृहत् अण्ड प्रकट हुआ। उसके भीतर सबके प्रपितामह, जगत्के स्वामी, लोकस्रष्टा, कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे। उन्होंने उस अण्डका भेदन किया। महामुने! उन ब्रह्माजीके मुखसे 'ॐ' यह महान् शब्द प्रकट हुआ। उससे पहले भूः, फिर भुवः, तदनन्तर स्वः—ये तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यका स्वरूप हैं। 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्म रूप प्रकट हुआ। उससे 'महः' यह स्थूल रूप हुआ, फिर उससे 'जन' यह स्थूलतर रूप उत्पन्न हुआ। उससे 'तप' और तपसे 'सत्य' प्रकट हुआ। इस प्रकार ये सूर्यके सात स्वरूप स्थित हैं, जो कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित रहते हैं। ब्रह्मन्! मैंने 'ओम्' यह रूप बताया है; वह

सृष्टिका आदि-अन्त, अत्यन्त सूक्ष्म एवं निराकार है; वही परब्रह्म तथा वही ब्रह्मका स्वरूप है।

उक्त अण्डका भेदन होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके प्रथम मुखसे ऋचाएँ प्रकट हुईं। उनका वर्ण जपाकुसुमके समान था। वे सब तेजोमयी, एक-दूसरीसे पृथक् तथा रजोमय रूप धारण करनेवाली थीं। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके दक्षिण मुखसे यजुर्वेदके मन्त्र अबाधरूपसे प्रकट हुए। जैसा सुवर्णका रंग होता है, वैसा ही उनका भी था। वे भी एक-दूसरेसे पृथक् पृथक् थे। फिर परमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे सामवेदके छन्द प्रकट हुए। सम्पूर्ण अथर्ववेद, जिसका रंग भ्रमर और कज्जलराशिके समान काला है तथा जिसमें अभिचार एवं शान्तिकर्मके प्रयोग हैं, ब्रह्माजीके उत्तरमुखसे प्रकट हुआ। उसमें सुखमय सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी प्रधानता है। वह घोर और सौम्यरूप है। ऋग्वेदमें रजोगुणकी, यजुर्वेदमें सत्त्वगुणकी, सामवेदमें तमोगुणकी तथा अथर्ववेदमें तमोगुण एवं सत्त्वगुणकी प्रधानता है। ये चारों वेद अनुपम तेजसे देदीप्यमान होकर पहलेकी ही भाँति पृथक्-पृथक् स्थित हुए। तत्पश्चात् वह प्रथम तेज, जो 'ॐ' के नामसे पुकारा जाता है, अपने स्वभावसे प्रकट हुए ऋग्वेदमय तेजको व्याप्त करके स्थित हुआ। महामुने! इसी प्रकार उस प्रणवरूप तेजने यजुर्वेद एवं सामवेदमय तेजको भी आवृत किया। इस प्रकार उस अधिष्ठानस्वरूप परम तेज ॐकारमें चारों वेदमय तेज एकत्वको प्राप्त हुए। ब्रह्मन्! तदनन्तर वह पुञ्जीभूत उत्तम वैदिक तेज परम तेज प्रणवके साथ मिलकर जब एकत्वको प्राप्त होता है, तब सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण उसका नाम आदित्य होता है। महाभाग! वह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्नकालमें आदित्यकी अङ्गभूत वेदत्रयी ही, जिसे क्रमशः ऋक्, यजु, और साम कहते हैं, तपती है। पूर्वाह्नमें ऋग्वेद, मध्याह्नमें यजुर्वेद तथा अपराह्नमें सामवेद तपता है। इसीलिये ऋग्वेदोक्त शान्तिकर्म पूर्वाह्नमें, यजुर्वेदोक्त पौष्टिककर्म मध्याह्नमें तथा सामवेदोक्त आभिचारिक कर्म अपराह्नकालमें निश्चित किया गया है। आभिचारिक कर्म मध्याह्न और अपराह्न दोनों कालोंमें किया जा सकता है, किन्तु पितरोंके श्राद्ध आदि कार्य अपराह्नकालमें ही सामवेदके मन्त्रोंसे करने चाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋग्वेदमय, पालनकालमें विष्णु यजुर्वेदमय तथा संहारकालमें रुद्र सामवेदमय कहे गये हैं। अतएव सामवेदकी ध्वनि अपवित्र मानी गयी है। इस प्रकार भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेदविद्यास्वरूप तथा परम पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही रजोगुण और सत्त्वगुण आदिका आश्रय लेकर क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारके हेतु बनते हैं और इन कर्मोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु आदि नाम धारण करते हैं। वे देवताओंद्वारा सदा स्तवन करने योग्य हैं, वेदस्वरूप हैं। उनका कोई पृथक् रूप नहीं है। वे सबके आदि हैं। सम्पूर्ण मनुष्य उन्हींके स्वरूप हैं। विश्वकी आधारभूता ज्योति वे ही हैं। उनके धर्म अथवा तत्त्वका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता। वे वेदान्तगम्य ब्रह्म एवं परसे भी पर हैं।

तदनन्तर भगवान् सूर्यके तेजसे नीचे तथा ऊपरके सभी लोक सन्तप्त होने लगे। यह देख सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले कमलयोनि ब्रह्माजीने सोचा—सृष्टि, पालन और संहारके कारणभूत भगवान् सूर्यके सब ओर फैले हुए तेजसे मेरी रची हुई सृष्टि भी नाशको प्राप्त हो जायगी। जल ही समस्त प्राणियोंका जीवन है, वह जल सूर्यके तेजसे सूखा जा रहा है। जलके बिना इस विश्वकी

सृष्टि हो ही नहीं सकती—ऐसा विचारकर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर भगवान् सूर्यकी स्तुति आरम्भ की।

ब्रह्माजी बोले—यह सब कुछ जिनका स्वरूप है, जो सर्वमय हैं, सम्पूर्ण विश्व जिनका शरीर है, जो परम ज्योतिःस्वरूप हैं तथा योगीजन जिनका ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ऋग्वेदमय हैं, यजुर्वेदके अधिष्ठान हैं, सामवेदकी योनि हैं, जिनकी शक्तिका चिन्तन नहीं हो सकता, जो स्थूलरूपमें तीन वेदमय हैं और सूक्ष्मरूपमें प्रणवकी अर्धमात्रा हैं तथा जो गुणोंसे परे एवं परब्रह्मस्वरूप हैं, उन भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है। भगवन्! आप सबके कारण, परम ज्ञेय, आदिपुरुष, परम ज्योति, ज्ञानातीतस्वरूप, देवतारूपसे स्थूल तथा परसे भी परे हैं। सबके आदि एवं प्रभाका विस्तार करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी जो आद्याशक्ति है, उसीकी प्रेरणासे मैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, उनके देवता तथा प्रणव आदिसे युक्त समस्त सृष्टिकी रचना करता हूँ। इसी प्रकार पालन और संहार भी मैं उस आद्याशक्तिकी प्रेरणासे ही करता हूँ, अपनी इच्छासे नहीं। भगवन्! आप ही अग्निस्वरूप हैं। आप जब जल सोख लेते हैं, तब मैं पृथ्वी तथा जगत्की सृष्टि करता हूँ। आप ही सर्वव्यापी एवं आकाशस्वरूप हैं तथा आप ही इस पाञ्चभौतिक जगत्का पूर्णरूपसे पालन करते हैं। सूर्यदेव! परमात्मतत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष सर्वयज्ञमय विष्णुस्वरूप आपका ही यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं तथा अपनी मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय यति आप सर्वेश्वर परमात्माका ही ध्यान करते हैं। देवस्वरूप आपको नमस्कार है। यज्ञरूप आपको प्रणाम है। योगियोंके ध्येय परब्रह्मस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ और आपका यह तेजःपुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है; अतः अपने इस तेजको समेट लीजिये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने अपने महान् तेजको समेटकर स्वल्प तेजको ही धारण किया, तब ब्रह्माजीने पूर्वकल्पान्तरोंके अनुसार जगत्की सृष्टि आरम्भ की। महामुने! ब्रह्माजीने पहलेकी ही भाँति देवताओं, असुरों, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष लताओं तथा नरक आदिकी भी सृष्टि की।

अदितिके गर्भसे भगवान् सूर्यका अवतार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मुने! इस जगत्‌की सृष्टि करके ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। देवता, दैत्य तथा सर्प आदिके रूप और स्थान भी पहलेकी ही भाँति बनाये। ब्रह्माजीके मरीचि नामसे विख्यात जो पुत्र थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह पत्नियाँ हुईं, वे सब-की-सब प्रजापति दक्षकी कन्याएँ थीं। उनसे देवता, दैत्य और नाग आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। अदितिने त्रिभुवनके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिने दैत्योंको तथा दनुने महापराक्रमी एवं भयानक दानवोंको उत्पन्न किया। विनतासे गरुड और अरुण—दो पुत्र हुए। खसाके पुत्र यक्ष और राक्षस हुए। कद्रूने नागोंको और मुनिने गन्धर्वोंको जन्म दिया। क्रोधासे कुल्याएँ तथा अरिष्टासे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। इराने ऐरावत आदि हाथियोंको उत्पन्न किया। ताम्राके गर्भसे श्येनी आदि कन्याएँ पैदा हुईं। उन्हींके पुत्र श्येन (बाज), भास और शुक आदि पक्षी हुए। इलासे वृक्ष तथा प्रधासे जलजन्तु उत्पन्न हुए। कश्यप मुनिके अदितिके गर्भसे जो सन्तानें हुईं, उनके पुत्र-पौत्र, दौहित्र तथा उनके भी पुत्रों आदिसे यह सारा संसार व्याप्त है। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं। इनमें कुछ तो सात्त्विक हैं, कुछ राजस हैं और कुछ तामस हैं। ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजीने देवताओंको यज्ञभागका भोक्ता तथा त्रिभुवनका स्वामी बनाया; परन्तु उनके सौतेले भाई दैत्यों, दानवों और राक्षसोंने एक साथ मिलकर उन्हें कष्ट पहुँचाना आरम्भ कर दिया। इस कारण एक हजार दिव्य वर्षोंतक उनमें बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। अन्तमें देवता पराजित हुए और बलवान् दैत्यों तथा दानवोंको विजय प्राप्त हुई। अपने पुत्रोंको दैत्यों और दानवोंके द्वारा पराजित एवं त्रिभुवनके राज्याधिकारसे वञ्चित तथा उनका यज्ञभाग छिन गया देख माता अदिति अत्यन्त शोकसे पीड़ित हो गयीं। उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधनाके लिये महान् यत्न आरम्भ किया। वे नियमित आहार करती हुई कठोर नियमोंका पालन और आकाशमें स्थित तेजोराशि भगवान् सूर्यका स्तवन करने लगीं।

अदिति बोलीं—भगवन्! आप अत्यन्त सूक्ष्म सुनहरी आभासे युक्त दिव्य शरीर धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप तेजःस्वरूप, तेजस्वियोंके ईश्वर, तेजके आधार एवं सनातन पुरुष हैं; आपको प्रणाम है। गोपते! आप जगत्‌का उपकार करनेके लिये जब अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल ग्रहण करते हैं, उस समय आपका जो तीव्र रूप प्रकट होता है, उसे मैं नमस्कार करती हूँ। आठ महीनोंतक सोममय रसको ग्रहण करनेके लिये आप जो अत्यन्त तीव्र-रूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। भास्कर! उसी सम्पूर्ण रसको बरसानेके लिये जब आप छोड़नेको उद्यत होते हैं, उस समय आपका जो तृप्तिकारक मेघरूप प्रकट होता है, उसको मेरा नमस्कार है। इस प्रकार जलकी वर्षासे उत्पन्न हुए सब प्रकारके अन्नोंको पकानेके लिये आप जो भास्कर-रूप धारण करते हैं, उसे मैं प्रणाम करती हूँ। तरणे! जड़हन धानकी वृद्धिके लिये जो आप पाला गिराने आदिके कारण अत्यन्त शीतल रूप धारण करते हैं, उसको मेरा नमस्कार है। सूर्यदेव! वसन्त ऋतुमें जो आपका सौम्य रूप प्रकट होता है, जिसमें न अधिक गर्मी होती है न अधिक सर्दी, उसे मेरा बारंबार नमस्कार है। जो सम्पूर्ण देवताओं तथा पितरोंको तृप्त करनेवाला और

अनाजको पकानेवाला है, आपके उस रूपको नमस्कार है। जो रूप लताओं और वृक्षोंका एकमात्र जीवनदाता तथा अमृतमय है, जिसे देवता और पितर पान करते हैं, आपके उस सोम-रूपको नमस्कार है। आपका यह विश्वमय स्वरूप ताप एवं तृप्ति प्रदान करनेवाले अग्नि और सोमके द्वारा व्याप्त है, आपको नमस्कार है। विभावसो! आपका जो रूप ऋक्, यजु और साममय तेजोंकी एकतासे इस विश्वको तपाता है तथा जो वेदत्रयीस्वरूप है, उसको मेरा नमस्कार है। तथा जो उससे भी उत्कृष्ट रूप है, जिसे 'ॐ' कहकर पुकारा जाता है, जो अस्थूल, अनन्त और निर्मल है, उस सदात्माको नमस्कार है।

इस प्रकार देवी अदिति नियमपूर्वक रहकर दिन-रात सूर्यदेवकी स्तुति करने लगीं। उनकी आराधनाकी इच्छासे वे प्रतिदिन निराहार ही रहती थीं। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर भगवान् सूर्यने दक्षकन्या अदितिको आकाशमें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अदितिने देखा, आकाशसे पृथ्वीतक तेजका एक महान् पुञ्ज स्थित है। उद्दीप्त ज्वालाओंके कारण उसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। उन्हें देखकर देवी अदितिको बड़ा भय हुआ। वे बोलीं—गोपते! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं पहले आकाशमें आपको जिस प्रकार देखती थी, वैसे आज नहीं देख पाती। इस समय यहाँ भूतलपर मुझे केवल तेजका समुदाय दिखायी दे रहा है। दिवाकर! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे आपके रूपका दर्शन कर सकूँ। भक्तवत्सल प्रभो! मैं आपकी भक्त हूँ, आप मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आप ही ब्रह्मा होकर इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, आप ही पालन करनेके लिये उद्यत होकर इसकी रक्षा करते हैं तथा अन्तमें यह सब कुछ आपमें ही लीन होता है। सम्पूर्ण लोकमें आपके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, पर्वत और समुद्र हैं। आपका तेज सबका आत्मा है। आपकी क्या स्तुति की जाय। यज्ञेश्वर! प्रतिदिन अपने कर्ममें लगे हुए ब्राह्मण भाँति-भाँतिके पदोंसे आपकी स्तुति करते हुए यजन करते हैं। जिन्होंने अपने चित्तको वशमें कर लिया है, वे योगनिष्ठ पुरुष योगमार्गसे आपका ही ध्यान करते हुए परमपदको प्राप्त होते हैं। आप विश्वको ताप देते, उसे पकाते, उसकी रक्षा करते और उसे भस्म कर डालते हैं; फिर आप ही जलगर्भित शीतल किरणोंद्वारा इस विश्वको प्रकट करते और आनन्द देते हैं। कमलयोनि ब्रह्माके रूपमें आप ही सृष्टि करते हैं। अच्युत (विष्णु) नामसे आप ही पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्र-रूप धारण करके आप ही सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् सूर्य अपने उस तेजसे प्रकट हुए। उस समय वे तपाये हुए ताँबेके समान कान्तिमान् दिखायी देते थे। देवी अदिति उनका दर्शन करके चरणोंमें गिर पड़ीं। तब भगवान् सूर्यने कहा—'देवि! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मुझसे माँग लो।' तब देवी अदिति घुटनेके बलसे पृथ्वीपर बैठ गयीं और मस्तक नवाकर प्रणाम करके वरदायक भगवान् सूर्यसे बोलीं—'देव! आप प्रसन्न हों। अधिक बलवान् दैत्यों और दानवोंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिभुवनका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये हैं। गोपते! उन्हें प्राप्त करानेके निमित्त आप मुझपर कृपा करें। आप अपने अंशसे देवताओंके बन्धु होकर उनके शत्रुओंका नाश करें। प्रभो! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्र पुनः यज्ञभागके भोक्ता तथा त्रिभुवनके स्वामी हो जायँ।'

तब भगवान् सूर्यने अदितिसे प्रसन्न होकर कहा—'देवि! मैं अपने सहस्र अंशोंसहित तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर तुम्हारे पुत्रके शत्रुओंका नाश करूँगा।' इतना कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो

गये और अदिति भी सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं। तदनन्तर सूर्यकी सुषुम्णा नामवाली किरण, जो सहस्र किरणोंका समुदाय थी, देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई। देवमाता अदिति एकाग्रचित्त हो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन करने लगीं और अत्यन्त पवित्रतापूर्वक उस गर्भको धारण किये रहीं, यह देख महर्षि कश्यपने कुछ कुपित होकर कहा—'तुम नित्य उपवास करके अपने गर्भके बच्चेको क्यों मारे डालती हो?' यह सुनकर उसने कहा—'देखिये,

यह रहा गर्भका बच्चा; मैंने इसे मारा नहीं है, यह स्वयं ही अपने शत्रुओंको मारनेवाला होगा।'

यों कहकर देवी अदितिने उस गर्भको उदरसे बाहर कर दिया। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी उस गर्भको देखकर कश्यपने प्रणाम किया और आदि ऋचाओंके द्वारा आदरपूर्वक उसकी स्तुति की। उनके स्तुति करनेपर शिशुरूपधारी सूर्य उस अण्डाकार गर्भसे प्रकट हो गये। उनके शरीरकी कान्ति कमलपत्रके समान श्याम थी। वे अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंका मुख उज्ज्वल कर रहे थे। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ कश्यपको सम्बोधित करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें आकाशवाणी हुई—"मुने! तुमने अदितिसे कहा था कि इस अण्डेको क्यों मार रही है—उस समय तुमने '**मारितम् अण्डम्**' का उच्चारण किया था, इसलिये तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड'के नामसे विख्यात होगा और शक्तिशाली होकर सूर्यके अधिकारका पालन करेगा; इतना ही नहीं, यह यज्ञभागका अपहरण करनेवाले देवशत्रु असुरोंका संहार भी करेगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ और दानव बलहीन हो गये; तब इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा। दानव भी उनका सामना करनेके लिये आ पहुँचे। फिर तो देवताओंका असुरोंके साथ घोर संग्राम हुआ। उनके अस्त्र-शस्त्रोंकी चमकसे तीनों लोकोंमें प्रकाश छा गया। उस युद्धमें भगवान् सूर्यकी क्रूर दृष्टि पड़ने तथा उनके तेजसे दग्ध होनेके कारण सब असुर जलकर भस्म हो गये। अब तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। उन्होंने तेजके उत्पत्तिस्थान भगवान् सूर्य और अदितिका स्तवन किया। उन्हें पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञके भाग प्राप्त हो गये। भगवान् सूर्य भी अपने अधिकारका पालन करने लगे। वे नीचे और ऊपर फैली हुई किरणोंके कारण कदम्बपुष्पके समान सुशोभित हो रहे थे। उनका मण्डल गोलाकार अग्निपिण्डके समान है।

तदनन्तर भगवान् सूर्यको प्रसन्न करके प्रजापति विश्वकर्माने विनयपूर्वक अपनी संज्ञा नामकी कन्या उनको ब्याह दी। विवस्वान्से संज्ञाके गर्भसे वैवस्वत मनुका जन्म हुआ। वैवस्वत मनुकी विशेष कथा पहले ही बतलायी जा चुकी है।

सूर्यकी महिमाके प्रसङ्गमें राजा राज्यवर्धनकी कथा

क्रौष्टुकि बोले—भगवन्! आपने आदिदेव भगवान् सूर्यके माहात्म्य और स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब मैं उनकी महिमाका वर्णन सुनना चाहता हूँ। आप प्रसन्न होकर बतानेकी कृपा करें।

मार्कण्डेयजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम्हें आदिदेव सूर्यका माहात्म्य बताता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें दमके पुत्र राज्यवर्धन बड़े विख्यात राजा हो गये हैं। वे अपने राज्यका धर्मपूर्वक पालन करते थे, इसीलिये वहाँके धन-जनकी दिनोंदिन वृद्धि होने लगी। उस राजाके शासनकालमें समस्त राष्ट्र तथा नगरों और गाँवोंके लोग अत्यन्त स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते थे। वहाँ कभी कोई उत्पात नहीं होता था, रोग भी नहीं सताता था। साँपोंके काटनेका तथा अनावृष्टिका भय भी नहीं था। राजाने बड़े-बड़े यज्ञ किये। याचकोंको दान दिये और धर्मके अनुकूल रहकर विषयोंका उपभोग किया। इस प्रकार राज्य करते तथा प्रजाका भलीभाँति पालन करते हुए उस राजाके सात हजार वर्ष ऐसे बीत गये, मानो एक ही दिन व्यतीत हुआ हो। दक्षिण देशके राजा विदूरथकी पुत्री मानिनी राज्यवर्धनकी पत्नी थी। एक दिन वह सुन्दरी राजाके मस्तकमें तेल लगा रही थी। उस समय वह राजपरिवारके देखते-देखते आँसू बहाने लगी। रानीके आँसुओंकी बूँदें जब राजाके शरीरपर पड़ीं तो उसे मुखपर आँसू बहाती देख उन्होंने मानिनीसे पूछा—'देवि! यह क्या?' स्वामीके इस प्रकार पूछनेपर उस मनस्विनीने कहा—'कुछ नहीं।' जब राजाने बार-बार पूछा, तब उस सुन्दरीने राजाको केशराशिमें एक पका बाल दिखाया और कहा—'राजन्! यह देखिये। क्या यह मुझ अभागिनीके लिये खेदका विषय नहीं है?' यह सुनकर राजा हँसने लगे। उन्होंने वहाँ एकत्रित हुए समस्त राजाओंके सामने अपनी पत्नीसे हँसकर कहा—'शुभे! शोककी क्या बात है? तुम्हें रोना नहीं चाहिये। जन्म, वृद्धि और परिणाम आदि विकार सभी जीवधारियोंके होते हैं। मैंने तो समस्त वेदोंका अध्ययन किया, हजारों यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दान दिया और मेरे कई पुत्र भी हुए। अन्य मनुष्योंके लिये जो अत्यन्त दुर्लभ हैं, ऐसे उत्तम भोग भी मैंने तुम्हारे साथ भोग लिये। पृथ्वीका भलीभाँति पालन किया और युद्धमें भलीभाँति अपने धर्मको निभाया। भद्रे! और कौन-सा ऐसा शुभ कर्म है, जो मैंने नहीं किया। फिर इन पके बालोंसे तुम क्यों डरती हो। शुभे! मेरे बाल पक जायँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जायँ तथा यह देह भी शिथिल हो जाय, कोई चिन्ता नहीं है। मैं अपने कर्तव्यका पालन कर चुका हूँ। कल्याणी! तुमने मेरे मस्तकपर जो पका बाल दिखाया है, अब वनवास लेकर उसकी भी दवा करता हूँ। पहले बाल्यावस्था और कुमारावस्थामें तत्कालोचित कार्य किया जाता है, फिर युवावस्थामें यौवनोचित कार्य होते हैं तथा बुढ़ापेमें वनका आश्रय लेना उचित है। मेरे पूर्वजों तथा उनके भी पूर्वजोंने ऐसा ही किया है, अतः मैं तुम्हारे आँसू बहानेका कोई कारण नहीं देखता। पके बालका दिखायी देना तो मेरे लिये महान् अभ्युदयका कारण है।'

महाराजकी यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित हुए अन्य राजा, पुरवासी तथा पार्श्ववर्ती मनुष्य उनसे शान्तिपूर्वक बोले—'राजन्! आपकी इन महारानीको रोनेकी आवश्यकता नहीं है। रोना तो हमलोगोंको अथवा समस्त प्राणियोंको चाहिये,

क्योंकि आप हमें छोड़कर वनवास लेनेकी बात मुँहसे निकाल रहे हैं। महाराज! आपने हमारा लालन-पालन किया है। आपके चले जानेकी बात सुनकर हमारे प्राण निकले जाते हैं। आपने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया है। अब आप वनमें रहकर जो तपस्या करेंगे, वह इस पृथ्वी-पालनजनित पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती।'

राजाने कहा—'मैंने सात हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका पालन किया, अब मेरे लिये यह वनवासका समय आ गया। मेरे कई पुत्र हो गये। मेरी सन्तानोंको देखकर थोड़े ही दिनोंमें यमराज मेरा यहाँ रहना नहीं सह सकेगा। नागरिको! मेरे मस्तकपर जो यह सफेद बाल दिखायी देता है, इसे अत्यन्त भयानक कर्म करनेवाली मृत्युका दूत समझो; अतः मैं राज्यपर अपने पुत्रका अभिषेक करके सब भोगोंको त्याग दूँगा और वनमें रहकर तपस्या करूँगा। जबतक यमराजके सैनिक नहीं आते, तभीतक यह सब कुछ मुझे कर लेना है।'

तदनन्तर वनमें जानेकी इच्छासे महाराजने ज्योतिषियोंको बुलाया और पुत्रके राज्याभिषेकके लिये शुभ दिन एवं लग्न पूछे। राजाकी बात सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी व्याकुल हो गये। उन्हें दिन, लग्न और होरा आदिका ठीक ज्ञान न हो सका। तदनन्तर अन्य नगरों, अधीनस्थ राज्यों तथा उस नगरसे भी बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण आये और वनमें जानेके लिये उत्सुक राजा राज्यवर्धनसे मिले। उस समय उनका माथा काँप उठा। वे बोले—'राजन्! हमपर प्रसन्न होइये और पहलेकी भाँति अब भी हमारा पालन कीजिये। आपके वन चले जानेपर समस्त जगत् सङ्कटमें पड़ जायगा; अतः आप ऐसा यत्न करें, जिससे जगत्‌को कष्ट न हो।'

इसके बाद मन्त्रियों, सेवकों, वृद्ध नागरिकों और ब्राह्मणोंने मिलकर सलाह की, 'अब यहाँ क्या करना चाहिये?' राजा राज्यवर्धन अत्यन्त धार्मिक थे। उनके प्रति सब लोगोंका अनुराग था; इसलिये सलाह करनेवाले लोगोंमें यह निश्चय हुआ कि 'हम सब लोग एकाग्रचित्त एवं भलीभाँति ध्यानपरायण होकर तपस्याद्वारा भगवान् सूर्यकी आराधना करके इन महाराजके लिये आयुकी प्रार्थना करें।' इस प्रकार एक निश्चय करके कुछ लोग अपने घरोंपर विधिपूर्वक अर्घ्य, उपचार आदि उपहारोंसे भगवान् भास्करकी पूजा करने लगे। दूसरे लोग मौन रहकर ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके जपसे सूर्यदेवको सन्तुष्ट करने लगे। अन्य लोग निराहार रहकर नदीके तटपर निवास करते हुए तपस्याके द्वारा भगवान् सूर्यकी आराधनामें लग गये। कुछ लोग अग्निहोत्र करते, कुछ दिन-रात सूर्यसूक्तका पाठ करते और कुछ लोग सूर्यकी ओर दृष्टि लगाकर खड़े रहते थे।

सूर्यकी आराधनाके लिये इस प्रकार यत्न करनेवाले उन लोगोंके समीप आकर सुदामा नामक गन्धर्वने कहा—'द्विजवरो! यदि आपलोगोंको सूर्यदेवकी आराधना अभीष्ट है तो ऐसा कीजिये, जिससे भगवान् भास्कर प्रसन्न हो सकें। आपलोग यहाँसे शीघ्र ही कामरूप पर्वतपर जाइये। वहाँ गुरुविशाल नामक वन है, जिसमें सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँपर एकाग्रचित्त होकर आपलोग सूर्यकी आराधना करें। वह परम हितकारी सिद्ध क्षेत्र है। वहाँ आपलोगोंकी सब कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

सुदामाकी यह बात सुनकर वे समस्त द्विज गुरुविशाल वनमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका पवित्र एवं सुन्दर मन्दिर देखा। उस स्थानपर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंके लोग मिताहारी एवं

एकाग्रचित्त हो पुष्प, चन्दन, धूप, गन्ध, जप, होम, अन्न और दीप आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा एवं स्तुति करने लगे।

ब्राह्मण बोले—देवता, दानव, यक्ष, ग्रह और नक्षत्रोंमें भी जो सबसे अधिक तेजस्वी हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। जो देवेश्वर भगवान् सूर्य आकाशमें स्थित होकर चारों ओर प्रकाश फैलाते तथा अपनी किरणोंसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त किये रहते हैं, उनकी हम शरण लेते हैं। आदित्य, भास्कर, भानु, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु तथा दीप्त-दीधिति—ये जिनके नाम हैं, जो चारों युगोंका अन्त करनेवाले कालाग्नि हैं, जिनकी ओर देखना कठिन है, जिनकी प्रलयके अन्तमें भी गति है, जो योगीश्वर, अनन्त, रक्त, पीत, सित और असित हैं, ऋषियोंके अग्निहोत्रों तथा यज्ञके देवताओंमें जिनकी स्थिति है, जो अक्षर, परम गुह्य तथा मोक्षके उत्तम द्वार हैं, जिनके उदयास्तमनरूप रथमें छन्दोमय अश्व जुते हुए हैं तथा जो उस रथपर बैठकर मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा करते हुए आकाशमें विचरण करते हैं, अनृत और ऋत दोनों ही जिनके स्वरूप हैं, जो भिन्न-भिन्न पुण्य तीर्थोंके रूपमें विराजमान हैं, एकमात्र जिनपर इस विश्वकी रक्षा निर्भर है, जो कभी चिन्तनमें नहीं आ सकते, उन भगवान् भास्करकी हम शरण लेते हैं। जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह, नक्षत्र और चन्द्रमा आदि हैं, वनस्पति, वृक्ष और ओषधियाँ जिनके स्वरूप हैं, जो व्यक्त और अव्यक्त प्राणियोंमें स्थित हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं। ब्रह्मा, शिव तथा विष्णुके जो रूप हैं, वे आपके ही हैं। जिनके तीन स्वरूप हैं, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों। जिन अजन्मा जगदीश्वरके अङ्गमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथा जो जगत्‌के जीवन हैं, वे भगवान् सूर्य हमपर प्रसन्न हों। जिनका एक परम प्रकाशमान रूप ऐसा है, जिसकी ओर प्रभा-पुञ्जकी अधिकताके कारण देखना कठिन हो जाता है तथा जिनका दूसरा रूप चन्द्रमा है, जो अत्यन्त सौम्य है, वे भगवान् भास्कर हमपर प्रसन्न हों।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तवन और पूजन करनेवाले उन द्विजोंपर तीन महीनेमें भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए और अपने मण्डलसे निकलकर उसीके समान कान्ति धारण किये वे नीचे उतरे और दुर्दर्श होते हुए भी उन सबके समक्ष प्रकट हो गये। तब उन लोगोंने अजन्मा सूर्यदेवके स्पष्ट रूपका दर्शन करके उन्हें भक्तिसे विनीत होकर प्रणाम किया। उस समय उनके शरीरमें रोमाञ्च और कम्प हो रहा था। वे बोले—'सहस्र किरणोंवाले सूर्यदेव! आपको बारंबार नमस्कार है। आप सबके हेतु तथा सम्पूर्ण जगत्‌के विजयकेतु हैं; आप ही सबके रक्षक, सबके पूज्य, सम्पूर्ण यज्ञोंके आधार तथा योगवेत्ताओंके ध्येय हैं; आप हमपर प्रसन्न हों।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तब भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर सब लोगोंसे कहा—'द्विजगण! आपको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह मुझसे माँगें।' यह सुनकर ब्राह्मण आदि वर्णोंके लोगोंने उन्हें प्रणाम करके कहा—'अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यदेव! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो हमारे राजा राज्यवर्द्धन नीरोग, शत्रुविजयी, सुन्दर केशोंसे युक्त तथा स्थिर यौवनवाले होकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहें।'

'तथास्तु' कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये। वे सब लोग भी मनोवाञ्छित वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक महाराजके पास लौट आये। वहाँ उन्होंने सूर्यसे वर पाने आदिकी सब बातें यथावत् कह सुनायीं। यह सुनकर रानी मानिनीको बड़ा हर्ष हुआ, परन्तु राजा बहुत देरतक चिन्तामें पड़े रहे। वे उन लोगोंसे कुछ न बोले। मानिनीका हृदय हर्षसे भरा हुआ था। वह बोली—'महाराज! बड़े भाग्यसे आयुकी वृद्धि हुई है। आपका अभ्युदय हो। राजन्! इतने बड़े अभ्युदयके समय आपको प्रसन्नता क्यों नहीं होती? दस हजार वर्षोंतक आप नीरोग रहेंगे, आपकी जवानी स्थिर रहेगी; फिर भी आपको खुशी क्यों नहीं होती?'

राजा बोले—कल्याणी! मेरा अभ्युदय कैसे हुआ। तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो? जब हजार-हजार दुःख प्राप्त हो रहे हैं, उस समय किसीको बधाई देना क्या उचित माना जाता है? मैं अकेला ही तो दस हजार वर्षोंतक जीवित रहूँगा। मेरे साथ तुम तो नहीं रहोगी। क्या तुम्हारे मरनेपर मुझे दुःख नहीं होगा? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, इष्ट बन्धु-बान्धव, भक्त, सेवक तथा मित्रवर्ग—वे सब मेरी आँखोंके सामने मरेंगे। उस समय मुझे अपार दुःखका सामना करना पड़ेगा। जिन लोगोंने अत्यन्त दुर्बल होकर शरीरकी नाड़ियाँ सुखा-सुखाकर मेरे लिये तपस्या की, वे सब तो मरेंगे और मैं भोग भोगते हुए जीवित रहूँगा। ऐसी दशामें क्या मैं धिक्कार देनेयोग्य नहीं हूँ? सुन्दरी! इस प्रकार मुझपर यह आपत्ति आ गयी। मेरा अभ्युदय नहीं हुआ है। क्या तुम इस बातको नहीं समझती? फिर क्यों मेरा अभिनन्दन कर रही हो।

मानिनी बोली—महाराज! आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है। मैंने तथा पुरवासियोंने आपके प्रेमवश इस दोषकी ओर नहीं देखा है। नरनाथ! ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये, यह आप ही सोचें, क्योंकि भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर जो कुछ कहा है, वह अन्यथा नहीं हो सकता।

राजाने कहा—देवि! पुरवासियों और सेवकोंने प्रेमवश मेरे साथ जो उपकार किया है, उसका बदला चुकाये बिना मैं किस प्रकार भोग भोगूँगा। यदि भगवान् सूर्यकी ऐसी कृपा हो कि समस्त प्रजा, भृत्यवर्ग, तुम, अपने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और मित्र भी जीवित रह सकें तो मैं राज्यसिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक भोगोंका उपभोग कर सकूँगा। यदि वे ऐसी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उसी कामरूप पर्वतपर निराहार रहकर तबतक तपस्या करूँगा, जबतक कि इस जीवनका अन्त न हो जाय।

राजाके यों कहनेपर रानी मानिनीने कहा—'ऐसा ही हो।' फिर वह भी महाराजके साथ कामरूप पर्वतपर चली गयी। वहाँ पहुँचकर राजाने पत्नीके साथ सूर्यमन्दिरमें जाकर सेवापरायण हो भगवान् भानुकी आराधना आरम्भ की। दोनों दम्पति उपवास करते-करते दुर्बल हो गये। सर्दी, गर्मी और वायुका कष्ट सहन करते हुए दोनोंने घोर तपस्या की। सूर्यकी पूजा और भारी तपस्या करते करते जब एक वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो गया, तब भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाको समस्त सेवकों, पुरवासियों और पुत्रों आदिके लिये इच्छानुसार वरदान दिया। वर पाकर राजा अपने नगरको लौट आये और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ राज्य करने लगे। धर्मज्ञ राजाने बहुत-से यज्ञ किये और दिन-रात खुले हाथ दान किया। वे अपने पुत्र, पौत्र और भृत्य आदिके साथ यौवनको स्थिर रखते हुए दस हजार वर्षोंतक जीवित रहे। उनका यह चरित्र देखकर भृगुवंशी प्रमतिने विस्मित होकर यह गाथा गायी—'अहो! भगवान् सूर्यके भजनकी कैसी शक्ति है, जिससे राजा राज्यवर्द्धन अपने तथा स्वजनोंके लिये आयुवर्द्धन बन गये।'

जो मनुष्य ब्राह्मणोंके मुखसे भगवान् सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यका श्रवण तथा पाठ करता है, वह सात रातके किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रसङ्गमें सूर्यदेवके जो मन्त्र आये हैं, उनमेंसे एक-एकका भी यदि तीनों सन्ध्याओंके समय जप किया जाय तो वह समस्त पातकोंका नाश करनेवाला होता है। सूर्यके जिस मन्दिरमें इस समूचे माहात्म्यका पाठ किया जाता है, वहाँ भगवान् सूर्य अपना सान्निध्य नहीं छोड़ते। अतः ब्रह्मन्! यदि तुम्हें महान् पुण्यकी प्राप्ति अभीष्ट हो तो सूर्यके इस उत्तम माहात्म्यको मन-ही-मन धारण एवं जप करते रहो। द्विजश्रेष्ठ! जो सोनेके सींग और अत्यन्त सुन्दर शरीरवाली दुधारू गाय दान करता है तथा जो अपने मनको संयममें रखकर तीन दिनोंतक इस माहात्म्यका श्रवण करता है, उन दोनोंको समान ही पुण्यफलकी प्राप्ति होती है।

दिष्टपुत्र नाभागका चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इक्ष्वाकु, नाभग, रिष्ट, नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट—ये वैवस्वत मनुके पुत्र थे, जो पृथक्-पृथक् राज्यके पालक हुए। इन सबकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई थी और वे सभी शास्त्रविद्या तथा शस्त्रविद्यामें भी पारङ्गत थे। विद्वानोंमें श्रेष्ठ मनुने एक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छासे मित्रावरुण नामक यज्ञ किया। उसमें होताके दोषसे विपरीत आहुति पड़नेके कारण पुत्र न होकर इला नामकी सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। कन्या उत्पन्न हुई देख मनुने मित्र और वरुणका स्तवन किया तथा इस प्रकार कहा—'देववरो! मैंने इस उद्देश्यसे यज्ञ किया था कि आप दोनोंकी कृपासे मुझे एक विशिष्ट पुत्रकी प्राप्ति हो; किन्तु यज्ञ सम्पन्न होनेपर कन्याका जन्म हुआ। यदि आप दोनों प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो मेरी यह कन्या ही आप दोनोंके प्रसादसे अत्यन्त गुणवान् पुत्र हो जाय।' उन दोनों देवताओंने 'तथास्तु' कहा। जिससे वही कन्या इला तत्काल ही सुद्युम्न नामक पुत्रके रूपमें परिवर्तित हो गयी। मनुकुमार सुद्युम्न एक दिन वनमें शिकार खेल रहे थे। वहाँ महादेवजीके कोपसे उन्हें पुनः स्त्रीरूपमें हो जाना पड़ा। उस समय चन्द्रमाके पुत्र बुधने इलाके गर्भसे पुरूरवा नामक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया। पुत्र हो जानेके बाद राजा सुद्युम्नने अश्वमेध नामक महान् यज्ञ करके पुनः पुरुष-रूप प्राप्त कर लिया। सुद्युम्नके तीन पुत्र हुए, जो उत्कल, विनय और गयके नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने धर्ममें मन लगाकर इस पृथ्वीका पालन किया। राजा सुद्युम्न जब स्त्रीके रूपमें थे, तब उनके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ। पुरूरवा बुधके पुत्र थे, इसलिये उन्हें सुद्युम्नके राज्यका भाग नहीं मिला। तदनन्तर वसिष्ठजीके कहनेसे पुरूरवाको प्रतिष्ठान नामक उत्तम नगर दे दिया गया।

दिष्ट नामके एक राजा थे, जिनके पुत्रका नाम नाभाग[1] था। यौवनके आरम्भमें ही उसकी दृष्टि एक वैश्य-कन्यापर पड़ी, जो बहुत ही सुन्दरी थी। उसको देखते ही नाभागका मन कामके अधीन हो गया। उसने उसके पिताके पास जाकर वह कन्या माँगी। वैश्यने देखा, राजकुमारका मन अपने वशमें नहीं है, वे कामके अधीन हो चुके हैं। तब उसने हाथ जोड़कर उनसे कहा—'राजकुमार! आपलोग राजा हैं और हमलोग कर देनेवाले भृत्य। मैं आपके बराबर नहीं हूँ, फिर हमारे साथ आप वैवाहिक सम्बन्ध कैसे करना चाहते हैं।

राजकुमारने कहा—काम और मोह आदिने मानव-शरीरकी समानता सिद्ध कर दी है। मुझे तुम्हारी कन्या पसंद है, अतः उसे मुझे दे दो; अन्यथा मेरा यह शरीर जीवित नहीं रह सकता।

वैश्य बोला—हम और आप दोनों ही राजाके अधीन हैं। पहले आप अपने पिताजीसे आज्ञा ले लीजिये; फिर मैं कन्या दूँगा और आप ग्रहण कर लीजियेगा।

राजकुमारने कहा—गुरुजनोंके अधीन रहनेवाले पुत्रोंको उचित है कि वे अन्य सभी कार्योंमें गुरुजनोंसे पूछें, किन्तु ऐसे कार्योंमें पूछना ठीक नहीं। ऐसी बातें तो उनके सामने मुखसे निकालना भी कठिन है। कहाँ कामचर्चा और कहाँ गुरुजनोंको सुनाना; ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। हाँ, अन्य

---

१. ये 'नाभाग' मनु-पुत्र नाभागसे भिन्न हैं।

कार्योंके लिये उनसे पूछनेमें कोई हर्ज नहीं।

वैश्य बोला—ठीक है, आप अपने पिताजीसे पूछें तो आपके लिये यह कामचर्चा हो सकती है; किन्तु मेरे लिये यह कामचर्चा नहीं है, अतः मैं ही पूछूँगा।

वैश्यके यों कहनेपर राजकुमार चुप हो गये। तब उसने राजकुमारका जो विचार था, वह सब उसके पितासे कह सुनाया। तब राजकुमारके पिताने ऋचीक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा राजकुमारको भी महलमें बुलाकर मुनियोंसे सब वृत्तान्त निवेदन किया और कहा—'इस विषयमें जो कर्तव्य हो, उसके लिये आपलोग आज्ञा दें।'

ऋषि बोले—राजकुमार! पहले तुम्हारा विवाह किसी मूर्द्धाभिषिक्त राजाकी कन्यासे होना चाहिये। उसके बाद यह वैश्य-कन्या भी तुम्हारी स्त्री हो सकती है। ऐसा करनेसे दोष न होगा। अन्यथा पहले ही वैश्य-कन्याका अपहरण करनेपर तुम्हारी उत्कृष्ट जाति चली जायगी।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—यह सुनकर नाभागने उन महात्माओंके वचनकी अवहेलना कर दी और घरसे निकलकर तलवार हाथमें ले वह बोला—'मैंने राक्षस-विवाहके अनुसार इस वैश्य-कन्याका अपहरण किया है। जिसकी सामर्थ्य हो, वह इसे मेरे हाथसे छुड़ा ले।' वैश्यने उस कन्याको राजकुमारके चंगुलमें पड़ी देख 'त्राहि, त्राहि' कहते हुए उसके पिताकी शरण ली। तब राजकुमारके पिताने कुपित होकर बहुत बड़ी सेनाको आज्ञा दी, 'दुष्ट नाभाग धर्मको कलङ्कित कर रहा है, अतः उसे मार डालो, मार डालो।' राजाकी आज्ञा पाकर सेनाने राजकुमारके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। नाभाग अस्त्रोंका ज्ञाता था, उसने अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे अधिकांश सैनिकोंको मार गिराया। राजकुमारके द्वारा सेनाके मारे जानेका समाचार सुनकर राजा अपने सैनिकोंको साथ ले स्वयं ही युद्धके लिये गये। फिर तो उनका अपने पुत्रके साथ संग्राम छिड़ गया। उसमें अस्त्र-शस्त्रोंके प्रयोगमें राजकुमारकी अपेक्षा उसके पिता ही बढ़े चढ़े सिद्ध हुए। इसी समय सहसा आकाशसे परिव्राट् मुनि उतर पड़े और राजासे बोले—'महाभाग! अपने पुत्रके साथ युद्ध बंद कीजिये, वह अपने धर्मसे भ्रष्ट हो चुका है। पुरुष अपने वर्णकी कन्याके साथ विवाह न करके जिस जिस हीन जातिकी कन्याका पाणिग्रहण करता है, उसी-उसीके वर्णका वह भी हो जाता है। अतः आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र अब वैश्य हो गया है, इसका क्षत्रियके साथ युद्ध करनेका अधिकार नहीं है। इसलिये अब आप युद्धसे निवृत्त हो जाइये।' तब राजा अपने पुत्रके साथ युद्ध करनेसे रुक गये। उसने भी उस वैश्य-कन्याके साथ विवाह कर लिया। वैश्यत्वको प्राप्त होनेपर उसने राजाके पास जाकर पूछा—'भूपाल! अब मेरा जो कर्तव्य हो, उसके लिये आज्ञा दीजिये।'

राजाने कहा—बाभ्रव्य आदि तपस्वी धार्मिक न्यायके लिये नियुक्त हैं, वे तुम्हारे लिये जो कर्म धर्मानुकूल बतावें, उसीका अनुष्ठान करो।

तब राजसभामें रहनेवाले बाभ्रव्य आदि मुनियोंने नाभागके लिये पशुपालन, कृषि तथा वाणिज्य—ये ही उत्तम धर्म बतलाये। राजाकी आज्ञाके अनुसार उसने भी वैसा ही किया। नाभागके उस वैश्य-कन्यासे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम भनन्दन था।

वत्सप्रीके द्वारा कुजृम्भका वध तथा उसका मुदावतीके साथ विवाह

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस पृथ्वीपर विदूरथ नामके एक राजा हो चुके हैं। उनकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई थी। उनके दो पुत्र थे—सुनीति और सुमति। एक दिन राजा विदूरथ शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ उन्हें एक विशाल

गड्ढा दिखायी दिया, जो पृथ्वीका मुख-सा प्रतीत होता था। उसे देखकर राजाने सोचा, यह भयंकर गर्त क्या है? मालूम होता है पातालतक जानेवाली गुफा है, पृथ्वीका साधारण गर्त नहीं; देखनेमें भी पुराना नहीं जान पड़ता। उस निर्जन वनमें इस प्रकार सोचते-विचारते हुए राजाने वहाँ सुव्रत नामके तपस्वी ब्राह्मणको आते देखा और निकट आनेपर उनसे पूछा—'यह क्या है? यह गर्त बहुत ही गहरा है, इसमें पृथ्वीका भीतरी भाग दिखायी दे रहा है।'

ऋषिने कहा—राजन्! क्या आप इसे नहीं जानते? इस पृथ्वीपर जो कुछ भी है, वह सब राजाको जानना चाहिये। रसातलमें एक महापराक्रमी भयंकर दानव निवास करता है; वह पृथ्वीको जृम्भित (छिद्रयुक्त) कर देता है, इसलिये उसे कुजृम्भ कहते हैं। नरेश्वर! वह पृथ्वीपर अथवा स्वर्गमें जो कुछ करता है, उसकी जानकारी आप क्यों नहीं रखते। पूर्वकालमें विश्वकर्माने जिसका निर्माण किया था, वह सुनन्द नामका मूसल उस दुरात्माने हड़प लिया। उसीसे युद्धमें वह शत्रुओंका संहार करता है। पातालके अंदर रहकर उस मूसलसे ही वह इस पृथ्वीको विदीर्ण कर देता है और इस प्रकार समस्त असुरोंके आने जानेके लिये द्वार बना लेता है। जब आप पातालके भीतर रहनेवाले इस शत्रुका नाश करेंगे, तभी वास्तवमें सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी हो सकेंगे। राजन्! उस मूसलके बलाबलके विषयमें विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं कि यदि कोई स्त्री वह मूसल छू दे तो वह उस दिन निर्बल हो जाता है, किन्तु दूसरे दिन फिर पूर्ववत् प्रबल हो जाता है। युवतीकी अँगुलियोंके स्पर्शसे उसकी शक्तिके नष्ट हो जानेका जो दोष या प्रभाव है, उसे वह दुराचारी दैत्य भी नहीं जानता। भूपाल! आपके नगरके समीप ही उसने यह पृथ्वीमें छेद किया है, फिर भी आप निश्चिन्त क्यों हैं।

इतना कहकर ब्रह्मर्षि सुव्रत चले गये। राजाने भी अपने नगरमें जाकर मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंसे परामर्श किया और कुजृम्भके विषयमें जो कुछ सुना था, वह सब कह सुनाया। उन्होंने मूसलका वह प्रभाव भी, कि स्त्रीके स्पर्शसे उसकी शक्तिका ह्रास हो जाता था, मन्त्रियोंको बताया। जिस समय राजा मन्त्रियोंके साथ परामर्श कर रहे थे, उस समय उनकी कन्या मुदावती भी पास ही बैठी सब कुछ सुन रही थी। तदनन्तर कुछ

दिनोंके बाद कुजृम्भने सखियोंसे घिरी हुई उस राजकन्याको उपवनसे हर लिया। यह बात सुनकर राजाके नेत्र क्रोधसे चञ्चल हो उठे और उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंसे, जो वनके मार्ग भलीभाँति जानते थे, कहा—'तुमलोग शीघ्र जाओ। उस दानवने निर्विन्ध्याके तटपर गढ़ा बना रखा है, उसीके मार्गसे रसातलमें जाकर मुदावतीका अपहरण करनेवाले उस दुष्टको मार डालो।'

तब अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए दोनों राजकुमार उस गर्तके मार्गसे सेनासहित रसातलमें जा पहुँचे और कुजृम्भसे युद्ध करने लगे। उनमें परिघ, खड्ग, शक्ति, शूल, फरसे तथा बाणोंकी मारसे निरन्तर अत्यन्त भयानक संग्राम होता रहा। फिर मायाके बली दैत्यने युद्धमें उन दोनों राजकुमारोंको बाँध लिया और उनके समस्त सैनिकोंका संहार कर डाला। यह समाचार पाकर राजाको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपने सभी योद्धाओंसे कहा—'जो इस दैत्यका वध करके मेरे दोनों पुत्रोंको छुड़ा लायेगा, उसको मैं अपनी कन्या ब्याह दूँगा।' भनन्दनके पुत्र वत्सप्रीने भी यह घोषणा सुनी। वह बलवान्, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञाता तथा शूरवीर था। उसने अपने पिताके प्रिय मित्र राजा विदूरथके पास आकर उन्हें प्रणाम किया और विनीत भावसे कहा—'महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं आपके ही तेजसे उस दैत्यको मारकर आपके दोनों पुत्रों तथा कन्याको छुड़ा लाऊँगा।' यह सुनकर राजाने अपने प्यारे मित्रके उस पुत्रको प्रसन्नतापूर्वक छातीसे लगा लिया और कहा—'वत्स! जाओ, तुम्हें अपने कार्यमें सफलता प्राप्त हो।'

तदनन्तर वीर वत्सप्री खड्ग और धनुष ले, अँगुलियोंमें गोधाके चर्मसे बने हुए दस्ताने पहनकर

पूर्वोक्त गढ़ेके मार्गसे तुरंत पातालमें गया। वहाँ उसने अपने धनुषकी भयंकर टङ्कार सुनायी, जिससे सारा पाताल गूँज उठा। वह टङ्कार सुनकर दानवराज कुजृम्भ अपनी सेना साथ ले बड़े क्रोधके साथ वहाँ आया और राजकुमारके साथ युद्ध करने लगा। दोनोंके पास अपनी-अपनी सेनाएँ थीं, एक बलवान्‌का दूसरे बलवान् वीरके साथ युद्ध हो रहा था। लगातार तीन दिनोंतक घमासान युद्ध होता रहा, तब वह दानव अत्यन्त क्रोधमें भरकर मूसल लानेके लिये दौड़ा। प्रजापति विश्वकर्माका बनाया हुआ वह मूसल सदा अन्तः-पुरमें रहता था और गन्ध, माला तथा धूप आदिसे प्रतिदिन उसकी पूजा होती थी। राजकुमारी मुदावती उस मूसलके प्रभावको जानती थी। अतः उसने अत्यन्त नम्रतासे मस्तक झुकाकर उस श्रेष्ठ मूसलका स्पर्श किया। वह महान् दैत्य जबतक उस मूसलको हाथमें ले, तबतक ही उसने नमस्कारके बहाने अनेक बार उसका स्पर्श कर लिया; फिर उस दैत्यराजने युद्धभूमिमें जाकर

मूसलसे युद्ध आरम्भ किया; किन्तु उसके शत्रुओंपर मूसलके प्रहार व्यर्थ सिद्ध होने लगे। उस दिव्य अस्त्रके निर्बल पड़ जानेपर दैत्यने दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा शत्रुका सामना किया। राजकुमारने उसे रथहीन कर दिया। तब वह ढाल-तलवार लेकर उसकी ओर दौड़ा। उसे क्रोधमें भरकर वेगसे आते देख राजकुमारने कालाग्निके समान प्रज्वलित

आग्नेय-अस्त्रसे उसपर प्रहार किया। उससे दैत्यकी छातीमें गहरी चोट पहुँची और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। उसके मारे जानेपर रसातलनिवासी बड़े-बड़े नागोंने महान् उत्सव मनाया। राजकुमारपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्वराज गाने लगे और देवताओंके बाजे बज उठे। राजकुमार वत्सप्रीने उस दैत्यको मारकर राजा विदूरथके दोनों पुत्रों तथा कुशाङ्गी कन्या मुदावतीको भी बन्धनसे मुक्त किया। कुजृम्भके मारे जानेपर नागोंके अधिपति शेषसंज्ञक भगवान् अनन्तने उस मूसलको ले लिया। मुदावतीने सुनन्द नामक मूसलके गुणको जानकर उसका बारंबार स्पर्श किया था, इसलिये नागराज अनन्तने उसका नाम सुनन्दा रख दिया। तत्पश्चात् राजकुमारने भाइयोंसहित उस कन्याको शीघ्र ही पिताके पास पहुँचाया और प्रणाम करके कहा—'तात! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं आपके दोनों पुत्रों और इस मुदावतीको भी छुड़ा लाया। अब मुझसे और भी जो कार्य लेना हो, उसके लिये आज्ञा कीजिये।'

इसपर महाराज विदूरथके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उच्चस्वरसे बोले—'बेटा! बेटा!! तूने बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया। आज देवताओंने तीन कारणोंसे मेरा सम्मान बढ़ाया है—एक तो तुम जामाताके रूपमें मुझे प्राप्त हुए,

दूसरे मेरा शत्रु मारा गया तथा तीसरे मेरी सन्तानें कुशलपूर्वक लौट आयीं; अतः आज शुभ मुहूर्तमें तुम मेरी इस कन्याका पाणिग्रहण करो।' यों कहकर राजाने उन दोनोंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया। नवयुवक वत्सप्री मुदावतीके साथ

रमणीय प्रदेशों तथा महलोंमें विहार करने लगा। कुछ कालके बाद उसके वृद्ध पिता भनन्दन वनमें चले गये और वत्सप्री राजा हुआ। उसने सदा ही प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करते हुए अनेक यज्ञ किये। वह प्रजाको पुत्रकी भाँति मानकर उसकी रक्षा करता था। उसके राज्यमें वर्णसङ्कर सन्तानकी उत्पत्ति नहीं हुई। कभी किसीको लुटेरों, सर्पों तथा दुष्टोंका भय नहीं हुआ। इसके शासनकालमें किसी प्रकारके उत्पातका भी भय नहीं था।

राजा खनित्रकी कथा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सुनन्दाके गर्भसे वत्सप्रीके बारह पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बली, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप। ये सभी महाभाग संग्रामविजयी थे। इनमें महापराक्रमी प्रांशु ज्येष्ठ थे, अतः वे ही राजा हुए। शेष भाई सेवककी भाँति उनकी आज्ञाके अधीन रहते थे। उनके यज्ञमें इतना धन दान दिया गया कि ब्राह्मणों तथा निम्नवर्गके लोगोंने भी राशि-राशि द्रव्य छोड़ दिया। [अधिक होनेके कारण साथ न ले जा सके।] वह सभी द्रव्य पृथ्वीपर पड़ा रह गया, जिससे इस पृथ्वीका 'वसुन्धरा' (धन धारण करनेवाली) नाम सार्थक हुआ। वे प्रजाका औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करते थे। उनके खजानेमें जो धन एकत्रित होता था, उसके द्वारा उन्होंने जो लाखों यज्ञ सम्पन्न किये, उनकी कोई संख्या नहीं है। प्रांशुके पुत्र प्रजाति थे। प्रजातिके खनित्र आदि पाँच पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े खनित्र राजा हुए। वे अपने पराक्रमके लिये विख्यात थे। खनित्र बड़े ही शान्त, सत्यवादी, शूरवीर, समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले, स्वधर्मपरायण, वृद्ध पुरुषोंके सेवक, अनेक शास्त्रोंके विद्वान्, वक्ता, विनयशील, अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, डींग न हाँकनेवाले और सब लोगोंके प्रिय थे। वे दिन-रात यही कामना किया करते थे—'समस्त प्राणी प्रसन्न रहें। दूसरोंपर भी स्नेह रखें। सब जीवोंका कल्याण हो। सभी निर्भय हों। किसी भी प्राणीको कोई व्याधि एवं मानसिक व्यथा न हो। समस्त प्राणी सबके प्रति मित्रभावके पोषक हों। ब्राह्मणोंका कल्याण हो। सबमें परस्पर प्रेम रहे। सब वर्णोंकी उन्नति हो। समस्त कर्मोंमें सिद्धि प्राप्त हो। लोगो! सब भूतोंके प्रति तुम्हारी बुद्धि कल्याणमयी हो। तुमलोग जिस प्रकार अपना तथा अपने पुत्रोंका सर्वदा हित चाहते हो, उसी प्रकार सब प्राणियोंके प्रति हित-बुद्धि रखते हुए बर्ताव करो। यह तुम्हारे लिये अत्यन्त हितकी बात है। कौन किसका अपराध करता है। यदि कोई मूढ़ किसीका थोड़ा भी अहित करता है तो वह निश्चय ही उसका फल भोगता है; क्योंकि फल सदा कर्ताको ही मिलता है। लोगो! यह विचारकर सबके प्रति पवित्र भाव रखो। इससे इस लोकमें पाप नहीं बनेगा और तुम्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी। बुद्धिमानो! मैं तो यह चाहता हूँ कि आज जो मुझसे स्नेह रखता है, उसका इस पृथ्वीपर सदा ही कल्याण हो तथा जो इस लोकमें मेरे साथ द्वेष रखता है, वह भी कल्याणका ही भागी बने।'*

---

*नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि। स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च॥
मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च। मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने॥

राजा प्रजातिके पुत्र ऐसे थे। वे समस्त गुणोंसे सम्पन्न और सुन्दर थे। उनके नेत्र पद्मपत्रके समान सुशोभित थे। उन्होंने अपने भाइयोंको प्रेमपूर्वक पृथक्-पृथक् राज्योंमें अभिषिक्त कर दिया और स्वयं समुद्रवसना पृथ्वीका उपभोग करने लगे। उन्होंने पूर्व दिशामें अपने भाई शौरिको, दक्षिण दिशामें उदावसुको, पश्चिममें सुनयको और उत्तरमें महारथको अभिषिक्त किया। उन चारों भाइयोंके तथा स्वयं राजा खनित्रके भिन्न-भिन्न गोत्रवाले मुनि पुरोहित हुए और वे ही वंशपरम्पराके क्रमसे मन्त्री भी होते आये। उक्त चारों राजा अपने-अपने राज्यका उपभोग करने लगे। खनित्र उन सबके सम्राट् थे। वे सारी पृथ्वीके स्वामी थे। महाराज खनित्र उन चारों भाइयों तथा समस्त प्रजापर सदा पुत्रोंकी भाँति स्नेह रखते थे। एक दिन राजा शौरिसे उनके मन्त्री विश्ववेदीने एकान्तमें कहा—'राजन्! मुझे आपसे कुछ कहना है। जिसके अधिकारमें यह सारी पृथ्वी रहती है, उसीके वशमें अन्य सब राजा भी रहते हैं। वह तो राजा होता ही है, उसके पुत्र-पौत्र तथा वंशके लोग भी क्रमशः राजा होते हैं। इसलिये आप हमलोगोंको साधन बनाकर अपने बाप-दादोंके राज्यपर अधिकार कर लीजिये। हम इस लोकमें ही आपको लाभ पहुँचा सकते हैं, परलोकमें नहीं।'

राजाने कहा—हमारे ज्येष्ठ भाई राजा हैं और हमलोगोंको पुत्रकी भाँति प्रेमसे अपनाये रखते हैं; फिर हम उनके राज्यपर किस प्रकार अधिकार जमावें।

विश्ववेदी बोले—राजन्! आप राज्यपर अधिकार कर लेनेके बाद राजोचित धन-सम्पत्तिके द्वारा अपने बड़े भाईकी पूजा करते रहियेगा। भला, राज्य-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंमें यह छोटे-बड़ेका भेद कैसा।

विश्ववेदीके इस प्रकार समझानेपर शौरिने उनकी इच्छाके अनुसार काम करनेकी प्रतिज्ञा की। तब मन्त्रीने उनके अन्य भाइयोंको भी वशमें किया। फिर साम-दान आदिके द्वारा उन सबके पुरोहितोंको भी फोड़ लिया। फिर वे चारों पुरोहित महाराज खनित्रके विरुद्ध भयङ्कर पुरश्चरण करने लगे। उनके आभिचारिक कर्मसे चार कृत्याएँ

शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम्। समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम्॥
हे लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः। यथाऽऽत्मनि तथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्वदा॥
तथा समस्तभूतेषु वर्तध्वं हितबुद्धयः। एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते॥
यत् करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मूढमानसः। तं समभ्येति तन्नूनं कर्तृगामि फलं यतः॥
इति मत्वा समस्तेषु भो लोकाः कृतबुद्धयः। सन्तु मा लौकिकं पापं लोकाः प्राप्स्यथ वै बुधाः।
यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि। यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु।

(११७। ११। १६)

उत्पन्न हुईं। वे सभी विकराल, बड़े-बड़े मुखवाली तथा देखनेमें अत्यन्त भयङ्कर थीं। उनके हाथोंमें भयानक एवं विशाल त्रिशूल था। वे सभी राजा खनित्रके पास आयीं। राजा साधु पुरुष थे, अतः उनके पुण्य-समूहसे वे परास्त हो गयीं और लौटकर उन दुष्टात्मा पुरोहितोंपर ही टूट पड़ीं। कृत्याओंने उन चारों पुरोहितों तथा शौरिके दुष्ट मन्त्री विश्ववेदीको भी जलाकर भस्म कर डाला।

इस घटनासे सब लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ; क्योंकि भिन्न-भिन्न नगरोंमें निवास करनेवाले वे सभी पुरोहित और मन्त्री एक ही समय नष्ट हुए। महाराज खनित्रने भी जब सुना कि भाइयोंके पुरोहित मर गये और मन्त्री विश्ववेदी भी जलकर भस्म हो गये, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सोचा यह क्या बात हो गयी। महाराजको इसका कुछ भी कारण नहीं मालूम हुआ। तब उन्होंने अपने घरपर पधारे हुए महर्षि वसिष्ठसे

पूछा—'ब्रह्मन्! भाइयोंके पुरोहित और मन्त्री जो नष्ट हो गये, इसका क्या कारण है?' राजाके इस प्रकार पूछनेपर महामुनि वसिष्ठने सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बता दिया। शौरिके मन्त्रीने जो भाइयोंमें भेद डालनेवाली बात कही थी और शौरिने जो उत्तर दिया था, पुरोहितोंने जो अभिचार-कर्म किया तथा जिस कारण उनकी मृत्यु हुई, वे सब बातें महर्षिने निवेदन कीं। यह सब समाचार सुनकर महाराज खनित्रने कहा—'मुझ पापी, भाग्यहीन तथा दुष्टको धिक्कार है, जिनके कारण चार ब्राह्मणोंकी हत्या हुई। मेरे राज्यको धिक्कार है तथा महान् राजाओंके कुलमें लिये हुए जन्मको भी धिक्कार है, क्योंकि मैं ब्राह्मणोंके विनाशका कारण बन गया। वे पुरोहित तो अपने स्वामी, मेरे भाइयोंका कार्य कर रहे थे, उस दशामें उनकी मृत्यु हुई है। अतः दुष्ट वे नहीं हैं, मैं ही दुष्ट हूँ; क्योंकि मैं ही उनके नाशका कारण बना हूँ।' ऐसा विचार करके महाराज खनित्र अपने क्षुप नामक पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके तीनों पत्नियोंके साथ तपस्याके लिये वनमें चले गये। वे वानप्रस्थके नियमोंके ज्ञाता थे, अतः वनमें जाकर उन्होंने साढ़े तीन सौ वर्षोंतक घोर तपस्या की। तपस्यासे शरीरको दुर्बल करके समस्त इन्द्रियोंको रोककर वनवासी नरेशने अपने प्राण त्याग दिये। इससे वे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अक्षय पुण्यलोकोंमें गये। उनकी तीनों पत्नियाँ भी उन्हींके साथ प्राण त्यागकर उन्हीं लोकोंमें गयीं। राजा खनित्रका यह चरित्र सुनने और पढ़नेपर मनुष्योंका पाप नष्ट करनेवाला है। अब क्षुपका वृत्तान्त सुनो।

क्षुप, विविंश, खनीनेत्र, करन्धम, अवीक्षित तथा मरुत्तके चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं— राजा खनित्रके पुत्र क्षुपने भी राज्य पानेके बाद पिताकी ही भाँति धर्मपूर्वक प्रजाजनोंका पालन किया। वे दानशील तथा अनेक यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले थे। उन्होंने व्यवहार आदिके मार्गमें शत्रु और मित्र दोनोंके प्रति समान भाव रखा। एक दिन महाराज क्षुप अपने राज्य-सिंहासनपर बैठे थे। उस समय सूतों एवं वन्दीजनोंने कहा—'महाराज! पूर्वकालमें जैसे क्षुप नामके राजा हुए थे, वैसे ही आप भी हैं। प्राचीन राजा क्षुप ब्रह्माजीके पुत्र थे। उनका चरित्र जैसा था, वैसा ही वर्तमान महाराजका भी है। पहलेके महाराज क्षुप गौ और ब्राह्मणोंसे कर नहीं लेते थे तथा उन महात्माने प्रजासे प्राप्त हुए छठे भागके द्वारा इस पृथ्वीपर अनेक यज्ञ किये थे।'

राजा बोले— 'मेरे-जैसा कौन मनुष्य उन महात्मा राजाओंका पूर्णरूपसे अनुसरण कर सकेगा, तथापि उत्तम आचरणवाले पुरुषोंके समान कार्य करनेके लिये उद्योग अवश्य करना चाहिये। अतः इस समय मैं जो प्रतिज्ञा करता हूँ, उसे सुनो—मैं महाराज क्षुपके चरित्रका अनुसरण करूँगा तथा खेतीका अभाव होने या उसका अभाव दूर होनेपर तीन-तीन यज्ञोंका अनुष्ठान करूँगा। मेरी यह प्रतिज्ञा सम्पूर्ण भूमण्डलके लिये है। आजके पहले गौ और ब्राह्मणोंने जो राजकर दिया है, वह सब उन्हींकी सेवामें लौटा दूँगा।

ऐसी प्रतिज्ञा करके राजा क्षुपने सब कुछ वैसा ही किया। वे खेती मारी जानेपर तीन-तीन यज्ञोंका अनुष्ठान करते थे। पहले गौ-ब्राह्मणोंने पूर्वके राजाओंको जितना कर दिया था, उतना धन उन्होंने उन्हें लौटा दिया। उनकी पत्नी प्रमथाके गर्भसे वीर नामक उत्तम पुत्र हुआ। उसने अपने प्रताप और पराक्रमसे पृथ्वीके समस्त राजाओंको अपने वशमें कर लिया था। विदर्भराजकुमारी नन्दिनी उसकी प्रियतमा पत्नी थी, जिसके गर्भसे उसने विविंश नामक पुत्रको जन्म दिया। विविंश भी महाबलवान् राजा हुआ। उसके शासनकालमें आबादी अधिक हो जानेसे समूची पृथ्वी मनुष्योंसे भर गयी थी। समयपर वर्षा होती, पृथ्वीपर खेती लहराया करती, खेतीमें अच्छे दाने लगते और दानोंमें पूर्ण रस भरे रहते थे। वे रस मनुष्योंके लिये पुष्टिकारक होते; किन्तु वह पुष्टि उन्माद पैदा करनेवाली नहीं होती थी। लोगोंके पास जो धनका संग्रह होता, वह उनके मदका कारण नहीं बनता था। विविंशके प्रतापसे शत्रु सदा भयभीत रहते थे। प्रजा स्वस्थ थी और सुहृद्वर्ग भलीभाँति पूजित हो प्रसन्नता प्राप्त करता था। राजा विविंश बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान तथा पृथ्वीका भलीभाँति पालन करके संग्राममें मृत्यु पाकर यहाँसे इन्द्रलोकमें चला गया।

विविंशका पुत्र खनीनेत्र हुआ, जो महाबलवान् और पराक्रमी था। उसके यज्ञोंमें गन्धर्वगण विस्मित हो यह गाथा गाया करते थे—'खनीनेत्रके समान दूसरा राजा इस पृथ्वीपर नहीं होगा, क्योंकि उन्होंने दस हजार यज्ञ पूर्ण करके समुद्रसहित यह सारी पृथ्वी दान कर दी थी।' महात्मा ब्राह्मणोंको समूची पृथ्वीका दान दे उन्होंने तपस्यासे द्रव्य संग्रह किया और उसके द्वारा पृथ्वीको छुड़ाया। राजा खनीनेत्रने सरसठ हजार सरसठ सौ सरसठ यज्ञ किये थे और सबमें प्रचुर दक्षिणा दी थी। राजाको कोई पुत्र नहीं था; इसलिये वे पापनाशिनी गोमतीके तटपर गये और वहाँ मन, वाणी एवं शरीरको संयममें रखकर घोर तपस्या

करने लगे। सन्तानके लिये उन्होंने इन्द्रका स्तवन किया। उनके स्तोत्र, तपस्या और भक्तिसे सन्तुष्ट होकर इन्द्रने कहा—'राजन्! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, कोई वर माँगो।'

राजा बोले—देवेश्वर! मुझे कोई पुत्र नहीं है, अतः आपकी कृपासे मुझे पुत्र प्राप्त हो। वह पुत्र समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, अक्षय ऐश्वर्यसे युक्त, धर्मपालक तथा धर्मज्ञ हो।

इन्द्रने 'एवमस्तु' कहकर आशीर्वाद दिया। राजाका मनोरथ पूर्ण हो गया, अब वे प्रजाका पालन करनेके लिये अपने नगरमें आये। वहाँ वे विधिपूर्वक यज्ञका अनुष्ठान तथा धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे। उस समय इन्द्रकी कृपासे उन्हें एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उसके पिताने बलाश्व रखा। फिर राजाने पुत्रको सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा दी। पिताके मरनेके बाद जब बलाश्व राज्यसिंहासनपर आसीन हुए, तब उन्होंने पृथ्वीके सम्पूर्ण राजाओंको अपने वशमें कर लिया। परन्तु बहुत-से महापराक्रमी राजा, जो सब प्रकारके साधन और धनसे सम्पन्न थे, एक साथ मिल गये और उन्होंने राजा बलाश्वको उनकी राजधानीमें ही घेर लिया। नगरपर घेरा पड़ जानेसे राजा बलाश्वको बड़ा क्रोध हुआ, परन्तु उनका खजाना बहुत थोड़ा रह गया था; इसलिये सैनिक बलकी कमी हो जानेसे वे अत्यन्त विकल हो गये। जब उन्हें और कोई शरण नहीं दिखायी दी, तब वे आर्त हो दोनों हाथ मुँहके आगे करके जोर-जोरसे साँस लेने लगे; फिर तो उनके हाथकी अँगुलियोंके छिद्रसे, मुखकी वायुसे प्रेरित हो सैकड़ों योद्धा, रथ, हाथी और घोड़े निकलने लगे। क्षणभरमें राजाका सारा नगर बहुत बड़ी सेनासे भर गया। तब उस विशाल सेनाके साथ नगरसे बाहर निकलकर उन्होंने उन शत्रु राजाओंको परास्त किया और सबको अपने अधीन करके उनपर कर लगा दिया। करका धमन करने (हाथोंको फूँकने)-से उन्होंने शत्रुओंका दाह करनेवाली सेना उत्पन्न की थी, इसलिये वे राजा बलाश्व करन्धम कहलाने लगे। करन्धम धर्मात्मा, सब प्राणियोंके मित्र तथा तीनों लोकोंमें विख्यात थे। जब राजा सङ्कटमें पड़े थे, तब साक्षात् उनके धर्मने उनके पास पहुँचकर शत्रुनाशक सेना प्रदान की थी और फिर स्वयं ही उसे अदृश्य कर दिया।

राजा वीर्यचन्द्रकी सुन्दरी कन्या वीराने, जो उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाली थी, स्वयंवरमें महाराज करन्धमका वरण किया था। उसके गर्भसे महाराजने अवीक्षित नामक पुत्र उत्पन्न किया। उसके इस नामका प्रसङ्ग सुनो। पुत्र उत्पन्न होनेपर राजा करन्धमने उसके ग्रह आदिके विषयमें ज्योतिषियोंसे पूछा। तब ज्योतिषियोंने कहा—'महाराज! आपका पुत्र उत्तम मुहूर्त, श्रेष्ठ नक्षत्र और शुभ लग्नमें उत्पन्न हुआ है; अतः यह महान् पराक्रमी, परम सौभाग्यवान् तथा अधिक बलशाली होगा। बृहस्पति और शुक्र सातवें स्थानमें तथा चन्द्रमा चौथे स्थानमें रहकर इस बालकको देखते हैं। ग्यारहवें स्थानमें स्थित बुध भी इसको देखते हैं। सूर्य, मङ्गल और शनैश्चरकी इसपर दृष्टि नहीं है; अतः यह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे युक्त होगा।' ज्योतिषियोंकी बात सुनकर राजा करन्धमके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—''इसे बृहस्पति और बुध देखते हैं और सूर्य, शनैश्चर एवं मङ्गलसे यह अवीक्षित (अदृष्ट) है; इसलिये इसका नाम 'अवीक्षित' होगा।''

करन्धमके पुत्र अवीक्षित वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् हुए। उन्होंने मुनिवर कण्वके पुत्रसे सम्पूर्ण अस्त्रविद्याकी शिक्षा ग्रहण की। वे रूपमें अश्विनीकुमार, बुद्धिमें बृहस्पति, कान्तिमें चन्द्रमा,

तेजमें सूर्य, धैर्यमें समुद्र और क्षमामें पृथ्वीके समान थे। वीरतामें तो उनकी समानता करनेवाला कोई था ही नहीं। एक समयकी बात है, वे वैदिशके राजा विशालकी कन्या वैशालिनीको प्राप्त करनेके लिये उसके स्वयंवरमें गये। वह सुन्दर दाँतोंवाली सुन्दरी समस्त राजाओंकी उपेक्षा करके चली जा रही थी, इतनेमें ही अवीक्षितने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया। उन्हें अपने बलका बहुत अभिमान था। उनके इस कार्यसे अन्य समस्त राजाओंका, जो बहुत बड़ी संख्यामें एकत्रित थे, अपमान हुआ; अतः वे खिन्न होकर एक-दूसरेसे कहने लगे—'अनेक बलशाली राजाओंके होते हुए किसी एकके द्वारा नारीका अपहरण हो और आपलोग उसे क्षमा कर दें तो यह धिक्कार देनेयोग्य बात है। क्षत्रिय वह है, जो दुष्ट पुरुषोंसे सताये जानेवालेकी रक्षा करे, उसकी क्षति न होने दे। जो ऐसा नहीं करते, वे लोग इस नामको व्यर्थ ही धारण करते हैं। संसारमें कौन मनुष्य मृत्युसे नहीं डरता, किन्तु युद्ध न करके भी कौन अमर रह गया है। यह विचारकर शस्त्रधारी क्षत्रियोंको पुरुषार्थका त्याग नहीं करना चाहिये।'

यह सुनकर सब राजा अमर्षमें भर गये और परस्पर सलाह करके सभी हथियार ले उठ खड़े हुए। कुछ रथोंपर आ बैठे। कुछ हाथियों और घोड़ोंपर सवार हुए तथा दूसरे कितने ही राजा कुपित हो पैदल ही अवीक्षितसे लोहा लेनेको जा पहुँचे। अवीक्षित अकेले थे। उनके विरोधमें बहुत-से राजा और राजकुमार थे। उनमें बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। तलवार, शक्ति, गदा और धनुष-बाण लिये हुए समस्त राजा अवीक्षितपर प्रहार करने लगे तथा राजकुमार अवीक्षित भी अकेले ही उन सभी राजाओंसे भिड़ गये और सैकड़ों बाणोंसे मारकर उन्हें घायल करने लगे। अवीक्षितने किसीकी बाँह काट डाली, किसीकी गर्दन उड़ा दी, किसीकी छाती छेद डाली और किसीके वक्षमें प्रहार किया। शत्रुओंके आते हुए बाणोंको वे बाण मारकर दो टुकड़े कर देते थे। किसीकी तलवार काट देते और किसीका धनुष खण्डित कर देते थे। कोई राजकुमार अपना कवच कट जानेके कारण पलायन कर गया। दूसरा अवीक्षितके बाणोंसे घायल होकर पैदल ही रणभूमिसे भाग गया। इस प्रकार जब राजाओंकी सारी मण्डली व्याकुल हो गयी, तब सात सौ वीर मरनेका निश्चय करके युद्धके लिये डट गये। उन सबको अपने उत्तम कुल, युवावस्था तथा शौर्यकी लाज रखनी थी। जब सारी सेना परास्त होकर भागने लगी तब वे ही सात सौ राजा एक साथ मिलकर अवीक्षितसे युद्ध करने लगे। अवीक्षित अत्यन्त क्रोधमें भरकर धर्मयुद्धके नियमसे लड़ने लगे। उन्होंने उन सबके हथियारों और कवचोंको काट गिराया। तब उन राजाओंने धर्मसे विमुख हो चारों ओरसे अवीक्षितको घेर लिया और सब ओरसे उन्हें हजारों बाणोंसे बींधने लगे। बहुतोंके प्रहारसे पीड़ित हो वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और अत्यन्त विह्वल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इस अवस्थामें उन सबने मिलकर धर्मपूर्वक उन्हें बाँध लिया और राजा विशालके साथ वैदिश नगरमें प्रवेश किया।

तदनन्तर राजा करन्धम, उनकी पत्नी वीरा तथा अन्य राजाओंने अवीक्षितके बाँधे जानेका समाचार सुना। कुछ लोगोंने करन्धमसे कहा—'महाराज! ये सभी राजा वध करनेके योग्य हैं, जिन्होंने अधिक संख्यामें सम्मिलित होकर अकेले राजकुमारको अधर्मपूर्वक बाँधा है।' दूसरे बोले—'आप चुपचाप बैठे क्यों हैं, शीघ्र ही सेना तैयार कीजिये। दुष्ट विशालको तथा वहाँ आये हुए

अन्य समस्त राजाओंको भी बाँध लीजिये।' उन मन्त्रीकी यह बात सुनकर वीरपुत्रा वीराने, जो वीरवंशमें उत्पन्न एवं वीर पतिकी पत्नी थी, हर्षमें भरकर कहा—'राजाओ! मेरे पुत्रने समस्त राजाओंको जीतकर जो बलपूर्वक कन्याको अपने अधिकारमें कर लिया है, यह ठीक ही किया है। इसके लिये मनमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसका युद्धमें बन्दी होना प्रशंसाकी ही बात है। अब तुमलोगोंके मस्तकपर भी अस्त्र-शस्त्रोंके गिरनेका समय आ पहुँचा है। युद्धके लिये शीघ्रता करो। अपने-अपने रथोंपर सवार हो जाओ। हाथी, घोड़े और सारथियोंको भी जल्दी तैयार करो। विलम्ब नहीं होना चाहिये। जो सबको परास्त करके शोभा पाता है, वही शूर है। जैसे सूर्य अन्धकारको दूर करके प्रकाशित होता है, उसी प्रकार शूरवीर शत्रुओंको हराकर यशस्वी होता है।'

इस प्रकार पत्नीके उत्साहित करनेपर राजा करन्धमने पुत्रके शत्रुओंका वध करनेके लिये सेनाको तैयार होनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर उनका विशाल और उनके साथियोंके साथ घोर युद्ध हुआ। तीन दिनतक युद्ध होनेके पश्चात् विशाल और उनके सहायक राजाओंका मण्डल जब प्रायः पराजित हो गये, तब राजा विशाल हाथमें अर्घ्य लेकर महाराज करन्धमके पास आये। उन्होंने बड़े प्रेमसे करन्धमका पूजन किया। उनका पुत्र अवीक्षित बन्धनसे मुक्त कर दिया गया। राजाने एक रात वहाँ बड़े सुखसे व्यतीत की। दूसरे दिन राजा विशाल अपनी कन्याको साथ लेकर महाराज करन्धमके पास उपस्थित हुए। उस समय अवीक्षितने अपने पिताके सामने ही कहा—'मैं इसको तथा दूसरी किसी युवतीको भी अब नहीं ग्रहण करूँगा, क्योंकि इसके देखते-देखते शत्रुओंद्वारा युद्धमें परास्त हो गया। अब आप किसी औरके साथ इसका विवाह कर दें अथवा यह उस पुरुषका वरण करे, जिसका यश और पराक्रम अखण्डित हो तथा जिसे शत्रुओंके हाथसे अपमानित न होना पड़ा हो। पुरुष सबल होनेके कारण स्वतन्त्र होता है और स्त्रियाँ अबला होनेके कारण सदा परतन्त्र रहती हैं। परन्तु जहाँ पुरुष भी दूसरेके परतन्त्र हो गया, वहाँ उसमें मनुष्यता ही क्या रह गयी। जब इसके सामने ही राजाओंने मुझे पृथ्वीपर गिरा दिया, तब अब मैं इसे अपना मुँह कैसे दिखाऊँगा?' अवीक्षितके ऐसा कहनेपर राजा विशालने अपनी पुत्रीसे कहा—'बेटी! इन महात्माकी बात तुमने सुनी है न? शुभे! जिसमें तुम्हारी रुचि हो, ऐसे किसी दूसरे पुरुषको पतिरूपमें वरण करो अथवा हम जिसे तुम्हें दे दें, उसीका तुम आदर करो।'

कन्या बोली—पिताजी! यद्यपि संग्राममें इनके यश और पराक्रमकी हानि हुई है, तथापि ये उसमें धर्मानुकूल बर्ताव करते रहे हैं। ये अकेले थे तो भी बहुतोंने मिलकर इन्हें परास्त किया है; अतः वास्तवमें इनकी पराजय हुई, यह कहना ठीक नहीं है। युद्धके लिये जब बहुत-से राजा आये, तब ये उनमें सिंहकी भाँति अकेले घुस गये और निरन्तर डटकर सामना करते रहे। इससे इनका महान् शौर्य प्रकट हुआ है। ये वीरता और पराक्रमसे युक्त होकर धर्मयुद्धमें संलग्न थे। ऐसे समयमें समस्त राजाओंने मिलकर इनपर अधर्मपूर्वक विजय पायी है। अतः इसमें इनके लिये लज्जाकी कौन-सी बात है। तात! मैं इनके रूप मात्रपर लुभा गयी हूँ, ऐसी बात नहीं है, इनकी वीरता, पराक्रम और धीरता आदि सद्गुण मेरे चित्तको चुराये लेते हैं। अतः अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता है। आप मेरे लिये महाराजसे इन्हीं

महानुभावकी याचना कीजिये। इनके सिवा दूसरा कोई पुरुष मेरा पति नहीं हो सकता।

विशालने कहा—राजकुमार! मेरी पुत्रीने बहुत अच्छी बातें कही हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे जैसा वीर कुमार इस भूतलपर दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारे शौर्यकी कहीं समता नहीं है। तुम्हारा पराक्रम अनन्त है। वीर! तुम मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके मेरे कुलको पवित्र करो।

तब महाराज करन्धमने अपने पुत्रको समझाते हुए कहा—'बेटा! तुम राजा विशालकी कन्याको स्वीकार करो। इस सुन्दरीका तुम्हारे प्रति अत्यन्त दृढ़ अनुराग है।'

राजकुमारने कहा—पिताजी! मैंने पहले कभी आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया है; अतः ऐसी आज्ञा दीजिये, जिसका मैं पालन कर सकूँ।

उस राजकुमारका अत्यन्त निश्चित विचार देख विशालने व्याकुल होकर अपनी कन्यासे कहा—'बेटी! अब तुम इनकी ओरसे अपना मन हटा लो और दूसरेको पतिरूपमें वरण करो। यहाँ बहुत-से राजकुमार हैं।'

कन्या बोली—पिताजी! यदि ये मुझको नहीं ग्रहण करना चाहते तो मैं तपस्या करके इन्हें अपना पति बनाऊँगी। इस जन्ममें इनके सिवा दूसरा कोई मेरा पति नहीं होगा।

तदनन्तर राजा करन्धम राजा विशालके साथ प्रसन्नतापूर्वक तीन दिनोंतक टिके रहे, फिर अपने नगरको लौट आये। अवीक्षितको उनके पिता तथा अन्य राजाओंने प्राचीन दृष्टान्तोंके द्वारा बहुत कुछ समझाया। इससे वे भी उनके साथ नगरमें लौट आये। राजकन्या वैशालिनी अपने बन्धु-बान्धवोंसे विदा ले वनमें चली गयी और वहाँ दृढ़ वैराग्यमें स्थित हो निराहार रहकर तपस्या करने लगी। तीन महीनोंतक उपवास करनेके बाद उसको बड़ी पीड़ा हुई। वह अत्यन्त दुबली हो गयी और उसके शरीरकी एक-एक नाड़ी दिखायी देने लगी। उसका उत्साह मन्द पड़ गया। वह मरणासन्न हो चली। तब उस राजकुमारीने शरीर त्याग देनेका विचार किया। उसका अभिप्राय जानकर देवताओंने उसके पास एक दूत भेजा। दूतने वहाँ आकर कहा—'राजकुमारी! मैं देवताओंका दूत हूँ। देवताओंने तुम्हारे पास मुझे जिस कार्यके लिये भेजा है, उसे सुनो। यह मानव-शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। तुम अकारण इसका परित्याग न करो। कल्याणी! तुम चक्रवर्ती राजाकी जननी होओगी। तुम्हारा पुत्र अपने शत्रुओंका संहार करके सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका अखण्ड राज्य भोगेगा। कहीं भी उसकी आज्ञाका उल्लङ्घन न होगा। वह चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें स्थापित करके उन सबका पालन करेगा। लुटेरों, म्लेच्छों और दुष्टोंका वध करेगा। उत्तम दक्षिणाओंसे पूर्ण नाना प्रकारके यज्ञ करेगा। उसके द्वारा अश्वमेध आदि यज्ञोंका छः हजार बार अनुष्ठान होगा।'

वह दूत आकाशमें ही खड़ा था। उसके शरीरपर दिव्य हार और चन्दन शोभा पा रहे थे। उसे इस रूपमें देख राजकन्याने कोमल वाणीमें कहा—'तुम देवताओंके दूत हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। सचमुच ही तुम स्वर्गसे यहाँ आये हो; किन्तु तुम्हीं बताओ, पतिके बिना मुझे पुत्र कैसे होगा? मैंने पिताके समीप यह प्रतिज्ञा कर ली है कि इस जन्ममें अवीक्षितके सिवा दूसरा कोई पुरुष मेरा पति नहीं होगा; किन्तु वे अवीक्षित मेरे पिताके, अपने पिताके तथा स्वयं मेरे कहनेपर भी मुझे नहीं ग्रहण करना चाहते।'

देवदूतने कहा—'महाभागे! बहुत कहनेसे क्या लाभ है। तुम्हें पुत्र अवश्य होगा। तुम अधर्मपूर्वक इस शरीरका त्याग न करो। इसी

वनमें रहो और अपने दुर्बल शरीरका पोषण करो। तपस्याके प्रभावसे तुम्हारा सब कुछ भला ही होगा।

यों कहकर देवदूत जैसे आया था, लौट गया तथा वह सुन्दरी प्रतिदिन अपने शरीरका पोषण करने लगी।

उधर अवीक्षितकी वीरप्रसविनी माता वीराने किसी शुभ दिनको अपने पुत्र अवीक्षितको पास बुलाया और इस प्रकार कहा—'बेटा! मैं तुम्हारे पिताकी आज्ञासे एक व्रत करूँगी। उसका नाम किमिच्छक व्रत है, किन्तु वह है बहुत दुष्कर। फिर भी उसके करनेसे कल्याण ही होगा। यदि तुम कुछ बल और पराक्रम दिखाओ तो वह अवश्य साध्य हो जायगा। तुम्हारे लिये वह असाध्य हो या दुःसाध्य, यदि तुम उसके लिये प्रतिज्ञा कर लोगे तो मैं उसका अनुष्ठान आरम्भ कर दूँगी। अब तुम्हारा जो विचार हो, सो कहो।'

अवीक्षित बोले—माँ! यदि पिताजीने तुम्हें आज्ञा दे दी है तो तुम निश्चिन्त होकर किमिच्छक व्रतका अनुष्ठान करो। मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता न करो।

तदनन्तर महारानी वीराने उपवासपूर्वक उस व्रतका आरम्भ किया तथा शास्त्रोंमें बताये अनुसार कुबेरकी, सम्पूर्ण निधियोंकी, निधिपालकोंकी और लक्ष्मीजीकी बड़ी भक्तिके साथ पूजा की। उन्होंने अपने मन, वाणी और शरीरको काबूमें कर लिया था। इधर महाराज करन्धम जब एकान्त घरमें बैठे हुए थे, उस समय नीति-शास्त्र-विशारद मन्त्रियोंने उनके पास जाकर कहा—'राजन्! इस पृथ्वीका शासन करते हुए आपकी वृद्धावस्था आ गयी। आपके एक ही पुत्र हैं अवीक्षित, जिन्होंने स्त्रीका सम्पर्क ही छोड़ दिया है; इससे आपका वंश अब लुप्त हो जायगा। पितरोंको पिण्ड और पानी देनेवाला कोई नहीं रहेगा। अतः आप ऐसा कोई यत्न कीजिये, जिससे आपका पुत्र पितरोंका उपकार करनेवाली बुद्धि ग्रहण करे—विवाह करनेपर राजी हो जाय।'

इसी समय राजा करन्धमके कानोंमें एक आवाज आयी। रानी वीराके पुरोहित याचकोंसे कह रहे थे, 'कौन क्या चाहता है? किसके लिये कौन सी वस्तु दुःसाध्य है, जिसका साधन किया जाय? महाराज करन्धमकी रानी किमिच्छक व्रतका अनुष्ठान करती हैं; अतः जिसकी जो इच्छा हो, वह पूर्ण की जायगी।' पुरोहितकी बात सुनकर राजकुमार अवीक्षितने भी राजद्वारपर आये हुए समस्त याचकोंसे कहा—'मेरी परम सौभाग्यवती माता किमिच्छक-व्रत कर रही हैं; अतः मेरे शरीरसे किसीका कोई कार्य सिद्ध होनेवाला हो तो वह बतलावे। सब याचक सुन लें, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ। इस किमिच्छक-व्रतके अनुष्ठानके अवसरपर तुमलोग क्या चाहते हो, बताओ! उसे मैं दूँगा।'

अपने बेटेके मुखसे यह बात सुनकर महाराज करन्धम तुरंत सामने आये और बोले—'मैं याचक हूँ। मुझे मेरी माँगी हुई वस्तु दो।'

अवीक्षित बोले—तात! आपको क्या देना है? बतलाइये। मेरा कर्तव्य दुष्कर हो, साध्य हो अथवा अत्यन्त दुःसाध्य हो; बताइये मैं उसे पूर्ण करूँगा।

राजाने कहा—यदि तुम सत्यप्रतिज्ञ हो और सबको इच्छानुसार दान देते हो तो मेरी गोदमें पौत्रका मुँह दिखाओ।

अवीक्षित बोले—महाराज! मैं आपका एक ही पुत्र हूँ और ब्रह्मचर्यका पालन मेरा व्रत है। मेरे कोई पुत्र है ही नहीं, फिर आपको पौत्रका मुख कैसे दिखाऊँ?

राजाने कहा—बहुत कहनेसे क्या लाभ, तुम ब्रह्मचर्यको छोड़ो और अपनी माताके इच्छानुसार मुझे पौत्रका मुख दिखाओ।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जब पुत्रके बहुत कहनेपर भी राजाने दूसरी कोई वस्तु नहीं माँगी, तब उन्होंने कहा—'पिताजी! मैं आपको किमिच्छक दान देकर बड़े सङ्कटमें पड़ गया। अब निर्लज्ज होकर फिर विवाह करूँगा। स्त्रीके सामने परास्त हुआ और पृथ्वीपर गिराया गया; फिर भी मुझे स्त्रीका स्वामी बनना पड़ेगा, यह बड़ा ही दुष्कर कर्म है। तथापि मैं क्या करूँ, सत्यके बन्धनमें बँधा हूँ। आपने जो आज्ञा दी है, वह करूँगा।'

एक दिन राजकुमार अवीक्षित शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। वहाँ वे हरिण, वराह तथा व्याघ्र आदि जन्तुओंको अपने बाणोंका निशाना बनाने लगे। इतनेमें ही उन्हें सहसा किसी स्त्रीके रोनेका शब्द सुनायी दिया। वह भयसे गद्‌गदवाणीमें उच्चस्वरसे बार-बार क्रन्दन करती हुई त्राहि-त्राहिकी रट लगा रही थी। राजकुमार अवीक्षितने 'मत डरो, मत डरो' ऐसा कहते हुए अपने घोड़ेको उसी ओर बढ़ाया, जिधरसे वह शब्द आ रहा था। उस निर्जन वनमें दनुके पुत्र दृढ़केशके द्वारा पकड़ी गयी वह कन्या विलाप करती हुई कह रही थी, 'मैं महाराज करन्धमके पुत्र अवीक्षितकी पत्नी हूँ, किन्तु यह नीच दानव मुझे हरकर लिये जाता है। जिन महाराजके समक्ष समस्त राजा, गन्धर्व तथा गुह्यक भी खड़े होनेकी शक्ति नहीं रखते, जिनका क्रोध मृत्यु और पराक्रम इन्द्रके समान है, उन्हींकी पुत्रवधू होकर आज मैं एक दानवके द्वारा हरी जा रही हूँ।'

वह इस प्रकार कह-कहकर रो ही रही थी कि राजकुमार अवीक्षित तुरंत वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने देखा, एक अत्यन्त मनोहर कन्या है, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे शोभा पा रही है और हाथमें डंडा लिये दनु-पुत्र दृढ़केशने उसे पकड़ रखा है तथा वह करुण स्वरमें 'त्राहि-त्राहि' पुकार रही है। यह देखकर अवीक्षितने उससे कहा—'तुम भय न करो।' फिर उस दानवसे कहा—'ओ दुष्ट! अब तू मारा जायगा। भूमण्डलके समस्त राजा जिनके प्रतापके सामने मस्तक झुकाते हैं, उन महाराज करन्धमके राज्यमें कौन दुष्ट जीवित रह सकता है।' राजकुमारको श्रेष्ठ धनुष लिये आया देख वह कृशाङ्गी युवती बार-बार कहने लगी, 'आप मुझे बचाइये। यह दुष्ट मुझे हरकर लिये जाता है। मैं महाराज करन्धमकी पुत्रवधू और अवीक्षितकी पत्नी हूँ। सनाथ हूँ तो भी इस वनमें यह दुष्ट मुझे अनाथकी भाँति हरकर लिये जाता है।'

यह सुनकर अवीक्षित उसकी बातपर विचार करने लगे—'यह किस प्रकार मेरी भार्या तथा पिताजीकी पुत्रवधू हुई? अथवा इस समय तो इसे छुड़ाऊँ, फिर समझ लूँगा। पीड़ितोंकी रक्षा करनेके लिये ही क्षत्रिय हथियार धारण करते हैं।' ऐसा निश्चय करके वीर अवीक्षितने उस खोटी बुद्धिवाले दानवसे कुपित होकर कहा—'पापी! यदि जीवित रहना चाहता है तो इसे छोड़कर चला जा; अन्यथा तेरे प्राण नहीं बचेंगे।' इतना सुनते ही वह दानव उस कन्याको छोड़कर डंडेको ऊपर उठा अवीक्षितकी ओर दौड़ा। तब उन्होंने भी बाणोंकी वर्षासे उसे ढँक दिया। दानव दृढ़केश अत्यन्त मदसे मतवाला हो रहा था। राजकुमारके बाणोंसे रोके जानेपर भी उसने सौ कीलोंसे युक्त वह डंडा उनपर दे मारा; किन्तु राजकुमारने अपनी ओर आते हुए उस डंडेके बाण मारकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर दानवने कुपित होकर राजकुमारपर जो-जो हथियार चलाया, वह सब उन्होंने अपने बाणोंसे काट गिराया। डंडे और हथियारोंके कट

जानेपर उसे बड़ा क्रोध हुआ और वह मुक्का तानकर राजकुमारकी ओर दौड़ा। पास आते ही राजकुमारने वेतसपत्र नामक बाणसे उसका मस्तक काट गिराया। इस प्रकार उस दुराचारी दानवके मारे जानेपर समस्त देवताओंने अवीक्षितको साधुवाद दिया और वर माँगनेके लिये कहा। तब उन्होंने अपने पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे एक महापराक्रमी पुत्र माँगा।

देवता बोले—राजकुमार! जिसका तुमने अभी उद्धार किया है, इसी कन्याके गर्भसे तुम्हें महाबली चक्रवर्ती पुत्रकी प्राप्ति होगी।

राजकुमारने कहा—देवगण! राजाओंसे परास्त होनेपर मैंने विवाहका विचार छोड़ दिया था, किन्तु पिताद्वारा सत्यके बन्धनमें बाँधे जानेपर मैं अब पुत्रकी अभिलाषा करता हूँ। पहले राजा विशालकी कन्याको मैंने त्याग दिया था, किन्तु उसने मेरे ही लिये दूसरे किसी पुरुषको पति बनानेका विचार छोड़ रखा है। अतः उस त्यागमयी देवीको छोड़कर क्रूरहृदय हो मैं दूसरी स्त्रीको कैसे अपनी पत्नी बना सकूँगा?

देवता बोले—यही राजा विशालकी कन्या और तुम्हारी भार्या है, जिसकी तुम सदा प्रशंसा करते हो। यह सुन्दरी तुम्हारे लिये ही तप करती रही है। इसके गर्भसे तुम्हारे चक्रवर्ती एवं वीर पुत्र उत्पन्न होगा। वह सातों द्वीपोंका शासक तथा सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला होगा।

करन्धम-कुमार अवीक्षितसे यों कहकर समस्त देवता वहाँसे चले गये। तब उन्होंने उस स्त्रीसे कहा—भीरु! कहो तो यह क्या बात है! तब वैशालिनीने अपना वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया—'नाथ! आपने जब मुझे त्याग दिया तो इस जीवनसे वैराग्य हो गया और मैं बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर वनमें चली आयी। वीर! वहाँ तपस्या करते-करते मैंने अपना शरीर सुखा दिया और तब इसे त्याग देनेको उद्यत हो गयी। इसी समय देवताओंके दूतने आकर मुझे रोका और कहा—'तुम्हें महाबलवान् चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा, जो देवताओंको तृप्त करेगा और असुरोंका संहार करेगा।' इस प्रकार देवदूतने जब देवताओंकी आज्ञा सुनायी, तब आपके समागमकी आशासे मैंने इस देहका त्याग नहीं किया।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—वैशालिनीके ये वचन सुनकर तथा किमिच्छक व्रतमें की हुई प्रतिज्ञाके समय पिताके कहे हुए उत्तम वचनोंका स्मरण करके अवीक्षितने उस कन्यासे प्रेमपूर्वक कहा—'देवि! उस समय शत्रुओंसे पराजित होनेके कारण मैंने तुम्हारा त्याग किया था और अब फिर शत्रुओंको जीतकर ही तुम्हें पाया है। अब बताओ, क्या करूँ?' इसी अवसरपर मय नामक गन्धर्व श्रेष्ठ अप्सराओं तथा अन्य गन्धर्वोंके साथ वहाँ आया।

गन्धर्व बोला—राजकुमार! यह कन्या वास्तवमें मेरी पुत्री भामिनी है। महर्षि अगस्त्यके शापसे वह राजा विशालकी पुत्री हुई थी। बचपनमें खेलते समय इसने अगस्त्य मुनिको कुपित कर दिया था। तब उन्होंने शाप देते हुए कहा—'जा, तू मनुष्य-योनिमें उत्पन्न होगी।' तब हमलोगोंने मुनिको प्रसन्न करते हुए कहा—'ब्रह्मर्षे! अभी यह निरी बालिका है, इसे भले-बुरेका विवेक नहीं है, तभी इसके द्वारा आपका अपराध बन गया है। अतः इसके ऊपर कृपा कीजिये।' तब उन महामुनिने कहा—'बालिका समझकर ही मैंने इसे बहुत थोड़ा शाप दिया है। अब यह टल नहीं सकता।' यही महर्षिका शाप था, जिससे यह मेरी पुत्री भामिनी राजा विशालके भवनमें उत्पन्न हुई। इसके लिये ही मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। आप

मेरी इस कन्याको ग्रहण कीजिये। इससे आपको चक्रवर्ती पुत्रकी प्राप्ति होगी।

तब 'बहुत अच्छा' कहकर राजकुमारने विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण किया। उस समय वहाँ तुम्बुरु मुनिने हवन किया। देवता और गन्धर्व गीत गाते रहे। मेघोंने फूलोंकी वर्षा की और देवताओंके बाजे बजते रहे। विवाहके पश्चात् दोनों दम्पति महात्मा मयके साथ गन्धर्वलोकमें गये। अवीक्षित अपनी पत्नीके साथ कभी अत्यन्त रमणीय नगरोद्यानमें और कभी पर्वतकी उपत्यकामें विहार करने लगे। वहाँ मुनि, गन्धर्व और किन्नरलोग उन दोनोंके लिये भोजनकी सामग्री, चन्दन, वस्त्र, माला तथा पीनेयोग्य पदार्थ आदि उत्तम वस्तुएँ प्रस्तुत किया करते थे। मनुष्योंके लिये दुर्लभ गन्धर्वलोकमें अवीक्षित इस प्रकार भामिनीके साथ विहार करते रहे। कुछ समयके बाद भामिनीने वीर अवीक्षितके पुत्रको जन्म दिया। उस महापराक्रमी पुत्रका जन्म होनेपर उससे कार्यसिद्धिकी अपेक्षा रखनेवाले गन्धर्वोंके यहाँ बड़ा भारी उत्सव हुआ। उसमें सब देवता तथा निर्मल देवर्षि भी पधारे। पातालसे नागराज शेष, वासुकि और तक्षक भी आये। देवता, असुर, यक्ष और गुह्यकोंमें जो-जो प्रधान थे, वे सब उपस्थित हुए। सभी मरुद्गण भी पधारे थे। तुम्बुरुने उस बालकका जातकर्म आदि करके स्तुतिपूर्वक स्वस्तिवाचन किया और कहा— 'आयुष्मन्! तुम चक्रवर्ती, महापराक्रमी, महाबाहु एवं महाबलवान् होकर समस्त पृथ्वीका शासन करो। वीर! ये इन्द्र आदि लोकपाल तथा महर्षि तुम्हारा कल्याण करें और तुम्हें शत्रुनाशक शक्ति प्रदान करें। पूर्व दिशामें बहनेवाले मरुत्, जिनमें धूलका समावेश नहीं होता, तुम्हारा कल्याण करें। दक्षिण दिशाके निर्मल मरुत् तुम्हें स्वस्थ रखें। पश्चिमके मरुत् उत्तम पराक्रम दें तथा उत्तरके मरुत् तुम्हें उत्कृष्ट बल प्रदान करें।'

इस प्रकार स्वस्त्ययनके पश्चात् आकाशवाणी हुई, 'पुरोहितने 'मरुत् तव' (मरुत् तुम्हारा कल्याण करें)-का अनेक बार प्रयोग किया है, इसलिये यह बालक पृथ्वीपर 'मरुत्त' के नामसे विख्यात होगा। भूमण्डलके सभी राजा इसकी आज्ञाके अधीन रहेंगे और यह वीर सब राजाओंका सिरमौर बना रहेगा। अन्य भूपालोंको जीतकर यह महापराक्रमी चक्रवर्ती होगा और सात द्वीपोंवाली समूची पृथ्वीका उपभोग करेगा। यज्ञ करनेवाले राजाओंमें यह प्रधान होगा तथा समस्त नरेशोंमें इसका शौर्य और पराक्रम सबसे अधिक होगा।'

देवताओंमेंसे किसीने यह आकाशवाणी की थी। इसे सुनकर ब्राह्मण, गन्धर्व तथा बालकके माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर राजकुमार अवीक्षित अपने प्रिय पुत्रको गोदमें ले गन्धर्वोंके साथ ही अपने पिताके नगरमें आये। पिताके घरमें पहुँचकर उन्होंने उनके चरणोंमें आदरपूर्वक मस्तक झुकाया तथा लज्जावती भामिनीने भी श्वशुरके चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय राजा करन्धम धर्मासनपर विराजमान थे। अवीक्षितने पुत्रको लेकर कहा—'पिताजी! माताके किमिच्छक-व्रतमें मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार अब आप गोदमें लेकर इस पौत्रका मुख देखिये।' यों कहकर उन्होंने पिताकी गोदमें बालकको रख दिया और उसके जन्मका सारा वृत्तान्त ठीक-ठीक कह सुनाया। राजा करन्धमके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने पौत्रको छातीसे लगाकर अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मैं बड़ा ही सौभाग्यशाली हूँ।' इसके बाद उन्होंने वहाँ आये हुए गन्धर्वोंका अर्घ्य आदिके द्वारा सत्कार किया। उस समय उनको और किसी

बातकी याद नहीं रही! उस नगरमें, पुरवासियोंके घर घरमें महान् आनन्द छा गया। सब प्रसन्न होकर कहते थे—'हमारे महाराजके पोता हुआ है।' राजा करन्धमने हर्षमग्न होकर ब्राह्मणोंको रत्न, धन, गौ, वस्त्र और आभूषण दान किये। वह बालक शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भाँति प्रतिदिन बढ़ने लगा। उसे देखकर पिता आदिको बड़ी प्रसन्नता होती थी। वह सब लोगोंका प्यारा था। कुछ बड़ा होनेपर उपनयनके बाद उसने आचार्योंके पास रहकर पहले वेदोंको, फिर समस्त शास्त्रोंकी तथा अन्तमें धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् भृगुपुत्र शुक्राचार्यसे अन्यान्य अस्त्रविद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया। वह गुरुके समक्ष विनीतभावसे मस्तक झुकाता तथा सदा उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टामें संलग्न रहता था। वह अस्त्रविद्याका ज्ञाता, वेदका विद्वान्, धनुर्वेदमें पारङ्गत तथा सब विद्याओंमें निष्णात था। उस समय मरुत्तसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं था।

राजा विशालको भी जब अपनी पुत्रीका सारा समाचार ज्ञात हुआ तथा दौहित्रकी उत्तम योग्यता सुनायी गयी, तब उनका मन आनन्दमें निमग्न हो गया। पौत्रको देखनेसे महाराज करन्धमका मनोरथ पूर्ण हो गया। उन्होंने अनेक यज्ञ किये और याचकोंको बहुत दान दिये। तदनन्तर वन जानेके लिये उत्सुक होकर उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षितसे कहा—'बेटा! मैं बूढ़ा हो गया, अब वनमें तपस्याके लिये जाऊँगा। तुम मुझसे यह राज्य ले लो। मैं कृतकृत्य हूँ। तुम्हारा राजतिलक करनेके अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य शेष नहीं है।' यह सुनकर राजकुमार अवीक्षितने बड़ी नम्रताके साथ पितासे कहा—'तात! मैं पृथ्वीका पालन नहीं कर सकूँगा। मेरे मनसे लज्जा अभी दूर नहीं होती। आप इस राज्यपर किसी औरको नियुक्त कीजिये। मैं बन्धनमें पड़नेपर पिताके हाथों मुक्त हुआ हूँ, अपने बलसे नहीं। अतः मुझमें क्या पौरुष है। जिनमें पौरुष हो, वे ही इस पृथ्वीका पालन कर सकते हैं। जब मैं अपनी भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हूँ, तब इस पृथ्वीकी रक्षा कैसे कर सकूँगा। इसलिये राज्य किसी औरको दे दीजिये।'

पिता बोले—बेटा! पुत्रके लिये पिता और पिताके लिये पुत्र भिन्न नहीं है। यदि पिताने तुम्हें बन्धनसे छुड़ाया तो यही मानना चाहिये कि किसी दूसरेने नहीं छुड़ाया है।

पुत्रने कहा—महाराज! मेरे हृदयका भाव बदल नहीं सकता। जो पिताकी कमायी हुई सम्पत्ति भोगता है, जो पिताके बलसे ही संकटसे उद्धार पाता है तथा पिताके नामपर ही जिसकी ख्याति होती है, अपने गुणोंसे नहीं—ऐसा मनुष्य कभी कुलमें उत्पन्न न हो। जो स्वयं ही धनका उपार्जन करते, स्वयं ख्याति पाते और स्वयं ही संकटोंसे मुक्त होते हैं, ऐसे पुरुषोंकी जो गति होती है, वही मेरी भी हो।

पिताके बहुत कहनेपर भी जब अवीक्षित पूर्वोक्त उत्तर ही देते चले गये, तब महाराज करन्धमने उनके पुत्र मरुत्तको ही राजा बना दिया। पिताकी आज्ञाके अनुसार पितामहसे राज्य पाकर मरुत्त अपने सुहृदोंका आनन्द बढ़ाते हुए उसका भलीभाँति पालन करने लगे। राजा करन्धम अपनी पत्नी वीराको साथ ले वनमें तपस्याके लिये चले गये। वहाँ मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर उन्होंने एक हजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या की और अन्तमें शरीर त्यागकर वे इन्द्रलोकमें चले गये। उनकी पत्नी वीराने सौ वर्ष बादतक कठोर तप किया। उसके सिरपर जटाएँ बढ़ी हुई थीं, शरीरपर मैल जम गयी थी। वह स्वर्गमें गये हुए अपने महात्मा पतिका सालोक्य

चाहती हुई फल-मूलका आहार करके भार्गवके आश्रमपर तपस्या करती थी। ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंमें रहकर उनकी सेवामें तत्पर रहती थी।

क्रौष्टुकि बोले— भगवन्! आपने करन्धम और अवीक्षितके चरित्रका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया। अब मैं आवीक्षितकुमार महात्मा मरुत्तका चरित्र सुनना चाहता हूँ। सुना जाता है, उनका चरित्र अलौकिक था। वे चक्रवर्ती, महान् सौभाग्यशाली, शूरवीर, सुन्दर, परम बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धर्मात्मा तथा पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करनेवाले थे।

मार्कण्डेयजीने कहा— पिताके आदेशसे पितामहका राज्य पाकर मरुत्त जिस प्रकार पिता अपने औरस पुत्रोंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार प्रजाजनोंका धर्मपूर्वक पालन करने लगे। ऋत्विजों और पुरोहितके आदेशसे प्रसन्न होकर बहुत-से यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दीं। उनका शासन चक्र सातों द्वीपोंमें अबाधरूपसे फैला हुआ था। आकाश, पाताल और जल आदिमें भी उनकी गति कुण्ठित नहीं होती थी। राजा तो यज्ञ करते ही थे, चारों वर्णोंके अन्य लोग भी अपने अपने कर्ममें आलस्य छोड़कर संलग्न रहते और महाराजसे धन प्राप्त कर इष्टापूर्त आदि पुण्य क्रियाएँ करते थे। राजा मरुत्तने सौ यज्ञ करके देवराज इन्द्रको भी मात कर दिया। उनके पुरोहित अङ्गिरानन्दन संवर्तजी थे, जो बृहस्पतिजीके भाई एवं तपस्याके भण्डार थे। मुञ्जवान् नामसे प्रसिद्ध एक सोनेका पर्वत था, जहाँ देवता निवास करते थे। महाराज मरुत्तने उसका शिखर तोड़कर गिरा दिया और उसे अपने यहाँ मँगा लिया। उसीके द्वारा उन्होंने यज्ञकी सब सामग्री—भू-विभाग और महल आदि सोनेके ही बनवाये। सदा स्वाध्याय करनेवाले महर्षि मरुत्तके चरित्रके विषयमें सदा यह गाथा गाते रहते हैं—'महाराज मरुत्तके समान यजमान इस भूतलपर दूसरा कोई नहीं हुआ, जिनके यज्ञमें समस्त यज्ञमण्डप और महल सुवर्णके ही बने थे; उसमें ब्राह्मण पर्याप्त दक्षिणा पाकर तृप्त हो गये। इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता उसमें ब्राह्मणोंको भोजन परोसनेका काम करते थे। राजा मरुत्तके यज्ञमें जैसा समारोह था, वैसा किस राजाके यज्ञमें हुआ है, जहाँ रत्नोंसे भर भरा रहनेके कारण ब्राह्मणोंने दक्षिणामें मिला हुआ सारा सुवर्ण त्याग दिया। उस छोड़े हुए धनको पाकर कितने ही लोगोंका मनोरथ पूरा हो गया और वे भी उसी धनसे अपने अपने देशमें पृथक्-पृथक् अनेक यज्ञ करने लगे।'

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करनेवाले राजा मरुत्तके पास एक दिन कोई तपस्वी आया और इस प्रकार कहने लगा—''महाराज! आपकी पितामही वीरा देवीने तपस्वियोंको मदोन्मत्त सर्पोंके विषसे पीड़ित देख आपके पास यह सन्देश दिया है—'राजन्! तुम्हारे पितामह स्वर्गवासी हो गये। मैं और्व मुनिके आश्रमपर रहकर तपस्या करती हूँ। मुझे तुम्हारे राज्य-शासनमें बहुत बड़ी त्रुटि दिखायी देती है। पातालसे सर्पोंने आकर यहाँ दस मुनिकुमारोंको डँस लिया है तथा जलाशयोंके जलको भी दूषित कर दिया है। ये पसीने, मूत्र और विष्ठासे हविष्यको दूषित कर देते हैं। यद्यपि महर्षि इन सबको भस्म कर डालनेकी शक्ति रखते हैं, किन्तु किसीको दण्ड देनेका अधिकार इनका नहीं है। इसके अधिकारी तो तुम्हीं हो। राजकुमारोंको तभीतक भोगजनित सुखकी प्राप्ति होती है, जबतक उनके मस्तकपर राज्याभिषेकका जल नहीं पड़ता। कौन मित्र है, कौन शत्रु है, मेरे शत्रुका बल कितना है, मैं कौन हूँ? मेरे मन्त्री कौन हैं, मेरे

पक्षमें कौन कौन-से राजा हैं, वे मुझसे विरक्त हैं या अनुरक्त? शत्रुओंने उन्हें फोड़ तो नहीं लिया है? शत्रुपक्षके लोगोंकी भी क्या स्थिति है, मेरे इस नगर अथवा राज्यमें कौन मनुष्य श्रेष्ठ है, कौन धर्म-कर्मका आश्रय लेता है, कौन मूढ़ है तथा किसका बर्ताव उत्तम है, किसको दण्ड देना चाहिये, कौन पालन करने योग्य है, किन मनुष्योंपर सदा मुझे दृष्टि रखनी चाहिये—इन सब बातोंपर सदा विचार करते रहना राजाका कर्तव्य है। देश-कालकी अवस्थापर दृष्टि रखनेवाले राजाको उचित है कि वह सब ओर कई गुप्तचर लगाये रखे। वे गुप्तचर परस्पर एक दूसरेसे परिचित न हों। उनके द्वारा यह जाननेकी चेष्टा करे कि कोई राजा अपने साथ की हुई सन्धिको भंग तो नहीं करता। राजा अपने समस्त मन्त्रियोंपर भी गुप्तचर लगा दे। इन सब कार्योंमें सदा मन लगाते हुए राजा अपना समय व्यतीत करे। उसे दिन-रात भोगासक्त नहीं होना चाहिये। भूपाल! राजाओंका शरीर भोग भोगनेके लिये नहीं होता, वह तो पृथ्वी और स्वधर्मके पालनपूर्वक भारी क्लेश सहन करनेके लिये मिलता है। राजन्! पृथ्वी और स्वधर्मका भलीभाँति पालन करते समय जो इस लोकमें महान् कष्ट होता है, वही स्वर्गमें अक्षय एवं महान् सुखकी प्राप्ति करानेवाला होता है। अतः नरेश्वर! तुम इस बातको समझो और भोगोंका त्याग करके पृथ्वीका पालन करनेके लिये कष्ट उठाना स्वीकार करो। तुम्हारे शासन-कालमें ऋषियोंको सर्पोंकी ओरसे जो भारी संकट प्राप्त हुआ है, उसे तुम नहीं जानते। मालूम होता है तुम गुप्तचररूपी नेत्रसे अन्धे हो। अधिक कहनेसे क्या। अभ, तुम दुष्टोंको दण्ड दो और सज्जन पुरुषोंका पालन करो। इससे तुम प्रजाके धर्मके छठे अंशके भागी हो सकोगे। यदि तुम प्रजाजनोंकी रक्षा नहीं करोगे तो दुष्टलोग उद्दण्डतावश जो कुछ भी पाप करेंगे, वह सब तुम्हींको भोगना पड़ेगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो वह करो।' महाराज! आपकी पितामहीने जो कुछ कहा था, वह सब मैंने सुना दिया। अब आपकी जैसी रुचि हो, वैसा करें।''

तपस्वीकी यह बात सुनकर राजा मरुत्तको बड़ी लज्जा हुई, 'सचमुच ही मैं गुप्तचररूपी नेत्रसे अन्धा हूँ। मुझे धिक्कार है'—यों कहकर लंबी साँस ले उन्होंने धनुष उठाया और तुरंत ही और्वके आश्रमपर पहुँचकर अपनी पितामही वीराको तथा अन्यान्य तपस्वी महात्माओंको प्रणाम किया। उन सबने आशीर्वाद देकर राजाका अभिनन्दन किया। तत्पश्चात् सर्पोंके काटनेसे मरकर पृथ्वीपर पड़े हुए सात तपस्वियोंको देख उन सबके सामने मरुत्तने बारंबार अपनी निन्दा की और कहा—'मेरे पराक्रमकी अवहेलना करके ब्राह्मणोंके साथ द्वेष करनेवाले दुष्ट सर्पोंकी मैं जो दुर्दशा करूँगा, उसे देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण संसार देखे।'

यों कहकर राजाने कुपित हो पातालवलोक-निवासी सम्पूर्ण नागोंका संहार करनेके लिये संवर्तक नामक अस्त्र उठाया। तब उस महान् अस्त्रके तेजसे सारा नागलोक सब ओरसे सहसा जल उठा। उस समय जो घबराहट हुई, उसमें नागोंके मुखसे 'हा तात! हा माता! हा वत्स!' की पुकार सुनायी देती थी। किन्हींके पूँछ जलने लगे और किन्हींके फण। कुछ सर्प अपने वस्त्र और आभूषण छोड़कर स्त्री पुत्रोंको साथ ले पाताल त्यागकर मरुत्तकी माता भामिनीकी शरणमें गये, जिसने पूर्वकालमें उन्हें अभय दान दे रखा था। भामिनीके पास पहुँचकर भयसे व्याकुल हुए

समस्त सर्पोंने प्रणामपूर्वक गद्गदवाणीमें कहा—'वीरजननी! आजसे पहले रसातलमें हमलोगोंने जो आपका सत्कार किया था और आपने हमें अभय-दान दिया, उसके पालनका यह समय आ पहुँचा है। हमारी रक्षा कीजिये। यशस्विनि! आपके पुत्र मरुत्त अपने अस्त्रके तेजसे हमलोगोंको दग्ध कर रहे हैं। इस समय आपके सिवा और कोई हमें शरण देनेवाला नहीं है। आप हमपर कृपा कीजिये।'

सर्पोंकी यह बात सुनकर और पहले अपने दिये हुए वचनको याद करके साध्वी भामिनीने तुरंत ही अपने पतिसे कहा—'नाथ! मैं पहले ही आपको यह बात बता चुकी हूँ कि नागोंने पातालमें मेरा सत्कार करके मेरे पुत्रसे प्राप्त होनेवाले भयकी चर्चा की थी और मैंने इनकी रक्षाका वचन दिया था। आज ये भयभीत होकर मेरी शरणमें आये हैं। मरुत्तके अस्त्रसे ये सब लोग दग्ध हो रहे हैं। जो मेरे शरणागत हैं, वे आपके भी हैं; क्योंकि मेरा धर्माचरण आपसे पृथक् नहीं है तथा मैं स्वयं भी आपकी शरणमें हूँ। अतः आप अपने पुत्र मरुत्तको आदेश देकर रोकिये, मैं भी उससे अनुरोध करूँगी। मेरा विश्वास है, वह अवश्य शान्त हो जायगा।'

अवीक्षित बोले—देवि! निश्चय ही किसी भारी अपराधके कारण मरुत्त कुपित हुआ है, अतः मैं तुम्हारे पुत्रका क्रोध शान्त करना कठिन मानता हूँ।

नागोंने कहा—राजन्! हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हमपर कृपा करें। पीड़ितोंकी रक्षा करनेके लिये ही क्षत्रियलोग शस्त्र धारण करते हैं।

शरण चाहनेवाले नागोंकी यह बात सुनकर तथा पत्नीके प्रार्थना करनेपर महायशस्वी अवीक्षितने कहा—'मैं तुरंत चलकर नागोंकी रक्षाके लिये तुम्हारे पुत्रसे कहता हूँ, क्योंकि शरणागतोंका त्याग करना उचित नहीं है। यदि राजा मरुत्त मेरे कहनेसे अपने शस्त्रको नहीं लौटायेगा तो मैं अपने अस्त्रोंसे उसके अस्त्रका निवारण करूँगा।' यह कहकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अवीक्षित धनुष ले अपनी स्त्रीके साथ तुरंत ही और्व मुनिके आश्रमपर गये।

वहाँ पहुँचकर अवीक्षितने देखा, भामिनीका पुत्र अपने हाथमें एक श्रेष्ठ धनुष लिये हुए है, उसका अस्त्र बड़ा ही भयानक है, उसकी ज्वालासे समस्त दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं। वह अपने अस्त्रसे आग उगल रहा है, जो समस्त भूमण्डलको जलाती हुई पातालके भीतर पहुँच गयी है। वह अग्नि अत्यन्त भयानक और असह्य है। राजा मरुत्तको भौंहें टेढ़ी किये खड़ा देख अवीक्षितने कहा—'मरुत्त! क्रोध न करो, अपने अस्त्रको लौटा लो।' यह बात उन्होंने बार-बार कही और इतनी शीघ्रतासे कही कि उतावलीके कारण कितने ही अक्षरोंका उच्चारण नहीं हो पाता था।

पिताकी बात सुनकर और बारंबार उन्हें देखकर हाथमें धनुष लिये हुए मरुत्तने माता और पिता दोनोंको प्रणाम किया और इस प्रकार उत्तर दिया—'पिताजी! मेरा शासन होते हुए भी सर्पोंने मेरे बलकी अवहेलना करके भारी अपराध किया है। इन महर्षियोंके आश्रममें घुसकर नागोंने दस मुनिकुमारोंको डँस लिया है। इतना ही नहीं, इन दुराचारियोंने हविष्योंको भी दूषित किया है तथा यहाँ जितने जलाशय हैं, उन सबको विष मिलाकर खराब कर दिया है। ये सभी सर्प ब्रह्महत्यारे हैं, अतः इनका वध करनेसे आप हमें न रोकें।'

अवीक्षित बोले—'राजन्! ये सर्प मेरी शरणमें आ गये हैं, अतः मेरे गौरवका ध्यान रखते हुए ही तुम इस अस्त्रको लौटा लो। क्रोध करनेकी आवश्यकता नहीं है।

मरुत्तने कहा—'पिताजी! ये दुष्ट और अपराधी हैं। इन्हें क्षमा नहीं करूँगा। जो राजा दण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देता और साधु पुरुषोंका पालन करता है, वह पुण्यलोकोंमें जाता है तथा जो अपने कर्तव्यकी उपेक्षा करता है, वह नरकोंमें पड़ता है।

अवीक्षित बोले—राजन्! ये सर्प भयभीत होकर मेरी शरणमें आये हैं और मैं तुम्हें मना करता हूँ; फिर भी इन नागोंकी हिंसा करते हो तो मैं तुम्हारे अस्त्रका प्रतिकार करता हूँ। मैंने भी अस्त्र-विद्या सीखी है। पृथ्वीपर केवल तुम्हीं अस्त्रवेत्ता नहीं हो। भला, मेरे आगे तुम्हारा पुरुषार्थ क्या है।

यह कहकर क्रोधसे लाल आँखें किये अवीक्षितने धनुष चढ़ाया और उसपर कालास्त्रका सन्धान किया; फिर तो समुद्र और पर्वतोंसहित समूची पृथ्वी, जो संवर्तास्त्रसे सन्तप्त हो रही थी, कालास्त्रका सन्धान होते ही काँप उठी। मरुत्तने भी पिताद्वारा उठाये हुए कालास्त्रको देखकर कहा—'तात! मैंने तो दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये यह अस्त्र उठाया है, आपका वध करनेके लिये नहीं। फिर आप मुझपर कालास्त्रका प्रयोग क्यों करते हैं? महाभाग! मुझे प्रजाजनोंका पालन करना है। आप क्यों मेरा वध करनेके लिये अस्त्र उठाते हैं?'

अवीक्षित बोले—हम शरणागतोंकी रक्षा करनेपर तुल गये हैं और तुम इसमें विघ्न डालनेवाले हो; अतः मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा। जो शरणमें आये हुए पीड़ित मनुष्यपर, वह शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, दया नहीं दिखाता, उस पुरुषके जीवनको धिक्कार है। मैं क्षत्रिय हूँ। ये भयभीत होकर मेरी शरणमें आये हैं और तुम्हीं इनके अपकारी हो। फिर तुम्हारा वध क्यों न किया जाय?

मरुत्तने कहा—मित्र, बान्धव, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा-पालनमें विघ्न डाले तो राजाके द्वारा वह मार डालने योग्य है। अतः पिताजी! मैं आपपर प्रहार करूँगा। आप मुझपर क्रोध न कीजियेगा। मुझे अपने धर्मका पालनमात्र करना है। आपपर मेरा रत्तीभर भी क्रोध नहीं है।

उन दोनोंको एक-दूसरेका वध करनेके लिये दृढ़संकल्प देख भार्गव आदि मुनि बीचमें आ पड़े और मरुत्तसे बोले—'तुम्हें अपने पितापर हथियार चलाना उचित नहीं है।' फिर अवीक्षितसे बोले—'आपको भी अपने विख्यात पुत्रका वध नहीं करना चाहिये।'

मरुत्तने कहा—ब्राह्मणो! मैं राजा हूँ, मुझे दुष्टोंका वध और साधु पुरुषोंकी रक्षा करनी है। ये सर्पलोग दुष्ट हैं। अतः मेरा इसमें क्या अपराध है?

अवीक्षित बोले—मुझे शरणागतोंकी रक्षा करनी है और यह उन्हीं शरणागतोंका वध करता है; अतः मेरा पुत्र होनेपर भी अपराधी है।

ऋषियोंने कहा—ये नाग कह रहे हैं कि दुष्ट सर्पोंने जिन ब्राह्मणोंको काट खाया है, उन्हें हम जीवित किये देते हैं। अतः युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप दोनों श्रेष्ठ राजा प्रसन्न हों।

इसी समय वीराने आकर अपने पुत्र अवीक्षितसे कहा—'वत्स! मेरे कहनेसे ही तुम्हारा पुत्र इन नागोंका वध करनेके लिये उद्यत हुआ है। यदि मरे हुए ब्राह्मण जीवित हो जाते हैं तो अपना कार्य सिद्ध हो जायगा और तुम्हारे शरणागत सर्प जीवित छूट जायँगे।' तब नागोंने विष खींचकर दिव्य ओषधियोंके प्रयोगसे उन ब्राह्मणोंको जीवित कर दिया। तदनन्तर राजा मरुत्तने पुनः अपने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और कहा—'वत्स! तुम शत्रुओंका मान मर्दन करो, चिरकालतक पृथ्वीका पालन करते रहो। पुत्र और

पौत्रोंके साथ आनन्द भोगो तथा तुम्हारे कोई शत्रु न हों।'

इसके बाद ब्राह्मणों और वीराकी आज्ञा ले अवीक्षित, मरुत्त और भामिनी रथपर आरूढ़ हो अपनी राजधानीको चले गये। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाभागा पतिव्रता वीरा भी भारी तपस्या करके पतिके लोकमें चली गयी। राजा मरुत्तने भी काम, क्रोध आदि छः शत्रुओंको जीतकर धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन किया। महाबली महाराज मरुत्तका ऐसा ही पराक्रम था। सातों द्वीपोंमें कहीं भी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं होता था। उनके समान दूसरा कोई राजा न हुआ है, न होगा। वे सत्त्व तथा पराक्रमसे युक्त और महान् तेजस्वी थे। द्विजश्रेष्ठ! महात्मा मरुत्तके उत्तम जन्म एवं चरित्रकी यह कथा सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

राजा नरिष्यन्त और दमका चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं—मरुत्तके अठारह पुत्रोंमें नरिष्यन्त सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ थे। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ महाराज मरुत्तने पचासी हजार वर्षोंतक समूची पृथ्वीका राज्य किया। धर्मपूर्वक राज्यका पालन और उत्तमोत्तम यज्ञोंका अनुष्ठान करके मरुत्तने अपने ज्येष्ठ पुत्र नरिष्यन्तको राजपदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं वनमें चले गये। वहाँ एकाग्रचित्त होकर उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की और अपने सुयशसे पृथ्वी एवं आकाशको व्याप्त करके वे स्वर्गलोकमें चले गये। तदनन्तर उनके बुद्धिमान् पुत्र नरिष्यन्तने अपने पिता तथा अन्य पूर्वजोंके चरित्रकी आलोचना करके मन-ही-मन सोचा—वंशकी मान मर्यादाका पालन, लज्जाकी रक्षा, शत्रुओंपर क्रोध, सबको अपने-अपने धर्ममें लगाना और युद्धसे कभी पीठ न दिखाना—इन सब बातोंका मेरे पूर्वपुरुषोंने तथा पिताजीने जैसा पालन किया है, वैसा दूसरा कौन कर सकता है। मेरे पूर्वजोंने कौन ऐसा शुभ कर्म नहीं किया है, जिसको मैं करूँ। वे बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले जितेन्द्रिय, संग्रामसे पीछे न हटनेवाले, बड़े-बड़े युद्धोंमें भाग लेनेवाले तथा अनुपम पुरुषार्थी थे, मैं निष्काम कर्मका अनुष्ठान करूँगा। मेरे पहलेके राजाओंने स्वयं ही निरन्तर यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, दूसरोंसे नहीं कराया है; मैं ऐसा करूँगा, जिससे दूसरे भी यज्ञ करें।

यों विचारकर महाराज नरिष्यन्तने धन-दानसे सुशोभित एक ऐसा यज्ञ किया, जिसके समान यज्ञ दूसरे किसीने नहीं किया था। उन्होंने ब्राह्मणोंके जीवन-निर्वाहके लिये बहुत बड़ी सम्पत्ति देकर उसकी अपेक्षा सौगुना अन्न दान किया। इस भूमिपर रहनेवाले प्रत्येक ब्राह्मणको धन और अन्न देनेके अतिरिक्त गौ, वस्त्र, आभूषण तथा धान्य भण्डार आदि भी दिये। इसके बाद जब राजाने दूसरा यज्ञ आरम्भ करना चाहा, तब इसके लिये उन्हें कहीं ब्राह्मण ही नहीं मिले। वे जिस-जिस ब्राह्मणका वरण करते, वही उत्तर देता, 'हम तो स्वयं ही यज्ञ कर रहे हैं। आप दूसरे किसी ब्राह्मणका वरण कीजिये। आपने पहले ही यज्ञमें हमें इतना धन दे दिया है, जो अनेक यज्ञ करनेपर भी समाप्त नहीं होगा। अब हमें और धनकी आवश्यकता नहीं।'

जब एक भी ऋत्विज ब्राह्मण नहीं मिला, तब महाराजने बहिर्वेदीमें दान देनेका आयोजन किया तथापि धनसे घर भरा रहनेके कारण ब्राह्मणोंने वह दान नहीं ग्रहण किया। उस समय राजाने यह

उद्गार प्रकट किया—'अहो! इस पृथ्वीपर कहीं एक भी निर्धन ब्राह्मण नहीं है, यह कितनी सुन्दर बात है!' तदनन्तर उन्होंने भक्तिपूर्वक बारंबार प्रणाम करके कुछ ब्राह्मणोंको ऋत्विज बनाया और बहुत बड़ा यज्ञ आरम्भ किया। उस समय यह बड़े आश्चर्यकी बात यह हुई कि भूमण्डलके सभी ब्राह्मण यज्ञ करने लगे, इसलिये राजाके यज्ञ-मण्डपमें कोई सदस्य न बन सका। कुछ ब्राह्मण यजमान थे और कुछ यज्ञ करानेवाले पुरोहित बन गये। राजा नरिष्यन्तने जिस समय यज्ञ आरम्भ किया, उस समय पृथ्वीके समस्त ब्राह्मण उन्हींके दिये हुए धनसे यज्ञ करने लगे। पूर्व दिशामें अठारह करोड़, पश्चिममें सात करोड़, दक्षिणमें चौदह करोड़ और उत्तरमें पंद्रह करोड़ यज्ञ एक ही समय आरम्भ हुए। इस प्रकार मरुत्तनन्दन राजा नरिष्यन्त बड़े धर्मात्मा हुए। वे अपने बल और पुरुषार्थके लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे।

नरिष्यन्तके दम नामक पुत्र हुआ, जो दुष्ट शत्रुओंका दमन करनेवाला था। उसमें इन्द्रके समान बल और मुनियोंके समान दया एवं शील था। बभ्रुकी कन्या इन्द्रसेना नरिष्यन्तकी पत्नी थी। उसीके गर्भसे दमका जन्म हुआ था। उस महायशस्विनी पुत्री ने नौ वर्षोंतक माताके गर्भमें रहकर उनके द्वारा दमका पालन कराया, तथा स्वयं भी दमनशील था। इसीलिये त्रिकालवेत्ता पुरोहितने उसका नाम 'दम' रखा। राजकुमार दमने दैत्यराज वृषपर्वासे सम्पूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा पायी। तपोवननिवासी दैत्यराज दुन्दुभिसे सम्पूर्ण अस्त्र प्राप्त किये। महर्षि शक्तिसे वेदों तथा समस्त वेदाङ्गोंका अध्ययन किया और राजर्षि आर्ष्टिषेणसे योगविद्या प्राप्त की। वे सुन्दर रूपवान्, महात्मा, अस्त्रविद्याके ज्ञाता और महान् बलवान् थे; अतः राजकुमारी सुमनाने पिताद्वारा आयोजित स्वयंवरमें उन्हें अपना पति चुन लिया। वह दशार्ण देशके बलवान् राजा चारुवर्माकी पुत्री थी। उसकी प्राप्तिके लिये वहाँ जितने राजा आये थे, सब देखते ही रह गये और उसने दमका वरण कर लिया। मद्रराजकुमार महानन्द, जो बड़ा बलवान् और पराक्रमी था, सुमनाके प्रति अनुरक्त हो गया था; इसी प्रकार विदर्भ देशके राजा संक्रन्दनका राजकुमार वपुष्मान् तथा उदारबुद्धि महाधनु भी सुमनाकी ओर आकृष्ट थे। उन सबने देखा, सुमनाने दुष्ट शत्रुओंका दमन करनेवाले दमका वरण कर लिया; तब कामसे मोहित होकर आपसमें सलाह की—'हमलोग इस सुन्दरी कन्याको बलपूर्वक पकड़कर घर ले चलें। वहाँ यह स्वयंवरकी विधिसे हममेंसे जिसको वरण करेगी, उसीकी पत्नी होगी।'

ऐसा निश्चय करके उन तीनों राजकुमारोंने दमके पास खड़ी हुई उस सुन्दरी कन्याको पकड़ लिया। उस समय जो राजा दमके पक्षमें थे, उन्होंने बड़ा कोलाहल मचाया। कुछ लोग कुपित होकर रह गये और कुछ लोग मध्यस्थ बन गये। इस घटनासे दमके चित्तमें तनिक भी घबराहट नहीं हुई। उन्होंने चारों ओर खड़े हुए राजाओंको देखकर कहा—'भूपालगण! स्वयंवरको धार्मिक कार्योंमें गणना है, किन्तु यह वास्तवमें अधर्म है या धर्म? इस कन्याको इन लोगोंने जो बलपूर्वक पकड़ लिया है—यह उचित है या अनुचित? यदि स्वयंवर अधर्म है, तब तो मुझे इससे कोई मतलब नहीं है; यह भले ही दूसरेकी पत्नी हो जाय। किन्तु यदि वह धर्म है, तब तो यह मेरी पत्नी हो चुकी; उस दशामें इन प्राणोंको धारण करके क्या होगा, जो शत्रुकी उपेक्षा करके बचाये जाते हैं।' तब दशार्णनरेश चारुवर्माने कोलाहल शान्त कराकर सभासदोंसे पूछा—'राजाओ! दमने जो

यह धर्म और अधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली बात पूछी है, इसका उत्तर आपलोग दें, जिससे इनके और मेरे धर्मका लोप न हो।'

तब कुछ राजाओंने कहा—'परस्पर अनुराग होनेपर गान्धर्व-विवाहका विधान है। परन्तु यह क्षत्रियोंके लिये ही विहित है; वैश्य, शूद्र और ब्राह्मणोंके लिये नहीं। दमका वरण कर लेनेसे आपकी इस कन्याका गान्धर्व-विवाह सम्पन्न हो गया। इस प्रकार धर्मकी दृष्टिसे आपकी पुत्री दमकी पत्नी हो चुकी। जो मोहवश इसके विपरीत आचरण करता है, वह कामासक्त है।' यह सुनकर दमके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने धनुषको चढ़ाया और यह वचन कहा—'यदि मेरी पत्नी मेरे देखते-देखते बलवान् राजाओंके द्वारा हर ली जाय तो मुझ-जैसे नपुंसकके उत्तम कुलसे तथा इन दोनों भुजाओंसे क्या लाभ हुआ। उस दशामें तो मेरे अस्त्रोंको, शौर्यको, बाणोंको, धनुषको तथा महात्मा मरुत्तके कुलमें प्राप्त हुए जन्मको भी धिक्कार है।' यों कहकर दमने महानन्द आदि समस्त शत्रुओंसे कहा—'भूपालो! यह बाला अत्यन्त सुन्दरी और कुलीन है। यह जिसकी पत्नी नहीं हुई, उसका जन्म लेना व्यर्थ है—यह विचारकर तुमलोग युद्धमें इस प्रकार यत्न करो, जिससे युद्धमें मुझे परास्त करके इसे अपनी पत्नी बना सको।'

यह कहकर राजकुमार दमने वहाँ बाणोंकी बौछार आरम्भ की। जैसे अन्धकार वृक्षोंको ढक देता है, उसी प्रकार दमने उन राजाओंको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। वे भी वीर थे; अतः बाण, शक्ति, ऋष्टि तथा मुद्गरोंकी वर्षा करने लगे। किन्तु दमने उनके चलाये हुए सब हथियारोंको खेल-खेलमें ही काट डाला। तब महापराक्रमी महानन्द वहाँ आ पहुँचा और उनके साथ युद्ध करने लगा। तब दमने उसकी छातीमें एक कालाग्निके समान भयङ्कर बाण मारा। उससे उसकी छाती विदीर्ण हो गयी; तो भी उसने उस बाणको खींचकर निकाल दिया और दमके ऊपर चमचमाती हुई तलवार फेंकी। उसे उल्काके समान अपनी ओर आते देख दमने शक्तिके प्रहारसे काट डाला और वेतसपत्र नामक बाणसे महानन्दका मस्तक धड़से अलग कर दिया। महानन्दके मारे जानेपर अधिकांश राजा पीठ दिखाकर भाग गये; केवल कुण्डिनपुरका स्वामी वपुष्मान् डटा रहा और दमके साथ युद्ध करने लगा। युद्ध करते समय उसकी भयङ्कर तलवारको दमने बड़ी फुर्तीसे काट दिया तथा उसके सारथिके मस्तक और ध्वजाको भी काट गिराया। तलवार कट जानेपर वपुष्मान्ने एक गदा उठायी, जिसमें बहुत सी काँटियाँ गड़ी हुई थीं; किन्तु दमने उसको भी उसके हाथमें ही काट डाला। फिर वपुष्मान् ज्यों ही कोई श्रेष्ठ आयुध हाथमें लेने लगा, त्यों ही दमने उसे बाणोंसे बींधकर पृथ्वीपर गिरा दिया। पृथ्वीपर गिरते ही उसका सारा शरीर व्याकुल हो गया। वह थर-थर काँपने लगा। अब युद्ध करनेका उसका विचार न रहा। उसको इस अवस्थामें देखकर दमने जीवित छोड़ दिया और प्रसन्नचित्त हो सुमनाको साथ ले वहाँसे चल दिया। तब दशार्ण देशके राजा चारुकर्माने प्रसन्न होकर दम और सुमनाका विधिपूर्वक विवाह कर दिया। तदनन्तर कुछ काल ठहरनेके पश्चात् दम अपनी स्त्रीसहित अपने घरको चले गये। दशार्णराजने भी बहुत से हाथी, घोड़े, रथ, गौ, खच्चर, ऊँट, दास-दासियाँ, वस्त्र, आभूषण और धनुष आदि श्रेष्ठ सामग्री तथा बहुत-से बर्तन दहेजमें देकर वर वधूको विदा किया।

महामुने! दम सुमनाको पत्नीरूपमें पाकर बड़े प्रसन्न थे। घर आकर उन्होंने माता-पिताके चरणोंमें

प्रणाम किया। सुमनाने भी सास-ससुरके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तब उन दोनोंने भी आशीर्वाद देकर नव-दम्पतिका अभिनन्दन किया। फिर तो नरिष्यन्तके नगरमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। दशार्णराज सम्बन्धी हुए और बहुत-से राजा पुत्रके हाथों युद्धमें परास्त हो गये, यह सुनकर महाराज नरिष्यन्त बहुत प्रसन्न हुए। दशार्णराजकुमारी सुमना दमके साथ बहुत समयतक विहार करती रही। फिर उसने गर्भ धारण किया। राजा नरिष्यन्त भी सब भोगोंको भोगकर वृद्धावस्थामें पहुँच चुके थे, इसलिये वे दमको राजपदपर अभिषिक्त करके स्वयं वनमें चले गये। उनकी यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेनाने भी उनका ही अनुसरण किया। नरिष्यन्त वहाँ वानप्रस्थके नियमोंका पालन करते हुए रहने लगे।

एक दिन दक्षिण देशका दुराचारी राजकुमार वपुष्मान्, जो संक्रन्दनका पुत्र था, थोड़ी-सी सेना साथ ले वनमें शिकार खेलनेके लिये गया। उसने तपस्वी नरिष्यन्त तथा उनकी पत्नी इन्द्रसेनाको तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल देखकर पूछा—'आप वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य हैं? मुझे बताइये।' राजा नरिष्यन्तने मौन-व्रत धारण कर लिया था, इसलिये उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया; किन्तु उनकी पत्नी इन्द्रसेनाने सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। परिचय पाकर वपुष्मान्ने सोचा, अब तो मैं अपने शत्रुके पिताको पा गया हूँ। यह विचारकर उसने कुपित हो नरिष्यन्तकी जटा पकड़ ली। इन्द्रसेना और बहाती हुई गद्गदकण्ठसे रोने और हाहाकार करने लगी। वपुष्मान्ने म्यानसे तलवार निकाल ली और यह बात कही, 'जिसने युद्धमें मुझे परास्त किया और मेरी सुमनाको हर लिया, उस दमके पिताको आज मैं मार डालूँगा। अब वह आकर उनकी रक्षा करे।'

यों कहकर उस दुराचारीने इन्द्रसेनाको रोती-बिलखती छोड़ नरिष्यन्तका मस्तक काट डाला, तब समस्त मुनि तथा अन्य वनवासी भी उसे धिक्कारने लगे। वपुष्मान् अपने नगरको लौट गया। उसके चले जानेपर इन्द्रसेनाने एक शूद्र तपस्वीको अपने पुत्रके पास भेजा और कहा—'तुम शीघ्र जाकर मेरे पुत्रसे यह सब हाल कहो। मेरा सन्देश इस प्रकार कहना—'महाराजकी इस प्रकार तिरस्कारपूर्ण हिंसा देखकर मैं बहुत दुःखी हूँ। राजा होनेका अधिकार उसीको है, जो चारों वर्णों और आश्रमोंकी रक्षा करे। तुम जो तपस्वियोंकी रक्षा नहीं करते, क्या यही तुम्हारे लिये उचित है? तुम्हारे महाराज नरिष्यन्तके विषयमें यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि बिना किसी अपराधके उनके केश पकड़कर वपुष्मान्ने उनकी हत्या की; ऐसी स्थितिमें तुम वही कार्य करो, जिससे तुम्हारे धर्मका लोप न हो। इससे आगे मुझे कुछ नहीं कहना है, क्योंकि मैं तपस्विनी हूँ। तुम्हारे मन्त्री और सब शास्त्रोंके ज्ञाता हैं; उन सबके साथ विचार करके इस समय जो करना उचित हो, वह करो। अपने पिता शक्तिको राक्षसके हाथसे मारा गया सुनकर महर्षि पराशरने समस्त राक्षस कुलको अग्निकुण्डमें होमकर भस्म कर दिया था। मैं तो ऐसा मानती हूँ कि तुम्हारे पिता नहीं, तुम मारे गये; उनके ऊपर नहीं, तुम्हारे ऊपर वह तलवार गिरी है। यह तुम्हारी ही मर्यादाका उल्लङ्घन किया गया है। अब तुम्हें भृत्य, कुटुम्ब और बन्धु-बान्धवोंसहित वपुष्मान्के प्रति जो बर्ताव करना उचित हो, वह करो।'

इस प्रकार संदेश दे इन्द्रसेनाने शूद्र तपस्वीको विदा किया और स्वयं पतिके शरीरको गोदमें ले वे अग्निमें प्रवेश कर गयीं। इन्द्रसेनाकी आज्ञासे

अनुसार शुद्र तापसने वहाँ जाकर दमसे उनके पिताके मारे जानेका सब समाचार कहा। यह सुनकर दम क्रोधसे जल उठा। जैसे घी डालनेपर आग प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार दम क्रोधाग्निसे जलते हुए हाथ-से-हाथ मलने लगे और इस प्रकार बोले—'ओह! मुझ पुत्रके जीते-जी उस नृशंस वपुष्मान्‌ने मेरे पिताको अनाथकी भाँति मार डाला और इस प्रकार मेरे कुलका अपमान किया। यदि मैं बैठकर शोक मनाऊँ या क्षमा कर दूँ तो यह मेरी नपुंसकता है। दुष्टोंका दमन और साधु पुरुषोंका पालन—यही मेरा कर्तव्य है। मेरे पिताको मारा गया देखकर भी यदि शत्रु जीवित है तो अब 'हा तात! हा तात!' कहकर बहुत अधिक विलाप करनेसे क्या होगा। इस समय जो करना आवश्यक है, वही मैं करूँगा। उस कायर, पापी एवं दुष्ट दक्षिण-देशनिवासी शत्रुको युद्धमें मारकर सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोगूँगा। यदि उसे न मार सका तो स्वयं ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। यदि देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लिये स्वयं ही इस युद्धमें पधारें, भयङ्कर दण्ड लिये साक्षात् यमराज भी कुपित होकर आ जायँ, कुबेर, वरुण और सूर्य भी वपुष्मान्‌की रक्षाका यत्न करें तो भी मैं अपने तीखे बाणोंसे उसका वध कर डालूँगा। जो नियतात्मा, निर्दोष, वनवासी, अपने आप गिरे हुए फलका आहार करनेवाले तथा सब प्राणियोंके मित्र थे—ऐसे मेरे पिताकी जिसने मुझ जैसे शक्तिशाली पुत्रके रहते हुए हिंसा की है, उसके मांस और रक्तसे आज गृध्र तृप्त हों।'

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके नरिष्यन्तकुमार दमने मन्त्रियों तथा पुरोहितको बुलाकर कहा—'शुद्र तपस्वीने जो समाचार कहा है, उसे आपलोगोंने सुन लिया होगा। पिताजी तो स्वर्गधाममें जा पहुँचे। अब मेरे लिये जो उचित हो, सो बताओ। आज मैं वही करूँगा, जिसके लिये मेरी माताने आज्ञा दी है। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलसे युक्त चतुरङ्गिणी सेना तैयार करो। पिताके वैरका बदला लिये बिना, पिताके हत्यारेका प्राण लिये बिना तथा माताजीकी आज्ञाका पालन किये बिना मुझे जीवित रहनेका उत्साह नहीं है।' राजाकी यह बात सुनकर खिन्नचित्त हुए मन्त्रियोंने सेवकों और वाहनोंसहित सेनाको कूचके लिये तैयार किया और त्रिकालवेत्ता पुरोहितसे आशीर्वाद ले सब लोग तलवार, शक्ति और ऋष्टि आदि आयुध लिये नगरसे बाहर निकले। महाराज दम नागराजकी भाँति फुफकारते हुए वपुष्मान्‌की ओर चले। उन्होंने वपुष्मान्‌के सीमारक्षकों तथा सामन्तोंका वध करते हुए, बड़े वेगसे दक्षिण दिशामें चढ़ाई की। संक्रन्दनकुमार वपुष्मान्‌को यह पता लग गया कि दम दल-बलसहित आ रहा है। इससे उसके मनमें तनिक भी भय या कम्प नहीं हुआ। उसने भी अपनी सेनाको युद्धके लिये तैयार होनेका आदेश दिया और नगरसे बाहर निकलकर दमके पास दूत भेजा। दूतने वहाँ जाकर कहा—'क्षत्रियाधम! तू शीघ्रतापूर्वक मेरे समीप आ। नरिष्यन्त अपनी स्त्रीके साथ तेरी प्रतीक्षा करते हैं। मेरी भुजाओंसे छूटे हुए बाण, जो शानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये गये हैं, तेरे शरीरमें घुसकर युद्धमें तेरा रक्तपान करेंगे।'

दूतकी कही हुई सारी बातें सुनकर दमने अपनी पूर्वोक्त प्रतिज्ञाका पुनः स्मरण किया और सर्पकी भाँति फुफकारते हुए वेगसे पैर बढ़ाया। कुण्डिनपुरके पास पहुँचकर दमने वपुष्मान्‌को युद्धके लिये ललकारा। फिर तो दोनोंमें भयङ्कर संग्राम छिड़ गया। रथी रथसवारके साथ, हाथीसवार हाथीसवारके साथ और घुड़सवार घुड़सवारके

साथ भिड़ गये। इस प्रकार समस्त देवताओं, सिद्धों और गन्धर्व आदिके देखते-देखते दोनों दलोंमें घमासान युद्ध हुआ। जब दम क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे, उस समय पृथ्वी काँप उठी। कोई हाथीसवार, रथी या घुड़सवार ऐसा नहीं मिला, जो उनका बाण सह सके। तदनन्तर वपुष्मान्‌का सेनापति दमके साथ युद्ध करने लगा। दमने अपने बाणसे उसकी छातीमें गहरी चोट पहुँचायी, जिससे वह गिरकर प्राणोंसे हाथ धो बैठा। सेनाध्यक्षके गिरते ही राजासहित सारी सेनामें भगदड़ पड़ गयी। तब दमने कहा—'ओ दुष्ट! तू मेरे तपस्वी पिताका, जिनके हाथमें कोई शस्त्र नहीं था, अकारण वध करके कहाँ भागा जाता है। यदि क्षत्रिय है तो लौट आ।' तब वपुष्मान् अपने छोटे भाईके साथ लौट आया। साथमें उसके पुत्र, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धव भी थे। वह रथपर आरूढ़ हो दमके साथ युद्ध करने लगा। दम अपने पिताके वधसे कुपित हो रहे थे। उन्होंने वपुष्मान्‌के चलाये हुए समस्त बाणोंको काट डाला और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गको बींध डाला। फिर एक-एक बाण मारकर उसके शत पुत्रों, भाइयों, सम्बन्धियों तथा मित्रोंको यमराजके घर भेज दिया। पुत्रों और भाइयोंके मारे जानेपर वपुष्मान्‌को बड़ा क्रोध हुआ और वह सर्पोंके समान विषैले बाणोंसे दमके साथ युद्ध करने लगा। दमने उसके बाणोंको काट डाला और उसने भी दमके बाण टुकड़े-टुकड़े कर डाले। दोनों ही अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे लड़ रहे थे। परस्परके बाणोंकी चोटसे दोनोंके धनुष कट गये, फिर दोनों तलवार हाथमें लेकर पैंतरे बदलने लगे। दमने क्षणभर अपने मरे हुए पिताका ध्यान किया, फिर दौड़कर वपुष्मान्‌की चोटी पकड़ ली। तत्पश्चात् उसे धरतीपर पटककर एक पैरसे उसका गला दबा दिया और अपनी भुजा उठाकर कहा—'समस्त देवता, मनुष्य, सिद्ध और नाग देखें, मैं इस नीच क्षत्रिय वपुष्मान्‌की छाती चीरे डालता हूँ।'

यों कहकर दमने अपनी तलवारसे उसकी छाती चीर डाली। इस प्रकार अपने पिताके वैरका बदला लेकर वे पुनः अपने नगरको लौट आये। सूर्यवंशके राजा ऐसे ही पराक्रमी हुए। इनके अतिरिक्त भी बहुत-से शूरवीर, विद्वान्, यज्ञकर्ता और धर्मज्ञ राजा हो गये हैं। वे सभी वेदान्तके पारङ्गत पण्डित थे। मैं उनकी संख्या बतलानेमें असमर्थ हूँ। इन सब राजाओंका चरित्र श्रवण करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है।

श्रीमार्कण्डेयपुराणका उपसंहार और माहात्म्य

पक्षी कहते हैं—जैमिनिजी! महातपस्वी मार्कण्डेय मुनिने यह सब कथा सुनाकर क्रौष्टुकिजीको विदा कर दिया। उसके बाद मध्याह्नकालकी क्रिया सम्पन्न की। महामुने! हमने भी उनसे जो कुछ सुना था, वह सब आपको कह सुनाया। यह अनादिसिद्ध पुराण ब्रह्माजीने पहले मार्कण्डेय मुनिको सुनाया था। वही हमने आपसे कहा है। यह पुण्यमय, पवित्र, आयुवर्धक तथा सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। जो इसका पाठ और श्रवण करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। आपने प्रारम्भमें जो कई प्रश्न किये थे, उसके उत्तरमें हमने पिता-पुत्र-संवाद, ब्रह्माजीके द्वारा रची हुई सृष्टि, मनुओंकी उत्पत्ति तथा राजाओंके चरित्र सुनाये हैं। यह सब बात तो हम बता चुके।

अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? जो मनुष्य इन सब प्रसङ्गोंका श्रवण तथा जनसमुदायमें पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है। पितामह ब्रह्माजीने जो अठारह पुराण कहे हैं, उनमें इस विख्यात मार्कण्डेयपुराणको सातवाँ पुराण समझना चाहिये। पहला ब्रह्मपुराण, दूसरा पद्मपुराण, तीसरा विष्णुपुराण, चौथा शिवपुराण, पाँचवाँ श्रीमद्भागवतपुराण, छठा नारदीय पुराण, सातवाँ मार्कण्डेयपुराण, आठवाँ अग्निपुराण, नवाँ भविष्यपुराण, दसवाँ ब्रह्मवैवर्तपुराण, ग्यारहवाँ नृसिंहपुराण, बारहवाँ वाराहपुराण, तेरहवाँ स्कन्दपुराण, चौदहवाँ वामनपुराण, पंद्रहवाँ कूर्मपुराण, सोलहवाँ मत्स्यपुराण, सत्रहवाँ गरुडपुराण और अठारहवाँ ब्रह्माण्डपुराण माना गया है। जो प्रतिदिन अठारह पुराणोंका नाम लेता तथा प्रतिदिन तीनों समय उनका जप करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। मार्कण्डेयपुराण चार प्रश्नोंसे युक्त है। इसके श्रवणसे सौ करोड़ कल्पोंके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा अन्य अशुभ इसके श्रवणसे उसी प्रकार नष्ट होते हैं, जैसे हवाका झोंका लगनेसे रूई उड़ जाती है। इसके श्रवणसे पुष्करतीर्थमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है।*

वन्ध्या अथवा मृतवत्सा स्त्री यदि यथावत् इस पुराणका श्रवण करे तो वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र प्राप्त करती है। इसका श्रवण करनेसे मनुष्य आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, धान्य, पुत्र तथा अक्षय वंश प्राप्त करता है। ब्रह्मन्! इस पुराणको पूरा सुन लेनेके बाद जो आवश्यक कर्तव्य है, उसे सुनो। विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करके विद्वान् पुरुष होम करे; पुराणस्वरूप भगवान् गोविन्दका हृदयकमलमें ध्यान करके गन्ध, पुष्प, माला, वस्त्र तथा नैवेद्य आदिके द्वारा पूजन करे। वाचककी पत्नीसहित पूजा करे। तत्पश्चात् उन्हें दूध देनेवाली सवत्सा गौ, खेतोंसे भरी हुई भूमि, सुवर्ण और चाँदी आदि वस्तुएँ यथाशक्ति दान करनी चाहिये। राजाओंको उचित है कि उन्हें ग्राम आदि तथा सवारी भी दें। वाचकको संतुष्ट करके उसके द्वारा स्वस्ति कहलाये। जो वाचककी पूजा न करके एक श्लोक भी सुनता है, वह उसके पुण्यका भागी नहीं होता; विद्वानोंने उसे शास्त्रचोर कहा है। मार्कण्डेयपुराणकी समाप्तिपर भारी उत्सव कराये और सब पापोंसे मुक्त होनेके लिये दूध देनेवाली गौ दान करे। साथ ही सपत्नीक ब्राह्मणको वस्त्र, रत्न, कुण्डल, अंगा, पगड़ी, ओढ़ने-बिछौने आदिसहित शय्या, जूता, कमण्डलु, सोनेकी अँगूठी, सप्तधान्य, भोजनके लिये काँसेकी थाली और घृतपात्र दान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। जो उत्तम विधिके साथ इसका श्रवण करता है, वह हजार

---

*ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा। तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं स्मृतम्। दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं नृसिंहैकादशं तथा॥
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दमत्र त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनकं कौर्मं पञ्चदशं तथा॥
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम्। अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत्॥
त्रिसन्ध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्। चतुःप्रश्नसमोपेतं पुराणं मार्कण्डसंज्ञकम्।
श्रुतेन नश्यते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम्। ब्रह्महत्यादिपापानि तथान्यान्यशुभानि च॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति तूलं वाताहतं यथा। पुष्करस्नानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते॥
(१३७। ८—१४)

अश्वमेध और सौ राजसूय-यज्ञोंका फल पाता है। उसे न यमराजसे भय होता है न नरकोंसे। वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है। इस पृथ्वीपर उसकी वंश-परम्परा सदा कायम रहती है तथा वह इन्द्रलोक एवं सनातन ब्रह्मलोकमें जाता है। वहाँसे पुनः च्युत होकर मनुष्य-योनिमें उसे नहीं आना पड़ता।

इस पुराणके श्रवणसे ही मनुष्य परम योग प्राप्त कर लेता है। नास्तिक, वेदनिन्दक शूद्र, गुरुद्रोही, व्रत-भंग करनेवाले, माता-पिताके त्यागी, सुवर्णचोर, मर्यादा भंग करनेवाले तथा जातिको कलङ्कित करनेवाले पुरुषोंको प्राण कण्ठमें आ जायँ तो भी इस पुराणका उपदेश नहीं देना चाहिये। यदि लोभ, मोह अथवा विशेषतः भयके कारण कोई उक्त मनुष्योंको यह पुराण सुनाता अथवा पढ़ाता है तो वह निश्चय ही नरकमें पड़ता है।*

जैमिनि बोले—'पक्षियो! महाभारतमें मेरे जिस सन्देहका निवारण नहीं हो सका, उसका निवारण आपलोगोंने मित्रभावसे किया है; ऐसा दूसरा कौन करेगा। आपलोग दीर्घायु, नीरोग तथा उत्तम वृत्तिसे युक्त हों। सांख्ययोगमें आपकी बुद्धि अविचलभावसे स्थित रहे। पिताके शापजनित दोषसे जो आपके मनमें दुःख रहता है, वह दूर हो जाय।'

यों कहकर महाभाग जैमिनि उन श्रेष्ठ पक्षियोंकी प्रशंसा करके अपने आश्रमपर चले गये। वे उन पक्षियोंद्वारा किये हुए परम उदार उपदेशका सदा चिन्तन करने लगे।

श्रीमार्कण्डेयपुराण सम्पूर्ण

* पुराणश्रवणादेव एवं योगमवाप्नुयात्। नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके॥
गुरुविद्वेषके चैव तथा भग्नव्रतेषु च। पितृमातृपरित्यागे सुवर्णस्तैथिने तथा॥
भिन्नमर्यादके चैव तथैव ज्ञातिदूषके। एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥
लोभाद्वा यदि वा मोहाद् भयाद्वापि विशेषतः। पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम्॥
(१३७। ३२—३५)

'कल्याण' के पुराने लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

ईश्वराङ्क [कल्याण वर्ष ७, सन् १९३२ ई०]—मनुष्यमात्रके मनमें इस जगत्के सृजक, पालक एवं संहारक सत्ताके विषयमें शाश्वत प्रश्न सदैव ही गूँजा करते हैं। अखिल सृष्टिके उसी कारण सत्ताको ईश्वर कहा जाता है। ईश्वर विषयक समस्त प्रश्नोंके समाधानके लिये 'कल्याण' में 'ईश्वराङ्क' का पूर्व प्रकाशन किया गया था। इस अङ्कमें ईश्वर-तत्त्व, ईश्वरमें विश्वास, ईश्वर-महिमा, ईश्वर और उसकी प्राप्ति, परमात्मा और जीवात्मा, ईश्वर-निरूपण, ईश्वरका अस्तित्व, विज्ञान और ईश्वर आदि अनेक विषयोंपर देश-विदेशके मूर्धन्य विद्वानों, सन्त-महापुरुषोंके लेखोंका अद्भुत संग्रह है। इसके अतिरिक्त अनेक सिद्ध महात्माओंके द्वारा ईश्वर सम्बन्धी प्रश्नोंका प्रश्नोत्तर शैलीमें सुन्दर समाधान भी है।

शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई०]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है। यह एक मूल्यवान् अध्ययन-सामग्री है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई०]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासना पद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। इसके अतिरिक्त भारतके सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठों तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोंका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लेखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं।

योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १०, सन् १९३६ ई०]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योग-सिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन हैं। यह विशेषाङ्क योगके कल्याणकारी और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी प्रभावोंकी ओर आकृष्ट कर 'योग' के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय कराता है।

संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई०]—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगवद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों, त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उच्चकोटिके पारमार्थिक आदर्शों, जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई०]—यह अङ्क उच्चकोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचार और उनके साधनापरक बहुमूल्य मार्ग दर्शनसे ओतप्रोत—महत्त्वपूर्ण है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विविध स्वरूप—ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। यह सभीके लिये उपयोगी दिशा-निर्देशक है।

भागवताङ्क [कल्याण वर्ष १६, सन् १९४२ ई०]—भारतीय संस्कृतिकी अनुपम निधि श्रीमद्भागवत संस्कृत वाङ्मयकी सर्वोत्कृष्ट परिणति है। इसमें वर्णित भगवान्की दिव्य-लीला, उत्कृष्ट काव्य, समाज-संगठन-प्रणाली, अध्यात्म, भक्त-चरित्र आदि संसारके लिये अनुकरणीय आदर्श है। श्रद्धालु भक्तोंके लिये तो यह साक्षात् भगवद्विग्रह एवं आश्रय स्थान है। इसीलिये गीताप्रेससे कल्याणके सोलहवें वर्षके विशेषाङ्कके रूपमें 'भागवताङ्क' का पूर्व प्रकाशन किया गया था। इसमें भारतके उत्कृष्ट संत महात्माओं-विद्वान् तथा चिन्तकोंके श्रीमद्भागवतके विभिन्न पक्षोंपर सुन्दर लेखोंके साथ सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका हिन्दी अनुवाद भी है।

संक्षिप्त महाभारत (सचित्र, सजिल्द दो खण्डोंमें) [वर्ष १७, सन् १९४३ ई०]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन और विवेचन है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंके समावेशके कारण इसे शास्त्रोंमें 'पञ्चम वेद' और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका 'विश्वकोश' कहा गया है।

भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३२, सन् १९५८ ई०]—इसमें ईश्वरोपासना, भगवद्भक्तिका स्वरूप तथा भक्तिके प्रकारों और विभिन्न पक्षोंपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार किया गया है। साथ ही इसमें अनेक भगवद्भक्तोंके शिक्षाप्रद-अनुकरणीय जीवन चरित्र भी बड़े ही मर्मस्पर्शी, प्रेरणाप्रद और सर्वदा पठनीय हैं।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३४, सन् १९६० ई०]—इसमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित श्रीमद्देवीकी लीला-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। श्रीमद्देवीभागवतके विविध, विचित्र कथा-प्रसंगोंके रोचक और ज्ञानप्रद उल्लेखके साथ देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एवं उपासनापर इसमें महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। अतः साधनाकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय और अनुशीलनयोग्य है।

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३५, सन् १९६१ ई०]—योगवासिष्ठके इस संक्षिप्त रूपान्तरमें जगत्‌की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एवं तत्त्व-ज्ञानके निरूपणके साथ-साथ इसमें शास्त्रोक्त सदाचार, त्याग-वैराग्ययुक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर सूक्ष्म विवेचन है। कल्याणकामी साधकोंके लिये इसका अनुशीलन उपादेय है।

संक्षिप्त शिवपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३६, सन् १९६२ ई०]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन, तत्त्व-रहस्य, महिमा, लीला-विहार, अवतार आदिके रोचक, किंतु ज्ञानमय वर्णनसे युक्त है। इसकी कथाएँ अत्यन्त सुरुचिपूर्ण, ज्ञानप्रद और कल्याणकारी हैं। इसमें भगवान् शिवकी पूजन-विधिसहित महत्त्वपूर्ण स्तोत्रोंका भी उपयोगी संकलन है।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई०]—मनुष्यमात्रको मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी-सम्पदाके दोषोंसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यों और सिद्धान्तोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्मकल्याणकामी पुरुषों तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है।

गर्ग-संहिता (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४४-४५, सन् १९७०-७१ ई०]—श्रीराधाकृष्णकी दिव्य मधुर लीलाओंका इसमें बड़ा ही हृदयहारी वर्णन है। इसकी सरस-मधुर कथाएँ ज्ञानप्रद, भक्तिप्रद और भगवान् श्रीकृष्णमें अनुराग बढ़ानेवाली हैं।

नरसिंहपुराण [वर्ष ४५, सन् १९७१ ई०] भगवान् व्यासकी एक सुन्दर रचना है। इसमें पुराणोंके पाँचों लक्षणोंके साथ भगवान्‌के लीलावतारकी कथाओंका सुन्दर वर्णन है। इसके अतिरिक्त भगवान् श्रीरामकी लीलाके विशेष चित्रणके साथ मार्कण्डेय, ध्रुव-चरित्र, यमगीता तथा अनेक मन्त्रोंका भी वर्णन है, जिनकी साधनासे इहलौकिक और पारलौकिक सिद्धियोंको सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीगणेश-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४८, सन् १९७४ ई०]—भगवान् गणेश अनादि, सर्वपूज्य, आनन्दमय, ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। 'आदौ पूज्यो विनायकः'—इस उक्तिके अनुसार श्री गणपतिकी अग्रपूजा सुप्रसिद्ध और सर्वत्र प्रचलित हो है। महामहिम गणेशकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषताओं और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वर्णन 'कल्याण' के इस (पुनर्मुद्रित) विशेषाङ्कमें उपलब्ध है। इसमें श्रीगणेशकी लीला-कथाओंका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है।

श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४९, सन् १९७५ ई०]—इसमें श्रीहनुमान्‌जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किये गये क्रिया-कलापोंका तात्त्विक और प्रामाणिक एवं सुरुचिपूर्ण चित्रण है। श्रीहनुमान्‌जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, ध्यान एवं पूजन-विधियाँ आदि साधनोपयोगी बहुमूल्य सामग्रीका भी इसमें उपयोगी संकलन है। अतः साधकोंके लिये यह उपादेय है।

सूर्याङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ५३, सन् १९७९ ई०]—भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। इनमें समस्त देवताओंका निवास है। अतः भगवान् सूर्य सभीके लिये उपास्य और आराध्य हैं। प्रस्तुत अङ्कमें विभिन्न संत-महात्माओंके सूर्यतत्त्वपर सुन्दर लेखोंके साथ वेदों, पुराणों, उपनिषदों तथा रामायण इत्यादिमें सूर्य-सन्दर्भ, भगवान् सूर्यके उपासनापरक विभिन्न स्तोत्र, देश-विदेशमें सूर्योपासनाके विविध रूप तथा सूर्य-लीलाका सरस वर्णन है। इसके साथ अन्तमें भारतीय कलामें सूर्य प्रतिमाएँ, नवग्रह-उपासना, सूर्य-सम्बन्धी व्रत-अनुष्ठान आदि अनेक विषयके रूपमें दो परिशिष्टाङ्क जोड़ दिये जानेसे यह अङ्क और उपयोगी हो गया है।